MAHI-14

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

स्वतंत्रता आन्दोलन (1920-1947)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

स्वतंत्रता आंदोलन(1920-1947)

अनुक्रमणिका

खण्ड- 1

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	स्वतंत्रता आंदोलन के अध्ययन उपागम	6–13
इकाई - 2	राष्ट्रवाद के उदय के कारण	14–29
इकाई - 3	प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त जनचेतना	30–42
इकाई - 4	रौलट सत्याग्रह	43–50
इकाई - 5	खिलाफत और असहयोग आन्दोलन	51–58
खण्ड- 2		
इकाई - 6	स्वराज्यवादियों की भूमिका एवं उपलब्धियाँ	59–76
इकाई - 7	साम्प्रदायिकता का विकास (1920-30)	77–91
इकाई - 8	क्रान्तिकारी आतंकवादी गतिविधियां	92–116
इकाई - 9	स्वतंत्रता आंदोलन में साम्यवादियों का योगदान	117–129
इकाई - 10	साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट	130–145
खण्ड- 3		
इकाई - 11	सविनय अवज्ञा आंदोलन और गोलमेज कोन्फ्रेंस	146–159
इकाई - 12	कांग्रेस समाजवादियों का उत्थान एवं विकास	160–172
इकाई - 13	संविधान और कांग्रेस (1935-1937 ई.)	173–197
इकाई - 14	भारत छोड़ो आन्दोलन- 1942	198–211
इकाई - 15	मुस्लिम अलगाववाद का विकास (1930-46)	212–224
खण्ड- 4		
इकाई - 16	देशी रियासतों में स्वतन्त्रता आंदोलन का सर्वेक्षण	225–239
इकाई - 17	सुभाष बोस और भारतीय राष्ट्रीय सेना (आई.एन.ए.)	240–252
इकाई - 18	1946 का नोसैनिक विद्रोह	253–263
इकाई - 19	सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया	264–282
इकाई - 20	भारत की आजादी और विभाजन	283–305

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा
कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. जे.पी. मिश्रा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी

प्रो. एस.एन. दुबे
इतिहास विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रो. डी.सी. शुक्ला
इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर

प्रो. एस.पी. गुप्ता
इतिहास विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

डा. आर.के. शर्मा
इतिहास विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

डा. बृज किशोर शर्मा
सह-आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग,
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डा.(श्रीमती) कमलेश शर्मा
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डा. याकूब अली खान
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. अशोक शर्मा
राजनीति विज्ञान विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डा. अनिता प्रकाश
इतिहास विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली (उत्तर प्रदेश)

डा. एन.के. शर्मा
इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

डा. एच.एस. सक्सेना
इतिहास विभाग
डी.ए.वी. कॉलेज, अजमेर

श्री एल.एन. शैली
सेवानिवृत्त प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, करौली (राज.)

डा. विनीता परिहार
इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

श्री एम.एल. साहू
इतिहास विभाग
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

श्री एच.सी. जैन
विभागाध्यक्ष, इतिहास
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

डा. बृज किशोर शर्मा
सह-आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग,
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी, **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पुनः उत्पादन- जनवरी 2011 ISBN No. : 13/978-81-8496-253-6

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई – 1

स्वतंत्रता आन्दोलन के अध्ययन–उपागम

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 राष्ट्रवादी लेखन
1.3 उपनिवेशवादी लेखन
1.4 मार्क्सवादी लेखन
1.5 सारांश
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.7 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के अध्ययन संबंधी अनेक उपगमों से अवगत कराना इस इकाई का प्राथमिक उद्देश्य है । इस इकाई में राष्ट्रीय आन्दोलन विभिन्न मतमतान्तरों का विश्लेषण भी किया जाना अपेक्षित है । इन सबके साथ भारत? के स्वतंत्रता आन्दोलन पर विभिन्न कृतियों के स्वरूप का विवेचन भी किया गया है । अत इस इकाई के अध्ययन से आप राष्ट्रीय आन्दोलन के विश्लेषण की विपिन प्रवृत्तियों से भली भांति परिचित हो सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के अध्ययन की प्रमुख । प्रवृत्तियों में राष्ट्रवादी, उपनिवेशवादी, एवं मार्क्सवादी के नाम प्रमुखता से आते है । राष्ट्रवादी इतिहास लेखकों ने समग्र रूप में बिना किसी भेद–भाव के भारतीय जनता के विभिन्न वर्गो की स्वतंत्रता आन्दोलन में भूमिका को स्पष्ट किया है । जबकि उपनिवेशवादी लेखक, स्वतंत्रता आन्दोलन हेतु भारत में उपजे राष्ट्रवाद को राष्ट्रीय उभार न मानकर कुछ असंतुष्ट व्यक्तियों अथवा वर्गों की स्वार्थपरता वश जमावड़े की संज्ञा देते है। इसी क्रम में मार्क्सवादी भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास को वर्गो के संघर्ष के रूप में देखते है । जबकि सांप्रदायिक लेखक भारत के राष्ट्रीय उभार को प्रमुख तौर पर हिन्दू–मुस्लिम समुदायों के उभार के रूप में चित्रित करते है। अत: भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इन मतमतान्तरों का खुलासा करना प्रासंगिक होगा । इन प्रवृत्तियों का उदय तो स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ही हो चुका था किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् ये प्रवृत्तियाँ अधिक परिपक्व रूप में सामने आयी । उदाहरणार्थ 1857 की क्रांति जिसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम माना जाता है, उसमें सभी प्रकार के तत्व सम्मिलित थे जबकि इस क्रांति की विभिन्न दृष्टिकोणों से अलग–अलग व्याख्या प्रस्तुत की गई है। राष्ट्रवादी लेखक 1857 की क्रांति को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम मानते है, जिसमें भारतीय समाज के सभी वर्गो ने अपनी भूमिका निभायी।

जबकि उपनिवेशवादी लेखक या तो इसे महज एक सिपाही विद्रोह मानते है अथवा कुछ इस श्रेणी के लेखक इसे कट्टरपंथी हिन्दू और मुसलमानों का विद्रोह मानते है । इसी कम में

साम्यवादी लेखक इसे वर्गीय आधारों पर प्रमुख तौर से किसानों का विद्रोह मानते है । इनकी स्पष्ट मान्यता है कि अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियों ने भारतीय किसान को कंगाल बना दिया था जिससे किसानों के अस्तित्व को खतरा उपस्थित हो गया था ऐसी स्थिति में भारतीय किसानों ने 1457 की क्रांति के रूप में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ी । आगे इनका मानना है कि क्रांति की प्रेरक शक्ति तो किसान थे किन्तु इसका नेतृत्व राजा और सामन्तों के हाथों में था जिससे यह क्रांति 1857 में भारत में अंग्रेजी राज को उखाड़ फैंकने में सफल नही रही। साम्प्रदायिक लेखक यह मानते है कि अंग्रेजी साम्राज्य भारतीय धर्म को नष्ट भ्रष्ट करना चाहता था । अत: धर्म की रक्षार्थ भारतीयों ने 1857 में अंग्रेजी साम्राज्य भारतीय धर्म को नष्ट भ्रष्ट करना चाहता था। अत: धर्म की रक्षार्थ भारतीयों ने 1857 में अंग्रेजी साम्राज्य को कड़ी चुनौती दी । यदि तथ्यों के आधार पर देखें तो ये सभी मत सही है किन्तु किसी एक वर्ग अथवा समुदाय द्वारा की जाने वाली क्रांति इसे माना जाय तो उचित प्रतीत नहीं होता। इन प्रवृत्तियों में राष्ट्रवादी लेखन की प्रवृति अधिक तर्कसंगत और समीचीन दिखाई देती है ।

1.2 राष्ट्रवादी लेखन

राष्ट्रवादी लेखक की तो बहुतायत है, किन्तु इस प्रवृत्ति के प्रमुख इतिहासकार आर सी मजूमदार व ताराचन्द है । दोनों के द्वारा लिखित स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास अपने आप में मार्ग दर्शक स्वरूप के माने जाते है उनमें अनेक समानतायें व असमानताऐं मिलती है । जहां मजूमदार का लेखन सामान्य पाठक के लिए उपयुक्त है, वहीं ताराचन्द का लेखन विद्वतापूर्ण कृति मानी जाती है । भारत सरकार ने स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास लेखन हेतु मजूमदार को नियुक्त किया था, किन्तु जब उसने अपने ग्रन्थ के प्रथम भाग का प्रथम प्रारूप प्रस्तुत किया तो उसे भारत सरकार ने निरस्त कर दिया । इसके पीछे प्रमुख कारण यह माना कि उसने अपने लेखन में बंगाल को अधिक स्थान देकर लेखन में असंतुलन पैदा कर दिया है जो क्षेत्रवाद की भावना को जागृत कर राष्ट्रीय एकता में बाधा उत्पन्न कर सकता है । अत: सन 1955 में मजूमदार को इस इतिहास लेखन के कार्य से मुक्त कर दिया और इनके स्थान पर यह कार्य ताराचन्द को सौप दिया गया । ताराचन्द एक संतुलित विचारधारा के इतिहासकार थे जबकि मजूमदार दक्षिण पंथी अतिवादी विचारधारा के शिकार थे इस घटनाक्रम के उपरान्त भी मजूमदार ने अपना लेखन कार्य जारी रखा । मजूमदार ने स्वतंत्रता के राजनीतिक विवरण को प्राथमिकता दी जबकि ताराचंद ने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्थितियों व घटनाओं को समन्वित रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जोड़ने का सार्थक प्रयास किया । इस प्रकार दोनों ही लेखक राष्ट्रवादी लेखन की परम्परा के समर्थक होते हुए भी लेखन की पद्धति में कुछ अन्तर लिये हुये पाये जाते है।

मजूमदार एवं ताराचंद में कुछ समानताऐं भी दिखाई देती है । उदाहरण के लिये दोनो का यह दृढ़ विश्वास है कि भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म ताजा घटना ही थी एवं भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के पूर्व राष्ट्रवाद जैसी कोई चीज अस्तित्व में ही नहीं थी । किन्तु 1857 की क्रांति के बारे में दोनों में भारी मतभेद व्याप्त है, जहां ताराचंद ने इसे एक राष्ट्रीय क्रांति व पुरातन गौरव को प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता का एक भारतीय प्रयास माना है, वही मजूमदार ने इसे भारत में अंग्रेजी राज के लिए एक सीधी चुनौती एवं प्रथम महान स्वतंत्रता संग्राम माना है ।

ताराचंद व मजूमदार साम्प्रदायिक समस्या पर भी भारी मतभेद रखते है। मजूमदार का पक्का विश्वास था कि हिन्दू एवं मुसलमान दो पृथक राष्ट्र है जबकि ताराचंद भारत को एक ही राष्ट्र मानते हुये इसे समन्वित संस्कृति का प्रतिनिधि मानते है । मजूमदार सोचते है कि मुसलमानों ने अपनी पृथक पहचान बनाये रखने हेतु अपने आपको भारतीय राजनीति की मुख्य धारा से अलग रखा । अत: इस प्रकार उनकी पृथक राजनीतिक पहचान ने उन्हें भारतीय राष्ट्रवाद के मूल से पृथक कर दिया। ताराचंद का विचार है कि अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के कारण हिन्दू मुसलमान धर्म के आधार पर बंट गये । ताराचंद स्पष्ट तौर पर उल्लेख करते है कि मुसलमानों को केन्द्रीय विधान परिषद में पृथक प्रतिनिधित्व दिये जाने के लिए अंग्रेज जिम्मेदार थे। जिन्होंने मुसलमानों को इसकी मांग हेतु उकसाया था । ताराचंद ने अंग्रेजों की "फूट डालो और राज करो" की नीति की कटु आलोचना की है । किन्तु उसने कांग्रेस की जिन्ना की उपेक्षापूर्ण नीति की भी आलोचना की है वह मानता है कि भारत के भाग्य का फैसला करने वालों में जिन्ना के उदय के लिए कांग्रेस जिम्मेदार है । किन्तु वह कांग्रेस की धर्मनिरपेक्ष विचारधारा पर कोई संदेह नहीं करते है । ताराचंद यह भी मानते है कि मुसलमानों की कुछ न्यायिक समस्याएँ थी किन्तु उनको बहुत बढ़ा–चढ़ा कर पेश किया गया था । लेकिन साथ ही साथ ताराचंद राष्ट्रीय समस्या संदर्भ में मुसलमानों के संकीर्ण मत का आलोचक है । इस संबंध में वह मौहम्मद इकबाल एवं जिन्ना का कट्टर आलोचक है । वह सभी पक्षों को साम्प्रदायिकता व देश के विभाजन जिम्मेदार मानता है किन्तु इसके लिए प्रमुख तौर पर अंग्रेजों को ही उत्तरदायी ठहरता है ।

मजूमदार के अनुसार राजनीतिक नेता जो भारतीय राजनीति के मंच पर प्रभावी थे इनमें गांधी, सुभाषचन्द्र बोस एवं जिन्ना ही थे । वह नेहरू को भी इससे अलग मानता है । वह गांधी को भी राष्ट्रपिता के रूप में आदर देने के लिए तैयार ही । है उनके अनुसार केवल सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ही भारतीय राष्ट्रवाद का पिता होने का पात्र है । मजूमदार घोषणा करता है कि गांधी असफल रहा, क्योंकि वह भारत की एकता को सुरक्षित नहीं रख पाया । इसके अलावा इनका कहना है कि उनका अहिंसा का सिद्धान्त असफल रहा । गांधी असफल रहे, क्योंकि उसके हाथ थामने वाले शिष्यों ने भी गांधी की विचारधारा को अस्वीकार कर दिया । गांधी के कारण मुस्लिम लीग की सौदेबाजी की शक्ति में वृद्धि हुई । गांधी तर्क शक्ति के बजाय आत्मिक शक्ति पर अधिक भरोसा करते थे । मजूमदार के अनुसार गांधी का सबसे घृणित पाप यह था कि उसने राजनीति में रहस्यवाद का आयात किया। असल में मजूमदार ने अपनी पुस्तक के तीसरे भाग का शीर्षक ही "गांधी : ए स्टडी इन फेलियॉर" रखा है। ताराचंद के लिए गांधी की भूमिका क्रांतिकारी एवं सकारात्मक है जबकि मजूमदार के लिए यह नकारात्मक थी । मजूमदार के मत में विश्व शक्तियों एवं भारतीय सेना के असन्तोष ने स्वतंत्रता को संभव बनाया, जबकि ताराचंद की मान्यता है कि गांधी के बिना यह संभव ही नहीं था।

उपरोक्त दोनों उच्च कोटि के राष्ट्रवादी विचारधारा के द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन की व्याख्या से एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन के हेतु उपागम प्राप्त होते है । तार्किक दृष्टि से देखें तो यह पाते है कि मजूमदार जहां पूर्वाग्रहों से ग्रसित है, वहीं ताराचंद काफी सीमा तक निष्पक्ष प्रतीत होते है ।

1.3 उपनिवेशवादी लेखन

इस श्रेणी के अन्तर्गत वे लेखक आते है जो भारत मे अँग्रेजी राज के समर्थन में लिखते रहे है । स्वतंत्रता पूर्व भी इस श्रेणी के इतिहासकार भारी संख्या में विद्यमान थे । इस क्रम में **परसीवल स्पीयर** का नाम प्रमुखता से लिया जाता है । भारत से सेवामुक्ति के पश्चात् स्पीयर कैम्ब्रिज में इतिहास पढ़ाने लगे थे । इन्होंने अपने लेखन में सर्वाधिक जोर इस बात पर दिया कि भारत के बौद्धिक विकास में पश्चिम का बहुत बड़ा योगदान है । स्पीयर के शिष्य **एरिक स्टॉक्स** ने अपनी महत्वपूर्ण कृति "**इंगलिश यूटीलिटेरियनस एण्ड इण्डिया"** (अंग्रेजी उपयोगितावादी एवं भारत) में भारत और इंग्लैंड के मध्य बौद्धिक सहयोग का विश्लेषण किया है । **कंकन फाव्स** ने अपने लेख **"जेम्स मेल एण्ड इण्डिया"** में भी पश्चिम से भारत की ओर विचारों के आगमन का विश्लेषण किया है। कुल मिलाकर इन लेखकों की यह मान्यता है कि भारत को अंग्रेजी राज के परिणामस्वरूप बौद्धिक लाभ मिला है ।

इस श्रेणी के बहुचर्चित लेखकों में अनिल सील का नाम से आता है । उसकी चर्चित कृति है इमरजेंस ऑफ इण्डियन नेशनललिज्म' । इसमें है कि पश्चिमी शिक्षा प्राप्त प्रैसीडैंसी नगरों के संभ्रान्त भारतीय नौकरशाह अंग्रेजों के सहयोग में रहे किन्तु जब उनकी रोजगार संबंधी इच्छाओं की संतुष्टि नही हुई तो वे अंग्रेज विरोधी हो गये । अनिल सील लिखते है कि राष्ट्रवाद का उदय किन्हीं वर्गीय अथवा आर्थिक आधारों पर नहीं हुआ है । ये आगे कहते है कि कांग्रेस कुछ नहीं थी "बल्कि वार्षिक तमाशा" करने वाली एक संस्था थी । कांग्रेस व अंग्रेजी राज के बीच संघर्ष महत्वपूर्ण प्रतिद्वन्दियों के मध्य था, इस संघर्ष में आम जन का अभी कोई महत्व नहीं था । अर्थात भारत के विशिष्ट जन (संभ्रांत वर्ग) की प्रशासनिक आकांक्षायें अंग्रेजों की सत्ता के साथ टकरा रही थी। अत : सील के अनुसार असंतुष्ट भारतीय संभ्रान्त व्यक्तियों का जमावड़ा ही कांग्रेस थी। अनिल सील यह भी कहते है कि कांग्रेस एक अखिल भारतीय आन्दोलन नहीं था । इसमें अनेक दुरूह प्रक्रियाएँ कार्यरत थी और अनेक स्थान पर तो यह भारतीयों के खिलाफ ही भारतीयों का संघर्ष था ।

अनिल सील के बाद इस श्रेणी का अन्य चर्चित इतिहासकार **रिचार्ड गॉर्डन** है । जिसने अपने लेख "असहयोग एवं विधान परिषद में प्रवेश" में बताया है कि गांधी एक चतुर चालबाज व्यक्ति थे । जिसने मोतीलाल नेहरू व चितरंजनदास को धोखा दिया । वह आगे लिखता है कि कांग्रेस विधान परिषदों का बहिष्कार इसलिए नहीं कर रही थी कि संवैधानिक सुधार अपर्याप्त थे' बल्कि कांग्रेसी यह जानते थे कि वे जीत नहीं सकते । गॉर्डन अपने लेख में अनेक स्थानों पर कांग्रेस के अन्दर की गुटबाजी का उल्लेख कर, भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को महत्वपूर्ण नहीं मानते ।

एक अन्य इतिहासकार **सी.ए. बैली** ने अपने अध्ययन **"पैट्रन एण्ड पॉलिटिक्स इन नॉर्दन इण्डिया"** में राष्ट्रवाद को निहित स्वार्थों का विस्तार बताया है । इसी क्रम में **डेविड वाशबुक** ने भी मद्रास प्रांत के ऊपर लिखी अपनी पुस्तक में राष्ट्रवादी नेताओं के मध्य गुटबाजी का विश्लेषण करते हुये भारत में एक सशक्त राष्ट्रवादी उभार को नकारने का नाकाम प्रयास किया है । **जुडिश ब्राउन** ने **"गांधीज रायज टू पाँवर"** में गांधी को एक चालबाज व्यक्ति बताने का बेतुका प्रयास किया है । असल में ब्राउन का विश्लेषण **वी. चिरोल** के लेख **गांधी का उदय** के ऊपर आधारित है।

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने भारत के राष्ट्रवाद व राष्ट्रीय नेताओं को सही रूप में प्रस्तुत नहीं किया है । बल्कि इन्होंने तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर पेश कर एक भ्रामक प्रचार करने का असफल प्रयास किया है ।

1.4 मार्क्सवादी लेखन

इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या में भूतकाल को समझने की नयी विद्या को लिया गया है । इस चिन्तन ने इतिहास को काफी समृद्धि प्रदान की । भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को मार्क्सवादी इतिहासकारों ने भिन्न रूप से देखा है स्वयं कार्लमार्क्स ने भारत में अंग्रेजी राज पर सर 1853 में कुछ लेख लिखे । ये लेख **न्यूयॉर्क डेली ट्रब्यून** में छपे थे । मार्क्स ने कभी भारत को नहीं देखा और न ही वे किसी भारतीय भाषा के जानकार थे । भारत से सामाजिक आर्थिक मुद्दों पर जो सूचनाऐं इंग्लैण्ड पहुंच रही थी उन्हीं को आधार बनाकर मार्क्स ने ये लेख लिखे । इन लेखों में उसने अंग्रेजी राज के विध्वंसात्मक प्रभावों की कटु आलोचना की क्योंकि इसने भारतीय समाज की सम्पूर्ण संरचना को तहस–नहस कर दिया था एवं इसके पुनर्निर्माण के कोई लक्षण नहीं दिखाई देते थे । मार्क्स के लेखों से 1857 की क्रांति को सही परिप्रेक्ष्य में समझने में सहायता मिलती है। यही से मार्क्सवादी इतिहासकार भी 1857 की क्रांति पर विश्लेषणात्मक टिप्प्णी करते हुये लिखते है कि अंग्रेजी साम्राज्य के परिणामस्वरूप उपजे आर्थिक असंतोष ने इस क्रांति को जन्म दिया । अत: मार्क्सवादी लेखक 1857की क्रांति को आम जनता का विद्रोह मानते है।

मार्क्स के उपरान्त भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर व्यवस्थित लेखन करने वाले विद्वानों में "रजनीपामदत्त" का नाम प्रमुख तौर पर लिया जाता है । रजनीपामदत्त को पक्का मार्क्सवादी माना जाता है । अक्टूबर 1917 में रूस की वाल्सेविक क्रांति के कुछ समय पूर्व इन्हें मार्क्सवाद के प्रचारक के रूप में इनकी पहचान कर इन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया था । वह ऑक्सफोर्ड के पूंजीवादी इतिहासकारों से शीघ्र ही मुक्त हो गया था और उसने अपनी प्रसिद्ध कृति "विश्व राजनीति 1918–36 "' लिखकर इंग्लैण्ड के बुद्धिजीवी जगत में हंगामा खड़ा कर दिया था । इसी क्रम में अपनी मार्क्सवादी पद्धति को लागू करते हुये इन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का विश्लेषण किया और 1940 में "इंडिया टुडे" (आज का भारत) नामक प्रसिद्ध पुस्तक का प्रकाशन किया रजनीपामदत्त ने इण्डिया टुडे में स्पष्ट रूप से लिखा कि अंग्रेजों के शोषण ने भारत को कृषि अर्थव्यवस्था तक सीमित कर दिया था। उसने इस बात पर भी जोर दिया कि ब्रिटिश इतिहासकारों ने जो भारत के औद्योगिकरण की तस्वीर पेश की है वह नितान्त भ्रामक एवं असत्य है । कुल मिलाकर भारत पर अंग्रेजी राज के प्रभाव नकारात्मक ही रहे है भारतीय कापुरुषों के संदर्भ में दत्त का निर्णय बड़ा ही कठोर प्रतीत होता है । उनका सोचना था कि गांधी ने किसान एवं मेहनतकश वर्गो को अहिंसा का पाठ पढ़ाकर उनके साथ धोखा किया तथा उसने पूंजीवादी वर्ग के हितों की रक्षा की । दत्त के अनुसार गांधी पूंजीपतियों द्वारा सम्पत्ति अर्जन के पक्षधर थे, एवं जब–जब आन्दोलन अपनी सफलता की ओर पहुंचता हुआ नजर आया तो गांधी ने आन्दोलन को वापस ले लिया । दत्त गांधी को प्रतिक्रियावादी ताकतों के साथ सहयोग कर क्रांति रोकने का अपराधी मानते है । दत्त का यह सोचना स्वाभाविक था, क्योंकि वह साम्राज्यवाद को समाप्त करने का एकमात्र रास्ता सशस्त्र विद्रोह को ही मानते थे । दत्त का विश्वास था कि गांधी राष्ट्रीय आन्दोलन पर "भार" ही साबित हुये । धर्म को राजनीति में मिलाने के कारण वह तिलक

व गांधी को साम्प्रदायिक ताकतों को मजबूत करने के लिए जिम्मेदार भी मानता है । दत्त के अनुसार अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक समस्या उत्पन्न की थी जबकि साम्प्रदायिक समस्या अंग्रेजों के पूर्वकाल में नहीं थी साम्प्रदायिकता की जटिल समस्या का समाधान जन आन्दोलनों के माध्यम से संभव था, जिसमें गांधी जी असफल रहे । दत्त भारत के विभाजन को साम्राज्यवाद के साथ पूंजीवादी समझौते का परिणाम मानता है, जिससे भारत में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुईं । वह भारत की आजादी का श्रेय कांग्रेस अथवा गांधी को न देकर नयी विश्वशक्तियों के उदय को देता है।

इन नयी परिस्थितियों में विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरल इंग्लैण्ड की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कमजोर स्थिति का होना एवं भारतीय सेनाओं में बढ़ता हुआ असंतोष था, जो विद्रोह के कगार पर पंहुच गया था। इस दृष्टि से दत्त का विश्लेषण ज भी अभूतपूर्व माना जाता है ।

मार्क्सवादी इतिहासकारों की श्रृंखला में बिपिन चन्द्र का नाम भी उल्लेखनीय माना जाता है । इनकी प्रसिद्ध कृति "भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव एवं विकास" है । इन्होंने इसमें भारतीय नेतृत्व द्वारा राष्ट्रवाद के उदय में आर्थिक तर्कों के उपागम का विश्लेषण किया है । इस पुस्तक में प्रमुख तौर पर दादा भाई नौरोजी, एम.जी. रानाडे, आर सी. दत्त जी.वी. जोशी एवं गोपाल कृष्ण गोखले आदि के विचारों की विशद् व्याख्या की है । इनके द्वारा अंग्रेजी शोषण को उजागर किया गया एवं साथ ही अंग्रेजी राज के लाभदायक स्वरूप की झूठी मान्यता को ध्वस्त किया गया है बिपिनचन्द्र के अनुसार उपरोक्त नेता दार्शनिक अथवा बुद्धिजीवी थे जो अपने हितों से निर्देशित न होकर अपने चिंतन से प्रभावित थे । ये न तो किसी दल के प्रभाव में थे और न ही विचारधारा विशेष के प्रभाव में थे, बल्कि इनका सोच भारत में व्याप्त स्थितियों की समझ पर आधारित था । यदि कही ये किसी विचारधारा से प्रभावित थे तो एक मात्र विचारधारा थी राष्ट्रवादी सोच । बिपिनचन्द्र ने अपनी कृति में कही भी राष्ट्रवादी नेताओं की आलोचना नहीं की बल्कि इन्होंने मार्क्सवादी इतिहास लेखन की पद्धति का उपयोग कर भारत में राष्ट्रवाद के उदय के आधारों का तार्किक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है ।

ए.आर. देसाई जो मूलरूप से समाजशास्त्री है, को भी भारत के मार्क्सवादी इतिहासकारों में गिना जाता है । जिन्होंने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास पर लेखन किया है । इस क्रम में उनका शोध ग्रन्थ "भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि" काफी चर्चित रही है । इन्होंने इस कृति में भारतीय राष्ट्रवाद के सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक आधारों की व्याख्या की है । इनके इस विश्लेषण में आर्थिक आधार को ही प्रमुख माना गया है । इन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में मध्यम वर्ग के उदय, किसानों की चेतना व श्रमिक वर्ग के उदय को सहायक माना है । इसके अतिरिक्त भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में राष्ट्रीय चेतना का उदय किस प्रकार हुआ तथा किस वर्ग ने भारत के राष्ट्रवाद में किस सीमा तक सहयोग किया, का विश्लेषण किया है। सुमित सरकार को भी मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परम्परा का इतिहासकार माना जाता है । इनकी पहली कृति "बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन" है । इसमें सरकार ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार स्वदेशी आन्दोलन अभिजात्य वर्गीय सीमाओं में बंधा हुआ था जो जन–आन्दोलन के रूप में विकसित हो सकता था । किन्तु अभिजात्य वर्गीय नेतृत्व इसे जन आन्दोलन का स्वरूप देने में असफल रहा । इसकी सुमित सरकार ने विस्तार पूर्वक व्याख्या की है । तथा उन कारणों का भी खुलासा किया है जिनकी वजह से अभिजात्य वर्ग यह करने में असफल

रहा । सुमित सरकार ने "आधुनिक भारत" नामक पुस्तक में भारत के स्वाधीनता आन्दोलन को मार्क्सवादी पद्धति से देखने का सफल प्रयास किया है । इस पुस्तक का काल 1885 से 1947 तक रखा गया है । इस समय निर्धारण से यह प्रतीत होता है कि यह पुस्तक कांग्रेस की स्थापना के वर्ष से आरम्भ होकर 1947 में भारत के स्वतंत्रता का उल्लेख करते हुये समाप्त होती है । किन्तु इन्होंने इन दोनों घटनाओं का आधार मानते हुये भी कांग्रेस को भारत की आजादी का पूर्ण श्रेय नहीं दिया है। इन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को भावुकतापूर्ण उद्‌गम व विकास से अलग रखते हुये भौतिकतावादी आधारों को प्रमुखता प्रदान की है। ये मुख्य तौर पर कृषक, श्रमिक, सेना, मध्यमवर्ग आदि की भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रमुख भूमिका मानते है । इसी प्रकार 1947 में भारत की स्वतंत्रता में अनेक नवोदित राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो को सहायक मानते है।

मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परम्परा में और भी अनेक विद्‌वान है किन्तु उनका लेखन प्रमुख तौर पर रजनीपाम दत्त, बिपिनचन्द्र, ए.आर. देसाई व सुमित सरकार की सैद्धांतिक अवधारणाओं से प्रभावित रहा है । अधिकांश मार्क्सवादी परम्परा के इतिहासकार गांधी जी की पूंजीवादी समर्थक छवि की कटु आलोचना करते है । वैसे भी ये सभी इतिहासकार भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में पूंजीवादी वर्ग की भूमिका को स्वार्थपरक मानते है, अर्थात् भारत का पूंजीपति वर्ग राष्ट्रीय आन्दोलन में अपने भविष्य को सुनिश्चित करने के लिए सम्मलित हुआ । असल में राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रमुख शक्तियों व किसान मे मजदूर ही थे, किन्तु स्वाधीनता संग्राम के नेतृत्व पर पूंजीवादी तत्व प्रभावी रहे थे । अत. इन पूंजीवादी तत्वों ने इस आन्दोलन को उस सीमा तक ही आगे बढ़ाया, जहाँ तक उनके हितों की पूर्ति हो सकती थी ।

1.5 सारांश

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के अध्ययन के विभिन्न उपागमों में मुख्य तौर पर तीन धाराये क्रमशः राष्ट्रवादी, उपनिवेशवादी व मार्क्सवादी है । विभिन्न धाराओं के अध्ययन के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि सभी धाराऐं तर्क व तथ्यों के आधार पर अपनी–अपनी सैद्धान्तिक संरचना को ही सही ठहराने का प्रयास करती है । किन्तु जब हम इन विभिन्न धाराओं के लेखनों को तर्क की कसौटी पर रखते है तो पाते है कि मुख्य रूप से राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने संतुलित उपागम का सहारा लिया है, जबकि अन्य धाराऐं अनके स्थानों पर असंतुलित दिखाई प्रतीत होती है ।

राष्ट्रवादी इतिहासकारों में डॉ. आर सी. मजूमदार एवं डॉ. ताराचंद मुख्य है । इन दोनों में अनेक स्थानों पर मतभेद होने के उपरान्त भी मुख्य मुद्दों पर ये एक मत! ही दिखाई देते है । इनका सम्पूर्ण चिन्तन और लेखन मुख्यत अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इर्द गिर्द ही घूमता हुआ नजर आता है । ये कांग्रेस को ही भारत की आजादी का श्रेय प्रदान करते है । उपनिवेशवादी लेखक अनेक स्थानों पर भारत में अंग्रेजी राज के सकारात्मक प्रभावों को बनाने का असफल प्रयास करते है, वही भारत में राष्ट्रवाद को एक सच्चाई के रूप में नकारने का दृष्टिकोण भी अपनाते है । यदि कुछ लेखक भारत के राष्ट्रवाद को सच्चाई के रूप में स्वीकार भी करते है तो वे इसे अंग्रेजी साम्राज्य और पश्चिमी दर्शन की ही सकारात्मक भूमिका का परिणाम मानते है । जबकि राष्ट्रवादी लेखक यह मानते है कि भारत में राष्ट्रवाद का उदय अंग्रेजी सामाज्य के शोषण के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया थी । मार्क्सवादी लेखक भारत में राष्ट्रवाद के उदय के लिए जिम्मेदार परिस्थितियों की व्याख्या करते हुये राष्ट्रवादी लेखकों के काफी समीप दिखाई देते है । इनकी

मान्यता भी यही रही कि भारत के साम्राज्यवादी शोषण ने भारत में राष्ट्रवाद को जन्म दिया । किन्तु भारत स्वतंत्रता आन्दोलन की व्याख्या करते हु ये इसकी प्रमुख शक्तियों में किसान, मजदूर को। ही महत्व देकर आर्थिक कारकों को महत्ता प्रदान करते है ।

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के अध्ययन के विभिन्न उपागमों का विवेचन कीजिए ।
2. राष्ट्रवादी व मार्क्सवादी इतिहासकारों द्वारा भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर लेखन की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए ।
3. भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन पर उपनिवेशवादी इतिहासकारों की प्रमुख का वर्णन कीजिये ।

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. ताराचंद – भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग 1 से 4 तक
2. पामदत्त रजनी – इण्डिया टुडे, द्वितीय भारतीय संशोधित संस्करण, मनीषा प्रकाशन, कलकत्ता, 1970
3. सरकार सुमित – द स्वदेशी मूवमेंट इन बंगाल (1903–1904), पीपल्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1977.
4. सरकार सुमित – मॉर्डन इण्डिया (1885–1947) मैकमिलन प्रकाशन, दिल्ली, 1983.
5. बिपिनचन्द्र – द राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इकॉनोमिक नेशनलिज्म इन इण्डिया, पीपल्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1969.
6. मजूमदार – आरसी., हिस्ट्री ऑफ दी फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया, भाग 1 से 3, कलकत्ता, 1962–63.
7. सील अनिल – दी इमरजैंस ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, कैम्ब्रिज, 1968.

इकाई – 2
राष्ट्रवाद के उदय के कारण

इकाई की संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.3 राष्ट्रवाद का अर्थ

2.4 राष्ट्रवाद के उदय के कारण

2.3.1 बदली हुई आर्थिक संरचना

2.3.2 अंग्रेजों द्वारा स्वदेशी उद्योग धन्धों का विनाश

2.3.3 नयी सामाजिक व्यवस्था

2.3.4 यातायात के नवीन साधनों का प्रचलन

2.3.5 अंग्रेजी शिक्षा

2.3.6 समाचार पत्र और साहित्य

2.3.7 ईसाई धर्म का प्रभाव

2.3.8 सुधार आन्दोलन

2.3.9 एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था

2.3.10 नवनिर्मित संस्थाओं तथा विभिन्न घटनाओं का प्रभाव

2.4 राष्ट्रवादी अभिव्यक्ति – भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

2.5 सारांश

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे कि –

- राष्ट्रवाद से क्या तात्पर्य है?
- भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवादी प्रयोजनों की क्या प्रमुख संकल्पनाएँ है?
- राष्ट्रवाद के विकास में सहायक कारकों की क्या भूमिका रही है?
- इन सहायक कारकों की भूमिका के फलस्वरूप राष्ट्रवाद के उदय व विकास की क्या दशा व दिशा रही है? तथा
- भारतीयों की राष्ट्रवादी अभिव्यक्ति – भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के रूप में कैसे चरितार्थ हुई और उसका राष्ट्रवादी कलेवर क्या और कैसा था?

2.1 प्रस्तावना

भारतीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवाद का अवधारणात्मक एवं व्यावहारिक स्वरूप पश्चिमी संदर्भ की तुलना में प्रथमत: भारत की ऐतिहासिक – सांस्कृतिक परम्परा तथा संस्कार से अनुप्राणित

देखा जा सकता है । फलत: यदि पश्चिमी अनुभवों के अन्तर्गत राष्ट्रवाद स्वराज एवं स्वशासन के राजनैतिक केन्द्र से संयुक्त रहा तो भारतीय अपेक्षाओं के अन्तर्गत एंकाकी रूप से राजनैतिक को केन्द्र नहीं माना गया। राजनीतिक अवश्य ही अनिवार्य चरण के रूप में स्थापित रहा किन्तु राष्ट्रवाद के संकल्प से पूर्व सामाजिक शक्ति, विश्वास एवं आस्था के क्षेत्रों के उन्नयन को निर्णायक प्राथमिकता प्रदान की गयी। भौतिक बनाम आध्यात्मिक के विवाद से परे, राष्ट्रवादी प्रयोजन को परिसम्वादीय माना गया । राजनीतिक परतंत्रता के अभिशाप भारतीय संदर्भ में एकाकी नहीं थे । सम्पूर्ण नागरिक–जीवन एवं मनोदृष्टि आहत थे । फलत: स्वतंत्रता की अपेक्षाओं में समग्र सामाजिकता स्थापित देखी गयी। प्रमाणिक रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन एवं चिन्तन के राजनीतिक आग्रहों से पूर्व, धर्म एव समाज के परिस्करण एवं पुन: रचना के आग्रह प्रस्तुत किये गये । इसी ऐतिहासिक सत्य की पृष्ठभूमि भारतीय राष्ट्रवादी की प्रेरणा है ।

आधुनिक भारतीय चिन्तन की विविध धाराओं में भिन्नता के बावजूद यदि सामान्यत: किसी मूल पक्ष को उच्चतर स्तर पर देखा जा सकता है तो वह है राष्ट्रवाद के प्रति राजनीतिक प्राथमिकता के स्थान पर समय सामाजिक दृष्टि की परिणिति।

परतंत्र भारत की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण तथा भारतीय समाज में उत्पन्न और विकसित सामाजिक कारकों की अन्तर्क्रिया के परिणाम स्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।

राष्ट्रवाद को सामान्य अध्ययन की दृष्टि से यदि हम देखें तो भारत में राष्ट्रवाद के प्रादुर्भाव और विकास का अपना विशिष्ट स्थान है । राष्ट्रीयता के उत्थान की प्रक्रिया, भारत में बहुत ही जटिल एवं बहुआयामी रही है । इसके पीछे अनेक कारण भी है । ब्रिटिश शासन के भारत आगमन से पूर्व भारत का सामाजिक ढाँचा कई मायनों में अद्भुत था । भारत का विशाल जन–समुदाय लगभग सभी विषयों जैसे भाषा, धर्म, राजनीति इत्यादि पर विभाजित था । यहां की अर्थव्यवस्था भी यूरोपिय देशों की अर्थव्यवस्था से भिन्न थी । इन विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों, परम्पराओं विस्तृत भू–भाग तथा विशाल जनसंख्या वाले भारत देश में राष्ट्रवाद के उद्भव एवं विकास में अनेक महत्वपूर्ण कारकों का योगदान रहा है ।

भारतीय राष्ट्रवाद का उद्भव राजनीतिक परतंत्रता के समय में हुआ। ब्रिटिश शासन ने अपने हितों की पूर्ति के लिए यहां की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना को परिवर्तित किया। केन्द्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की । आधुनिक शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ की यातायात के नये साधनों का विकास किया और अन्य ऐसी संस्थाओं का निर्माण किया जो ब्रिटिश शासन के हितों की पूर्ति कर सकें । इस नवीन स्थापना के फलस्वरूप नए सामाजिक वर्गों का जन्म हुआ । इन नवीन सामाजिक वर्गों का अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण कालांतर में, ब्रिटिश साम्राज्य से टकराव प्रारम्भ हुआ। यही भारतीय राष्ट्रवाद के उदय की आधार शिला ही नहीं प्रेरणा स्त्रोत भी बना ।

2.2 राष्ट्रवाद का अर्थ

राष्ट्रवाद का विचार मूलत: व्यक्ति के भावात्मक लगाव का परिचायक है । अपने इस रूप में राष्ट्रवाद प्रधानत: एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा का बोध कराता है। अन्तर्गत व्यक्ति अपने परिवेश से रागात्मक अनुभूति स्थापित करता है यह अनुभूति प्रकृति, समाज, दार्शनिक मूल्यों तथा सामाजिक लोकाचार को प्रतिबिम्बित करते हुए व्यक्ति की सतत् गहराती व्यापक चेतना का

संकेत देती है । देशभक्ति, देश की रक्षा, आत्मबलिदान आदि उत्कृष्ट भावनाऐं इसी व्यापक चेतना की उपज है और राष्ट्रवाद इनसे निरंतर परिपुष्ट होता आया है ।

मूलत: राष्ट्रवाद के प्रकटीकरण में व्यक्ति के भावनात्मक प्रेम की दो अनुभूतियों का संयोजन होता है । प्रथम व्यक्ति की मातृभूमि से प्रेम पर आधारित देश भक्ति द्वितीय व्यक्ति का किसी राजनीतिक इकाई से व्यक्तिगत जुड़ाव, मानव की इन दोनों अनुभूतियों का संयोजन ही राष्ट्रवाद है । राष्ट्रवाद व्यक्ति की एक मानसिक अवस्था है । जो के आस–पास निवास करने वाले व्यक्तियों के सहआचरण से उत्पन्न व्यक्तिगत लगाव, की गहन अनुभूति एवं चेतना से उत्पन्न होती है । यह एक अत्यन्त ही सशक्त भावना है । इतिहास पर यदि दृष्टि डालें तो इससे अधिक शक्तिशाली मानवीय प्रवृत्ति हमें दिखाई पड़ती । क्योंकि आत्मिक निष्ठा और मानसिक दृढ़ता के संयोजन होने इसकी शक्ति अत्यन्त सशक्त रूप ग्रहण कर लेती है । यह शक्ति व्यक्तियों को प्रेरणा प्रदान कर क्रियाशील बनाती है और उनकी अन्त:स्थ क्षमताओं को प्रकट करती है । यही कारण है कि शक्ति का तो दमन किया जा सकता है लेकिन विचारों की शक्ति का दमन नहीं किया जा सकता ।

वस्तुत: स्वभाव से मनुष्य की चेतना के दो स्तर होते है वैयक्तिक चेतना एवं समूह चेतना। वैयक्तिक चेतना के फलस्वरूप व्यक्ति को अपने "स्व" से अधिक प्रेम रहता है । जबकि समूह चेतना के कारण वह समूह के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है । यदि राष्ट्रवाद को चेतना के संदर्भ में देखा जाये तो यह समूह चेतना की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत आता है । क्योंकि "स्व और समूह चेतना के संयोजन के कारण व्यक्ति एक विशिष्ट म,कार की भावनात्मक समानता में बंध कर सामूहिक एकता में प्रकट होते है । यह सामूहिकता भावना का दृढ़ीकरण ही राष्ट्रवाद है, जो एक मानवीय संवृत्ति है, एक चेतना है । किन्तु चेतना यह प्रकार अन्य प्रकार की सहज समूह चेतनाओं से भिन्न होता है । यही कारण है कि जिस अनुपात में सामूहिकता की भावना तीव्रता और रागात्मक अभिवृद्धि प्राप्त है उसी अनुपात में राष्ट्रवाद स्थिर और बलवान होना है । क्योंकि सामूहिकता की भावना का आधार समान राजनैतिक एवं भौगोलिक इकाई, समान रहन–सहन, समान भाषा तथा समान संस्कृति आदि होता है । इन समान तत्वों के प्रति व्यक्ति की जागरुक भावना उन्हें एकता के सूत्र में बांधती है जो समान उद्देश्य और समान भविष्य की कल्पना से दृढ़ होती है तथा राष्ट्रीयता के विचार की उत्पत्ति में इन जीवन्त तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । इन्हीं जीवन्त तत्वों के आधार पर एक प्रबल भावना मनुष्यों को आपस मे बांधे रखती है । राष्ट्रवाद की परिभाषाओं का यदि विश्लेषण किया जाये तो सामान्यत: भावनाओं और दृष्टिकोण की शब्दावली में प्रस्तुत की जाती है । इसे अनेक रूपों में जैसे एक अनुभूति एक आकांक्षा, एक मूल्य या राष्ट्र की सर्वोच्चता की चेतना के रूप में माना जाता है । कार्लटन हेज लिखते है - “सरलतम शब्दों में राष्ट्रीयता की चेतना से देश भक्ति के संयोजन के रूप में, राष्ट्रवाद को परिभाषित किया जा सकता है ।“ डॉ. संकोहन राष्ट्रवाद को नैसर्गिक वृत्ति न मानकर एक मानसिक वृत्ति मानते है । इनका मानना है कि राष्ट्रवाद मस्तिष्क की एक अवस्था है जिसे जागरूक रहकर सप्रयत्न पनपाया जाता है । जिसमें व्यक्ति उच्चतर निष्ठा की अनुभूति राष्ट्र–राज्य के प्रति करता है ।

2.3 राष्ट्रवाद का उदय

राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया सभी देशों में समान नहीं रही है । क्योंकि सभी देशों की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न रही है । इन भिन्न–भिन्न परिस्थितियो ने ही राष्ट्रवाद का स्वरूप निर्धारण अलग–अलग प्रकार से किया । ये परिस्थितियाँ ही अलग–अलग समाजों अथवा समूहों को रूप प्रदान करती है । इनके कारण समाज अथवा समूह को एक विशिष्ट पहचान प्राप्त होती है और इनसे राष्ट्रीयता की अवधारणा प्रेरित होती है ।

भारत में राष्ट्रीयता की भावना को लेकर प्राय: यह मान्यता रही है कि यह ब्रिटिश शासन की देन है। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व यहां एकता की भावना का अभाव था । इसलिए यहां राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न नहीं हो पायी । इसका अर्थ यह हुआ कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व हम अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता से परिचित नहीं थे। हमें अपनी मातृभूमि के प्रति कोई प्रेम नहीं था। एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति के रूप में हम इसके आधारभूत लक्षणों से वंचित थे। इस संबंध में तथ्यों का ज्ञान प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अध्ययन करने से ही हो सकता है।

यह मानना सही नहीं है कि राष्ट्रीयता की भावना का उद्भव ब्रिटिश शासन का प्रभाव था, पहले भारतवासी अपने राष्ट्रीय स्वरूप से अनभिज्ञ थे । सामान्य देश और सामान्य संस्कृति की चेतना पर आधारित समूह भावना के अर्थ में राष्ट्रवाद, भारतीय जीवन का वैदिक काल से ही एक विशिष्ट लक्षण रहा है । भारतीयों को सदैव स्वयं की विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा का आभास रहा है, तथा हमेशा इस तथ्य पर गर्व का अनुभव किया है कि हमें एक समृद्धशाली सांस्कृतिक परम्परा विरासत में मिली है । भारतीय राष्ट्रवाद का सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रकटीकरण भारत भूमि भारतवासियों की होने की धारणा व उसके प्रति श्रद्धा व गौरव की भावना के माध्यम से हुआ है । जाति एवं अन्य सामाजिक बंधनों के बिना भारत में भारतीय लोगों की मातृभूमि और पुण्य भूमि होने का बोध भारतीय इतिहास के साथ विकसित हुआ है । अति प्राचीन काल में भी हमें मानवता के प्रथम उद्गार ऋग्वेद के मंत्रों में राष्ट्रवाद के आधारभूत सिद्धान्तों का अस्तित्व दिखाई देता है। अर्थवेद के पृथ्वी सूक्त में आर्यों की निवास भूमि के रूप में धरती माता का यशोगान किया गया है । यह मातृभूमि के प्रति भक्ति ही है । प्राचीन भारतीय साहित्य में भूमि का माता के रूप में गुणगान करने के अनेक प्रसंग मिलते है । राष्ट्रभक्त आर्य की यह कामना थी कि पृथ्वी माता मुझ बालक को दूध पिला दो..... मानो भूमि विसृजतीं माता पुत्रस्य में पय: । भूमि के मातृत्व प्रेम में राष्ट्रप्रेम की भावना निहित है । अत: यह कहना सत्य नहीं है कि राष्ट्रवाद का उद्भव अंग्रेजों के सम्पर्क का ही प्रभाव था ।

राष्ट्रवाद की भावना भारत में अति प्राचीन काल से ही विघमान रही है, लेकिन इसके विकास में समय–समय पर अनेक सामाजिक सांस्कृतिक कारणों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। ब्रिटिश शासन काल में उत्पन्न विशिष्ट परिस्थितियों से भारत की राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक भावनाऐं प्रभावित हुई । इस प्रभाव के कारण राष्ट्रवाद के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान उत्पन्न हुई । इस समय में राष्ट्रीयता के सभी आधारभूत तत्व जो भारत में पहले से ही विद्यमान थे तीव्रता से विकसित होकर, राष्ट्रवाद के उदय के रूप में प्रकट होने लगे। इसलिए आलोचकों का यह तर्क असत्य है कि भारत में राष्ट्रवाद ब्रिटिश शासन की देन है । भारत में राष्ट्रवाद के सभी आवश्यक आधार भूत तत्व पहले से ही

मौजूद थे । ब्रिटिश शासन काल में तो, शासन और विश्व शक्तियों के कारण तथा साथ ही भारतीय समाज में उत्पन्न एवं विकसित विभिन्न आत्मनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ कारणों की क्रिया–प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हुआ । जिसके लिए अनेक कारक उत्तरदायी रहे, इनमें से प्रमुख कारक निम्नलिखित थे–

2.3.1 बदली हुई आर्थिक संरचना

अंग्रेजों के आगमन के समय भारत में आदिम साम्यवाद से मिलती जुलती सांमती समाज–व्यवस्था थी । यह सांमती समाज व्यवस्था यूरोप की सांमती से बिल्कुल भिन्न थी, क्योंकि भारत में इसका स्वरूप आत्मनिर्भर ग्राम–व्यवस्था का था और भूमि का मालिक व्यक्तिगत रूप से कोई नहीं था। भूमि का स्वामित्व न तो राजा के पास था और न ही किसान के पास। बल्कि भूमि का स्वामित्व ग्राम–समाज के पास था । राजा सांमतों के माध्यम से, ग्राम–समाज से "लगान" (कर) वसूल करता था।

जिस समय अंग्रेज फ्रांसिसी या अन्य विदेशी कम्पनियों ने भारत में अपना व्यापारिक और राजनैतिक आधार स्थापित करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया उस समय और उससे पहले भी भारत में एक भारतीय पूंजीपति वर्ग था जो निरंतर शक्ति एकत्रित करने के लिए प्रयत्न करता रहा था। इस पूंजीपति वर्ग के द्वारा उत्पादित वस्तुओं का क्रय–विक्रय करके लाभ कमाने के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप शहरों में व्यापारिक केन्द्रों का उदय हुआ । इस कारण हस्त उद्योग से जुड़े अनेक वर्गो का आर्कषण के केन्द्र अब शहर बनने लगे और ये वर्ग अब स्थानीय उपयोग–उपभोग की वस्तुओं के स्थान पर विनिमय और निर्यात के लिए उत्पादन करने लगे । इस समय तक ग्राम, आत्मनिर्भर उत्पादक इकाई के रूप में अस्तित्व में बने हुये थे ।

लेकिन, अंग्रेजों ने भारत में अपना आधार स्थापित करने के लिए यहां के आर्थिक ढाँचें में मौलिक परिवर्तन किये । अंग्रेजों ने भारतीय समाज के प्राचीन आर्थिक आधार आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था को नष्ट कर इसके स्थान पर नई पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना की । भारत पर अंग्रेजों के राजनैतिक आधिपत्य के विस्तार के लिए किया गया प्रत्येक प्रयास यहां की प्राचीन अर्थव्यवस्था के विघटन और नयी पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए किया गया प्रयास था ।

अंग्रेजों ने अपनी पूंजीवादी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए औपनिवेशिक भारत का भरपूर उपयोग करना प्रारम्भ किया । ब्रिटिश औद्योगिक पूंजी का भारत में विस्तार होने लगा जिसके कारण ब्रिटिश कारखानों में बने हुए माल का भारत में विक्रय होने लगा। जिससे भारत में प्राचीन आर्थिक व्यवस्था नष्ट हो गयी । इससे भारतीय समाज की आर्थिक संरचना में ही नहीं बल्कि उसके मौलिक स्वरूप में भी परिवर्तन आने लगा । प्राचीन काल से उपयोग–उपभोग के लिए निर्मित उत्पादन सम्बन्ध और वर्ग तेजी से नष्ट होने लगे और इसके स्थान पर नये सम्बन्ध तथा वर्ग पैदा होने लगे । सर्वप्रथम यह परिवर्तन कृषि व्यवस्था में देखने में आया । ब्रिटिश पूंजीवाद ने भारत में ब्रिटेन के समरूप, सामंती व्यवस्था स्थापित कर नई लगान व्यवस्था की स्थापना की, जिसके फलस्वरूप भूमि के स्वामित्व के दो रूपों का जन्म हुआ । पहला उत्तरी भारत में जमींदारी प्रथा की स्थापना की गई जिससे जमींदारों का एक नया वर्ग बना और इन्हें जमीन का मालिक बनाया गया । दक्षिण भारत में रैयतवाड़ी प्रथा की स्थापना करके किसान को जमीन का मालिक बनाया गया । इस तरह से अंग्रेजों ने जमीन को निजी सम्पत्ति बनाया । और

जमीन का बाजार में क्रय–विक्रय प्रारम्भ हुआ । इस नई व्यवस्था से ग्राम समाज, कृषि सम्बन्धी आर्थिक एवं न्यायिक कार्यों से अलग हो गया, इसकी स्वाधीनता समाप्त हो गयी और अब सारे कार्य केन्द्रीय राज्य के पास चले गये । अब वे सभी बंधन टूट गये थे जिनसे किसान सामूहिक तौर पर गाँव से बंधे रहते थे । इसी काल में पूंजी के प्रभाव तथा आवागमन के साधनों के कारण किसान को बाजार की सुविधा प्राप्त हुई और अब किसान बाजार की मांग की दृष्टि से अपने माल का उत्पादन करने लगा । इस प्रकार कृषि का वाणिज्यीकरण प्रारंभ हुआ । नये–नये कानून कृषि के सम्बन्ध में बनने लगे जिनके कारण जंगल या गाँव के आस–पास की भूमि का उपयोग भी अब गाँव वाले मुफ्त नही कर सकते थे । नई–तकनीक एवं नई–नई मशीनों तथा वैज्ञानिक खाद एवं अन्य तरीकों से खेती करने की शुरूआत हुई । अब कृषि से सम्बन्धित आर्थिक एवं तकनीकी समस्याऐं सारे राष्ट्र की समस्याऐं थी । अंग्रेजी शासन काल में कृषि के राष्ट्रीय स्वरूप का जन्म तो हुआ लेकिन यह सम्पन्न एवं समृद्ध नहीं हो सका। किसानों की गरीबी एवं ऋणग्रस्तता बढ़ती गई और इनकी भूमिका के स्वामित्व का भा अपहरण होता रहा । इस कारण किसानों की दशा में गिरावट आयी और इनमें असंतोष पैदा हुआ । यही असंतोष राष्ट्रवाद के उदय का कारण बना ।

2.3.2 अंग्रेजों द्वारा स्वदेशी उद्योग–धन्धों का विनाश

अंग्रेजों ने ब्रिटेन के कारखानों में बने माल की बिक्री के लिए भारत को एक उपयोगी मंडी बनाने के लिए तथा ब्रिटेन के कारखानों के लिए भारत से सस्ता और कच्चा माल प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत के प्राचीन हस्तशिल्प और उद्योग–धन्धों को नष्ट कर दिया । भारतीय उत्पादनों पर अत्याधिक मात्रा में कर लगा दिये गये । सीमा शुल्क तथा परिवहन कर के साथ–साथ भारतीय उत्पादों पर ब्रिटेन में बिक्री के लिए भारी मात्रा में कर लगा दिया गया। जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय वस्त्र उद्योग लगभग समाप्त हो गया और भारत में ब्रिटेन के कारखानों में बना कपड़ा बिकने लगा । इसी तरह से लोहे, काँच, चमड़े तथा चीनी के उद्योग भी समाप्त कर दिये गये और इनसे सम्बन्धित सम्पूर्ण कच्चे माल को ब्रिटेन ले जाकर वहां के पूंजीपति अपने कारखानों में माल तैयार करके भारत भेजने लगे।

इंग्लैण्ड के पूंजीपति यह कभी नहीं चाहते थे कि भारत में कारखाने खुलें । अंग्रेज तो अपने कारखानों के लिए भारत को कच्चे माल का बाजार बनाये रखना चाहते थे । लेकिन इंग्लैण्ड में जब वित्तीय पूंजी का वर्चस्व बढ़ा तब कुछ पूंजीपतियों ने केवल अपने लाभ के लिए कुछ कारखाने भारत में खोले । इन पूंजीपतियों ने अपनी पूंजी चाय बागानों, कोयला–खानों आदि में लगाई कुछ भारतीय पूंजीपतियों ने इस समय कुछ कपड़ा मिले भारत में लगायी लेकिन अंग्रेज शासकों के विरोध के कारण ये मिले सफल रही हो सकी । इसके बाद 1860 में अंग्रेज शासकों ने भारतीय पूंजीपति वर्ग पर आयकर भी लगा दिया जिसके कारण स्थिति और गम्भीर बन गयी ।

उपरोक्त परिस्थितियों में भारत की आर्थिक विपन्नता का कारण स्वदेशी उद्योगों के पतन को माना गया। ऐसी स्थिति में राष्ट्रवादियों ने भारत की आर्थिक स्थिति को सुधरने के लिए भारतीय स्वदेशी उद्योगों को बचाने के प्रयत्न प्रारम्भ किये और जो उद्योग नष्ट हो गये थे उन्हें आधुनिक तकनीक अपनाकर पुनर्स्थापित करने के भी प्रारम्भ कर आथिक परिवर्तन की नींव

रखी गयी । इन परिवर्तनों से भारत में सामाजिक वर्गों का उदय हुआ, जिन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को प्रेरित किया।।

2.3.3 नयी सामाजिक व्यवस्था

अंग्रेजों ने अपने शासन काल में अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए जिस तरह की नीति अपनायी उससे भारतीय समाज में नये–नये वर्गो के उदय के कारण नयी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हुई, जैसे ग्रामीण भारत में जमींदार और इनकी जमीन पर काम करने वाले काश्तकार, किसान जो जमीन के स्वामी थे और इनके मजदूर, व्यापारी और सूदखोर तथा शहरी भारत में उद्योगपति और इनके उद्योगों में काम करने वाले मजदूर, आधुनिक पूंजीवादी जगत से जुड़े व्यापारी और दुकानदार तथा एक मध्यम वर्ग बुद्धिजीवी और वृत्ति–जीवी व्यक्तियों का बन गया। ये सभी नए वर्ग भारतीय थे इसलिए इनके आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक हित एक जैसे थे। जैसे–जैसे ये समान हितों वाले वर्ग अपने हितों को समझने लगे वैसे–वैसे ही इनमें अपने समान हितों की रक्षा के लिए संघर्ष करने की इच्छा बलवती होती चली गयी । अखिल भारतीय संगठन बनाकर इन वर्गो ने भारत में राष्ट्रवाद के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया ।

2.3.4 यातायात के नवीन साधनों का प्रचलन

यातायात के नवीन और आधुनिक साधनों का भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में सशक्त योगदान रहा है । अंग्रेजों ने अपने शासन में अपने राजनैतिक, आर्थिक एवं सैनिक हितों की पूर्ति के लिए भारत में आवागमन के आधुनिक साधनों की स्थापना की । इन साधनों के बिना अंग्रेजी शासन को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। यातायात के नवीन साधनों की स्थापना में अंग्रेजों का मन्तव्य भारत का राष्ट्रीय विकास नहीं था।

लेकिन अंग्रेजी शासन काल में प्रचलन में आये इन आवागमन के नवीन साधनों ने जो मूल रूप से अंग्रेजों की स्वार्थ सिद्धि के लिए बने थे भारत को एक सूत्र में बांधने में अत्यधिक सहायता की। आवागमन के आधुनिक साधनों के अभाव में सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर भारतीय जनता का एक सूत्र में बंध पाना अत्यन्त कठिन कार्य था । रेल, मोटर और अन्य यातायात के साधनों के बिना राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती । यह सत्य है कि आवागमन के इन नवीन साधनों ने अंग्रेजी शासन के हितों की पूर्ति का काम कर, इसे सशक्त एवं सुरक्षित बनाया । लेकिन इस तथ्य को भी हम अनदेखा नहीं कर सकते कि इन्हीं आवागमन के नवीन साधनों ने अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध भारतीय जनता के राजनैतिक आंदोलनों को संगठित करने का भी काम किया। आवागमन के इन नवीन साधनों के अभाव में राष्ट्रीय संस्थाऐं, राष्ट्रीय आन्दोलनों एवं अन्य संदर्भों में राष्ट्रीय स्तर पर कार्य नहीं कर पाती थी । देश के विभिन्न हिस्सों के व्यक्तियों को इन आवागमन के साधनों के फलस्वरूप मिलने पर अपने राष्ट्रीय विचारों के आदान–प्रदान का अवसर मिला, राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्यक्रम निश्चित हुये, जिनसे राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्ति प्राप्त हो सकी ।

2.3.5 अंग्रेजी शिक्षा

राष्ट्रवाद के उदय में अंग्रेजी शिक्षा ने भी प्रगतिशील भूमिका का निर्वाह किया है । अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा भारतीयों को एक सम्पर्क भाषा प्राप्त हुई जिससे विशाल भारत के

विभिन्न भागों में रहने वाले लोग आपस में अपने राष्ट्रवादी विचारों का आदान–प्रदान कर सके । विदेशों में चल रहे या चल चुके राष्ट्रवादी आन्दोलनों एवं विचारों से भारतीयों को परिचित करवाने में भी अंग्रेजी शिक्षा एक माध्यम बनी। अंग्रेजी शिक्षा के अभाव में भारतीय संभवत: बर्क, मिल और मैकाले के विचारों से परिचित न हो पाते और न ही लेण्ड स्टोन व ब्राहट जैसे व्यक्तियों की संसदीय बहस को सुन सकते थे । अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीयों को उन ब्रिटिश कवियों और राष्ट्रवादी विचारकों की रचनाओं को पढ़ने का अवसर मिला जो स्वयं ब्रिटेन में निरंकुशता के विरूद्ध संघर्ष कर रहे थे । इनमें मिल्टन, शैली तथा वापरन के नाम उल्लेखनीय है । इन पाश्चात्य विचारकों के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारों के परिचय से भारतीयों के हृदय में स्थापित स्वतंत्रता की इच्छा और अधिक बलवती हुई ।

यह सत्य है कि एक सम्पर्क भाषा का माध्यम बनकर अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों को राष्ट्रवादी और स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारों तथा भावनाओं से परिचित करवाया । लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि ब्रिटिश शासन ने अंग्रेजी शिक्षा इसलिए भारत में लागू की थी कि भारतवासी इन राष्ट्रवादी और स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारों तथा भावनाओं से परिचित हो कर, ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन करें । ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का मन्तव्य, भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा प्रदान कर, भारत का शासन भारतीयों को हस्तांतरित करने का नहीं था । इनका मन्तव्य तो अंग्रेजी शासन में और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में लिपिकों की आवश्यकता को पूरा करना था।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा लागू कर ऐसे भारतीय पैदा करना था जो मन से अंग्रेज हो तथा तन से भारतीय। इन तैयार किये गये मन से अंग्रेज भारतीयों को ब्रिटिश शासक भारत में अपने शासन का आधार बनाना चाहते थे । भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा प्रदान कर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का लक्ष्य भारतीय देश भक्त तैयार करना कदापि नहीं था। अंग्रेजी शिक्षा ने राष्ट्रवाद के उदय में जो भी भूमिका निभायी वह ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के चाहने से नहीं निभायी, यह तो अंग्रेजों का दुर्भाग्य ही था कि उनके न चाहते हुये भी अंग्रेजी शिक्षा ने राष्ट्रवाद के उदय में भारतीयों को लाभ पहुंचाया ।

कुछ व्यक्तियों का यह मानना है कि अंग्रेजी शिक्षा के अभाव में भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का पनपना असंभव था। लेकिन इनका ऐसा मानना गलत है । भारतीयों को शिक्षा चाहे किसी भी भाषा में प्रदान की जाती राष्ट्रीय आन्दोलन तो पनपता ही । प्राचीन भारतीय साहित्य में भी निश्चित रूप से भारतीयों को स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार मिल जाते । अंग्रेजी शिक्षा ने भारत में एक सम्पर्क भाषा का कार्य अवश्य किया था लेकिन इसका लाभ केवल कुछ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही प्राप्त कर सके थे । राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में भी अंग्रेजी भाषा भारत की जनभाषा नहीं बन सकी और इस समय राष्ट्रवादी नेताओं ने यह अनुभव किया कि राष्ट्रवाद के उद्भव का कार्य विदेशी भाषा नहीं बल्कि भारत की स्थानीय भाषाऐं ही कर सकती है, जो यहां की जनभाषाऐं हैं ।

2.3.6 समाचार पत्र और साहित्य

राष्ट्रवाद के उदय में समाचार–पत्रों का बहुत अधिक योगदान रहा है । समाचार पत्रों ने राष्ट्रवादी विचारों का प्रचार–प्रसार कर भारतीय जनता को राजनैतिक रूप से शिक्षित किया जिससे

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का राजनैतिक स्वरूप उभर कर सामने आया । एक तरफ जहां समाचार पत्रों की भूमिका के कारण भारतीय जनता को लोकतांत्रिक समस्याओं तथा स्वाधीनता के विचारों से परिचित होने में सहायता मिली वहीं दूसरी तरफ समाचार पत्रों के द्वारा भारतीय ब्रिटिश शासन की दमनात्मक कार्यवाहियों की आलोचना कर पाने में समर्थ हो सकें । राष्ट्रीय आन्दोलन का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विकास कर, भारत में राष्ट्रीयता की भावना को जन–जन तक पहुंचाकर, राजनैतिक जागरण का कार्य समाचार पत्रों ने किया । इस तरह के राजनैतिक जागरण के कार्य का शुभारम्भ राजा राममोहन राय ने अपने बंगला पत्र "संवाद कोमुदी तथा फारसी पत्र मिरास उल अखबार" से किया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 1859 में सोमप्रकाश नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया जिसने राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने का कार्य किया । हिन्दू पौट्रिअट, अमृत बाजार पत्रिका, हिन्दू आदि ऐसे समाचार पत्र थे जिनका प्रकाशन देश के विपिन भागों से प्रारम्भ हुआ तथा राष्ट्रवाद के उदय में इनकी प्रेरक भूमिका रही।

समाचार पत्रों के साथ–साथ तत्कालीन राष्ट्रवादी साहित्य ने भी राष्ट्रवाद के उदय में अपनी भूमिका निभायी । इस राष्ट्रीय साहित्य ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को एक दिशा प्रदान कर इसे आगे बढ़ाने के प्रयास किये । भारतेन्दु हरीशचन्द्र ने 1876 में भारत दुर्दशा नामक नाटक लिखा जिसमें अंग्रेजी शासन में भारत की दर्दनाक स्थिति को दर्शाया था। हिन्दी भाषा में इनके अतिरिक्त अन्य साहित्यकारों जैसे बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र आदि द्वारा, रचित साहित्य में भी देशप्रेम से ओत–प्रोत भावनाओं को चित्रित किया गया है । उर्दू साहित्य में मुहम्मद हुसैन और ख्वाजा अलताफ हुसैन ने देश प्रेम की कई कविताऐं लिखी । बंगला में बंकिमचन्द्र, गुजराती में नर्मद तथा तमिल में सुब्रहमण्यम् भारती आदि ऐसे रचनाकार हुये जिन्होंने राष्ट्रीय साहित्य की रचनाकर राष्ट्रीयता की भावनाओं मे प्रेरित कर भारत में राष्ट्रवाद के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

2.3.7 ईसाई धर्म का प्रभाव

अंग्रेजी शासन के दौरान ब्रिटिश मिशनरियों ने भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजी शासन ने मिशनरियों के इस धर्म प्रचार को हर संभव सहायता प्रदान की क्योंकि अंग्रेजों का यह मानना था कि भारतीय सभ्य तभी बन सकते हैं जब ये ईसाई धर्म अपना लें । अंग्रेजी शासन की सहायता से मिशनरियों के इस धर्म प्रचार ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति को तेजी से आघात पहुंचाया । इस आघात ने भारतीयों को अपने धर्म एवं अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए बाध्य किया, फलस्वरूप भारतीयों ने इस दिशा में प्रयास करना प्रारम्भ किया जिससे हिन्दू धर्म पर ईसाईयत का प्रभाव कम हो सके । ईसाई धर्म प्रचारकों की धर्मान्धता का मुकाबला करने के लिए राजा राम मोहन राय ने 1825 में ब्रह्म समाज की स्थापना की । इसके बाद प्रार्थना समाज, राम कृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी आदि की स्थापना इसी क्रम में हुयी। इन सभी का उद्देश्य ईसाई धर्म प्रचारकों के आक्रमण से भारत की रक्षा करना था । या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ईसाई मिशनरियों के आक्रमण की प्रतिक्रिया स्वरूप ही इनका जन्म हुआ । इन सभी ने भारतीयों को अपने अतीत के गौरवशाली इतिहास का स्मरण करवाया। इन्होंने हिन्दू धर्म की बुराईयों की आलोचना कर हिन्दू धर्म की अच्छाईयों से भारतीयों

को अवगत करवाया । जिससे भारतीयों में अपने धर्म के प्रति लगाव और बढ़ा तथा अंग्रेजों तथा ईसाई धर्म के प्रति घृणा के भाव पैदा हुआ ।

2.3.8 सुधार आन्दोलन

भारत में राष्ट्रवाद के उदय में अनेक कारकों के साथ–साथ सामाजिक एवं धर्म सुधार आन्दोलनों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । भारत में और विशेषकर हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों की ओर व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित करने का कार्य ब्रह्म समाज, आर्यसमाज. रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफिकल सोसायटी जैसी संस्थाओं के माध्यम से इन आन्दोलनों ने किया । भारत में फैली बुराईयों जैसे बाल–विवाह, दहेज प्रथा तथा छुआछूत जैसी जटिल और ज्वलंत समस्याओं के समाधान के लिए इन संस्थाओं ने समाज में जन–जागृति पैदा करने का सराहनीय कार्य किया । इन आन्दोलनों ने समाज में सामाजिक एवं व्यक्तिगत समानता स्थापित करने का भी प्रयास किया । इन सुधार आन्दोलनों ने भारतीय समाज में नारी की स्थिति को भी सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । बहु पत्नी प्रथा का इन आन्दोलनों के द्वारा विरोध किया गया तथा विधवा स्त्री के पुनर्विवाह के लिए समाज में जनमत जागरण का कार्य इन आन्दोलनों ने किया । स्त्री शिक्षा की आवश्यकता की सशक्त वकालत की गयी तथा सामाजिक–धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने भारतीय समाज में यह प्रचारित किया कि किसी भी समाज में उच्चतर प्रगति के लिए उस समाज में स्त्री शिक्षा, स्त्री स्वतंत्रता तथा समानता का दर्जा मिलना आवश्यक है । इस तरह की समानता स्वतंत्रता जैसी भावनाओं का प्रचार–प्रसार इन सुधार आन्दोलनों ने भारत में किया, ये ही भावनाऐं कालान्तर में राष्ट्रीयता के रूप में उदित होकर राष्ट्रवाद के उदय का कारण बनी ।

एक और जहाँ, 1825 में राजा राम मोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना कर समाज सुधार को मुख्य रूप से अपनी भूमिका एवं कार्य का क्षेत्र बनाया । समाज में व्याप्त बुराईयों को तर्कसंगत तरीके सै इन्होंने समाज के सम्मुख उठाया तथा इन बुराईयों को समाज से समाप्त करने के लिए, इनसे लड़ने के लिए आवश्यक आत्मबल पैदा करने में ब्रह्म समाज ने उच्चतर प्रयास कर अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया । वही दूसरी ओर आर्यसमाज जैसी संस्थाओं ने अपने सुधार का क्षेत्र धर्म को बनाया । धर्म के नाम पर व्याप्त बुराईयों की तरफ इन संस्थाओं ने समाज का ध्यान आकृष्ट किया और भारतीय समाज को अपने गौरवशाली अतीत की पुन: स्मृति कराकर इन बुराईयों से संघर्ष कर इन्हें समाप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। आर्य समाज ने वेद सर्वोपरि व अकाट्य है अत: वेदों की महत्ता की भारतीय समाज में पुन: स्थापना का कार्य किया। निश्चय ही इन सुधार आन्दोलनों के विभिन्न क्षेत्रों में किये गये सुधार के प्रयासों ने भारतीय समाज में आत्मबल एवं विश्वास पुन: स्थापित कर राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने का कार्य किया ।

2.3.9 एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था

अनजाने में अंग्रेजी शासन ने कई कार्य इस तरह के किये जो कालान्तर में राष्ट्रवाद के उदय के कारण बने। एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था भी उनमें से एक ऐसा ही कार्य था । अंग्रेजों ने कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचा होगा कि सर्च भारत पर शासन करने की प्रक्रिया भी राष्ट्रवाद

के उदय का कारण बन सकती है । अंग्रेजों ने भारत के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र में केन्द्रीय सत्ता की स्थापना की, जिसके कारण भारतीय इतिहास में पहली बार वास्तविक और आधारभूत राजनैतिक एवं प्रशासनिक एकीकरण हुआ। अंग्रेजी शासन की स्थापना से पहले भारत में ऐसी एकता का अभाव था भारत विपिन सामंती प्रदेशों में बंटा रहा। ये सामंती प्रदेश निरंतर अपनी सीमाओं के विस्तार के लिए प्राय: आपस में संघर्षरत रहते थे । इन सभी प्रदेशों में अलग–अलग कानूनों के द्वारा प्रशासनिक व्यवस्था च संचालन होता था। अंग्रेजी शासन ने सम्पूण भारत में एक ही कानूनी एवं प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना की जिससे देश में एकता की भावना को प्रबलता मिली। सम्पूर्ण देश में संचार तथा यातायात के आधुनिक साधनों (जैसे तार, रेल सेवा, सड़को का विकास, मोटर परिवहन की व्यवस्था आदि) का जाल फैलाया गया ताकि प्रशासनिक व्यवस्था में गतिरोध उत्पन्न न हो । संचार तथा यातायात के इन साधनों से भी देश की एकता में वृद्धि हुई । प्रशासनिक व्यवस्था की समरूपता को बनाये रखने की दृष्टि से अंग्रेजों ने पूरे देश में शिक्षा–व्यवस्था के एक जैसे स्वरूप की स्थापना की जिसके फलस्वरूप अखिल भारतीय स्तर पर शिक्षितों के एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जिसका सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के प्रति, देखने का दृष्टिकोण, समान था । इस समान दृष्टिकोण के कारण राष्ट्रीयता की भावना का उदय संभव से सका।

इन सब के अतिरिक्त, बदली हुयी आर्थिक व्यवस्था के कारण जो नये अनुबंध तथा अन्य सम्बन्ध विकसित हुये उनके नियमन के लिए राज्य को तरह–तरह के कानून बनाने पड़े । इस परिवर्तित व्यवस्था में दो वर्गो का जन्म हुआ पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग । ये वर्ग धर्म, जाति और क्षेत्र के परंपरागत बंधनों से मुक्त थे । इस कारण अंग्रेजी सत्ता से संघर्ष के समय धर्म, जाति और क्षेत्र के बन्धनों से मुक्त इन व्यक्तियों में एकता मै जिस भावना का उदय हुआ उससे भारत भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर पर एकता के सूत्र में बंधने में सक्षम हुआ ।

भारत में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता करीब–करीब पहले भी थी लेकिन अंग्रेजों ने इनके साथ राजनैतिक एकता की स्थापना की । एक नया केन्द्रीय राज्यतंत्र सम्पूर्ण देश में स्थापित हुआ। सम्पूर्ण देश में समान न्याय व्यवस्था की स्थापना की गई। कानूनों का निर्माण कर उन्हें संहिताबद्ध किया गया। और सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समान माना गया यह सब एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था की धारणा के कारण ही संभव हो सका। राष्ट्रीय आन्दोलन ने भी अंग्रेजों द्वारा स्थापित इस राजनीतिक और प्रशासनिक एकीकरण को बनाये रखना चाहा क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रगतिवादी कदम था।

2.3.10 नवनिर्मित संस्थाओं तथा विभिन्न घटनाओ का प्रभाव:

भारत में कई संस्थाओं ने विपिन क्षेत्रों में राष्ट्रीय संगठन के आधार निर्मित कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । हालांकि भारतीय जनता के लिए यह विचार नया ही था कि भारतवासी भी कोई राजनीतिक संगठन तैयार कर सकते है । इसीलिए भारत में ऐसी संस्थाओं के विकास की गति धीमी दिखाई देती है । कलकत्ता में जमींदारों ने अपने हितों की रक्षा के लिए 1838 में भारत की प्रथम राजनीतिक संस्था लैड होल्डर्स सोसायटी के नाम से गठित की। इस संस्था के गठन का उद्देश्य मात्र जमींदारों के हितों की रक्षा करना था । 1851 में इन्हीं जमींदारों ने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन नामक संस्था बनायी । इससे

पूर्व 1843 में बंगाल ब्रिटिश इंडियन ऐसोसिएशन का गठन व्यापक राजनीतिक उद्देश्यों से किया गया इन दोनों ही संस्थाओं ने अपना प्रमुख कार्यक्षेत्र प्रशासनिक सुधारों को बनाया तथा इनकी मांगें प्रशासनिक सुधारों से ही जुड़ी रही थी। 1857 के बाद के दशकों में भारत में जब उच्च शिक्षा का प्रचार–प्रसार बढ़ा तो बुद्धिजीवियों ने यह अनुभव किया कि जमींदारों के इन संगठनों के अलावा भी अलग से कुछ करना चाहिये। 1866 में दादा भाई नौरोजी ने भारतीय समस्याओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए तथा ब्रिटिश जनमत को प्रभावित करने के उद्देश्य से लंदन से ईस्ट इंडिया एसोसियेशन की स्थापना करके भारत के प्रमुख नगरों में इसकी शाखाऐं संगठित की । 1870 में राष्ट्रवादी नेता रानाडे ने पूना सार्वजनिक सभा बनाई जिसने महाराष्ट्र क्षेत्र में राजनैतिक जागृति पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । 1870 से 80 के बीच भारत में लार्ड लिटन वायसराय रहे । इनके कार्यकाल में भारतीयों पर अत्यधिक अत्याचार किये गये तथा भारतीयों का शोषण किया गया इसका सीधा असर राष्ट्रवादी आन्दोलन पर हुआ और इन संस्थाओं तथा संगठनों ने अधिक सक्रिय रूप से इस आन्दोलन को गति प्रदान करने में अपनी भूमिका निभायी। 1876 में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने एक शक्तिशाली राजनैतिक संस्था इंडियन एसोसियेशन की स्थापना की। बनर्जी ने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण कर "भारतीय सिविल सेवा" की परीक्षा प्रणाली में सुधार के लिए आन्दोलन चलाया । इस राजनैतिक आन्दोलन में और अधिक व्यक्तियों को खींचने के लिए इंडियन एसोसियेशन ने काश्तकारों के अधिकारों की रक्षा के लिए जमींदारों के विरुद्ध तथा चायबागानों में काम करने वाले मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए विदेशी चाय बाग मालिकों के विरुद्ध आन्दोलन संगठित किया और लम्बी अवधि तक इसने प्रमुख विषयों पर भारतीयों की आवाज को अंग्रेजी सरकार तक पहुंचाने का कार्य किया।

1884 में मद्रास महाजन सभा का गठन राजनैतिक हितों की पूर्ति के लिए किया गया। 1885 में फिरोजशाह मेहता के नेतृत्व में इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसियेशन की स्थापना की गई । इस बीच इंडियन एसोसियेशन से जुड़े नेताओं ने इस राजनैतिक संस्था को अखिल भारतीय स्वरूप देने के भरसक प्रयत्न किये लेकिन ये विभिन्न कारणों से इसमें सफल नहीं हो सके । परिणामत: यह संगठन अंतत: बंगाल का ही संगठन रहा। लेकिन अखिल भारतीय राजनैतिक संगठन के गठन की भावना जागरूक भारतीयों के दिलों में बहुत दिनों से काम कर रही थी अत: दिसम्बर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ । कालांतर में इस राष्ट्रवादी राजनैतिक संगठन ने भारत को स्वतंत्रता दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और इसी के नेतृत्व में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई ।

यह सत्य है कि इन संस्थाओं ने भारतीय राष्ट्रवाद के उदय या भारत में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अत्यन्त महत्पूर्ण भूमिका निभायी । लेकिन इन संस्थाओं के अलावा अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाऐं घटी जिन्होंने भारतीयों के आत्मबल को बढ़ाकर उनमें पहले से ही प्रस्फुटित हो रही राष्ट्रीयता की भावना के प्रज्वलन का कार्य किया। भारत में 1857 का विद्रोह स्वतंत्रता की प्रथम लड़ाई थी जो सीधे भारतीयों द्वारा अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने लिए संघर्ष था, हालांकि अंग्रेजी साम्राज्य ने इस आन्दोलन को कुचल दिया, लेकिन आन्दोलन ने भारतीयों के मन में स्वतंत्रता का अहसास कराकर राष्ट्रीयता की भावना को का कार्य किया । इसके बाद 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ने भारतीय राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति को संस्थागत आधार प्रदान किया 1904–

1905 में जापान द्वारा रूस को पराजित किया गया। इस घटना ने भारत के लोगों में नयी चेतना और आत्मविश्वास की एक लहर फैला दी और भारतीय अब विदेशी शोषण से मुक्ति की बात सोचने लगे । इस बीच 1918 तक आते–आते कांग्रेस अब जन कांग्रेस बन गयी थी और इसका नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथों में आ गया था। 1919 के जलियां वाला बाग हत्या कांड तथा 1920 के असहयोग आन्दोलन जैसी घटनाओं ने भारतीयों के हृदय में विदेशी दमन से मुक्ति की इच्छा शक्ति को प्रबलता प्रदान की । 1930–34 का सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन तो राष्ट्रीय आन्दोलन की जगह शत–प्रतिशत जन आन्दोलन बन गये। 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन तो एक पूरी क्रांति की कल्पना था । जिसमें सरकारी कर्मचारी, व्यापारी, स्कूल और कालेजों के विद्यार्थी तथा सामान्य नागरिकों सहित सभी ने इस जन–आन्दोलन में भाग लिया । इसी का परिणाम था कि 1947 में भारतीय राष्ट्रवाद स्वतंत्रता के अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल हो पाया।

2.4 राष्ट्रवादी अभिव्यक्ति – भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

भारत में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने में उपरोक्त कारकों की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष भूमिका तथा राष्ट्रवादी व्यक्तियों द्वारा गठित एवं संगठित विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं की राष्ट्रवादी गतिविधियों में सक्रियता एवं अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन शनै: शनै: शक्तिशाली होता जा रहा था । अनेकों राष्ट्रवादी व्यक्तित्व अपने–अपने अलग–अलग क्षेत्रों में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रयासरत थे लेकिन साथ ही एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता भी महसूस कर रहे थे । दादा भाई नौरोजी, रानाडे तथा सुरेन्द्र नाथ बनर्जी जैसे नेता राष्ट्रीय आन्दोलन को और अधिक गति प्रदान करने के लिए एक देशव्यापी संगठन की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे । ठीक इसी समय सोमवार 28 दिसम्बर सन 1885 को गोकुल दास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय, बम्बई के सभाभवन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना, एक सेवानिवृत अंग्रेज अधिकारी ए. ओ. ह्यूम ने कुछ उदारवादी बुद्धिजीवी व्यक्तियों के सहयोग से की। यहां एक प्रश्न स्वत: ही मस्तिष्क में पैदा होता है कि ब्रिटिश शासन से मुक्ति से भारतीय संघर्ष के लिए इस संस्था की स्थापना एक अंग्रेज ने क्यों की? अंग्रेजों के लिए इस संस्था की स्थापना का उद्देश्य भारतीयों को स्वतंत्रता दिलवाना नहीं था, बल्कि अंग्रेजी शासन और भारतीयों के मध्य एक तुष्टिकरण से युक्त सामंजस्य की स्थापना का ध्येय अंग्रेजों के मन में था । क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलन इस समय काफी तेजी से शक्ति प्राप्त करके सम्पूर्ण भारत में फैल चुका था जिसके कारण भारतीयों में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असंतोष अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया था । इस असंतोष से गंभीर विद्रोह की संभावनाऐं अंग्रेजी शासन को दिखाई पड़ी । इस असंतोष तथा विद्रोह से बचने के लिए ही अंग्रेजों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की । अंग्रेजों का यह मन्तव्य रहा कि कांग्रेस राष्ट्रीय असंतोष और विशेषकर शिक्षित वर्ग के असंतोष में केन्द्र बिन्दु का कार्य कर सकती है तथा अंग्रेजी शासन के प्रति भारतीय शिक्षित वर्ग की क्या धारणा बन रही है, यह अवगत कराने में कांग्रेस महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य भारतीय जन–आक्रोश को रोकने के लिए एक सेफ्टी वॉल्व का प्रबन्ध करना था जिससे अंग्रेजी शासन के विरुद्ध किसी बड़े विद्रोह को रोका जा सके । लेकिन केवल यह मान लेना कि कांग्रेस की स्थापना "सेप्टी वॉल्व" के रूप में ही की गई गलत होगा । क्योंकि इस समय

अधिकांश भारतीय राष्ट्रवादी नेता एक अखिल भारतीय राजनैतिक संगठन की आवश्यकता महसूस कर रहे थे तथा इसकी स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। ये सभी नेता अलग–अलग क्षेत्रों में, अंग्रेजी शासन के द्वारा भारतीयों के शोषण के विरुद्ध संघर्षरत थे। ए ओ. ह्यूम का साथ देने के पीछे इनका केवल एक ही मंतव्य रहा था कि ये अपनी प्रारम्भिक राजनीतिक गतिविधियों के संचालन के लिए सरकार के संदेह का पात्र नहीं बनना चाहते थे । इन्हें भारत की राजनैतिक एवं आर्थिक प्रगति के लिए एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता थी और इसकी पूर्ति ए.ओ.ह्यूम के माध्यम से ही हो सकती थी । अगर कोई भारतीय यदि कांग्रेस की स्थापना करता तो संभवत: यह संस्था अंग्रेजी शासन के दमन के कारण अस्तित्व में ही न आ पाती । यदि ए.ओ. ह्यूम कांग्रेस को सेप्टी वॉल्व के रूप में इस्तेमाल करना चाहते थे, तो प्रारम्भिक कांग्रेसी नेता अपनी राष्ट्रवादी गतिविधियों के संचालन के लिए एक मंच के रूप में कांग्रेस का इस्तेमाल करना चाहते थे।

इसलिए तत्कालीन परिस्थियों में यही उचित था कि भारतीय नेता अपने विचारो और कार्यों को अंग्रेज शासकों के दिमाग में बिना कोई संदेह पैदा किये संगठित और व्यक्त करें । इस संदर्भ में 1913 में श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा – कोई भी भारतीय, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना नही कर सकता था ।..... यदि कोई भारतीय इस प्रकार का अखिल भारतीय आन्दोलन प्रारम्भ करने का प्रयास भी करता तो सरकारी अधिकारी उसे अस्तित्व में ही नहीं आने देते। यदि कांग्रेस का संस्थापक एक महान अंग्रेज और विशिष्ट पूर्व अधिकारी नही होता तो उन दिनों जिस संदेहास्पद नजर से राजनैतिक आन्दोलनों को देखा जाता था, अधिकारी किसी न किसी आधार पर आन्दोलन को कुचल देते। यह सत्य है कि कांग्रेस की स्थापना के पीछे अंग्रेज और भारतीय दोनों के अपने हित थे । यदि अंग्रेज, कांग्रेस को अपना सेप्टी वॉल्व बना रहे थे तो भारतीय कांग्रेस को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक मंच के रूप में इस्तेमाल कर रहे थे। और इसमें कोई संदेह नजर नहीं आता कि 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन सीमित स्तर पर मंद गति से लेकिन सुसंगठित रूप से प्रारम्भ हुआ और आवश्यकता के अनुरूप समय के साथ–साथ शक्तिशाली होता चला गया और धीरे–धीरे विदेशी सत्ता की समाप्ति के संघर्ष के लिए, सम्पूर्ण भारत को इसने अपना क्षेत्र बना लिया।

कांग्रेस की स्थापना के समय बम्बई में हुए प्रथम अधिवेशन में बताये गये इसके उद्देश्यों में राष्ट्रवादी भावना की स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है । ये उद्देश्य निम्नलिखित थे –

1. देश में व्यक्तियों के बीच सम्पर्क और मित्रता को बढ़ावा देना ।
2. प्रजाति, सम्प्रदाय तथा प्रान्तों के प्रति पैदा हुए सभी विद्वेषों को दूर करना ।
3. राष्ट्रीय एकता की भावना को संगठित करना ।
4. शिक्षित वर्गों द्वारा तात्कालिक मुद्दों पर व्यक्त मतों को दर्ज करना; और
5. जनहित में उठाये जाने वाले कदमों का निर्धारण करना।

इस प्रकार उपरोक्त उद्देश्यों को सामने रखकर कांग्रेस ने कार्य करना प्रारम्म किया। कांग्रेस ने प्रथम अधिवेशन में पहली बार राष्ट्रीय मांगों के समर्थन में कुछ प्रस्ताव पेश किये । उदारवादी राजनीतिज्ञों द्वारा स्थापित और संचालित कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में मांगे काफी संतुलित थी । इस प्रथम अधिवेशन बम्बई के समय कांग्रेस में केवल 72 सदस्य थे इस समय तक कांग्रेस का न तो अपना कोई संविधान था और न ही नियम। लेकिन आने वाले वर्षो में इस

दिशा में विकास हुआ। प्रतिवर्ष देश के अलग–अलग भागों में आयोजित वार्षिक सम्मेलनों में इसकी सदस्य संख्या में तेजी से वृद्धि हुई । जिसके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन को नई दिशा देने में कांग्रेस सक्षम बन सकी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत में राजनैतिक जागृति पैदा की । कांग्रेस के मंच से देश के सभी प्रतिभाशाली बुद्धिजीवियों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई तथा अपनी मांगों पर आपस में विचार विमर्श कर देश में नव चेतना जागृत करने में अग्रणी भूमिका निभायी।

2.5 सारांश

भारत में राष्ट्रीयता की भावना के उदय और विकास में उपरोक्त कारणों ने तो अपनी भूमिका का निर्वाह किया ही था इनके अतिरिक्त भी अन्य बहुत से सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक कारण रहे जिन्होंने परोक्ष रूप से राष्ट्रीयता की भावना को पनपाने में सहायता प्रदान की । ब्रिटिश शासन के दौरान इन सभी कारणों की प्रत्यक्ष तथा परोक्ष क्रिया–प्रतिक्रिया के फलस्वरूप राष्ट्रवाद का उदय ला। भारत में भारतीयता की भावना का विकास इसलिए नहीं हुआ क्योंकि अंग्रेज अपने शासनकाल में इसे विकसित करने के लिए प्रयत्नशील थे। बल्कि अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किये जा रहे शोषण की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजों ने अपने हितों की पूर्ति के लिए अनेक ऐसे कार्य किये जिनसे भारतीय जनता में संयुक्तीकरण तथा राष्ट्रीय चेतना के भाव – प्रस्फुटित हुये। यही प्रस्फुटित शनै: शनै : भारतीय राष्ट्रवाद को चरणबद्ध तरीके से विकसित करता चला गया । जैसे–जैसे यह प्रस्फुटित राष्ट्रवाद विकसित होकर एक सीढ़ी से दूसरों सीढ़ी पर पहुंचता गया वैसे–वैसे ही इस सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक आधार विस्तृत होता गया। और कालक्रम के अनुसार विभिन्न रूपों में यह अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगा।

भारत में राष्ट्रवाद के उदय और विकास की प्रक्रिया सरल नहीं रही वरन् एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया के द्वारा भारत में राष्ट्रवाद का उदय सम्भव हो पाया। भारत की सामाजिक व्यवस्था की अद्वितीय सांस्कृतिक धरोहर यहां की अर्थव्यवस्था अंग्रेजों के आगमन से पूर्व यूरोपीय देशों के प्राक् पूंजीवादी समाजों से भिन्न थी। ब्रिटिश शासन ने अपने हितों की पूर्ति के लिए इस सांस्कृतिक धरोहर नष्ट कर भारतीय समाज की आर्थिक संरचना में अपने अनुकूल परिवर्तन किये, केंन्द्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की। आधुनिक शिक्षा पद्धति की स्थापना, यातायात के नवीन साधन. प्रेस तथा छापेखाने च प्रचलन, ईसाई धर्म का प्रचार, नवीन संस्थाओं की स्थापना के लिए पृष्ठभूमि तथा नई संचार व्यवस्था च निर्माण किया जिसके फलस्वरूप नये सामाजिक वर्गो का उदय हुआ। इन नवीन वर्गों का ब्रिटिश शासन से टकराव हुआ तो भारतीय जनता में राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। इस राष्ट्रीयता की भावना ने भारतीय जनता मे स्वाधीनता आन्दोलन के लिए प्रेरित किया। 1857 की क्रांति में भारतीयों के मन में राष्ट्रीय आन्दोलन की अग्नि प्रज्वल्लित कर दी थी। जहां एक तरफ अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों का शोषण करने के लिए या ब्रिटिश शासन अपने हितों की पूर्ति के लिए ऐसे कार्य कर रहा था जिनसे ब्रिटिश शासन के हितों की पूर्ति तो हो रही थी लेकिन परोक्ष रूप में ये कार्य भारतीय जनता में अंग्रेजी शोषण के विरुद्ध राष्ट्रीयता की भावना भी विकसित कर रहे थे । जैसे अंग्रेजी शिक्षा की भारत में स्थापना अंग्रेजों ने अपने शासन में लिपिकों तथा व्यापारिक फर्मों में काम करने वालों की कमी की पूर्ति के लिए की, लेकिन अंग्रेजी शिक्षा ने विदेशी राष्ट्रवादी साहित्य को पढ़ने का

अवसर भारतीयों को प्रदान किया तथा एक वैचारिक आदान–प्रदान का माध्यम भी भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा के रूप में मिला जिससे भारतीय अपनी राष्ट्रवादी गतिविधियों को और सक्षम स्वरुप प्रदान कर पायें। वही दूसरी तरफ भारत में अनेकों सुधार आन्दोलन भारतीयों को अपने गौरवशाली अतीत का स्मरण करवा कर समाज में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करने का कार्य कर रहे थे । यातायात के नवीन साधनों के प्रचलन तथा समाचार पत्रों ने इस दिशा में विशेष योगदान दिया । इन समस्त कारणों के फलस्वरूप देश में राष्ट्रीयता की भावना का जागरण हो रहा था। अनेक संस्थाओं तथा संगठनों का उदय हुआ और अन्त में एक राष्ट्रीय संगठन सर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई । कालांतर में यह एक राष्ट्रीय मंच बना, जिसने भारतीयों को अपने स्वाधीनता संग्राम में सहभागी बनने के अवसर उपलब्ध करवाये। कांग्रेस के नेतृत्व में ही भारतीयों ने अपने राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन कर 1947 में आजादी प्राप्त की । भारतीयों की राष्ट्रवादी भावना की अभिव्यक्ति, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास कर भारत में राष्ट्रवाद को विकसित किया और इसे सुदृढ़ तथा पुष्ट बनाने का कार्य किया।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राष्ट्रवाद का अर्थ बताइये तथा भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में सहायक कारणों का विवेचन कीजिए।
2. "भारत में राष्ट्रवाद ब्रिटिश शासन की देन है"। इस कथन का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
3. भारतीय राष्ट्रवादी प्रयोजनों की प्रमुख संकल्पनाओं की व्याख्या कीजिये ।

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. ताराचंद – भारतीय स्वतंत्रता–आन्दोलन का इतिहास भाग– 1, 2, 3 एवं 4, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1984
2. सरकार सुमित आधुनिक भारत (188 – 1947), राजकमल प्रकाशन प्रा. लि, नई दिल्ली, 1993
3. शुक्ल रामलखन, सम्पादक– आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1988.
4. देसाई ए आर – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन इंडिया लि, मद्रास, 1988.

इकाई –3

प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत जनचेतना

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 पृष्ठभूमि

3.2 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जनचेतना

3.2.1 होमरूल आन्दोलन

3.2.2 लीग–कांग्रेस समझौता

3.2.3 क्रांतिकारी गतिविधियां

3.2.4 मजदूरों में बढ़ती चेतना

3.2.5 किसानों में बढ़ती चेतना

3.3 युद्धोपरान्त जनचेतना का उभार

3.3.1 रौलट अधिनियम और सत्याग्रह

3.3.2 जलियांवाला काण्ड और जनाक्रोश

3.3.3 खिलाफत और असहयोग : चेतना का विस्तार

3.4 इकाई सारांश

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6 संदर्भ अध्ययन सामग्री

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य प्रथम विश्वयुद्ध से विकसित हुई जनचेतना की पृष्ठभूमि को समझना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हमारे देश में जनचेतना के उभार के निम्न पहलुओं से परिचित हो सकेंगे –

- प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जनचेतना किस प्रकार विकसित हुई?
- होमरूल आन्दोलन ने भारत का जनता को किस तरह राजनीतिक रूप से जागृत किया?
- लीग–कांग्रेस समझौते ने हिन्दू मुस्लिम भाईचारे को किस तरह मजबूत कर राष्ट्रीय उद्देश्य को आगे बढ़ाया?
- विश्वयुद्ध के दौरान 'क्रान्तिकारियों के किया–कलापों ने राष्ट्रवादी चेतना के विकास में कितना योगदान दिया?
- विश्वयुद्ध के दौरान मजदूरों और किसानों के आन्दोलनों को राष्ट्रीय जनचेतना के संदर्भ में आप समझ सकेंगे ।
- आप यह जान सकेंगे कि विश्वयुद्ध के उपरान्त रौलट एक्ट एवं उसके विरोध से भारतीय जन में प्रचण्ड चेतना का विकास हुआ और ब्रिटिश साम्राज्य का क्रूर दमनकारी रूप जलियांवाला काण्ड में किस तरह उजागर हुआ?

- अन्त में आप इस तथ्य से भली–भांति अवगत हो सकेंगे कि उभरती हुई जनचेतना का विराट दर्शन किस प्रकार खिलाफत और असहयोग आन्दोलनों के रूप में हुआ?

3.1 पृष्ठभूमि

प्रथम विश्वयुद्ध ने यूरोप और अमेरिका के देशों को ही नहीं वरन् अफ्रीका के कई देशों सहित सम्पूर्ण एशियाई देशों को अपनी लपेट में ले लिया था । भारत भी इससे अछूता नहीं रहा था । युद्धजनित दुष्प्रभावों से भारत की जनता भी प्रभावित हुई । भारत के 10 लाख सैनिकों ने ब्रिटिश राज की सेना के रूप में विश्वयुद्ध में योगदान दिया और करोड़ों रुपयों की युद्ध सामग्री के रूप में सहायता की और बदले में झेले अनगिनत युद्धजनित कष्ट, महंगाई की मार, खाद्यान्नों का अभाव, भुखमरी और बेरोजगारी। यह सब जनता ने सहा एक बेहतर कल के लिए। अंग्रेजों से भारतीय नेताओं की यह अपेक्षा ही नहीं वरन् दृढ़ विश्वास था कि युद्ध के बाद वे भारत में स्वशासन की मांग स्वीकार कर लेंगे क्योंकि मित्र राष्ट्रों का यह घोषित युद्ध लक्ष्य था कि वे स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र की रक्षार्थ लड़ रहे है । अत: भारतीय नेताओं का यह आशावाद उचित था और इसी दृष्टिकोण के मद्देनजर कांग्रेस व अन्य दलों के नेताओं ने जनता से विदेशी सरकार की युद्ध में भरपूर मदद की प्रार्थना की थी । उत्साहित भारतीय जनता ने उदारता पूर्वक ब्रिटिश राज की सहायता की थी ।

युद्ध की तैयारी में सहायता के इस कार्य ने भारतीय जनमानस में एक नई स्फूर्ति और चेतना का संचार भी किया । लोकतंत्र और स्वतंत्रता के लिए लड़े योद्धाओं को विभिन्न देशों के लोगों को नजदीक से देखने जानने का अवसर मिला और इससे अन्तत: जनता में स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र के बारे में जागृति आयी । इस जागृति के दर्शन हमें युद्ध के बाद हुए विभिन्न जनान्दोलनों में हुए । विश्वयुद्ध ने भारतीयों में राष्ट्रवाद की चेतना को प्रखर किया । इस काल ने वस्तुत: भारत के स्वाधीनता संघर्ष में अपूर्व योगदान दिया । भारतीय जनता के व्यापकतर हिस्से स्वतंत्रता के संघर्ष में गतिशील हुए और भारतीय संघर्ष के मंच पर एक लोकप्रिय जन–नेता महात्मा गांधी का अवतरण भी इस चेतना का ही परिणाम था। प्रस्तुत अध्याय में प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त जन–चेतना के उभार को समझने के लिए विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय जनता की चेतना को जागृत करने वाले कारकों को समझ लेन समीचीन होगा।

3.2 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जनचेतना

1 अगस्त, 1914 से प्रारंभ हुए युद्ध ने पूरी दुनिया को अपनी लपटों में ले लिया था। यह युद्ध अविकसित देशों के बंटवारे के लिए किया गया साम्राज्यवादी युद्ध था यद्यपि युद्धरत दोनों पक्षों ने यह दावा किया था कि वे सभी देशों के लिए स्वतंत्रता, स्वराज्य एवं पूर्ण विकास के लिए युद्ध कर रहे है । लेकिन यह घोषणा मात्र छलावा था। वास्तविकता यह थी कि वे सभी बाकी देशों के स्त्रोतों पर अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे थे, ताकि उनके देश का पूंजीवादी विकास हो सके । इस युद्ध के विभिन्न देशों पर भिन्न–भिन्न प्रभाव हुए । भारत में इस युद्ध के दौरान विकसित हुई जन–चेतना को इस काल में हुए आन्दोलनों में देखा जा सकता है।

3.2.1 होमरूल आन्दोलन

कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के नरमपंथियों और राष्ट्रवादियों एवं राजा रजवाड़ों के नेताओं ने इस युद्ध का एक वफादार गुलाम की तरह समर्थन किया। इसके विपरीत तिलक को इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य एवं स्वायत्ता के लिए होमरूल आन्दोलन चलाया। तिलक 16 जून, 1914 को 6 वर्ष की सजा पूरी करने के बाद रिहा हुए। रिहा होने के बाद वे स्वदेश लौटे, तो उन्होंने पाया कि देश में काफी बदलाव आ गया है। अरविन्द घोष ने सन्यास ग्रहण कर पांडिचेरी में डेरा जमा लिया है । लाला लाजपत राय अमेरिका चले गये थे। कांग्रेस सूरत विभाजन से नहीं उभर पायी थी। उस पर स्वदेशी आदोलनकारियों के सरकारी दमन और 1909 के सांविधानिक सुधारों से निराशा की छाया थी।

तिलक की वापसी ने राष्ट्रवादियों में नवीन स्फूर्ति एवं चेतना का संचरण किया। विश्व युद्ध के आरंभ होने के साथ ही भारतीय राष्ट्रवादियों के दिमाग में ब्रिटिश शासन पर दबाव डालने का विचार पनपने लगा था। लेकिन उनके पास इस सुनहरे अवसर का लाभ उठाने के लिए एक मजबूत संगठन का अभाव था। 8 मई, 1915 को पूना में राष्ट्रवादियों के सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण में जोसेफ बपतिस्ता ने तिलक का पूना में पुन: आगमन का स्वागत करते हुये होमरूल लीग की स्थापना का विचार रखा। होमरूल का आयरलैण्ड का उदाहरण उनके समक्ष था और तिलक भी एक ऐसे संगठन की आवश्यकता को महसूस कर रहे थे। अत: तिलक ने होमरूल लीग की स्थापना में पहल की।

1915 के प्रारंभ में एनी बीसेन्ट ने दो अखबारों न्यू इण्डिया और कॉमनव्हील के द्वारा आंदोलन की शुरुआत कर दी। उसने अखबार व जन सभाओं के द्वारा गोरे उपनिवेशों की भांति भारत में भी स्वशासन की मांग उठानी शुरु मई। श्रीमती एनी बीसेन्ट जो 1907 से थियोसॉफी का प्रचार कर रही थी। हाल ही में कांग्रेस में शामिल हुई थी। 1914 में एनी बीसेन्ट ने अपनी गतिविधियों को फैलाने का निर्णय लिया और भारत में आयरिश उदाहरण के समान होमरूल आंदोलन चलाने की योजना बनायी। एनी बीसेन्ट इस कार्य के लिए कांग्रेस की सहमति और गरमपंथियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना चाहती थी । अत: उसने तिलक व उनके अनुयायियों की कांग्रेस में वापसी के लिए नरमपंथियों को मनाने का प्रयास शुरू किया । तिलक भी कांग्रेस की केन्द्रीय भूमिका को स्पष्ट देखते थे । अत वे भी कांग्रेस में पुन : शामिल होना चाहते थे । दिसम्बर, 1915 में एनी बीसेन्ट के प्रयासों से गरमपंथियों को कांग्रेस में लेने का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। होमरूल लीग के गठन के प्रस्ताव को रद्द कर दिया गया परन्तु स्थानीय कांग्रेस समितियों को पुन: सक्रिय कर प्रचार करने के प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया गया। एनी बेसेंट ने यह शर्त भी रख दी कि यदि कांग्रेस सितम्बर, 1916 तक इन कार्यक्रमों पर अमल नहीं करती है, तो यह वह होमरूल लीग का गठन कर लेगी ।

कांग्रेस अधिवेशन से कुछ दिन पहले ही 1915 के 23 और 24 दिसम्बर को राष्ट्रवादियों के पूना सम्मेलन में 15 सदस्यीय समिति का गठन होमरूल लीग की स्थापना के सभी पहलुओं पर विचार करने हो? किया गया। 28 अप्रैल, 1916 को इस समिति की सिफारिशों के आधार पर होमरूल लीग की स्थापना की घोषणा की गयी । इसके अध्यक्ष बपतिस्ता व सचिव एन सी.

केलकर को चुना गया । तिलक इसके सर्वमान्य नेता थे लेकिन उन्होंने कोई पद ग्रहण नहीं किया। उन्होंने 'मराठा' में लीग की आवश्यकता का औचित्य बताते हुए लिखा – "आमतौर पर यह स्वीकार किया जाता है कि सारे देश में होमरूल के लिए जनमत तैयार करने और आन्दोलन करने के लिए एक संगठन स्थापित करने का समय सुनिश्चित तौर पर आ गया है । कांग्रेस ऐसी संस्था है, जिसके पास उत्तरदायित्व के साथ ऐसा काम करने की शक्ति स्वभावत: सबसे ज्यादा है । स्वराज की योजना जिसके बारे में माना जाता है कि उसे जन्म देने का इरादा कांग्रेस कर रही है, अधिकांश मोडरेटों के लिए होमरूल लीग की स्थापना का सुनिश्चित प्रस्ताव गिरा देने स अच्छा बहाना बन गयी है । लेकिन आमतौर पर माना जाता है कि कांग्रेस इतनी भारी भरकम है कि उससे स्वराज के लिए योजना तैयार करने के और उसकी व्यावहारिक सफलता के लिए सक्रिय काम करने को आसानी से चलाया नहीं जा सकता । इसलिए प्रारम्भिक गठित श्रम किसी और को करना होगा। वह और इन्तजार नही कर सकता । होमरूल लीग को राह दिखाने वाला आदोलन माना जा सकता है और उसे पृथक आंदोलन बनाने का कोई इरादा नहीं है ।"

तिलक ने यह महसूस करते हुए कि युद्ध के दौरान स्वराज्य की मांग किसी को नागवार लग सकती है, केसरी एवं मराठा में स्पष्ट करते हुए लिखा कि आयरलैण्ड, जो युद्ध से मात्र सौ मील दूरी पर है, जब इंग्लैण्ड से स्वराज्य पर बात कर सकता है, तब भारत मे भी युद्ध के अन्त का इन्तजार किये बिना होमूरूल की मांग को बुलन्द करना चाहिए। उन्होंने कहा कि अब सब लोग स्वराज की मांग कर रहे है और अंग्रेज इसे दबा नहीं सकते।

एनी बीसेन्ट के समर्थक भी अब उतावले हो उठे और वे सितम्बर तक इंतजार के लिए तैयार न हुए । अत: उन्होंने एनी बीसेन्ट पर दबाव डालकर होमरूल ग्रुप की स्थापना की स्वीकृति ले ली और वे यंग–इण्डिया के द्वारा प्रचार करने लगे। एनी बीसेन्ट ने सितम्बर के इंतजार के बाद कांग्रेसी निष्क्रियता के कारण होमरूल लीग की स्थापना की घोषणा कर दी । तिलक और एनी बीसेन्ट ने अपने–अपने कार्य क्षेत्रों मे बंटवारा कर लिया, ताकि कहीं गड़बड़ी न हो । तिलक ने अपना कार्यक्षेत्र कर्नाटक, महाराष्ट्र (बंबई के अतिरिक्त), मध्यप्रान्त और बरार को चुना। देश के शेष भाग एनी बीसेन्ट की लीग के हिस्से में थे । दोनों लीग पृथक–पृथक कार्य करती रही । एकीकरण न करने का कारण स्वयं एनी बीसेन्ट के अनुसार "तिलक के कुछ समर्थक मुझे पसन्द नहीं करते थे और मेरे कुछ उन्हें नापसन्द करते थे लेकिन मेरे और उनके बीच कोई झगड़ा नहीं था ।"

तिलक ने महाराष्ट्र का दौरा किया और होमरूल आदोलन का प्रचार किया । उन्होंने अपने भाषणों में होमरूल का मतलब लोगों को बतलाया और यह भी समझाया कि इसकी आवश्यकता क्यों है? तिलक के शब्दों में - "भारत उस बेटे की तरह है, जो अब जवान हो चुका है । समय की मांग है कि बाप इस बेटे को उसका उचित अधिकार दे दे । भारतीय जनता को अब अपना अधिकार लेना ही होगा । उन्हें इसका पूरा अधिकार है"। तिलक ने स्वराज्य के साथ प्रादेशिक भाषा में शिक्षा और राज्यों के भाषाई गठन को भी जोड़ दिया । वे कहते थे कि – "मराठी, तेलगू, कन्नड व अन्य भाषाओं के आधार पर प्रांतों के गठन की मांग का अर्थ ही है कि शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो । क्या अंग्रेज अपने यहां लोगों को फ्रांसीसी में शिक्षा देते है? क्या जर्मन अपने लोगों को अंग्रेजी में शिक्षा देते है या तुर्क फ्रेन्च में शिक्षा देते है? तिलक क्षेत्रीय भाषाओं के

समर्थक थे लेकिन वे संकीर्ण मराठी नहीं थे । 1915 में गोखले के निधन पर उनके शोक प्रस्ताव पर वी. बी. अलूर ने समर्थन किया तो उनसे कन्नड़ में ही बोलने का आग्रह किय।

यद्यपि तिलक का आन्दोलन कर्नाटक व महाराष्ट्र में सीमित था तथापि अप्रैल, 1917 में इसकी सदस्य संख्या 14,000 से 1918 के प्रारंभ में 32,000 हो गयी थी । एनी बीसेन्ट की लीग यद्यपि अखिल भारतीय थी लेकिन उसकी सदस्य संख्या 1917 में अपने चरम पर मात्र 17,000 थी । तिलक और केलकर ने लीग को केन्द्रीयकृत रूप से पूना में रहकर संचालित किया जबकि एनी बीसेन्ट का स्थानीय शाखाओं पर ज्यादा नियंत्रण न था।

होमरूल लीग की गतिविधियों में मुख्यत नगरों में संवाद गोष्ठियों का आयोजन एवं वाचनालयों की स्थापना करना था । इन्होंने बड़ी संख्या में पर्चे निकलकर और उनकी बिक्री करके भी प्रचार कार्य किया । ये पर्चे व्याख्यानों में बांटे जाते थे । वस्तुत : इनकी गतिविधियों और पुराने नरमपंथियों की राजनीति में कोई विशेष अन्तर वहीं था, परन्तु इनका व्यापकता और पैनापन अधिक था । तिलक की लीग ने एक वर्ष के स्वय में ही 6 मराठी और 2 अंग्रेजी पर्चों की 47,000 प्रतियां लोगों को बेची । एनी बीसेन्ट लीग की स्थापना तक प्रचार फंड से छापे जाने वाले 3,00,000 पर्चे बांट चुकी थी । इन पर्चों में स्थानीय सरकारों का कच्चा–चिट्ठा होता था और स्वशासन के समर्थन में तर्क दिये जाते थे ।

23 जुलाई, 1916 को तिलक के 60वे जन्मदिन पर सरकार ने कारण बताओ नोटिस उपहार में दिया कि क्यों न आपकी गतिविधियों के कारण आप पर प्रतिबंध लगा दिया जाये? उन्हें 60 हजार का मुचलका भरने को भी कहा गया। तिलक के लिए यह सबसे कीमती उपहार था। उन्होंने कहा अब होमरूल आंदोलन जंगल में आग की तरह फैलेगा । सरकारी दमन विद्रोह की आग को और भड़कायेगा । मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में वकीलों ने तिलक का मुकदमा लड़ा लेकिन मजिस्ट्रेट की अदालत में वे हार गये। नवम्बर में वे हाईकोर्ट में निर्दोष साबित हुए । इस अवसर का तिलक ने प्रचार ने उपयोग किया। वे अपने भाषणों में कहने लगे कि अब तो होमरूल के प्रचार के लिए सरकार ने भी अनुमति दे दी है । गांधी जी ने यंग इण्डिया में लिखा कि यह अभिव्यक्ति की आजादी की बहुत बड़ी जीत है । होमरूल आन्दोलन के लिए एक बहुत बड़ी सफलता है ।

होमरूल आंदोलन और विशेष रूप से एनी बीसेन्ट की लीग का विशेष योगदान इस तथ्य में है कि इस आन्दोलन ने अपना विस्तार नवीन क्षेत्रों, नये समूहों और एक नई पीढ़ी तक किया। उग्रवाद के गढ़ रहे पंजाब और बंगाल में ब्रिटिश दमन अधिक होने से वहां खुला एवं सशक्त जुझारू आंदोलन चलाना मुश्किल था, फिर भी भवानीपुर के प्रान्तीय सम्मेलन (1917) ने राजनीति को एक नया नेता भेंट किया – चितरंजन दास। एनी बीसेन्ट के समर्थकों में थे – मद्रास शहर एवं कस्बों के तमिल ब्राह्मण, संयुक्त प्रान्त के व्यावसायिक समूह (कायस्थ, कश्मीरी पंडित एवं कुछ मुसलमान) सिंध के आमिल हिन्दू अल्पसंख्यक और गुजरात एवं बम्बई के युवा गुजराती उद्योगपति, व्यापारी एवं वकील । इन समूहों के बीच थियोसोफीकल विचारों के लोकप्रिय होने का प्रमुख कारण यह था कि इसमें समाज सुधार के साथ ही हिन्दुओं के प्राचीन ज्ञान एवं वैभव का मिश्रण किया गया था। ऐसे रहस्यात्मक दावे भी किये जाते थे कि आधुनिक पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान की उपलब्धियों का ज्ञान हमारे प्राचीन ऋषियों को पहले ही था । इन समूहों में इसके विस्तार का एक कारण शायद यह भी था कि ब्रह्म समाज या आर्य समाज जैसे अन्य

सुधारवादी या पुनरूत्थानवादी आंदोलनों की पहुंच वहां नहीं थी। अगर यह कहें कि शहरों को छोड़ अन्य क्षेत्रों में राजनीतिक रिक्तता व्याप्त थी, तो अनुचित नहीं होगा । बाद में एनी बीसेन्ट ने स्वयं अपने घनिष्ट समर्थकों (अरूण्डेल, वाडिया, सी पी. रामास्वामी अयूयर) के साथ जुझारू राजनीति से नाता तोड़ दिया । रामास्वामी तो बाद में त्रावणकोर राज्य के अत्यन्त निरंकुश और रुढ़िवादी दीवान बन गये थे । लेकिन होमरूल आंदोलन ने कई महत्वपूर्ण भावी पीढ़ी के नेता राजनीति को दिये, जिनमें मद्रास के सत्यमूर्ति, इलाहबाद के जवाहर लाल नेहरू, कलकत्ता के जितेन्द्र लाल बनर्जी आदि मुख्य थे । बम्बई में लीग के 2,600 सदस्य थे और शान्ताराम की चाल में होने वाली सभाओं में 10–12 हजार लोग शामिल होते थे । इस में ज्यादातर लोग सरकारी कर्मचारी एवं औद्योगिक मजदूर थे । इस आंदोलन ने गुजरात और संयुक्त प्रान्त को चेतना एवं नवीन ऊर्जा प्रदान की जो बाद में गांधीवादी राष्ट्रवाद की उर्वरा भूमि सिद्ध हुई ।

1916 में कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन में होमरूल के सदस्यों के लिए एक उपयुक्त अवसर था, जब वे अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर सकते थे। तिलक के समर्थकों ने लखनऊ के लिए पूरी ट्रेन आरक्षित कर ली थी जो बाद में कांग्रेस की एक परम्परा सी बन गयी थी। इस ट्रेन को कुछ लोगों ने कांग्रेस स्पेशल तो कुछ ने होम रूल स्पेशल का नाम दिया।

1917 के अन्त में एनी बीसेन्ट ने मोतेंग्यू के सुधार घोषणा से प्रभावित हो ऐसी पलटी मारी कि एक आन्दोलनकारी से सीधे राजभक्त बन गयी । उधर तिलक भी वैलेन्टाइन शिरॉल के मुकदमें में और बाद में अपने मुकदमें में व्यस्त हो गये और इंग्लैण्ड चले गये। इस तरह 1918 तक होमरूल आंदोलन नेतृत्व हीन होकर निष्क्रिय हो गया।

3.2.2 कांग्रेस–लीग समझौता

कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन (1916) का आधुनिक भारत के इतिहास में दो कारणों से विशिष्ट स्थान है । एक तो इस अधिवेशन में कांग्रेस के गरम व नरम दल दलों की एकता एवं तिलक का कांग्रेस में पुन: प्रवेश और दूसरा कांग्रेस और लीग में ऐतिहासिक समझौता जो हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतीक बन गया था और आने वाले असहयोग आंदोलन का आधार बना। भारत के तत्कालीन सभी प्रमुख नेताओं ने युद्ध के दौरान ब्रिटिश युद्ध प्रयासों को न केवल समर्थन दिया था बल्कि तिलक और गांधी जैसे नेताओं ने ब्रिटिश सहायता के लिए जन और धन की सहायता जुटाने के लिए दौरे भी किये और उन्होंने यह इस प्रत्याशा में किया कि उन्हें बदले में स्वायत्ता मिलेगी । तिलक ने 1918 में कहा था – युद्ध के ऋणपत्र खरीदी पर उन्हें होमरूल के पट्टे समझो। युद्ध के दौरान इस प्रकार एक साझा विचार पनपा कि ब्रिटिश सरकार पर युद्ध में समर्थन के बदले दबाव बनाकर देश के लिए स्वशासन प्राप्त किया जाए ।

1916 में लीग का अधिवेशन मोहम्मद अली जिन्ना जो उस समय एक प्रमुख कांग्रेसी नेता थे, की अध्यक्षता में कांग्रेस के अधिवेशन के साथ–साथ शुरू हुआ। लखनऊ में कांग्रेस लीग एकता ने मूर्तरूप ग्रहण किया। दोनों दलों की समितियों ने मिलकर एक संयुक्त योजना बनायी कि देश का भावी शासन कैसा हो । यह योजना स्वीकार कर ली गयी और लखनऊ समझौते के नाम से इतिहास का हिस्सा बनी । दोनों संगठनों के अधिवेशनों ने इसे अंग्रेज शासकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मांग की कि इस योजना को स्वीकार कर देश के लिए स्वराज्य की तरफ सुनिश्चित कदम उठाये जाये। दोनों दलों ने इस योजना के व्यापक प्रचार का एक कार्यक्रम भी

बनाया। इस तरह नरम–गरम एकता और कांग्रेस लीग एकता ने भारत में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन के लिए आवाज उठायी। इन एकता प्रयासों का प्रभाव भारतीय राजनीति में क्षत महत्वपूर्ण था । साथ ही इसने हिन्दू मुस्लिम एकता की चेतना को व्यावहारिक बनाया, जो खिलाफत और असहयोग आन्दोलन में देखी गयी। इस समझौते की व्यावहारिकता को जिन्ना के अध्यक्षीय भाषण में देखा जा सकता है – "मुझे लगता है कि मुसलमानों पर अलगाववाद का जो इल्जाम कभी–कभी लगाया जाता है, वह बिलकुल अनुचित और बेतुका है, जब मै यह देखता हूं कि वह महान साम्प्रदायिक संगठन तेजी के साथ बढ़कर संगठित भारत के जन्म का शक्तिशाली अस्त्र बन रहा है।"

यद्यपि पं. मदनमोहन मालवीय, सी.वाई. चिन्तामणी जैसे नरमपंथियों को यह महसूस हुआ कि मुसलमानों को कुछ ज्यादा सहूलियेतें दे दी गयी है । डॉ. आर सी. मजूमदार ने लिखा है, "बाद की घटनाओं की रोशनी में कोई भी संदेह नहीं कर सकता कि 1916 में कांग्रेस ने सचमुच तीस साल बाद के पाकिस्तान की बुनियाद डाली थी। लेकिन लोकमान्य तिलक का यह कथन ऐसी विचारधारा का बहुत सटीक जवाब है – सज्जनों कुछ लोगों ने कहा है कि हम हिन्दू अपने मुसलमान बिरादरी के समान बहुत झुक गये है । मुझे विश्वास है कि मै यह कहते वक्त सारे हिन्दुस्तान में हिन्दू समाज की भावना का प्रतिनिधित्व करता हूं कि हम जितना भी झुकते वह जरूरत से ज्यादा न होता। जब हमें तृतीय पक्ष से लड़ना है, बहुत बड़ी महत्वपूर्ण घटना है कि मंच पर हम एक होकर खड़े है, जाति की दृष्टि एक्यबद्ध, धर्म की दृष्टि से एक्यबद्ध विभिन प्रकार के राजनीतिक मतामत की दृष्टि से एक्यबद्ध। आगे उन्होंने होमरूल के समर्थकों के बीच बोलते हुए अन्यत्र कहा – अगर तीन दलों के बीच संघर्ष हो तो तीसरे को खत्म करने के लिए दो दलों को हाथ मिलाना चाहिए। अंग्रेजों के साथ रस्साकशी में मुसलमानों को अपनी पूरी ताकत हमारे पक्ष में लगानी होगी। अपने घर में हम अपने ऊपर राज करेंगे, निर्भयता के साथ यह मांग करना हममें से हर एक का फौरी कर्तव्य है।

इस प्रकार हम देखते है कि होमरूल की मांग एवं लखनऊ ने भारतीय समाज के बड़े हिस्से में नवीन चेतना का संचार किया और युद्धोपरान्त चेतना के उभार की पृष्ठभूमि तैयार की ।

3.2.3 क्रांतिकारी गतिविधियां

युद्ध का प्रारंभ क्रांतिकारियों के लिए एक नया संदेश लेकर आया । युद्ध में ब्रिटिश उलझाव का फायदा उठाकर देश को तत्काल आजाद कराने की भावना क्रांतिकारी देशभक्तों में बलवती हुई । बंगाल के क्रांतिकारियों ने जतिन मुखर्जी (बाधा जतीन के नाम से विख्यात) के नेतृत्व में सशस्त्र विद्रोह की योजना बनायी। इसके लिए संसाधन जुटाने के लिए राजनैतिक डकैतियों का सिलसिला चलाया । 1914– 16 के बीच 37 डकैतियाँ डाली गयी । लेकिन यह योजना समन्वय के अभाव में क्रियान्वित नहीं हो पायी और सितम्बर 1915 में बाघा जतीन ने उड़ीसा के बालासोर के निकट समुद्र तट पर पुलिस के साथ संघर्ष में वीर गति प्राप्त की । बंगाल के क्रान्तिकारियों के रासबिहारी बोस एवं सचिन सान्याल जो पंजाब में गदर पार्टी के (अमेरिका से लौटे) सदस्यों के साथ मिलकर क्रांतिकारी गतिविधियां चला रहे थे, से भी सम्पर्क थे । पंजाबी क्रांतिकारियों की सैनिक विद्रोह की योजना विश्वासघात के कारण विफल हो गयी और रास बिहारी

बोस को जापान भागना पड़ा। सचिन सान्याल को बनारस एवं दानापुर के फौजियों को विद्रोह के उकसाने के जुर्म में आजीवन कारावास दिया गया।

यद्यपि अखिल भारतीय सशस्त्र विद्रोह की योजना विफल हो गयी, फिर भी किसानों और सेना में क्रांतिकारी नेताओं खासतौर से गदर पार्टी के नेताओं द्वारा क्रांतिकारी विचारों के प्रसार का महत्वपूर्ण कार्य किया गया । इन क्रांतिकारियों की गतिविधियों ने सीमित क्षेत्र में ही सही लोगों में बलिदानी भावना पैदा करने और युवाओं में स्वतंत्रता के लिए त्याग और बलिदान की भावना विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 19 वर्षीय क्रांतिकारी सरदार करतार सिंह सराभा के मुंह पर मृत्यु के समय ये शब्द थे "यदि मुझे एक से अधिक जीवन मिले तो मै उन सब को देश के लिए बलिदान कर दूं ।" अबांला में सैनिक विद्रोह में मृत्युदण्ड पाने वालों में एकमात्र मुसलमान अब्दुल्ला ने अपने हिन्दू साथियों के नाम बताने से इन्कार करते हुए ये शब्द कहे थे। हम लोगों का साथ होने पर ही बहिश्त के दरवाजे मेरे लिए खुलेंगे । ऐसी उदास भावनाओं ने समाज में स्वतंत्रता के लिए कष्ट सहने और आत्मोत्सर्ग की अनोखी भावना विकसित करने का अपूर्व कार्य किया। 1915 के भारत रक्षा कानून के द्वारा पंजाब एवं बंगाल के क्रांतिकारियों को यद्यपि कुचल दिया गया फिर भी इन वीरों के द्वारा सुलगाई चिंगारी ने भारतीय उन मानस में स्वतंत्रता की चेतना का अप्रितम प्रकाश फैलाया।

3.2.4 मजदूरों मे बढती चेतना

रूस की 1917 की मजदूर क्रांति का भारत के तत्कालीन मजदूरों पर क्या प्रभाव हुआ इसका स्पष्ट जवाब नही दिया जा सकता है लेकिन 1918 की फरवरी में भारतीय मजदूरों को युद्धकालीन कष्टों की उपेक्षा कर आन्दोलन और हड़ताल करते हुए अवश्य देखा जा सकता है । अगस्त 1917 में बम्बई के कपड़ा मजदूरों ने हड़ताल की । अक्तूबर 1917 तक देश में 30 से ज्यादा हड़तालें हुई। इन मजदूरों की मुख्य मांग विश्वयुद्ध के कारण बढ़ी महंगाई से हुई हानि की भरपाई थी। इसके लिए उन्होंने वेतन बढ़ाने की मांग उठायी और अन्त में वे इसमें आशिक सफल रहे । इन हड़तालों में केन्द्रीय संगठन का अभाव था और ये एक के बाद एक श्रृंखला के रूप में हुई थी । जब विश्व युद्ध की समाप्ति की ओर था, ये हड़तालें अधिक संख्या में हुई । 1917 में अहमदाबाद में प्लेग की महामारी से लोगों का शहर से पलायन हुआ । कपड़ा मिल मालिकों ने मजदूरों का पलायन रोकने के लिए 70 प्रतिशत हाजिरी बोनस दिया । जब इस बोनस को 1918 के प्रारम्भ में 20 प्रतिशत कर दिया तो मजदूरों ने 22 फरवरी को हड़ताल शुरू कर दी और हड़ताल लगभग एक माह तक चली और अन्त में गांधी जी के हस्तक्षेप से 35 प्रतिशत पर मध्यम मार्ग निकाला गया । यह मजदूरों की आंशिक सफलता थी।

इसी तरह हड़ताल बंगाल में जूट उद्योग में हुई जो 10 प्रतिशत।, वेतनवृद्धि को वापस लेने के कारण हुई थी ।

इस तरह विश्व युद्ध ने जहां उद्योगों को तीव्र विकास में योगदान दिया, वही उसने मजदूर वर्ग में मजदूर चेतना का विकास किया ।

3.2.5 किसानों में बढ़ती चेतना

बिहार में निलहे अंग्रेजों की लूट 19वी सदी से चली आ रही थी । अब बदली हुई स्थिति में जर्मन रासायनिक रंगों ने नील को पृष्ठभूमि में धकेल दिया, जिससे अंग्रेजों ने नील की खेती बंद कर दी लेकिन किसानों ने जब इस तिनकठिया पद्धति की नील व्यवस्था को त्यागना शुरू किया, तो अंग्रेज बागान मालिकों ने किसानों से हर्जाना वसूलना शुरू किया । गांधी जी, 1917 में राजकुमार शुक्ल के आग्रह पर चम्पारन जाने के लिए तैयार हो गये और चम्पारन के किसानों के आंदोलन की अगुआई की । गांधी जी के प्रयासों से किसानों को उनसे वसूले गये हर्जाना का 25 प्रतिशत बागान मालिकों से वापस दिलवाया । इस विजय का प्रतीकात्मक अर्थ था । शर्मिंदा निलहे एक दशक में ही चम्पारन छोड़ भागे।

1918 में ही गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों ने भी आन्दोलन। किया । यह आदोलन युद्ध के कारण कृषि की दुर्दशा, बढ़ती महंगाई और प्लेग की महामारी से त्रस्त किसानों से जबरन मालगुजारी की वसूली के विरोध में हुआ । इस आदोलन ने भी गांधी जी का ध्यान खींचा । सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसायटी के सदस्यों विट्ठल भाई पटेल और गांधी जी ने पूरी पड़ताल कर यह निष्कर्ष निकाला कि किसानों का आन्दोलन सही है और उन्हें राजस्व–संहिता के तहत लगान में पूरी माफी मिलनी चाहिये । नागरिकों एवं किसानों ने लगान न देने के लिए जोरदार आंदोलन किया । चम्पारण और अहमदाबाद के बाद खेड़ा में भी शान्तिपूर्ण प्रतिरोध का गांधीवादी हथियार इस्तेमाल किया गया । अन्त में गांधी जी की यह सलाह कि गरीब किसानों का लगान माफ कर दिया जाये और जो किसान स्वेच्छा लगान दें उनसे वसूला जाय सरकार ने मान लिया और आन्दोलन वापस ले लिया गया । जनता और बदहाल किसान भी इसे चलाने की स्थिति में न थे।

राजस्थान के किसानों ने भी मेवाड़ राज्य में विश्वयुद्ध के लिए कर देने से इन्कार कर विजय सिंह पथिक एवं माणिक लाल वर्मा की अगुवाई में आंदोलन किया। विजय सिंह सचिन सान्याल समूह का निर्वासित क्रांतिकारी था। उसने बिजौलिया, के किसानो के बीच शान्तिपूर्ण सत्याग्रह चलाया, बाद में इस आंदोलन के गांधी जी से भी सम्पर्क हुए ।

संक्षेप में हम कह सकते है कि **विश्वयुद्ध** के दौरान किसानों में भी युद्धजनित कष्टों की वृद्धि ने स्वाभाविक रूप से चेतना का संचार किया और उन्हें आंदोलन की राह दिखायी । यही नहीं इस चेतना से आदिवासी भी अछूते न रहे । उड़ीसा में अम्बर, 1914 में दस पल्ला में खोंड विद्रोह, छोटा नागपुर के उरावों का आंदोलन आदिवासी चेतना के उभार के उदाहरण है ।

3.3 युद्धोपरान्त जनचेतना का उभार

विश्व युद्ध के दौरान और उसकी समाप्ति के बाद भिन्न– भिन्न कारणों एवं युद्ध के कष्टों और कृषि की बर्बादी से फैली भूखमरी और महामारियों ने भी भारतीय जन सामान्य में राजनीतिक चेतना को उभारा लेकिन युद्ध के तत्काल बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा रौलट बिल के रूप में राजनीतिक विश्वासघात के विरोध में उपजा जन आंदोलन और बाद में गांधी जी के असहयोग आंदोलन ने भारतीय समाज के व्यापकतर हिस्सों को आंदोलित किया और राजनीतिक चेतना की व्यापक लहर पैदा की ।

3.3.1 रौलट अधिनियम और सत्याग्रह

युद्ध समाप्ति के बाद 1919 का वर्ष भारतीय इतिहास में असंतोष एवं क्षोभ का वर्ष था । 1919 के अधिनियम ने राजनीतिक क्षेत्र में निराशा को जन्म दिया । कांग्रेस ने इसे अपर्याप्त एवं निराशाजनक कहा लेकिन सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे पुराने नरमपंथी इससे संतुष्ट थे। फलत: कांग्रेस में विभाजन हो गया और उन्होंने नेशनल लिबरल फेडरेशन बनाया । 1919 में अंग्रेजों का दूसरा तोहफा और भी क्षोभकारी था । ब्रिटिश शासकों ने बढ़ती राष्ट्रीयता की भावना एवं क्रांतिकारी गतिविधियों पर नियंत्रण के लिए युद्ध कालीन भारत रक्षा अधिनियम जो कालातीत हो रहा था, को रौलट बिल के रूप में पुन: देश पर थौप दिया । भारत में क्रांतिकारी षड्यंत्रों से निपटने के लिए कानून बनाने के लिए सिडनी रौलट को नियुक्त किया गया था जिसकी सिफारिशों के आधार पर दो विधेयक पारित किये गये जौ रौलट एक्ट कहलाये । इनमें यह व्यवस्था थी कि जिस व्यक्ति पर राजद्रोही होने का शक हो, उस पर नियंत्रण रखा जाये और शान्ति भंग होने की सम्भावना होने पर गिरफ्तार कर लिया जाय। जनता में रोष की भावना पैदा करने वाले प्रकाशन को अपराध माना जाये । वस्तुत: इनका असली मकसद जनता में स्वतंत्रता की भावना के प्रसार को रोकना था। अत: इनको काले कानून की संज्ञा दी गयी ।

रौलट एक्ट ने देश में व्यापक असंतोष पैदा किया । गांधी जी ने इन्हें अन्यायपूर्ण, स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांतों और व्यक्तियों के बुनियादी अधिकारों के लिए घातक और विध्वंशकारी कहा । अत: उन्होंने इनकी अवज्ञा करने की जनता से अपील की और स्वयं ने पूर्ण निष्ठा के साथ इसका पालन करने का संकल्प लिया । गांधी जी ने रौलट एक्ट से छुटकारे का एक ही उपाय बताया सत्याग्रह । उन्होंने सत्याग्रह को समझाते हुए कहा, सत्य पर अटल रहना ही सत्याग्रह है । सत्याग्रह असत्य को सत्य से और हिंसा को अहिंसा से जीतने का नैतिक शस्त्र है । गांधी जी का विश्वास था कि धैर्यपूर्वक सहन के आगे शक्तिशाली से शक्तिशाली सत्ता भी झुककर रहेगी ।

इस अधिनियम के विरोध में 30 मार्च और 6 अप्रैल को गांधी जी के आहवान पर सारे देश में हड़ताल की गयी । बम्बई में सत्याग्रह सभा का गठन किया गया और सत्याग्रह का प्रकाशन भी किया गया । मार्च को दिल्ली में सत्याग्रह प्रारंभ हुआ। 6 अप्रैल को पंजाब, कलकत्ता और दिल्ली में हड़तालें हुई और सरकार ने दमनकारी उपाय अपनायें ।

3.3.2 जलियांवाला काण्ड और जनाक्रोश

अमृतसर में सत्याग्रह की सभाऐं हुई । लोकप्रिय स्थानीय नेताओं डी. सत्यपाल और डी. किचलू पर पाबन्दी लगा दी गयी। गांधी जी पर भी दिल्ली एवं पंजाब प्रवेश पर पाबन्दी लगायी और बम्बई से दिल्ली जाते समय उन्हें पलवल में रोक कर बम्बई वापस भेज दिया। 10 अप्रैल को डॉ. सत्यपाल और डॉ. किचलू को गिरफ्तार कर लिया गया। पंजाब भर में इस गिरफ्तारी का विरोध हुआ और अमृतसर में शान्तिपूर्ण प्रदर्शन पर गोली से कई नागरिक मारे गये, इससे असंतोष फैला कुछ यूरोपियनों की हत्या कर गयी। अंग्रेजी प्रशासन ने अमृतसर शहर में निषेध आज्ञा लगा दी ।

13 अप्रैल का बैसाखी का पर्व था । पंजाब में बैसाखी के पर्व बड़े उत्साह और उमंग के साथ आज भी मनाया जाता है । मेले में भाग लेने के लिए बडी सखा में गांवों एवं कस्बों से लोग

शहर में एकत्र होते है। इस मेले में आये लोग उस दिन अपने लोकप्रिय नेताओं को सुनने के लिए जलियाँवालाबाग में बड़ी तादाद में इकट्ठे हुए । यह स्थान चारों ओर से ऊँचे मकानों से घिरा था और आने–जाने के लिए एक संकरा मार्ग था, जिससे एक बार में एक आदमी ही गुजर सकता था। इस सभा में 20,000 लोग एकत्र थे और शान्तिपूर्वक अपने नेताओं को सुन रहे थे । इसी बीच 150 सशस्त्र सैनिकों क़े साथ जनरल ओ. डायर ने वहां पहुंच कर विसर्जित होने की चेतावनी दिये बिना शांतिपूर्ण सभा पर 1600 चक्र गोलियां खत्म न होने तक गोलीबारी की जिससे वहाँ भगदड़ मच गयी और संकरे मार्ग से लोग निकल नहीं सके और गोलियों के शिकार हुए और कुचले गये। घायलों को यूंही तड़पता छोड़ दिया गया। सरकारी आंकड़ो के अनुसार इस गोलीकांड में 379 लोग मारे गये, जबकि कांग्रेस के अनुमान के अनुसार कम से कम 1000 लोग मारे गये और 1,500 के लगभग घायल हुए ।

इस संदर्भ में ताराचन्द लिखते है कि मृतकों व घायलों की संख्या कभी जानी नहीं जा सकेगी । महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जहां इंग्लैण्ड सरकार राजनीतिक सुधारो द्वारा भारतीयों को स्वशासन में प्रशिक्षण देने के अपने आशय प्रकट कर रही थी, वही भारत में उसके प्रतिनिधि भारतीयों को भय का पाठ पढ़ा रहे थे, ताकि गुलामी, कायरता, बनवाटीपन एवं चाटुकारिता के गुणों का विकास कर सकें । ताराचन्द का यह कथन ब्रिटिश शासन के साम्राज्यवादी सच का उचित ही उद्घाटन करता है ।

डायर ने यही बस नहीं किया, उसने कई दिनों तक शहर में मार्शल कानून का आतंक मचाये रखा। पूरे पंजाब में मार्शल लॉ और प्रेस सेंसरशिप लागू कर आतंक एवं हिंसा का नग्न प्रदर्शन किया गया । इस दौरान पंजाब में कितनी बार गोलियां चलाई गई, कितने लोगों को मौत के घाट उतारा गया, कितनी जगह हवाई जहाज से बम गिराए गये, अदालतों ने लोगों को कितनी भयानक सजायें दी? इसका पूरा हिसाब कभी नहीं लगाया जा सकेगा ।

इस समय चलाये दमन का अंदाज इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इस काण्ड की बाह्य जगत, यहां तक कि कांग्रेस के नेताओं तक को भी चार माह बाद में जानकारी मिली और आठ माह तक इस काण्ड की खबरें ब्रिटिश अखबारों में नहीं छपने दी गयी ।

इस काण्ड की जानकारी जब देश के अन्य भागों में मिली, तो जगह– जगह उग्र प्रदर्शन और पुलिस के साथ हिंसक झड़पें हुई । सर्वत्र इस कांड की निन्दा की गयी। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी नाइट की उपाधि लौटा दी । जनता के प्रबल प्रतिरोध एवं कांग्रेस के दबाव में अंग्रेज सरकार ने कूटनीतिक मजबूरी में इस काण्ड की निन्दा की और जांच के लिए हंटर आयोग गठित किया । डायर ने इस आयोग के समक्ष अपनी गवाही में कहा कि उसका उद्देश्य वहां पर मौजूद लोगों पर ही यही, बल्कि खास तौर मे पूरे पंजाब के लोगों पर सैनिक दृष्टि से नैतिक प्रभाव डालना था अर्थात् इस गोलीकाण्ड का उद्देश्य पंजाब की सारी जनता को आतंकित करना था । इस आयोग ने इस काण्ड को डायर की निर्णय की भूल कहा । सरकार ने इस अण्ड के लिए डायर को पद मुक्त कर दिया। ब्रिटेन के अनुदारवादियों ने एक कदम आगे जाकर अपने साम्राज्य रक्षक डायर का तलवार एवं 26 हजार पौण्ड की थैली भेंट कर सम्मान किया।

कांग्रेस के जांच आयोग ने इस हत्याकाण्ड को कत्लेआम, अमानवीय अत्याचार का नमूना और ब्रिटिश शासन काल में क्रूरता का अन्यतम उदाहरण कहा । स्वयं चर्चिल ने भी इसे जॉन ऑफ आर्क को जलाये जाने के बाद ब्रिटिश शासन पर एक धब्बा बताया ।

गांधी जी के विरुद्ध उठाये गये निषेधात्मक कदम से अहमदाबाद में 11 अप्रैल को व्यापक उपद्रव हुए इमारतों को आग लगा दी गयी। कई लोग मारे गये और घायल हुए। 12 अप्रैल को वीरमगांव में भी तोड़–फोड़ व हिंसा हुई । बम्बई में स्वत: स्फूर्त हड़ताल शान्त रही । नाडियाद एवं खेड़ा में भी हिंसा हुई । गांधी जी ने हिंसा को देखते हुए 18 अप्रैल, 1919 को रौलट सत्याग्रह वापस ले लिया । उन्होंने स्वीकार किया कि यह उनकी बड़ी भूल थी ।

रौलट एक्ट के विरोध में हुए आन्दोलन ने भारत के जन–मानस में एक नई चेतना का संचार किया। हिंसा और दमन के खिलाफ लोग उठ खड़े हुए । कई जगह हड़तालें शान्तिपूर्ण एवं स्वत: स्फूर्त थी । वेलेन्टाइन शिरॉल ने लिखा कि ब्रिटिश सरकार के मत के अनुसार इस आन्दोलन ने निसंदेह ब्रिटिश राज के खिलाफ विद्रोह का रूप ले लिया था यद्यपि आंदोलन को ऐसे समय वापस ले लिया गया था, जब वह शिखर पर पहुंचने वाला था तथापि इसने अपने समग्र रूप में लोगों को राजनीतिक आन्दोलन चलाने में दीक्षित किया और आम जन की राजनीतिक संघर्षशीलता की चेतना को विकसित किया, जिसका दर्शन बाद के देशव्यापी व्यापकतर आंदोलनों में हुए ।

3.3.3 खिलाफत और असहयोग : चेतना का विस्तार

विश्व के अन्य मुसलमानों के समान भारतीय मुसलमान भी तुर्की के सुल्तान को अपना धर्मगुरू (खलीफा) मानते थे, जो मुसलमानों का सर्वोच्च धार्मिक नेता था। 1919–20 में जब पराजित उस्मानिया साम्राज्य पर संधि की कड़ी शर्ते लागू की गयी, तब भारत में भी खिलाफत आन्दोलन तेज हुआ। धार्मिक स्थानो पर खलीफा का नियंत्रण न रहने से मुसलमान क्षुब्ध थे। गांधी जी और अन्य नेता जो जलियांवाला काण्ड की निष्पक्ष जांच की आशा लगाये बैठे थे, वे हंटर की रिपोर्ट की पन्ने–दर–पन्ने लीपा पोती से घोर निराश हुए । मुसलमानों ने युद्ध में अंग्रेजों से सहयोग किया था, लेकिन पेरिस में मुहम्मद अली द्वारा रखी गयी मांगों मुसलमानों के पवित्र स्थानों पर तुर्की के खलीफा का नियंत्रण, खलीफा के पास इस्लाम की सुरक्षा करने लायक भू–भाग और जजीरतुल – अरब (अरब, सीरिया, इराक, फिलिस्तीन) पर मुसलमान संप्रभुता को नहीं माना गया। इससे खिलाफत आन्दोलन ने जोर पकड़ा।

गांधी जी के सम्पर्क खिलाफत के नेताओं से काफी पहले से थे। तुर्की के साथ हुई संधि (1920) से यह तय हो गया कि तुर्की का विभाजन अंतिम है । गांधी जी को इससे गहरा दु:ख हुआ। उन्होंने इसे मुसलमानों के प्रति अंग्रेजी धोखा कहा। गांधी जी ने 1920 में खिलाफत कमेटी को अंग्रेजों के विरुद्ध असहयोग आंदोलन छेड़ने का मशविरा दिया। 9 जून, 1920 को इलाहाबाद में खिलाफत कमेटी ने इसे स्वीकार कर, इस आंदोलन का नेतृत्व गांधी जी को सौंप दिया ।

इसी दौरान कांग्रेस ने भी समझ लिया कि संवैधानिक तौर–तरीकों से कुछ हासिल होने वाला नहीं है । मई 1920 में रणनीति तय करने के लिए कांग्रेस कमेटी की बैठक आयोजित की गयी ।

जनता अंग्रेजी शासन से क्षुब्ध थी और संघर्ष के लिए बैचेन थी । पिछले दशकों ने जनता में जो चेतना जागृत की थी, वह अपने उबाल पर थी । अंग्रेजों की मतलबपरस्ती, धोखेबाजी और दमन से वह उत्तेजित थी और उसे लग रहा था कि अब शान्त रहना कायरता मानी जायेगी ।

इसके साथ ही युद्धजनित महंगाई आसमान छू रही थी । मजदूर, मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग की आर्थिक कठिनाइयों का पार नहीं थी। युद्ध समाप्त होने के बाद भी मुद्रास्फीति पर लगाम नही थी। गांव में किसान सूखे एवं महामारियों से जूझ रहे थे। कुल मिलाकर सर्वत्र अशान्ति एवं विद्रोह के तेवर थे।

इस प्रकार युद्धकालीन और तत्काल बाद के काल में हम पाते है कि देश में चेतना के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। 1918–21 की मजदूरों की हड़तालों से हुई चेतना की लहर ने असहयोग के व्यापक आंदोलन मै स्वतंत्रता के लिए चैतन्य राष्ट्र के दर्शन कराये लेकिन चौरीचौरा के काण्ड के कारण आन्दोलन के दुर्भाग्यपूर्ण अन्त ने राष्ट्र चेतना को यकायक स्तब्ध और परिणाम स्वरूप कुछ समय के लिए शिथिल कर दिया।

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "प्रथम विश्वयुद्ध भारतीय इतिहास के संदर्भ में निर्णायक रहा।" कैसे?
2. "प्रथम विश्वयुद्ध ने मजदूरों और किसानों को आंदोलन करने के लिए उत्प्रेरित किया।" कथन की व्याख्या कीजिये।
3. प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त एवं असहयोग आंदोलन के मध्य जो प्रमुख घटनाएँ घटित हुई उन्होंने लोगों में चेतना का किस तरह विस्तार किया? समझाइये ।
4. क्या यह कहना उचित होगा कि असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त की जन चेतना ने तैयार कर दी थी? विवेचना कीजिए।

3.6 संदर्भ अध्ययन सामग्री

1. रजनी पामर दत्त : आज का भारत
2. सुमित सरकार : आधुनिक भारत (1885– 1947)
3. प्रो. विपिन चन्द्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष
4. कं. अयोध्यासिंह : भारत मुक्ति संग्राम
5. (सं) डॉ. सत्या एम. राय : भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद।

इकाई–4
रौलट सत्याग्रह

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 पृष्ठभूमि
4.2 मौन्टेग्यू – चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1918)
4.3 रौलट एक्ट (1919)
4.3.1 विधेयक का विरोध
4.3.2 सत्याग्रह आन्दोलन
4.3.3 जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड
4.4 इकाई सारांश
4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
4.6 संदर्भ अध्ययन सामग्री

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य रौलट एक्ट की पृष्ठभूमि से अवगत होना है । इस इकाई को पढ्ने के पश्चात् आप इस सत्याग्रह से जुड़े निम्न पहलुओं से अवगत हो हो सकेंगे।

- इस एक्ट के पारित होने से पूर्व देश की क्या स्थिति थी?
- प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् सुधारों को लागू करने की क्या पहल की गई?
- भारतीय जनता को उनकी प्रत्याक्षाओं के एवज में क्या मिला?
- रौलट एक्ट क्या था?
- रौलट एक्ट के विरोध में जिस सत्याग्रह की शुरूआत की गई, उसका क्या अर्थ है?
- इस एक्ट के विरोध में जनता क्यों और कैसे खड़ी हो गई? गांधी जी की भूमिका ने इसे कैसे जन आन्दोलन में परिणत कर दिया।

4.1 पृष्ठभूमि

गांधीजी 9 जनवरी 1915 को भारत लौटे। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने गोरी सरकार की नस्लवादी नीति का विरोध किया और उन्होंने वहां संघर्ष के एक नये का आविष्कार किया और जिसको उन्होंने सत्याग्रह का नाम दिया। उनका यह सत्याग्रह अहिंसक था। इस सत्याग्रह की परिभाषा गांधीजी के अनुसार 'सत्य पर अडिग रहना है। सत्याग्रह असल को सत्य से और हिंसा को अहिंसा से जीतने का नैतिक हथियार है।" का उद्देश्य स्वयं कष्ट सहकर अहिंसात्मक एवं उचित तरीका से धैर्यपूर्वक सत्य को करना, भूल सुधारना और गलती करने वालों का हृदय परिवर्तन करना है। सत्याग्रह का उनका प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में सफल रहा । भारत लौटने के बाद गांधीजी ने चम्पारन एवं खेड़ा के किसान आन्दोलनों एवं अहमदाबाद के मजदूर आन्दोलनों में इसका प्रयोग किया ।

प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार को जन और धन दोनों का सहयोग दिया। इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका ने इस युद्ध का उद्देश्य विश्व में प्रजातंत्र रक्षा करना और शत्रुओं के अधीन क्षेत्रों में आत्मनिर्णय पर आधारित प्रशासन का गठन करना घोषित किया । इन वैश्विक घोषणाओं से भारतीय नेतागण भली भांति परिचित थे। युद्ध में भारत के सहयोग को अधिक व्यापक बनाने के लिए एवं मेसोपोटामिया आयोग (मेसोपोटामिया में ब्रिटिश हार पर जाँच के लिए गठित आयोग) द्वारा भारत सरकार की अकुशल एवं अनुत्तरदायी होने की आलोचना की गयी थी। इस आलोचना से प्रभावित होकर सरकार ने भारतीय प्रशासन में कुछ सुधार करने की घोषणा की । 20 अगस्त 1917 को नये भारत सचिव मोंटेग्यू (जो मेसोपोटामिया आयोग के एक सदस्य भी थे) ने साधारण–सभा में घोषणा की कि अंग्रेजी नीति का उद्देश्य भारत में क्रमश: उत्तरदायी प्रशासन की स्थापना करना है । सुधारों की इस घोषणा के पीछे 1917 में रूस में साम्यवादी क्रांति का, अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन का युद्ध में शामिल होना और भारत में होमरूल लीग के आंदोलन से राष्ट्रीय चेतना का विकसित होना, उत्तरोत्तर स्वराज की मांग और सबसे ज्यादा युद्ध में भारत के और अधिक एवं सक्रिय सहयोग की आवश्यकता का होना था। इस घोषणा द्वारा भारत में स्वायत्तशासी संस्थाओं का विकास करने और भारतीयों को प्रशासन में अधिक भागेदारी का आश्वासन दिया गया था ।

4.2 मौन्टेग्यू – चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1918)–

अगस्त की घोषणा से सम्बद्ध सुधारों को अमलीजामा पहनाने के लिए नवम्बर 1917 में स्वयं मौटेग्यू भारत पधारे । उसने भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल से काफी विचार–विमर्श एवं भारतीय नेताओं से मिलने के बाद एक रिपोर्ट जून 1918 में प्रकाशित की । इस रिपोर्ट में निम्न बातें शामिल थी

1. स्थानीय संस्थाओं को, जहां तक सम्भव हो सके बाहरी नियंत्रण से पूर्ण स्वायत्तता देनी चाहिये।
2. सबसे पहले प्रांतों में उत्तरदायी प्रशासन स्थापित किया जाये । केन्द्रीय सरकार पूर्ण निरंकुश और संसद के प्रति उत्तरदायी रहेगी ।
3. प्रांतीय स्वायत्तता के अनुपात में भारत सचिव का नियंत्रण कम हो जायेगा ।

इस रिपोर्ट पर आधारित सुधार अधिनियम एक वर्ष बाद 1919 ई. में पारित हुआ । इस प्रतिवेदन ने द्वैत–प्रशासन की शुरूआत की । नरमपंथी नेताओं ने इन सुधारों को प्रगतिशील एवं उपयोगी बताया तो गरम–दलीय नेता इसे निराशाजनक एवं अनुचित मानते थे । कांग्रेस में मध्यम मार्गी अधिक संख्या में थे, जो बीच का रास्ता अपनाने पर जोर देते थे । इस प्रतिवेदन में कांग्रेस और लीग की उन मांगों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था, जो लीग और कांग्रेस की संयुक्त योजना में पेश की गयी थी । इस आधार पर लीग ने इस प्रतिवेदन को अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस के 1918 के अमृतसर अधिवेशन में इस प्रतिवेदन की आलोचना की गयी और एक् समझौतावादी प्रस्ताव पारित किया गया । सुधारों को अपर्याप्त और निराशाजनक माना गया, साथ ही कांग्रेस ने आत्मनिर्धारण के सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण उत्तरदायी शासन लागू करने के लिए कदम उठाने का आग्रह भी किया । प्रस्ताव में कहा गया कि "कांग्रेस का विश्वास है कि

लोग यथासम्भव सुधारों को इस तरह लागू करेंगे कि पूर्ण उत्तरदायी सरकार की शीघ्र स्थापना हो सके।"

युद्ध के बाद लोगों में असंतोष बढ़ा । देश पर युद्ध का वित्तीय भार डाला गया इससे महंगाई और मुनाफाखोरी बढ़ी । उस पर महामारियों का प्रकोप बढ़ा । सुधार प्रतिवेदन भी संतोषजनक नहीं था। भारत सुरक्षा अधिनियम चूंकि समाप्त हो जाने वाला था । अत: 1919 में इस अधिनियम के प्रावधानों को कानूनी शक्ल देने के लिए ब्रिटिश सरकार ने दो–मुंही नीति अपनाते हुए, भारतीय लोगों के विरोध के बावजूद 1919 में रौलट विधेयक लाया गया । ब्रिटिश सरकार एक ओर तो सुधार लागू करने जा रही थी, दूसरी ओर उसने रौलट विधेयक पेश कर अपनी नीति का दोगलापन स्पष्ट कर दिया था ।

4.3 रौलट एक्ट (1919)

1917 में न्यायाधीश सिडनी रौलट की अध्यक्षता में क्रान्तिकारियों के कार्यो की जाँच–पड़ताल कर उनके नियंत्रण के लिए कानून बनाने के उद्देश्य से प्रस्ताव देने के लिए की गयी थी। रौलट ने जाँच के बाद प्रस्तावों का मसौदा प्रस्तुत किया। 6 फरवरी 1919 को भारत सरकार ने राष्ट्रीय परिषद के सामने दो विधेयक इस मसौदे के आधार पर प्रस्तुत किये गये ।

ये विधेयक वस्तुत: युद्धकालीन प्रतिबंधों को कानूनी रूप देने का मंतव्य लिये हुए थे। यद्यपि सरकार का कहना था कि यह केवल षड्यंत्रकारी अपराधों के खिलाफ प्रयुक्त होंगे । इन विधेयकों में प्रावधान था कि किसी भी व्यक्ति को बिना वारन्ट गिरफ्तार किया जा सकता था । इसके अन्तर्गत यह भी व्यवस्था थी कि अपराधियों पर विशेष न्यायालय में बंद कमरे में मुकदमा चलाया जा सकता था । ऐसे न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील की कोई व्यवस्था इसमें नहीं थी ।

4.3.1 विधेयक का विरोध

सभी प्रमुख भारतीय नेताओं ने इन विधेयकों का विरोध किया। गांधीजी ने, चम्पारण खेड़ा और अहमदाबाद के आंदोलनों से पहचाने जाने लगे थे, धमकी देते हुए कहा कि अगर यह विधेयक पारित हुआ तो वे सत्याग्रह करेंगे । उन्होंने कहा कि ये अन्यायपूर्ण है, स्वतंत्रता और न्याय सिद्धान्तों और लोगों के बुनियादी अधिकारों के खिलाफ। मुस्लिम लीग के मोहम्मद अली जिन्ना ने स्पष्टत सरकार को चेतावनी देते हुए कहा अगर ये विधेयक स्वीकृत किये गये तो देश के कोने–कोने में असंतोष एवं आन्दोलन भड़केंगे और इससे जनता और सरकार के बीच सौहार्द समाप्त हो जायेगा। गांधीजी ने इस विधेयक का विरोध करने के लिए बम्बई में एक सत्याग्रह सभा का गठन किया। सभा के समस्त सदस्यों को सभी प्रकार की हिंसा से दूर रहते हुए सभ्य तरीके से विरोध करने की शपथ दिलायी गयी। भारतीय जनता ने इन विधेयकों का घोर विरोध किया क्योंकि पुलिस के हाथ में हथियार स्पष्टत: जनता के दमन के लिए थे। हालांकि कहा यह गया था कि ये आतंककारियों की गतिविधियों को रोकने के लिये है लेकिन पुलिस का चरित्र जनता के सामने स्पष्टत: जनविरोधी, दमनकारी और एक उत्पीड़क का था । राष्ट्रीय नेताओं की यह भी मान्यता थी कि ये विधेयक वस्तुत: मोंटेग्यू सुधार एवं द्वैत शासन के आलोचक ब्रिटिश जनमत–सरकारी एवं गैर–सरकारी को संतुष्ट करने के प्रयास था । इसके साथ ही वायसराय ने

अंग्रेजों को यह आश्वासन भी दिया था । कि इन सुधारों (अधिनियम 1919) से उनके व्यापारिक हित एवं भारत में सिविल सेवा के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

4.3.2 सत्याग्रह आन्दोलन

भारतीय नेताओं और जनता के विरोध को नकारते हुए भारत के ब्रिटिश हुक्मरानों ने 18 मार्च, 1919 को रौलट विधेयक को पास कर दिया। सारे देश में इसका तीव्र विरोध हुआ। जिन्ना ने वायसराय को पत्र में लिखा अन्याय के मूलभूत सिद्धान्तों को जड़ से उखाड़ा गया है । जनता के संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन एक ऐसे समय किया गया है, जब राज्य के लिए कोई वास्तविक संकट नहीं है । मेरी राय में जो सरकार शान्तिकाल में ऐसे कानून पारित करती है, उसको अपने को सभ्य कहलाने का अधिकार समाप्त हो जाता है । "गांधीजी ने सत्याग्रह का आरंभ करते हुए कहा– मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमें कष्ट सहकर ही मुक्ति मिलेगी न कि अंग्रेजों द्वारा टपकाये गये सुधारों से। वह शक्ति का प्रयोग करते है, जबकि हम आत्मिक शक्ति का । "भारतीय प्रेस ने भी इस कानून की घोर आलोचना की । 'अमृत बाजार पत्रिका' ने इसे 'एक भारी भूल" कहा। पंजाबी ने लिखा "यह उस नौकरशाह का, जिसका दिमाग लोगों मै स्वतंत्रता में दखल देने के निरंकुश अधिकार से फिर गया है एक निर्लज्ज प्रयास है ।" 'बोम्बे क्रानिकल' ने इसे दमन का चरम रूप बताया। इस काले कानून का लोगों ने सर्वत्र विरोध किया।

अब तक का कांग्रेस का विनय–याचना का ढंग इस विरोध में त्याग दिया गया था और बिलकुल नवीन और अनूठा गांधीवादी तरीका सत्याग्रह अपनाया गया । पुराने नरमपंथियों ने गांधीजी के इस आंदोलन का विरोध किया । सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, तेज बहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री और एनी बीसेन्ट जैसे नरमपंथियों ने इस विरोध आन्दोलन का यह कहते हुए विरोध किया कि इससे सुधारों पर बुरा असर पड़ेगा। गांधीजी ने इस जन–विरोधी 'काले कानून' का विरोध करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर लोगों से हड़ताल करने का आहवान किया । उन्होंने लोगों से उस दिन कोई काम न करने, उपवास रखने और प्रार्थना करने को कहा । पहले यह पड़ताल 30 मार्च को मुकर्रर की गयी थी लेकिन बाद में इसे बदल कर 6 अप्रैल को कर दिया गया। हड़ताल को नियंत्रित एवं संयत रखने के लिए जानबूझ कर रविवार को हड़ताल रखी गयी । इस आंदोलन को व्यापक बनाने और लगान न चुकाने के आर्य समाज के स्वामी श्रद्धानन्द का सुझाव गांधीजी ने अस्वीकार कर दिया।

गांधीजी के आन्दोलन में होमरूल लीग के युवा कार्यकर्ताओं ने सक्रियता से भाग लिया । यद्यपि एनी बीसेन्ट ने, जो अब अचानक नरमपंथी बन गयी थी, इस आंदोलन का विरोध किया था । होमरूल के एक दूसरे प्रमुख नेता तिलक 1918 में इंग्लैण्ड चले गये थे । अत इन कार्यकर्ताओं को एक नये और उजर्स्वित नेतृत्व की आवश्यकता थी और गांधीजी के रूप में उन्हें एक योग्य नेता मिल गया। इस आंदोलनों में गांधीजी को मुसलमानों का भी साथ मिला । गांधीजी के अब्दुल बारी के साथ बहुत अच्छे सम्बंध बन गये थे । बारी अली बंधुओं के धार्मिक गुरु और लखनऊ के उल्मा समूह के नेता थे । 1918 के लीग अधिवेशन में अंसारी और बारी के सहयोगी नये नेतृत्व के रूप में उभरे । इसी अधिवेशन में अब्दुल बारी ने गांधीजी को हिन्दुस्तान का दिलेर नेता बताते हुए कहा था – "जो (गांधीजी) मुसलमानों को भी उतना ही प्यारा है जितना हिन्दुओं को। रौलट के विरोध के लिए मार्च 1919 में बारी ने विचार–विमर्श के बाद गांधीजी के

साथ सत्याग्रह में भाग लेने का ऐलान किया । गांधीजी द्वारा गठित सत्याग्रह सभा ने आन्दोलन को व्यापक बनाने के लिए पम्फलेट आदि प्रचार–सामग्री छपवाकर बांटने और सत्याग्रह की शपथ पर हस्ताक्षर करवाने का कार्य किया । मार्च के मध्य तक सत्याग्रह शपथ पत्रों पर 982 लोगों के ही हस्ताक्षर हो पाये थे, जिनमें भी 397 बम्बई, गुजरात में 400 व सिंध में 101 और बम्बई प्रेसीडेन्सी के बाहर मात्र 84 लोग थे ।

गांधीजी ने हड़ताल से पूर्व मार्च–अप्रैल में बम्बई, दिल्ली, इलाहाबाद, लखनऊ एवं दक्षिण के अनेक शहरों का एकं तूफानी दौरा सत्याग्रह के लिए समर्थन जुटाने और लोगों को रौलट के विरोध में आंदोलित करने के लिए किया । बावजूद इस अल्प तैयारी और कांग्रेस के किसी योगदान के बिना 30 मार्च और 6 अप्रैल को सारे देश में व्यापक रूप से हड़ताल और प्रदर्शन हुए। इन प्रदर्शनों की मुख्य विशेषता हिन्दू–मुस्लिम एकता और भाईचारा था । हिन्दू मुसलमानों ने एक दूसरे के हाथ से पानी पीकर एकजुटता का प्रदर्शन किया । इन हड़तालों का सर्वाधिक प्रभाव अमृतसर, लाहौर, गुजरांवाला और पंजाब के अन्य छोटे नगरों, गुजरात के वीरम गांव, अहमदाबाद एवं नाडियाद तथा दिल्ली और बम्बई में रहा । कलकत्ता में इसका प्रभाव सीमित रहा।

गांधीजी ने इस हड़ताल को एक महान उपलब्धि बताया और 7 अप्रैल को लोगों से प्रतिबंधित किताबों को खरीदने और पढ़ने और समाचार पत्रों के पंजीकरण सम्बन्धी नियम को न मानने का आग्रह किया । ऐसी प्रतिबंधित किताबों में से एक गांधी जी की 'हिन्द–स्वराज' (1910 में प्रतिबंधित) भी शामिल थी ।

4.3.3 जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड

पंजाब में ले गवर्नर ओं. डायर का शासन 1919 से पहले ही पर्याप्त रूप से कुख्याति अर्जित कर चुका था । इसके कई कारण थे, जैसे–सेना में जबरन भर्ती, युद्ध कालीन अवैध वसूलियां, 1915 के गदर पश्चात्–उपद्रवों का कठोरता से दमन आदि। इस पर युद्धजन्य कमरतोड़ महंगाई ने भी जन–असंतोष को उभारा था । इस दौरान मुस्लिम समुदाय में भी अपूर्व जागृति आयी थी । 30 मार्च और 6 अप्रैल के हड़ताल–प्रदर्शन में अभूतपूर्व हिन्दू–मुस्लिम–सिख एक्य के दर्शन हुए। ओ. डायर जैसे साम्राज्यवादी प्रशासक के दिल पर, यह सब देखकर तो मानों साँप लोट गया।

9 अप्रैल को रामनवमी के जुलूस में मुसलमानों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। हैरान और भयभीत डायर का साम्राज्यी दिल यह स्वीकार न कर सका और उसने जुलूस का नेतृत्व कर रहे स्थानीय नेताओं डॉ. किचलू और सत्यपाल को गिरफ्तार कर शहर से बाहर भेज दिया । उसी दिन गांधी जी के पंजाब व दिल्ली में प्रवेश पर रोक लगा दी गयी। अमृतसर में 10 अप्रैल को शान्तिपूर्ण प्रदर्शन पर गोली चलायी गयी । परिणामस्वरूप भीड़ उग्र हो उठी और सरकारी इमारतों, डाकघर, टाउनहॉल, बैकों पर आक्रमण किये गये। 11 अप्रैल को अमृतसर में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया, जिसकी कमान डायर के हाथ में थी । 13 अप्रैल को बैसाखी का पर्व, जो पंजाब में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता है, मनाने के लिए 20 हजार लोगों की भीड़ जलियांवाला बाग में इक्ट्ठी हुई । यह स्थान चारों ओर से मकानों से घिरा हुआ था और एक संकरा रास्ता ही आने–जाने को था। इनमें से अधिकांश लोगों को यह ज्ञात नहीं था कि सभाओं पर निषेधाज्ञा लागू है । इस मैदान के एक मात्र संकरे रास्ते को रोककर डायर ने सैनिकों से गोली चलवायीं । 1650

गोलियाँ एक–एक कर दागी गयी । भीड़ को तितर–बितर होने की चेतावनी भी नहीं दी गयी थी । जब 10 मिनट की गोलीबारी के बाद गोलियाँ खत्म हो गयी, तो वह अपने सैनिकों के साथ वहां से चला गया । बाद में हंटर आयोग के समक्ष गवाही में उसने कहा - "मुझे केवल इस बात का दुख था कि उसका गोला बारूद खत्म हो गया था और बख्तरबंद गाड़ी संकरे रास्ते से अंदर नहीं लायी जा सकती थी ।" सरकारी कमानी के अनुसार 379 आदमी मारे गये । वास्तविक मृतकों की संख्या एक हजार से ज्यादा थी, जिसमें बालक–वृद्ध, महिलाऐं सभी शामिल थे । ताराचन्द ने लिखा है कि "यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कितने लोग मारे गये, महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे समय में जबकि इंग्लैण्ड की सरकार घोषणा कर रही थी कि वह राजनीतिक सुधारों द्वारा भारतीयों को स्वशिक्षित करना चाहती है। भारत में उसके प्रतिनिधि वस्तुत: पाठ पढ़ाने का कार्य कर रहे थे, जिनका उद्देश्य भारतीयों में चाटुकारिता, कायरता, दम्भ और पराश्रयता के गुण विकसित करना था।" दम्भी साम्राज्यवादी डायर ने– यहीं बस नहीं किया । इस घटना के बाद सप्ताहों तक वह शहर में आतंक बरपाता रहा । लोगों के दमन के लिए गिरफ्तारियां की गई, यातनाएँ दी गयी, सार्वजनिक रूप से कोड़े लगाये गये, वकीलों से पुलिस द्वारा मामूली कार्य करने को मजबूर किया गया । कूचा कौचियांवाला गली से जहां एक गोरी महिला के साथ बदसलूकी हुई भी, गुजरने वाले हर राहगीर को रेंगकर चलने को मजबूर किया गया। यह फौजी कानून 4 जून तक जारी रहा ।

लाहौर में 10 अप्रैल को गांधीजी के पंजाब प्रवेश पर पाबन्दी की खबर लाहौर पहुंची, तो वहां भीड़ और पुलिस के बीच उग्र संघर्ष हुआ, जबकि 6 अप्रैल वहां हड़ताल शांतिपूर्ण रही थी । रेलवे कार्यशाला में जबर्दस्त हड़ताल हुई, जिससे डरकर अंग्रेज शहर छोड़कर छावनी में भाग कर चले गये । स्थानीय नेताओं ने उग्र भीड़ को नियंत्रित करने का प्रयास किया। यहां एक हड़ताल संचालन समिति का गठन भी कर लिया गया था । लेकिन वे कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं दे पाये । इससे क्षुब्ध कुछ अधिक संघर्षशील नौजवानों ने एक 'डंडा फौज' नाम से एक दस्ता गठित कर लिया था । इस दस्ते ने हिन्दू मुसलमानों और सिख भाइयों से अंग्रेज बन्दरों को मार भगाने के लिए 'डंडा फौज' में शामिल होने का आव्हान किया था। 14 अप्रैल को सशस्त्र अंग्रेज सिपाहियों ने स्थिति पर काबू पा लिया । संचालन समिति को भंगकर उसके नेताओं को गिरफ्तार कर शहर से बाहर निकाल दिया गया । लोगों का दमन कर आंदोलन को कुचल दिया गया।

रौलट एक्ट से संबंधित यह आंदोलन पंजाब के पाँच प्रमुख जिलों – अमृतसर, लाहौर, गुजरांवाला, गुजरात और लायलपुर में फैल गया था। गुजरांवाला के कई गाँवों में दमन के लिए हवाई गोलाबारी की गयी, जबकि सरकारी हंटर आयोग ने माना कि 'किसान इस छूत से अछूते रहे' थे। गोरी सरकार ने सख्त दमनात्मक उपाय कर इस आंदोलन को दबाया । मार्शल न्यायालयों ने 258 मामलों में कोड़े मारने और नाक रगड़ने की सजा दी गयी । कांग्रेस की जाँच समिति के अनुसार पंजाब में इस दौरान 1,200 लोगों के मारे जाने एवं 3,600 लोगों के घायल होने का अनुमान था।

गांधीजी के पंजाब प्रवेश पर पाबन्दी और उन्हें रेल से उतारकर वापस बम्बई भेजे जाने की खबर अहमदाबाद पहुंची, तो वहां व्यापक को हो गये। उपद्रवी भीड़ ने सरकारी इमारतों को आग लगा दी। मार्शल लॉ लागू कर लोगों का दमन किया गया, जिसमें 28 लोग मारे गये और 123 लोग घायल हुए। 12 अप्रैल को वीरम गॉव में मजदूरों ने तोड़–फोड़ की। 10 और 11 अप्रैल

को बम्बई शहर में बम्बई में शान्तिपूर्ण आम हड़ताल हुई। इस हड़ताल में मजदूरों की भागीदारी कम और अधिकांश योगदान व्यापारियों और व्यावसायिक समूहों का रहा। बम्बई में मजदूर बहुल परेल इस हड़ताल का केन्द्र न होकर दक्षिण–पश्चिम बम्बई रहा। गांधीजी की उपस्थिति से हड़ताल शांतिपूर्ण एवं संयमित रही । इसी प्रकार नाडियाड एवं खेड़ा में भी गांधीजी के सत्याग्रही कार्यकर्ताओं ने लोगों को हिंसक होने से रोका। बम्बई के प्रशासन ने भी संयम बरता और पंजाब प्रशासन जैसा उग्रवाद नहीं दिखाया।

कलकत्ता में भी 6 अप्रैल को हड़ताल हुई। 11 अप्रैल को नाखुदा मस्जिद में हिन्दू–मुसलमानों की सम्मिलित सभा हुई। 12 अप्रैल को कलकत्ता में कुछ स्थानों पर जनता और पुलिस–सेना के बीच संघर्ष में मशीनगन से नौ लोगों को भून डाला गया। कलकत्ता में युवा–बंगालियों की अपेक्षा मारवाड़ी हिन्दुओं और मुसलमानों की हिस्सेदारी ज्यादा थी, जबकि बंगालियों ने स्वदेशी आन्दोलन में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया था । मद्रास में मजदूरों के शान्तिपूर्ण प्रदर्शन हुए एवं मध्य प्रान्त के छिन्दवाड़ा, अकोला और अमरावती में आशिक हड़तालें एवं प्रदर्शन हुए। देश के शेष भागों में रौलट सत्याग्रह का कोई विशेष प्रभाव नहीं रहा।

अंग्रेजों ने रौलट सत्याग्रह बड़े वहशी एवं निर्मम दमन द्वारा दबाया । देशभर और विशेषकर पंजाब में हुई व्यापक हिंसा के बाद 18 अप्रैल को गांधीजी ने सत्याग्रह वापस ले लिया। पंजाब और गांधीजी के अपने गृह राज्य अहमदाबाद की हिंसा से बेहद दु:खी थे। उन्होंने इस आंदोलन को अपनी बहुत बड़ी भूल कहा। आगे के आंदोलनों में उन्होंने बहुत सतर्कता से इस सत्य का पालन किया कि बिना संगठनात्मक एवं विचारात्मक पूर्व तैयारी के कोई आंदोलन नहीं किया जाना चाहिये।

जलियांवाला काण्ड की घोर आलोचना हुई । लोगों ने जलियांवाला काण्ड की जाँच कराने की जोरदार मांग की । यहां तक कि चर्चिल ने इस काण्ड की इसे एक पैशाचित कृत्य बताते हुए निन्दा की । अंग्रेज सरकार ने औपचारिकता पूरी करने के लिए हंटर आयोग की नियुक्ति की । इस आयोग ने अपनी जाँच रिपोर्ट मार्च 1920 में कर दी । रिपोर्ट में जलियांवाला काण्ड को डायर की अनुमान की गलती का परिणाम बताया। सुधारों के उद्घोषक भारत सचिव मोंटेग्यू ने डायर को कर्तव्य की निर्भीक भावना से अनुप्रेरित और उद्देश्य के प्रति ईमानदार बताया। लोगों को इस लीपा–पोती से न संतुष्ट होना था, न हुए । बाद में देश के एक क्रांतिवीर सपूत मदनलाल धींगरा ने हत्यारे ओ डायर को लंदन में सार्वजनिक सभा में गोली मार कर खत्म कर दिया।

4.4 इकाई सारांश

6 फरवरी, 1919 में ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय परिषद् के सामने, एक एक्ट प्रस्तुत किया जिसे रौलट एक्ट कहा गया और जिन्हें 18 मार्च, 1919 को पारित कर दिया गया । यह एक्ट ऐसे समय पारित किया गया जब द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ था और भारतीय जनता संवैधानिक सुधारों का इन्तजार कर रही थी । इस एक्ट में यह प्रावधान था कि किसी भी व्यक्ति को बिना वारन्ट गिरफ्तार किया जा सकता था। इतना ही नहीं अपराधियों पर बंद कमरे में मुकदमा चलाये जाने की भी व्यवस्था की गई थी । सभी प्रमुख भारतीय नेताओं ने इस प्रकार की व्यवस्थाओं का विरोध किया । गांधीजी ने एक एक्ट के खिलाफ देशव्यापी आन्दोलन का आव्हान किया। भारतीय जनता ने इस कानून को अपना अपमान समझा । देशव्यापी हड़ताल, उपवास और प्रार्थना सभाऐं आयोजित करने का फैसला किया गया । इसे शुरू करने की तारीख 6 अप्रैल तय

की गई । इस विरोध की परिणति । जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड में हुई, जिससे पूरा देश स्तब्ध रह गया । वहशी क्रूरता ने देश को मौन कर दिया। सरकार ने इस काण्ड के बाद भी दमन का रवैया बरकरार रख। रौलट सत्याग्रह ने भावी राष्ट्रव्यापी अहिंसक असहयोग आन्दोलन की आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी ।

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. रौलट सत्याग्रह पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए ।
2. रौलट एक्ट क्या था? इसके विरोध का प्रखर रूप किस घटना में परिणत हुआ?
3. रौलट सत्याग्रह में गांधीजी की क्या भूमिका रही? संक्षेप में बताइए ।
4. रौलट सत्याग्रह किस तरह से जन–आंदोलन था, विस्तार से बताइए ।

4.6 संदर्भ अध्ययन सामग्री

1. प्रो. बिपिन चन्द्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष
2. (सं॰) डी. सत्या एम. राय : भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
3. बी एल ग्रोवर एवं यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास
4. सुमित सरकार : आधुनिक भारत (1885 – 1947)
5. अयोध्यासिंह : भारत का मुक्ति संग्राम
6. सुन्दर लाल : भारत मे अँग्रेजी राज , खंड 3
7. Ravindra Kumar (ed.) : Essays on Gandhian Politics: The Rowlatt Satyagraha of 1919

इकाई – 5
खिलाफत और असहयोग आन्दोलन

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 महात्मा गांधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश
5.3 असहयोग आन्दोलन से पूर्व गांधी जी के भारत में सत्याग्रह के प्रयोग
5.4 सहयोग से असहयोग की ओर
5.5 ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी नीतियां जिन्होंने गांधी जी को सहयोग से असहयोग की ओर प्रेरित किया
5.6 खिलाफत का अर्थ, प्रारम्भ तथा कांग्रेस आन्दोलन से विलय
5.7 गांधी जी का खिलाफत आन्दोलन के साथ प्रयोग – समालोचना
5.8 असहयोग आन्दोलन के अनेकरूप
5.9 असहयोग आन्दोलन 1920–22 का सर्वेक्षण
5.10 सारांश
5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.12 सन्दर्भ ग्रन्थों की सती

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे

- दक्षिण अफ्रीका की सफलता के बाद महात्मा गांधी का भारतीय राजनीति में कैसे प्रवेश हुआ।
- किन परिस्थितियों ने महात्मा गांधी को ब्रिटिश शासन से सहयोग की नीति से असहयोग आन्दोलन के लिये विवश किया।
- खिलाफत के प्रश्न को जो मूलत : मुस्लिम प्रश्न था, गांधी जी ने उसे कांग्रेस से मिलाकर भारतीय प्रश्न कैसे बना दिया।
- ब्रिटिश शासन के साथ असहयोग किस प्रकार किया जा सकता है।
- असहयोग आन्दोलन 1920–22 का राष्ट्रीय आन्दोलन में क्या योगदान रहा।

5.1 प्रस्तावना

महात्मा गांधी से पूर्व तिलक ने भारतीय जनता से, उनकी भाषा में सीधा सम्पर्क किया और एक जन आन्दोलन की शुरूआत की । मिस्टर बुक ने तिलक के बारे में ठीक ही कहा है कि उन्होंने भारतीय जनता को बताया कि भारत का महान भविष्य इसके महान पुरातन पर आधारित है तथा भारतीय राजनीति में भारतीय धर्म की प्रेरणा फूंकी, जिससे भारत में महान जागृति पैदा हो सकेगी। दूसरे लेखकों, चिन्तकों तथा धार्मिक नेताओं ने इस सत्य को पहचाना था परन्तु तिलक प्रथम थे जिन्होंने इस सत्य को वास्तविक राजनीतिक क्षेत्र में अपनाया।

1920 में महान राष्ट्रवादी तिलक का अचानक देहान्त हो गया । परन्तु तिलक के अधुरे कार्य को नये भारतीय नेताओं ने पूर्ण किया तथा उनके द्वारा चलाये गये जन आन्दोलन को गांधी, नेहरू और सुभाष ने आगे बढ़ाया।

5.2 महात्मा गांधी का भारतीय राजनीति मे प्रवेश

कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन – 1916 एक अद्वितीय अधिवेशन थी। यह कई कारणों से अद्वितीय था।

1. गांधी जी ने प्रथम बार कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया।
2. कांग्रेस के दो दल – नरम दल तथा गरम दल! का विलय हो गया और, तिलक का शानदार स्वागत किया गया ।
3. हिन्दू और मुसलमानों में भाईचारा हो सका।
4. स्वराज्य की योजना बनाई गई ।

इन सब कारणों में, सबसे अधिक निर्णायक तत्व था महात्मा गांधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश। गांधी जी का दक्षिण अफ्रीका में सफल सत्याग्रह उनके विश्व प्रसिद्ध सत्याग्रह का पहला चरण था। गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में हजारों शोषित भारतीयों के मसीहा बन चुके थे । न्यायालयों में गांधी जी ने भारतीयों के अधिकारों के लिये संघर्ष किया। भारतीयों को कुली कहा जाता था। उनकी उंगलियों के निशान लिये जाते थे, उन पर पोल टैक्स लगता था तथा हिन्दू रीति रिवाज के विवाह को गैर कानूनी माना जाता था । 1906 से 1914 तक गांधी जी ने संघर्ष जारी रखा । यह संघर्ष सत्याग्रह का पहला रूप जिसमें किसी हिंसा का प्रयोग नहीं था, यह किसी कमजोरी का प्रतीक नहीं था बल्कि उच्च चरित्र को प्रदर्शित करता था । इस सत्याग्रह का प्रभाव भारतीय और ब्रिटेन के जनमत पर पड़ा । लार्ड हार्डिंग ब्रिटिश वाइसराय ने दक्षिणी अफ्रीका सरकार की स्पष्ट! आलोचना की । परिणाम स्वरूप 1914 में दक्षिणी अफ्रीका के एक कानून द्वारा भारतीयों पर से घृणित कानूनी–अन्याय हटा दिये गये । इस सफलता से गांधी जी को महात्मा की उपाधि से जाना जाने लगा । भारतीय राजनीति में प्रवेश से पहले गांधी जी ने भारत में सत्याग्रह आन्दोलन के कई प्रयोग किये।

5.3 असहयोग आन्दोलन से पूर्व गांधी जी के भारत में सत्याग्रह आन्दोलन के प्रयोग

1. 1917 का चम्पारन आन्दोलन :

चम्पारन बिहार का एक जिला था । यहां के किसानों की शिकायत थी कि नील की खेती उनके लिए बिल्कुल भी लाभदायक नहीं है और यूरोपियन स्वामियों के' द्वारा जबरदस्ती करायी जाती है। जब नील की खेती लाभदायक नहीं रही तो किसानों से कई प्रकार के टैक्स तथा जुर्माना लिया जाने लगा। ब्रिटिश सरकार को गांधी जी के आन्दोलन के, कारण कमीशन बिठाना पड़ा जिसमें नील की खेती को समाप्त कर दिया। फिर सफल आन्दोलन में गांधी जी के साथ राजेन्द्र बाबू और आचार्य कृपलानी थे।

2. 1918 का खेरा सत्याग्रह:

1918 में गांधी जी ने एक नये युग की शुरुआत की । बम्बई प्रेसीडेन्सी के खेरा जिले में अकाल जैसी स्थिति थी । सरकार किसानों की दुर्दशा पर कोई ध्यान नहीं दे रही थी । जब सभी

प्रकार की प्रार्थना तथा अपील विफल रही, गांधी जी ने किसानों को सत्याग्रह के लिए प्रेरित किया। इस समय सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अपनी शानदार सफल वकालत छोड़ कर खेरा सत्याग्रह में गांधी जी का साथ दिया । इस आन्दोलन से दो महान पुरुषों का साथ शुरू हुआ ।

खेरा सत्याग्रह अचानक समाप्त हो गया। सरकार ने गरीब किसानों का कर्ज समाप्त कर दिया परन्तु देर होने के कारण बहुत कम किसान इसका लाभ उठा सके, तो भी – खेरा आन्दोलन के माध्यम से सत्याग्रह ने गुजरात में जड़ें पकड़ ली।

3. 1918 का अहमदाबाद का मजदूर आन्दोलन:

अहमदाबाद के कपड़ा मिल के मजदूरों ने अपनी तनख्वाह वृद्धि के लिए हड़ताल शुरू कर दी। दूसरी तरफ मिल मालिकों ने लाक–आउट कर दिया । इस गांधी जी ने आमरण अनशन किया जिससे द्रवित होकर मिल मालिकों ने मजदूरों की वृद्धि की मांग को मान लिया ।

इस तरह से विश्व प्रसिद्ध दक्षिण अफ्रीका में रंग भेद के विरूद्ध सफल आन्दोलन तथा भारत में सत्याग्रह के कई सफल प्रयोग जैसे चम्पारन आन्दोलन, खेरा सत्याग्रह तथा अहमदाबाद का मजदूर आन्दोलन ने गांधी जी को 1920 के अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन के लिये तैयार कर दिया था। जो आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का नींव का पत्थर बना ।

5.4 सहयोग से असहयोग की ओर

1922 के ऐतिहासिक मुकदमें में गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार को जो सहयोग दिया उसकी स्पष्ट तस्वीर इस प्रकार है –

1. 1890 में जब बोहर युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी गई, गांधी जी मे अपनी सेवाएं ब्रिटिश साम्राज्य को दी तथा एक एम्बुलैंस दस्ता तैयार किया गया।
2. 1906 में जूलो विद्रोह में गांधी जी ने युद्ध में जख्मी सैनिकों की सेवा की । इन सेवाओं के बदले में गांधी जी को पदक दिये गये। दक्षिण अफ्रीका में की गई सेवाओं के बदले में लार्ड हार्डिंग ने गांधी जी को "केसरे–हिन्द" का स्वर्ण पदक दिया ।
3. 1914 में जब इंगलैंड और जर्मनी के बीच युद्ध शुरू हुआ, तो गांधी जी ने लन्दन में भारतीय विद्यार्थियों का एक एम्बुलैंस दस्ता तैयार किया ।
4. 1917 में जब चैम्स फोर्ड ने दिल्ली में सैनिक भर्ती के लिए अपील की, गांधी जी ने खेड़ा में एक दस्ता बना लिया ।

5.5 ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी नीतियां जिन्होंने गांधी जी को सहयोग से असहयोग की ओर प्रेरित किया

1. रोलट एक्ट, ब्रिटिश सरकार की तरफ से गांधी जी के लिये पहला धक्का था । 1919 में रोलट एक्ट के द्वारा भारतीय जनता से सभी प्रकार की स्वतन्त्रता छीन ली गई थी जिसमें उन्हें बिना मुकदमें के जेल भेजा जा सकता था ।
2. जलियांवाला बाग का नर संहार, ब्रिटिश सरकार की तरफ से गांधी जी के लिए दूसरा धक्का था। 13 अप्रैल को बैसाखी के दिन अमृतसर में जलियांवाला बाग में एक जन सभा आयोजित हुई जिसमें बीस हजार लोग थे । जनरल डायर ने उन पर बिना किसी चेतावनी के अपने सैनिक दस्ते से गोलियां बरंसवाई । सरकारी आकड़ों के अनुसार मरने वालों की

संख्या 400 थी । यही नहीं जनरल डायर ने अमृतसर की पानी और बिजली बन्द करवा दी तथा जनता पर कोड़े लगाये गये और उन्हें घिसट कर गली पार करने को कहा गया।

3. खिलाफत के आश्वासनों को पूरा ना करना गांधी जी के लिये असहयोग का तीसरा कारण बना। अंग्रेजों ने मुसलमानों की धार्मिक तथा ऐतिहासिक भावना को ठेस पहुंचाई । गांधी जी ने खिलाफत प्रश्न को असहयोग आन्दोलन का अंग बनाया।
4. 1919 का एक्ट जिसे मान्टेग्यू–चैम्सफोर्ड सुधार भी कहा जाता था, गांधी जी के लिए निराशाजनक सिद्ध हुआ । यद्यपि गांधी जी इन सुधारों के साथ प्रयोग करना चाहते थे परशु शीघ्र ही उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवाद के असली रूप का आभास हो गया।

5.6 खिलाफत का अर्थ, प्रारम्भ तथा कांग्रेस आन्दोलन से विलय

मुस्लिम लीग और कांग्रेस में आरम्भ से ही मतभेद थे । परन्तु 1911 ई. से कुछ ऐसी परिस्थितियो का निर्माण हुआ जिसके कारण ये दोनों राजनीतिक दल एक दूसरे निकट आने के लिए बाध्य हो गये। 1911 में इटली ने ट्रिपोली को लेने के लिये टर्की पर आक्रमण किया, 1912– 13 के वाल्कन युद्ध में भी टर्की की स्थिति खराब हुई प्रथम महायुद्ध 1914–18 में टर्की ने जर्मनी का साथ देते हुए ब्रिटिश के विरुद्ध युद्ध कर दिया । इन सभी अवसरों पर यह स्पष्ट हुआ कि भारतीय मुसलमान संसार के सभी राज्यों तथा मुख्यत टर्की राज्य के प्रति विशेष सहानुभूति रखते थे तथा अंग्रेज से भी ऐसी ही आशा रखते थे । परन्तु अंग्रेज सरकार की नीति का आधार यह नहीं था। तुर्की के सुल्तान और खलीफा के सम्मान के प्रति अंग्रेजों की उदासीनता ने मुस्लिम लीग के रुप में कुछ परिवर्तन कर दिया। भारतीय मुसलमानों का यह विचार था कि मेसोपटोमिया अरब, सीरिया तथा पेलिसटाइन के राष्ट्र तथा उनके धार्मिक स्थान पर खलीफा का सीधा अधिकार बना रहे । परन्तु युद्ध के पश्चात की शर्तों के अनुसार टर्की से यह प्रदेश छीन लिये गये और टर्की के खलीफा के पद को अंग्रेजों द्वारा समाप्त कर दिया गया। अत: 1919 में भारतीय मुसलमानों ने खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ किया। मोलाना मोहम्मद अली और मोलाना शौकत अली के नेतृत्व में भारत में एक आन्दोलन प्रारम्भ किया जो खिलाफत आन्दोलन कहलाया। 31 अगस्त, 1919 को खिलाफत दिवस मनाया गया । ऐसी परिस्थितियों में गांधी जी ने खिलाफत आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण भाग बना लिया ।

अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस के मुख्य नेताओं खिलाफत के नेताओं में विचार विमर्श हुआ जिसमें ब्रिटिश सरकार की टर्की नीति के यह तय किया गया कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में खिलाफत आन्दोलन शुरू किया जाये । प्रकार से प्रथम महायुद्ध के पश्चात कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में वास्तव में खिलाफत आन्दोलन शुरू किया । वास्तव में गांधी जी के प्रथम असहयोग आन्दोलन का लक्ष्य के लिए मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करना था।

5.7 गांधी जी का खिलाफत आन्दोलन के साथ प्रयोग - समालोना

इसमे संदेह नहीं कि गांधी जी ने खिलाफत के प्रश्न को बहुत दिया था । कलकत्ता के कांग्रेस के विशेष अधिवेशन 1920 में इसको इतना महत्व दिया कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन का यह अहम प्रश्न बन गया। अधिवेशन में साफ तौर से कहा गया कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारतीय मुसलमानों साथ अपने आश्वासन, वचन तथा कर्तव्य को नहीं

निभाया है इसलिए गैर मुसलमानों का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह खिलाफत आन्दोलन में मुसलमानों का साथ दें ।

कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में पंजाब में ब्रिटिश शासन के तथा कुकृत्यों को इतना ही महत्वपूर्ण मुद्दा बनाया गया जितना कि खिलाफत के प्रश्न। बल्कि इस अधिवेशन में यह स्पष्ट कर दिया गया कि कांग्रेस इन दो मुद्दों के कारण असहयोग आन्दोलन शुरू कर रही है। खिलाफत के प्रश्न पर गांधी जी ने पहल करके सरकार को उसके द्वारा दिये गये" केसरे–हिन्द" पदक को वापस कर दिया।

कुछ विद्वान यह मानते है कि खिलाफत का मुद्दा असहयोग आन्दोलन का अंग बनाना उचित नहीं था। मूलतः यह प्रश्न धार्मिक था। धार्मिक प्रश्न को राष्ट्रीय प्रश्न में नहीं लाना चाहिये था । बाहर से ऐसा लगता था कि इस आन्दोलन में हिन्दू और मुसलमान एक हो गये है परन्तु वास्तव में इससे भारतीय राजनीति में धार्मिक कट्टरता पैदा हुआ। असहयोग आन्दोलन के दौरान मालाबार के मोपला मुसलमानों ने हिन्दुओं पर जो अत्याचार किये उसका सीधा सम्बन्ध इस आन्दोलन से था। परन्तु दूसरी तरफ कुछ विद्वानों का मत है कि चाहे असहयोग आन्दोलन से खलीफा की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु । कांग्रेस को असहयोग आन्दोलन में मुसलमानों का सहयोग प्राप्त हो गया । जो भी हो इतना निश्चित है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए यह हिन्दू और मुसलमानों का पहला और अन्तिम संयुक्त प्रयास था । गांधी जी जीवन पर्यन्त हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए लड़े और अन्त में इसी महान उद्देश्य के लिए शहीद हुए।

5.8 असहयोग आन्दोलन के अनेक रूप

गांधी जी ने पूर्ण असहयोग आन्दोलन तभी शुरू किया जबकि उनकी ब्रिटिश साम्राज्य के साथ सहयोग और आशिक असहयोग की नीति विफल हो गई । गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार को पूरा समय दिया कि वह अपनी गलतियों में सुधार करें । गांधी जी का आन्दोलन एक चरण से दूसरे चरण की ओर विकसित हुआ । पट्टाभी सीतारमैया ने अपनी प्रसिद्ध रचना "इण्डियन नेशनल कांग्रेस का इतिहास' में इस परिस्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है – 'खिलाफत, पंजाब के अत्याचार तथा अधूरे सुधार की त्रिवेणी पूरी तरह से पर गयी थी जिससे राष्ट्रीय असन्तोष चरम सीमा पर था और असहयोग आन्दोलन के लिए हर चीज पक चुकी थी" । कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन 1920 के सभापति लाला लाजपतराय के इस अधिवेशन में गांधी जी ने असहयोग का प्रस्ताव रखा और उसे बहुमत से मान लिया गया। 1920 के नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन में इस प्रस्ताव को पूर्ण बहुमत से अपना लिया गया ।

किस प्रकार से असहयोग किया जाये?

1. सरकार के द्वारा दिये गये पद और पदवी का त्याग किया जाये तथा मनोनीत सीटें त्याग दी जायें।
2. सरकारी दरबार तथा अन्य सरकारी और अर्द्ध सरकारी समारोहों का बहिष्कार किया जाये।
3. सरकारी स्कूलों तथा कॉलेजों से अपने बलों को निकाल कर राष्ट्रीय स्कूल और कॉलेजों की स्थापना की जाये । यह प्रक्रिया चरणों में की जाये ।

4. वकीलों तथा जनता द्वारा ब्रिटिश न्यायालयों का बहिष्कार किया जाये और अपने झगड़े निजी न्यायालयों द्वारा हल किये जायें । यह प्रक्रिया चरणों में की जाये। सैनिक,
5. लिपिकों तथा मजदूरों को मेसोपटोमिया में भर्ती के लिये इन्कार कर को चाहिए ।
6. कौन्सिल के चुनावों का बहिष्कार किया जाये तथा जनता ऐसे व्यक्तियों को ना चुने जो कांग्रेस के बहिष्कार के बावजूद अपने को चुनाव के लिए प्रस्तुत करें।
7. विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाये ।

5.9 असहयोग आन्दोलन 1920– 22 का सर्वेक्षण

कांग्रेस की तरफ से गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार के सामने निम्न लिखित मांगे रखी:–

1. सरकार पंजाब की घटनाओं पर, विशेषकर अमृतसर की घटना पर अपना खेद प्रकट करे।
2. टर्की के प्रति सरकार नरम रूख अपनाएं।
3. भारतीय जनता के सामने ब्रिटिश सरकार कोई ऐसे संविधानिक सुधार रखे जो उसे स्वराज्य की ओर ले जा सकें ।

अगर इन मांगों को नहीं माना गया, गांधी जी ने चेतावनी दी कि वह असहयोग आन्दोलन शुरू कर देंगे । सरकार ने इन मांगों की तरफ कोई ध्यान नही दिया अत: महात्मा गांधी ने 1921 में असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया। यद्यपि खिलाफत कमेटी 1920 में पहले ही गांधी जी के सहयोग से यह आन्दोलन शुरू कर चुकी थी। जनता में इस आन्दोलन के प्रति आरम्भ से उत्साह था। वोट न देने वाला आन्दोलन विशेषत: सफल था। कई वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ कर पूरे मन और आत्मा से इस आन्दोलन में अपने को लगा दिया। सी. आर. दास, मोती लाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, लाला, राजेन्द्र प्रसाद तथा वल्लभ भाई पटेल जैसे महान पुरुषों ने अपनी समृद्ध वकालत छोड़ कर इस आन्दोलन में भाग लिया। बहुत से विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूलों और कॉलेजों से अपनी पढ़ाई छोड़ दी । और इसी समय राष्ट्रीय संस्थाएं जैसे गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, दिल्ली की जामा मिलिया की स्थापना हुई । स्वदेशी लोकप्रिय हो गई, खादी स्वतन्त्रता की प्रतीक बन गई। शराब की दुकानों और विदेशी कपड़ों की दुकानों को एक दृष्टि से देखा जाने लगा। सारे राष्ट्र में विदेशी कपड़ो की होली जलाई गई । तिलक स्वराज फण्ड का श्री गणेश किया गया आन्दोलन को धन मिल सके और 6 महीने के अन्दर एक करोड़ रुपये से भी अधिक इकट्ठी हो गई । महिलाओं ने अपने गहने समर्पण कर दिये । जनता ने सरकारी न्यायालयों का बहिष्कार किया । प्रिन्स ऑफ वेल्स की भारतीय यात्रा का बहिष्कार किया गया। बम्बई में पूर्ण हड़ताल रखी गई ।

असहयोग आन्दोलन 1921 की सबसे अच्छी समीक्षा सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी शानदार रचना "दि इण्डियन स्ट्रगल" में की है -"1921 में देश को बहुत ही पार्टी मिली । इससे पहले कांग्रेस एक संविधानिक पार्टी तथा बातचीत करने वाली थी । महात्मा गांधी ने न केवल इसे एक नया संविधान दिया तथा राष्ट्रीय स्तर का आधार दिया?, लेकिन जो बहुत महत्वपूर्ण बात दी वह थी कि इसे एक क्रान्तिकारी संगठन में बदल दिया । सारे देश में तिरंगा झण्डा अपना लिया गया। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक से नारे गये । अंग्रेजी का महत्व कम हो गया और कांग्रेस ने हिन्दी को बोलचाल और जनता भाषा बना दिया । सभी कांग्रेस के सदस्यों के लिए

खादी स्वत: ही पहनावा बन गई । संक्षेप में आधुनिक पार्टी के सभी गुण कांग्रेस में नजर आने लगे। इन सब उपलब्धियों के लिये महात्मा गांधी को श्रेय जाता है ।"

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का अंतिम बिन्दु था टैक्स न देना। 1922 में महात्मा गांधी ने वाइसराय लोर्ड रिडींग को अल्टीमेटम दिया कि यदि 7 दिनों सरकार ने हृदय परिवर्तन नहीं दिखाया तो वह गुजरात के बारडोली इलाके में जनता द्वारा न देने का आन्दोलन शुरू कर देंगे। गांधी जी की इच्छा थी कि पहला जन सत्याग्रह देखरेख में हो और सम्पूर्ण भारत उनका यह प्रयोग देखकर उनमें शक्ति और उत्साह भरे।

परन्तु बारडोली का उबाल बिन्दु शीघ्र ही चोरा चौरी के निम्न बिन्दु पर पहुंच गया। 5 फरवरी, 1922 को जब कांग्रेस का एक प्रदर्शन चौरा चौरी, जो गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) में है, में किया जा रहा था, 21 सिपाहियों तथा एक सब इन्सपेक्टर को थाने में कर जला दिया गया । वह सभी आग में जल गये। जब गांधी जी के पास यह खबर पहुंची, इस हिंसा से धक्का लगा और कांग्रेस की कमेटी को बारडोली बुलाया गया तथा आन्दोलन को पूरे भारत में अनिश्चित काल के लिए स्थगित करके कांग्रेसजनों को समाज सेवा के कार्य के लिए निर्देशित किया ।

उस समय गांधी जी की आता को मान लिया गया परन्तु कांग्रेस खेमों में लगातार विद्रोह होता रहा। कोई भी इस बात को समझ नहीं सका कि गांधी जी ने इस अकेली घटना चोरा चौरी के कारण सारे देश के आन्दोलन को क्यों दबा दिया। गांधी जी के मुख्य सेना नायकों ने जो इस समय जेल में थे जैसे - देशबन्धु दास, पण्डित मोती लाल नेहरू तथा लाला लाजपतराय ने गांधी जी की आलोचना की । उन्होंने एक जगह के पाप के लिए पूरे राष्ट्र को दण्डित किया। आन्दोलन को वापस लेने के कारण गांधी जी की भर्त्सना की गई । बारडोली प्रस्ताव के लिए बंगाल व महाराष्ट्र ने विशेषत: गांधी जी की बुरी तरह से आलोचना की । परन्तु गांधी जी अपने निर्णय पर इतने अटल और स्थिर 'रहे कि विरोध का तूफान शान्त हो गया।

इस प्रकार से असहयोग आन्दोलन फरवरी 1922 में समाप्त हो गया । सरकार ने गांधी जी को कैद कर लिया और उनके खिलाफ सरकार के विरुद्ध विद्रोह फैलाने का अभियोग लगाकर तिलक के तरह 6 वर्ष के लिये जेल भेज दिया । विश्वभर के समाचार पत्रों में गांधी जी के इस मुकदमे का वर्णन किया गया। श्रीमती सरोजनी नायडु जो कवयित्री और राष्ट्रवादी नेता थी, के अनुसार गांधी जी का कोर्ट में यह मुकदमा ईसा–मसीह से मिलता था । इस प्रकार गांधी जी ने भारतीय क्रान्ति को आध्यात्मिक तथा नैतिक आधार दिया । इसी असहयोग आन्दोलन ने जवाहर लाल नेहरू जैसे हीरो और केम्ब्रेज के अंग्रेज को ब्रिटिश भारतीय सरकार का विद्रोही बना दिया।

5.10 सारांश

1920 में भारत चौराहे पर खड़ा था । संविधानिक आन्दोलन अपना प्रभाव खो चुका था । सशस्त्र क्रांति केवल पागलपन प्रतीत होती थी। सम्पूर्ण राष्ट्र एक नये साधन और एक नये नेता की तलाश में था। ऐसे समय में महात्मा गांधी ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिशा दी । कांग्रेस को कान्फ्रेंस तथा बातचीत वाली संस्था से जीवित और संघर्ष वाली संस्था में गांधी जी ने बदल दिया । सच बात तो यह है कि इस समय कांग्रेस पार्टी ने सभी आधुनिक राजनीतिक पार्टी के गुण आ चुके थे और इस सब का श्रेय महात्मा गांधी को जाता है । 1920 की इन्हीं परिस्थितियों के कारण 1921 में गांधी जी सफलतापूर्वक असहयोग आन्दोलन का आहान कर सके।

5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 1920 के असहयोग आन्दोलन की व्याख्या कीजिए और इसके कार्यक्रम का मूल्यांकन कीजिए।
2. महात्मा गांधी द्वारा प्रारम्भ किये 1920 के असहयोग आन्दोलन की विचारधारा तथा कार्यक्रम क्या थे? इस आन्दोलन का एक संक्षिप्त इतिहास लिखिए और यह भी बताइये कि किन कारणों से यह असफल हुआ?
3. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए –
   (1) जलियांवाला बाग हत्याकांड
   (2) चौरी–चौरा कांड
   (3) खिलाफत आन्दोलन

5.12 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. Besant,Annie : How India wrought for freedom.
2. Zacharia : Renascent India
3. Singh, G.N. : Land marks in Indian constitutional and National Movement
4. Bose, Subhash Chandra : The Indian struggle
5. Ramahia,Dr. Pattabhai Sita : History of Indian National Congress
6. Majumdar : Indian National Evolution

इकाई – 6

स्वराज्यवादियों की भूमिका एवं उपलब्धियाँ

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 स्वराज्यदल की पृष्ठभूमि
6.3 स्वराज्यदल की स्थापना
6.4 स्वराज्यदल के उद्देश्य एवं कार्यक्रम
6.5 स्वराज्यदल की गतिविधियां एवं नीति में परिवर्तन
6.6 स्वराज्यदल के पतन के कारण
6.7 स्वराज्यदल के कार्यो का मूल्यांकन
6.8 सारांश
6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
6.10 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत हम आपको राष्ट्रीय राजनीति में एक नवीन विचारधारा के रूप में स्वराज्यवादियों के उदय की जानकारी देंगे। इस नवीन विचारधारा के जनक पं. मोतीलाल नेहरू और चितरंजनदास थे। उनके नेतृत्व में स्वराज्यदल का गठन हुआ।

इस ईकाई में आप अध्ययन करेंगे :

- उन परिस्थितियों का, जिनमें स्वराज्यदल का उदय हुआ;
- विभिन्न नेताओं ने किस प्रकार स्वराज्यदल की स्थापना की;
- स्वराज्यदल के विभिन्न उद्देश्य एवं उसका कार्यक्रम, जो इनको प्राप्त करने के लिए निर्धारित किया गया था;
- स्वराज्यवादियों को मिली सफलता एवं तत्पश्चात् उन्होंने अपनी में किस प्रकार परिवर्तन किया;
- उन कारणों तथा परिस्थितियों का, जिनके फलस्वरूप 1926 ई. में स्वराज्यदल का पतन हुआ।
- स्वराज्यवादियों की सफलता–असफलता का मूल्यांकन।

6.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक नवीन चरण में प्रवेश किया। स्वतत्रता–प्राप्ति तक जो मुख्य जन–आन्दोलन एवं विभिन्न राजनीतिक दलों का गठन हुआ, उनमें असहयोग आन्दोलन (1920–22), स्वराज्यदल का उदय (1922–26), सविनय अवज्ञा (1930–34) और भारतछोड़ो (1942) आन्दोलन मुख्य है। इन जनआन्दोलनों के अतिरिक्त क्रान्तिकारी आन्दोलन, किसान तथा श्रमिक वर्ग के आन्दोलन, देशी रियासतों के जन–आन्दोलनों ने भी स्वतन्त्रता–संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

लेकिन इनमें 1922–26 ई. का काल कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस काल का प्रारम्भ असहयोग आन्दोलन की समाप्ति और एक नवीन दल के गठन (स्वराज्य–पार्टी) के साथ हुआ। इस काल के अन्तर्गत राजनीतिक गतिविधियों में एक नवीन दृष्टिकोण के प्रारम्भ से भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष को भी बल मिला। इस काल में देश के समक्ष परिषदों में प्रवेश तथा रचनात्मक कार्यो के रूप में दोहरे कार्यक्रम प्रकट हुए। इन्हीं वर्षो में विभिन्न राजनीतिक विचारों के प्रवर्त्तक नए नेताओं का उदय हुआ। इस इकाई के अन्तर्गत हम आपको 1922–26 ई. के वर्षो में स्वराज्यवादियों की भूमिका, उपलब्धियों एवं उनसे सम्बन्धित सर्च पक्षों का आलोचनात्मक विस्तृत परिचय देंगे।

6.2 स्वराज्यदल की पृष्ठभूमि

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवाज उठाने वाले सभी प्रकार की विचारधाराओं से सम्बन्धित लोगों के लिए एक शक्तिशाली राष्ट्रीय मंच के रूप में कांग्रेस का उदय हुआ। गाँधीजी का प्रथम आन्दोलन "असहयोग आन्दोलन" (1920–22) के दौरान इस मंच की जड़ें सभी वर्गो के लोगों तक फैल गयी। कांग्रेस के द्वारा "स्वराज्य" औपचारिक रूप से अपना लक्ष्य स्वीकार करने के साथ ही असहयोग आन्दोलन एक जन–आन्दोलन में परिवर्तित हो गया । गाँधी जी द्वारा दिए गए आकर्षक नारे "एक वर्ष में स्वराज्य" ने जनसमूहों को स्वतत्रता–संग्राम में उतार दिया । लेकिन फरवरी 1922 ई. में असहयोग आन्दोलन के स्थगन ने चारों तरफ निराशा का वातावरण पैदा कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस के नेतृत्व में स्पष्ट मतभेद उभरकर सामने आए । सरकार ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए तुरन्त दमन की नीति अपनायी, जिसमें तुरन्त गिरफ्तारी तथा विशेष आयुक्त के समक्ष मुकदमा चलाए जाने का अध्यादेश जारी किया गया। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लायड जार्ज ने आई. सी. एस. अधिकारियों की प्रशंसा करते हुए एक ओजस्वी भाषण भी दिया। ऐसा अंग्रेजी नीति में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए किया गया था । इसने स्वराज्य के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ करने में योगदान दिया ।

ऐसी परिस्थिति में संघर्ष के दौरान गाँधीवादी तरीकों एवं कार्यप्रणाली की उपयुक्तता के प्रश्न पर लोगों के मन में सन्देह की भावना उत्पन्न होने लगी । क्या लाखों–करोड़ों लोगों को अहिंसा का पाठ पढ़ाना सम्भव था? यदि ऐसा सम्भव भी था तो इसमें कितना समय लगता? इस समय गांधी जी जेल में थे और देश के समक्ष कोई निश्चित राजनीतिक कार्यक्रम भी नहीं था। तथाकथित हिन्दू–मुस्लिम एकता भी तेजी से समाप्त होती जा रही थी और दोनों सम्प्रदायों के बीच तनाव तथा साम्प्रदायिक झगड़ों के प्रारम्भ होने के कारण देश की सारी शक्ति एवं प्रयास इस समस्या के समाधान में लग रहे थे। कांग्रेस के रचनात्मक कार्य, जो सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रमों में सुधार लाने से सम्बन्धित थे, उच्च मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों को अपनी ओर आकृष्ट करने में असफल रहे और उन्होंने राजनीति में गाँधीजी की भावनात्मक तथा अमूर्त आदर्शों का कभी भी अनुमोदन नहीं किया । उनकी दृष्टि में राजनीति एक मूर्त तथा यथार्थ सत्य थी और वे कांग्रेस तथा उसकी राजनीति को असहयोग आन्दोलन वापिस लिए? जाने के बाद उसमें उत्पन्न निराशा की भावना से मुक्त कराना चाहते थे ।

1922 ई. में असहयोग आन्दोलन के स्थगन ने भारतीय राजनीति में नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया । असहयोग आन्दोलन के स्थगन पर राष्ट्रीय आन्दोलन में गतिहीनता आ गई,

जिससे कांग्रेस के अधिकांश नेताओं और जनता में क्षोभ फैल गया। बंगाल में चितरंजनदास, उत्तर भारत में पं. मोतीलाल नेहरू और दक्षिण में एन सी. केलकर जैसे नेताओं ने विशेष रूप से असन्तोष प्रकट किया । महात्मा गाँधी को 6 वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया था । कांग्रेस के समक्ष भी कोई सुनिश्चित कार्यक्रम नही रह गया था । अनिश्चितता और गतिहीनता के इस वातावरण में कांग्रेस में आपसी फूट दृष्टिगोचर होने लगी । कुछ लोग कांग्रेस की नीति में परिवर्तन चाहते थे और कुछ लोग किसी भी प्रकार के परिवर्तन के विरोधी थे। इस समय कांग्रेस में दो प्रकार की विचारधाराएँ पनपने लगी,

प्रथम, परिवर्तनकारी – इस विचारधारा के व्यक्ति महात्मा गाँधी में आस्था खो चुके थे। वे असहयोग आन्दोलन में विश्वास नहीं रखते थे और कांग्रेस के कार्यक्रम में परिवर्तन चाहते थे। वे निर्वाचनों में भाग लेकर कौन्सिलों में प्रवेश चाहते थे और वहां उत्तरदायी शासन प्रणाली के प्रचार के लिए उत्सुक थे। इन नेताओं में चितरंजनदास व पं. मोतीलाल नेहरू थे । परिवर्तनकारी नेताओं का विचार था कि चुनावों में भाग लेने से कांग्रेस द्वारा जनता का विश्वास पुन: प्राप्त किया जा सकेगा और सरकार की विधान सभाओं में आलोचना एवं विरोध से जनता में जागृति एवं उत्साह बढ़ेगा। इसके अतिरिक्त, असहयोग के कार्यक्रम को विधानसभाओं में जाकर सरकारी निरंकुशता को रोकने तथा अवसरवादियों व सरकार के समर्थकों का भी विरोध अधिक निरंकुशता से किया जा सकेगा। परिवर्तनकारी नेताओं का यह भी विचार था कि स्वराज्य की माँग को और अधिक सशक्त किया जायेगा तथा 1919 ई. के सुधारों में आवश्यक परिवर्तन के लिए सरकार पर दबाव डाला जायेगा। गया अधिवेशन में परिवर्तनवादी नेताओं ने विधानसभाओं में प्रवेश हेतु अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया । इस अवसर पर चितरंजनदास ने कहा, "मै विधान सभाओं (कौन्सिलों) का बहिष्कार करने के विपक्ष में नहीं हूँ । मेरा मत है कि सुधरी हुई विधान सभाओं तथा इण्डियन सिविल सर्विस के फौलादी ढाँचे की व्यवस्था भारतीयों की प्रकृति तथा प्रतिभा के तनिक भी अनुकूल नहीं है ।..... कांग्रेस का कर्त्तव्य है कि वह विधान सभाओं के अन्दर से उनका अधिक प्रभावशाली ढंग से बहिष्कार करें ।

द्वितीय, अपरिवर्तनकारी – इस विचारधारा के व्यक्ति अब भी महात्मा गाँधी के नेतृत्व में विश्वास, असहयोग आन्दोलन के पक्ष में तथा कौन्सिलों का बहिष्कार करा चाहते थे। वे कांग्रेस में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते थे । एक तीसरा दल, जिसे केन्द्रीय दल कहते थे, भी उभरकर सामने आया, जो न तो स्वराज्यवादी योजना का ही विरोध करते थे और नही गाँधीवादी लोगों का समर्थन। वे चाहते थे कि कांग्रेस के दोनों दलों को यथार्थवादी नीति अपनानी चाहिए और आपस में समझौता कर लेना चाहिए। असहयोग आन्दोलन के स्थगन के पश्चात् कांग्रेस के अन्तर्गत दोनों विचार धाराओं में विरोध तीव्र हो गया। चितरंजनदास ने स्वराज्यदल की स्थापना हेतु घोषणा की तथा प्रचार के लिए सम्पूर्ण देश में दौरा किया। उन्होंने कांग्रेस की नीति–परिवर्तन के तीन सुझाव रखे–

(i) देश की साधारण जनता असहयोग आन्दोलन के लिए तैयार नहीं है ।

(ii) सत्याग्रही पंजाब और खिलाफत के विरुद्ध की गई सरकार की भूलों को सुधारने और तुरन्त स्वराज्य की माँग के आधार पर निर्वाचन में भाग लें ।

(iii) यदि उनको कौन्सिलों में बहुमत प्राप्त होता है तो वे सरकार के हर कार्य का विरोध करें और ऊपर व्यक्त की गई त्रुटियों को दूर करने तथा स्वराज्य की माँग के सम्बन्ध में प्रस्ताव पेश सारे, किन्तु यदि उनको कौन्सिलों में बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो कौन्सिलों की किसी भी कार्यवाही में भाग न लें । कांग्रेस की असहयोग समिति के सदस्य इस प्रश्न पर अविभाजित थे। हकीम अजमल खाँ, मोतीलाल नेहरू और विट्ठल भाई पटेल ने इसका समर्थन किया, जबकि सी.आर. राजगोपालाचारी, डॉ. अन्सारी आदि ने इसका विरोध किया।

6.3 स्वराज्यदल की स्थापना

इस प्रकार 1922 ई. में पुन: यह स्थिति उत्पन्न हो गयी, जिससे यह प्रतीत होने लगा कि 1907 ई. की भांति कांग्रेस दो दलों में विभाजित हो जायेगी। उसी वर्ष कलकत्ता अधिवेशन में कौन्सिल में प्रवेश के प्रश्न पर दोनों गुटों में कटु वाकसंघर्ष हुआ, किन्तु हिन्दू–मुस्लिम दंगों के कारण यह विभाजन टल गया और एकता पूर्ववत् बनी रही। दिसम्बर, 1922 ई. में गया में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसके अध्यक्ष चितरंजनदास निर्वाचित हुए । उन्होंने अधिवेशन के समक्ष अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया, किन्तु उनकी पराजय हुई और अपरिवर्तन वादियों की विजय हुई अर्थात कौन्सिल प्रवेश नीति को असफलता मिली। परिणामस्वरूप चितरंजनदास ने अध्यक्ष पद से तथा मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस के महामंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया । कांग्रेस से त्यागपत्र देकर 1 जनवरी, 1923 ई. को देशबंन्धु चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू तथा हकीम अजमल खाँ ने स्वराज्य दल की स्थापना की और अपने कार्यक्रम को प्रान्तों में कार्यान्वित करने का प्रयास किया। यह दल कांग्रेस का ही एक अंग था किन्तु परिवर्तनवादी होने के कारण उसकी विचारधाराएँ कुछ भिन्न थी । स्वराज्यवादियों का प्रथम अधिवेशन मार्च, 1923 ई. में इलाहाबाद में बुलाया गया, जिसमें दल के संविधान और अभियान की योजना को स्वीकार किया गया। यह सम्मेलन मोतीलाल नेहरू के निवास स्थान पर ही हुआ था। यही पर स्वराज्य पार्टी का गठन तथा उसका संविधान तैयार किया गया । इस पार्टी को कांग्रेस से स्वीकृति मिल जाने पर कांग्रेस के साथ काम करने का निश्चय किया गया। परन्तु इस पार्टी के गठन के साथ ही कांग्रेस के अपरिवर्तनवादी तथा परिवर्तनवादी विचारधारा के कांग्रेसियों के मध्य पुन मतभेद उत्पन्न हो गए। अपरिवर्तनवादी चुनावों से अलग रहकर गाँधीजी के रचनात्मक कार्य करना चाहते थे, किन्तु स्वराज्य दल ने आगामी चुनावों में भाग लेने की घोषणा कर दी । इस प्रकार धीरे–धीरे ऐसी स्थिति उत्पन्न होती जा रही थी जिससे कांग्रेस के विभाजन का संकट दिखलाई देने लगा ।

उपर्युक्त राजनीतिक स्थिति का अध्ययन एवं उस पर विचार–विनिमय करने के लिए सितम्बर, 1923 ई. में दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता मौलाना अबुल कलाम आजाद ने की । कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद ने स्वराज्यदल की नीतियों को पूर्ण समर्थन दिया । उनका तर्क था कि चूंकि सभी कांग्रेसियों का वास्तविक उद्देश्य देश को स्वतंत्र कराना ही है, अत : सभी गुटों को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे अपने उस कार्यक्रम का अनुसरण करें जिसे वे अधिक अच्छा समझते है। इस अधिवेशन में कांग्रेस के सदस्यों को कौन्सिल के नवम्बर 1923 ई. में होने वाले चुनावों में भाग लेने की अनुमति दी गयी । यह प्रस्ताव भी पारित किया गया कि जिन कांग्रेसियों को कौन्सिल प्रवेश के विरुद्ध धार्मिक अथवा किसी अन्य प्रकार की आपत्ति न हो, उन्हें अगले निर्वाचन में खड़े होने और

अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने की स्वतन्त्रता है । इसी वर्ष कोकानाडा कांग्रेस अधिवेशन में कौन्सिल–प्रवेश सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया गया और घोषणा की गई कि असहयोग कौन्सिल के भीतर भी अपनाया जा सकता है । कांग्रेस के सभी समर्थकों और सदस्यों से गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए अपने प्रयास को दुगुना कर देने का आहान किया गया । इस प्रकार कांग्रेस को टूटने से बचाया गया ।

इस प्रस्ताव से स्वराज्यवादी काफी उत्साहित हुए । उन्होंने गाँधी जी का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया । गाँधीजी को स्वराज्यवादियों की नीति तथा कार्यक्रम में विश्वास नहीं था, फिर भी उन्होंने स्वराज्यदल को आशीर्वाद एवं शुभ कामनाएँ दी । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, "हमारे बीच में वास्तविक एवं मौलिक मतभेद है फिर भी मै स्वराज्यवादियों के मार्ग में अवरोध अथवा उसके विरुद्ध प्रचार में भाग नहीं ले सकता, लेकिन ऐसी योजना को मै सक्रिय सहायता नहीं कर सकता, जिसमें मुझे स्वयं विश्वास न हो।" स्वराज्यवादियों ने गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को स्वीकार किया और असहयोग आन्दोलन के समर्थकों ने स्वराज्यवादियों के कौन्सिल प्रवेश कार्यक्रम को । इस प्रकार स्वराज्यदल काँग्रेस का ही एक राजनीतिक अंग के समान बन गया, जो संसदीय कार्यो. में भाग लेना था ।

6.4 स्वराज्य दल के उद्देश्य एवं कार्यक्रम

स्वराज्य दल का संविधान प्रथम स्वराज्य दल के सम्मेलन में निश्चित किया गया था, जो मार्च, 1923 ई. में मोतीलाल नेहरू के निवास स्थान पर हुआ था । इस दल ने 14 अक्तूबर, 1923 ई. को अपना एक घोषणा–पत्र जारी किया, जिसमें उन्होंने दल के उद्देश्यों तथा कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला। स्वराज्य दल का मूल उद्देश्य स्वराज्य को प्राप्त करना था । गाँधीवादियों का भी यही उद्देश्य था लेकिन दोनों में स्वराज्य–प्राप्ति के साधनों में अन्तर था । स्वराज्यवादी गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में विश्वास नहीं करते थे । उनका कहना था कि असहयोग नीति को कौन्सिल में प्रवेश कर अपनाया जाए । उनकी धारणा थी कि कौन्सिल में प्रवेश करके ही असहयोग को सफल बनाया जा सकता है तथा स्वराज्य की प्राप्ति की जा सकती है । कौन्सिल के अन्दर असहयोग से उनका अर्थ था भारतीय निर्वाचन में भाग लें और अधिक से अधिक संख्या में कौन्सिल में निर्वाचित होकर आवें तथा सरकार की नीति का घोर विरोध करके उसके कार्यो में एकरूप, अविच्छिन्न और सतत् “अड़ंगा” (Obstructions) लगावें, जिससे सरकार के कार्यो में बाधा पड़े और उसे अपनी नीति परिवर्तन के लिए बाध्य होना पड़े । "अड़ंगा. शब्द के बारे में मोतीलाल नेहरू तथा चितरंजनदास का कहना था कि, हमने अपने कार्यक्रम में "अड़ंगा" शब्द का जो व्यवहार किया है वह ब्रिटिश संसद के इतिहास के वैधानिक अर्थ में नहीं है । मातहत और सीमित अधिकारों वलि कौन्सिल में उस अर्थ का अड़ंगा डालना असम्भव है क्योंकि सुधार कानून के अन्तर्गत असेम्बली तथा कौन्सिल के अधिकार बहुत सीमित है । पर हमारा विचार “अड़ंगा” डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही द्वारा डाली गई रुकावटों का मुकाबला करना अधिक है। इस प्रकार "अड़ंगा" स्वराज्य दल के कार्यक्रम का विध्वंसात्मक पक्ष था । स्वराज्यदल के उद्देश्यों के बारे में चितरंजनदास ने बंगाल विधान सभा में कहा था, "यह कहा गया है कि हमारा नारा है नष्ट करो, नष्ट करो... हम नष्ट करना क्यों चाहते है? हम किससे मुक्त होना चाहते है? हम उस परिपाटी को नष्ट करना तथा उससे मुक्त होना चाहते है जो हमारे लिए

हितकर नहीं है और न हो सकती है । हम उसे इसलिए नष्ट करना चाहते है क्योंकि हम एक ऐसी पद्धति का निर्माण करना चाहते है जो सफलतापूर्वक कार्य कर सके और सार्वजनिक हितों में सहायता पहुंचावे।' इस प्रकार स्वराज्यवादियों का मूल उद्देश्य स्वराज्य प्राप्त करना था उस परिपाटी का अन्त करना था जो अंग्रेजी सत्ता के अधीन भारत में विद्यमान थी और भारत के लिए अहितकर थी । साथ ही स्वराज्यवादी ऐसे विधेयक तथा प्रस्ताव चाहते थे जिनके द्वारा राष्ट्रीय रचनात्मक कार्यों में सहयोग मिले । कौन्सिल के बाहर ये गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम में सहयोग देते थे । उन्होंने घोषणा की कि "ज्यों ही हमें मालूम पड़ेगा कि सत्याग्रह के बिना नौकरशाही की स्वार्थपूर्ण हठधर्मी का सामना करना असम्भव है, हम तत्काल कौन्सिलों को छोड़कर देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने में, यदि वह स्वयं ही उस समय तक तैयार न हो सका, तो उनकी (महात्मा गांधी की) सहायता करेंगे। तब हम बिना हील–हवाले के उनके पीछे हो लेंगे और कांग्रेस की संस्थाओं द्वारा उनके झण्डे के नीचे काम करेंगे, जिससे सब मिलकर सत्याग्रह का ठोस कार्यक्रम पूरा कर सकें।" इस प्रकार वे कौन्सिल के कार्य को प्रमुखता देते हुए रचनात्मक कार्य में भी विश्वास करते थे।

स्वराज्यवादियों के उद्देश्य थे –

(i) भारत को स्वराज्य की प्राप्ति,

(ii) उस परिपाटी का अन्त करना जो अंग्रेजीं सत्ता के अधीन भारत में विद्यमान थी,

(iii) स्वराज्य दल द्वारा कौन्सिल में प्रवेश कर असहयोग कार्यक्रम को अपनाना तथा असहयोग आन्दोलन को सफल बनाना,

(iv) सरकार की नीति का घोर विरोध कर उसके कार्यों में अड़ंगा लगाना, जिससे कि उसके कार्य सुचारू रूप से नहीं चल सकें और सरकार अपनी नीति में परिवर्तन को विवश हो,

(v) कौन्सिल के बाहर महात्मा गाँधी की नीति का अनुसरण करना,

(vi) मजदूरों तथा किसानों के शोषण को रोकना,

(vii) असहयोग आन्दोलन के समय बन्दी बनाए गए सत्याग्राहियों की मुक्ति तथा दमनकारी कानूनों की समाप्ति

(viii) शासन–सुधारों के लिए गोलमेज परिषद् का आयोजन करना ।

कार्यक्रम

स्वराज्य दल का निर्माण उन महत्वपूर्ण कांग्रेस नेताओं ने किया था, जिन्होंने गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन की पद्धति को कभी भी समर्थन नहीं दिया। इन नेताओं ने गाँधीजी के जन आन्दोलन के कार्यक्रमों के प्रति किसी भी प्रकार का सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण नहीं रखा। कांग्रेस का एक अभिन्न अंग होने और इसके एक विभाग के रूप में कार्य करने के कारण स्वराज्यवादियों के कार्यक्रम कांग्रेस से भिन्न नहीं रह सकते थे । कांग्रेस की छत्रछाया में रहते हुए उनकी अनुमति से 1919 के संविधान को ध्वस्त करने की दृष्टि से स्वराज्य दल ने अहिंसात्मक असहयोग के कार्यक्रम को कौन्सिलों में ले जाने की घोषणा की । स्वराज्य दल ने निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाने की घोषणा की –

काउंसिल के अन्दर

(i) अपने अधिकारों को मान्यता दिलाने के लिए सरकारी बजट को अस्वीकार करना।

(ii) अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए नौकरशाही द्वारा प्रस्तावित सभी कानूनी प्रस्तावों को मानने से इन्कार करेगी ।

(iii) उन प्रस्तावों, योजनाओं और विधेयकों को कौन्सिलों में प्रस्तुत करना जिनके द्वारा राष्ट्र की शक्ति में वृद्धि हो तथा नौकरशाही की शक्तियों का अन्त किया जाना सम्भव हो ।

(iv) कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों में सहयोग देना ।

(v) सत्याग्रह करना अनिवार्य है और उनके बिना नौकरशाही ठीक रास्ते पर नहीं आयेगी तो वे शीघ्र ही कौन्सिलों में अपने स्थानों को त्याग देंगे और देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने को अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग करेंगे ।

(vi) कार्यक्रम को अधिक प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से उन सभी स्थानों पर अधिकार करने के प्रयत्न किया जाए, जिन पर कौन्सिलों के सदस्य होने के नाते अधिकार करने में सफल हो सकते थे ।

(vii) शोषण कीं तरफ ले जाने वाली समस्त गतिविधियों पर दृष्टि रखते हुए एक निश्चित आर्थिक नीति अपनाना, जिससे भारत से सार्वजनिक सम्पत्ति का इंग्लैण्ड की ओर बहाव रोका जा सके और राष्ट्रीय, आर्थिक, औद्योगिक तथा व्यापारिक हितों को बढ़ावा।

(viii) कृषि और औघोगिक मजदूरों के अधिकारों पर ध्यान आकर्षित करने की दिशा में कार्य करना तथा भूस्वामियों और काश्तकारों, पूँजीपतियों और मजदूरों के सम्बन्धों में तालमेल बिठाना ।

कौन्सिल के बाहर.

(i) हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों, ब्राह्मणों एवं गैर ब्राह्मणों के बीच एक दूसरे के प्रति पूर्ण सामंजस्य की भावना लाने के लिए साम्प्रदायिक एकता लाने की में कार्य करना ।

(ii) अस्पृश्यता समाप्त करने तथा शोषित वर्गों के उत्थान के लिए कार्य ।

(iii) ग्रामीण संगठन तैयार करना ।

(iv) देश में औद्योगिक एवं कृषि मजदूरों, जिसमें रैयत तथा किसान थे, के संगठन तैयार करना, जिससे इन वर्गों के हितों को सुरक्षित एवं किया जा सके और स्वराज्य के संघर्ष में इनकी उपयुक्त भूमिका सुनिश्चित जा सके ।

(v) व्यापारिक और औद्योगिक विकास सहित देश का आर्थिक नियन्त्रण करना ।

(vi) स्थानीय एवं नगरपालिका सम्बन्धी मामलों में नियन्त्रण स्थापित ।

(vii) कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों में स्वदेशी खद्दर, राष्ट्रीय शिक्षा पंचायती बोर्डो के सम्बन्ध में आवश्यक पद्धति अपनाते हुए कार्यक्रमों को करना ।

(viii) कमेटी की राय से भारत से बाहर बने हुए कुछ ब्रिटिश उत्पादनों का बहिष्कार करना, जिससे कि इसे स्वराज्य प्राप्ति में राजनीतिक अस्त्र के रूप प्रयोग किया जा सके ।

(ix) एशियाई सद्भावना तथा व्यापार के क्षेत्र में आपसी सहयोग प्राप्त के लिए एशियाई देशों की फेडरेशन का गठन करना। भारत के बाहर राष्ट्रीय के प्रचार के लिए प्रचार समितियों का गठन करना और स्वराज्य के लिए में विदेशों का सहयोग और समर्थन प्राप्त करने के लिए कार्य करना।

इस प्रकार स्वराज्यवादियों के कार्यक्रमों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट थे जाता है कि उनके कार्यक्रमों में किसी प्रकार की नवीनता और मौलिकता नहीं थी बल्कि उनके उद्देश्य सभी वर्गो के

लोगों को प्रसन्न करना था जिससे कि चुनावों में उनको सफलता मिल सके। स्वराज्यवादी संघर्ष के स्थान पर सभी वर्गों की सहिष्णुता में विश्वास रखते थे। यद्यपि वे किसानों के प्रति न्याय के समर्थक थे लेकिन उनका यह भी विश्वास था कि भूस्वामियों के प्रति कोई अन्याय न्याय की दरिद्रता का द्योतक है । स्वराज्यवादी धनी वर्गों को प्रसन्न रखना चाहते थे क्योकि इनसे चुनावों में इन्हें काफी आर्थिक सहायता मिलती थी। काउंसिल के बाहर के उनके कार्यक्रम काफी स्थूल थे। एशियाई देशों की फेडरेशन और विदेशों में प्रचार कार्यक्रमों की व्यापकता को देखते हुए उनके क्रियान्वयन की सम्भावना भी केवल वैचारिक स्तर तक रह सकती थी ।

स्वराज्यवादी और गांधी जी

1919 के अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत चुनाव हुए और कुछ प्रान्तों में स्वराज्यवादियों को भारी सफलता मिली । अत: कांग्रेस के भीतर उनके में अत्यधिक वृद्धि हुई ।

फरवरी, 1924 ई में गांधीजी जेल से रिहा कर दिए गए । उनके बाहर आते ही पुराने झगड़ों को फिर से बल मिला और ऐसा प्रतीत होने लगा कि कांग्रेस को टूटने से नहीं बचाया जा सकता। जून में गांधीजी ने "बहिष्कार" के मूल कार्यक्रम के पक्ष में घोषणा कर दी । उन्होंने यही तक कह दिया कि वे लोग जो इस नीति का समर्थन नहीं करते हैं, उन्हें अलग संगठन के रूप में कार्य करने की पूरी आजादी है । जून, 1924 ई. में अहमदाबाद में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सभा में उनके प्रस्ताव बुनियादी स्तर पर स्वराज्यवादियों को कांग्रेस से बाहर निकालने के लक्ष्य को लेकर रखे गए थे । एक प्रस्ताव में प्रत्येक कांग्रेसी से दो हजार गज सूत कातने का आहान किया गया था और प्रादेशिक कांग्रेस कमेटियों को यह अधिकार दिया गया था कि ऐसा न करने वालों के विरुद्ध वे उचित कार्यवाही करें। परिषद् का बहिष्कार करने के विरोधियों को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से त्यागपत्र देने को कहा गया और मतदाताओं को कांग्रेस की नीति का विरोध करने वालों से सचेत रहा का आग्रह किया गया । ऐसी परिस्थिति में स्वराज्यवादियों का परेशान होना स्वाभाविक था, क्योंकि चुनाव में उनकी जीत का बड़ा कारण कांग्रेस का प्रभाव और उसके संसाधन थे । उन्होने इन प्रस्तावों का जमकर विरोध किया। चितरंजनदास और मोतीलाल नेहरू द्वारा विरोध के बाद गांधीजी ने प्रस्तावों में संशोधन किए और एक समझौते के द्वारा पदच्युत कर दिए जाने जैसे जुर्माने को प्रस्ताव से बाहर कर दिया। यह गाँधीजी की प्रतिष्ठा के लिए बहुत बड़ धक्का था । गाँधीजी ने स्वयं स्वीकार किया कि यह उनकी हार थी तथा उन्हें नीचा देखना पड़ा । अब गाँधीजी ने स्वराज्यवादियों को अपना सहयोग देना शुरू किया और उन्हें सरकार के साथ बातचीत करने में कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में प्रयोग किया ।

1924 ई. के बेलगाम कांग्रेस अधिवेशन ने जिसकी अध्यक्षता स्वयं गाँधीजी ने की थी, स्वराज्यवादियों और परिवर्तन विरोधियों के बीच आपसी विश्वास की बुनियाद रखी। गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन के स्थगन को सम्मिलित करते हुए एक समझौता पेश किया, जिसमें कहा गया था कि कांग्रेस के विभिन्न प्रकार के कार्य विभिन्न प्रकार के सदस्यों द्वारा किए जाने चाहिए। रचनात्मक कार्य जिनमें चरखा चलाने, हिन्दू–मुस्लिम एकता का समर्थन, खादी का प्रयोग, ग्राम सुधार, अस्पृश्यता तथा शराबखोरी को समाप्त करने के कार्यक्रम को कार्यवाही बनाया गया और कांग्रेसियों के लिए स्वराज्य प्राप्त करने का मुख्य साधन घोषित किया गया ।

6.5 स्वराज्यदल की गतिविधियाँ एवं नीति में परिवर्तन

स्वराज्यवादियों की नीतियों की विशेषता सुधारों को अन्दर से तोड़ने की कटिबद्धता में निहित थी। माइकल ओ डायर ने लिखा था कि खुले विद्रोह की तुलना में अप्रकट ध्वंसकारी शक्तियों से निपटना कही अधिक कठिन है । सरकार के सभी कानूनों में अवरोध डालने की नीति के पीछे कौन्सिलों की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचाना था जिन्होंने राष्ट्रीय स्वाभिमान को समाप्त कर दिया था। 1926 ई. में पं. मोतीलाल नेहरू ने कहा, 'हमारी समझ में अब हमारे लिए इन पाखण्डी संस्थानों का कोई लाभ नहीं रहा और देश की गरिमा और स्वाभिमान को बनाए रखने में हम कम से कम इतना तो कर ही सकते है कि इन संस्थाओं का बहिष्कार करें।' 1925 ई. में बंगाल विधान मण्डल में भाषण में चितरंजनदास ने कहा, 'हम उस व्यवस्था को ध्वस्त करना तथा उससे छुटकारा पाना चाहते है जिसने न तो कोई अच्छा कार्य किया है और न ही कर सकती है । हम इसे इसलिए ध्वस्त करना चाहते है क्योंकि हम ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना चाहते है जिसे सफलतापूर्वक लागू किया जा सके और जो जनमानस की भलाई करने में हमारी सहायक हो।

1919 ई. के अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत क्रमश: 1920, 1923 और 1926 में कुल तीन चुनाव हुए । असहयोग आन्दोलन के कारण कांग्रेस ने 1920 के चुनाओ का बहिष्कार किया था और उदारवादियों तथा अन्य के समक्ष कांग्रेंस की अनुपस्थिति में चुनाव क्षेत्र अपेक्षाकृत सरल था। 1923 में हुए चुनावों के समय तक.असहयोग आन्दोलन की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और कौन्सिलों में प्रवेश के प्रश्न पर कांग्रेस में फूट भी स्पष्ट हो चुकी थी । चितरंजनदास तथा मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य पार्टी के झण्डे तले कौन्सिल में प्रवेश के कार्यक्रम के साथ चुनावों में भाग लिया ।

चुनावों में उदारवादी अकेले ही स्वराज्यवादियों के समक्ष सशक्त विपक्ष के रूप में सामने आए । स्वतन्त्र उम्मीदवार भी चुनाव मैदान में थे, जिनका स्थानीय महत्व तो था लेकिन उनके पास कोई राजनीतिक दिशा, प्रतिष्ठा अथवा कार्यक्रम नहीं था । उदारवादियों का पक्ष इसलिए कमजोर था क्योंकि वे पार्षदीय सत्र में पहले से मौजूद थे और विदेशी सरकार के साथ काम करने का कलंक उन पर लग चुका था। दूसरी तरफ असहयोग आन्दोलन के समय जेल जाने के कारण स्वराज्यवादियों को शहीद माना जा रहा था और वे स्वराज्य के लिए कटिबद्ध थे। अब वे स्वराज्य की लड़ाई लड़ने के लिए कौन्सिलों में जा रहे थे क्योंकि यह लड़ाई कौन्सिलों के बाहर असफल परिणामों के साथ समाप्त हुई थी। सरकार के साथ खुले टकराने की उनकी नीति ने मतदाताओं पर व्यापक प्रभाव डाला।

मॉउंट–फोर्ड सुधारों और द्वैध–शासन प्रणाली विनष्ट करने के अपने कार्यक्रम को सामान रखकर स्वराज्यदल ने नवम्बर, 1923 ई. के निर्वाचनों में भाग लिया और कुछ स्थानों पर उसे विस्मयजनक सफलता प्राप्त हुई । केन्द्रीय व्यवस्थापिका में 145 सीटों में से 45 सीटों पर स्वराज्यदल की विजय हुई । स्वराज्यदल ने राष्ट्रीय और स्वतन्त्र उम्मीदवारों को पराजित किया। इसके अतिरिक्त स्वराज्यवादियों ने 1924–25 से 1926–27 तक के बजट की मांगों को प्रत्येक वर्ष अस्वीकार कर उसका घोर विरोध किया, क्योंकि स्वराजवादियों ने अपना सिद्धान्त बना लिया था कि जब तक शिकायतों को दूर नहीं किया जायेगा, तब तक कोई वित्तीय विधेयक पारित नहीं किया जायेगा । विवश होकर गवर्नन जनरल को अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर वित्तीय

प्रस्तावों को पारित करना पड़ा। प्रान्तों में स्वराज्य दल ने बंगाल तथा मध्यप्रान्त में विशेष सफलता प्राप्त की । इन दोनों प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली की क्रियान्विति को बिलकुल रोक दिया गया । बंगाल में तीन बार मन्त्रिमंडल के निर्माण को असम्भव कर गया । स्वराज्यदल की सफलता के सम्बन्ध में एच. एन. ब्रेल्सफोर्ड ने कहा, "मेरे विचार से अड़ंगा लगाने की नीति बिल्कुल सही थी क्योंकि उसने ब्रिटिश अनुदार दल वालों को भी इस बात के लिए कायल कर दिया कि द्वैध शासन प्रणाली अव्यवहार्य है ।" स्वराज्यवादियों ने अनेक मामलों में कौंन्सिलों में सरकार का विरोध किया तथा सरकार के दृष्टिकोण के प्रति रोष व्यक्त करने के लिए कौन्सिलों की बैठकों का बहिष्कार किया। प्रान्तीय परिषदों में भी स्वराज्य दल के सदस्यों ने सरकार के लिए प्रशासन चलाना कठिन कर दिया । बंगाल में पूर्ण बहुमत में होने के कारण चितरंजनदास को मंत्री पद के लिए आमन्त्रित किया गया, किन्तु दल की नीति के अनुसार उन्होंने इस पद को अस्वीकार कर दिया । बंगाल में सरकार की अनेक माँगों का विरोध किया गया तथा मन्त्रियों का वेतन अस्वीकार करके गतिरोध उत्पन्न किया गया । इस दल के सदस्यो ने अपने निरन्तर असहयोग से सरकार के लिए अनेक समस्याएँ उत्पन्न की । 'भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास' में ताराचन्द ने सत्य ही लिखा है कि "जिन कौन्सिलों में स्वराजदल का बहुमत था, वहां इस दल ने प्रमाणित कर दिया कि अन्दर से भी असहयोग किया जा सकता है।"

1924 ई. में केन्द्रीय कौन्सिल के द्वारा पारित प्रस्ताव के परिणामस्वरूप सरकर ने 1919 ई. के सुधारों की जाँच के लिए गृह सदस्य अलैक्जेंडर मुडीमैन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया । मोतीलाल नेहरू को भी इस समिति का सदस्य काया गया, किन्तु उन्होंने सदस्य बनना अस्वीकार कर दिया। इस समिति के अधिकांश सदल सरकार के ही पक्षपाती थे, अत: उन्होंने वैध शासन प्रणाली को उपयुक्त बताया, किन्तु कृछ सदस्यों द्वारा इसमें मौलिक परिवर्तन करने का सुझाव दिया गया। केन्द्रीय व्यवस्थापिका में इस समिति की सिफारिशों की मोतीलाल नेहरू ने कटु आलोचना की। केन्द्रीय व्यवस्थापिका में इस रिपोर्ट के विरुद्ध 14 के मुकाबले 45 मतों से प्रस्ताव पारित किया ।

यद्यपि सुधारों को अन्दर से तोड़ने के लिए कौन्सिलों में प्रवेश स्वराज्यवादियों का मुख्य उद्देश्य था, किन्तु उनके पास समाजिक–सुधारों की समझ भी थी, जिसे गाँधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रमों की संज्ञा दी थी । गाँधीजी का मानना था कि स्वतन्त्रता संग्राम रूपी रथ के दो पहिये है – रचनात्मक कार्यक्रम और राजनीतिक प्रचार । उनके रचनात्मक कार्यों में हिन्दू–मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता उन्मूलन, मद्य–निषेध आदि मुख्य थे । स्वराज्यवादी इन कार्यक्रमों की उपेक्षा नहीं कर सकते थे क्योंकि वे जानते थे कि उन्हें कौन्सिल छोड़कर कभी भी उन लोगों के साथ सविनय अवज्ञा में शामिल होना पड़ सकता है जो कौन्सिलों में शामिल नहीं हुए है । इस प्रकार कांग्रेस के दोनों गुटों – अपरिवर्तनवादी एवं स्वराज्यवादियों के लिए रचनात्मक कार्य एक सामान्य मंच के रूप में उभरा। पर रचनात्मक कार्यो को क्रियान्वयन में स्वराज्यवादी अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सके, क्योंकि वे कौन्सिलों में प्रवेश एवं संसदीय राजनीति में अधिक व्यस्त थे ।

स्वराज्यवादी स्वराज्य–प्राप्ति के लिए हिन्दू–मुस्लिम एकता और राजनीतिक शिक्षा को अनिवार्य मानते थे । 1926 ई. में कांग्रेस ने साम्प्रदायिक एकता तथा स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन के प्रति जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए एक स्थायी प्रचार ब्यूरो की स्थापना की । मोतीलाल नेहरू, मौलाना आजाद तथा सरोजिनी नायडू को इस दिशा में आवश्यक कार्यनीति तैयार करने के

लिए अधिकृत किया गया । कांग्रेस के गोहाटी अधिवेशन में मोतीलाल नेहरू ने लोगों को उनके राजनीतिक अधिकारी के प्रति शिक्षा देने तथा रचनात्मक कार्यों द्वारा इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए आवश्यक कार्यशक्ति प्राप्त करने की दिशा में कार्यक्रम प्रारम्भ करने पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी । स्वराज्यवादियों का उदय भी उसी समय हुआ जब हिन्दू–मुस्लिम तनाव फैल रहा था । अन्य दलों की भांति स्वराज्यवादी भी परिस्थिति को सुधारने की दिशा में हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रति भाषण देने के अलावा कुछ रचनात्मक कार्य नहीं कर सके ।

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों में स्वदेशी की कई कल्पना महत्वपूर्ण थी । गाँधीजी के विचार में स्वदेशी का अर्थ केवल चरखा और खादी नहीं था बल्कि इसमें स्वदेशी उद्योग से सम्बन्धित सभी पक्ष थे । स्वयं स्वराज्यवादी भी स्वदेशी, चरखा एवं खादी के कार्यक्रमों का पालन करने को वचनबद्ध थे, लेकिन इन कार्यक्रमों के प्रति उनकी गहरी रूचि नहीं थी । चितरंजनदास ने चरखा और खादी को भारतीयों के आर्थिक जीवन में सुधार लाने के लिए उपयोगी माना, किन्तु खादी की व्यापारिक उपयोगिता पर उनकी सहमति नहीं थी । स्वराज्यवादी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि केवल खादी, चरखा एवं स्वदेशी उद्योग भारत को स्वतन्त्रता दे सकेंगे। चितरंजनदास ने कहा, 'ऐसा विचार व्यक्त किया गया है कि केवल खद्दर हमारे लिए स्वराज्य लायेगा । मै अपने देशवासियों से पूछता हूँ कि केवल खद्दर से स्वराज्य की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव है?" स्वराज्यवादी खद्दर के प्रयोग पर अतिरिक्त बल नहीं देते थे, किन्तु उसके प्रचार करने का कोई अवसर भी नहीं छोड़ रहे थे । स्वराज्यवादियों ने अपने सभी सदस्यों को खादी पहनकर केन्द्रीय विधान सभ्य तथा प्रान्तीय विधान मण्डलों में जाने का आदेश दिया । स्वराज्यवादी खद्दर के प्रयोग को आगे बढ़ाने के लिए सदैव तैयार रहते थे लेकिन वे उस पर अतिरिक्त बल नहीं देते थे।

अस्पृश्यता भारतीय समाज पर कलंक थी । कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में गाँधीजी ने अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया । स्वराज्यवादी भी इस प्रश्न पर गाँधीजी के प्रबल समर्थक थे। 1924 में बेलगाम कांग्रेस में अस्पृश्यता से संबंधित पारित हुए प्रस्ताव से पूरी तरह सहमत हुए । उनका दृढ़ मत था कि इस अभिशाप से भारतीय समाज को पूरी तरह छुटकारा दिलाना अत्यावश्यक है । इसी दौरान अस्पृश्यता को समाप्त करने के प्रयास भी किए गए । दक्षिण भारत में वाइकोम नामक स्थान में सुधारकों ने मन्दिर की ओर जाने वाले मार्ग को अछूतों द्वारा इस्तेमाल किए जाने के उनके अधिकार के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया, जिसे गाँधीजी एवं स्वराज्यवादी दोनों का पूर्ण समर्थन मिला । स्वराज्यवादियों ने वाइकोम के सत्याग्रह के समर्थन में एक प्रस्ताव पारित किया । सरकार को यह मानने पर मजबूर किया कि हिन्दू रूढ़िवादिता को सरकारी सहयोग देना अनुचित है । तारकेश्वर की घटना में महन्त की निरंकुशता के विरुद्ध स्वराज्यवादियो ने अत्यधिक रूचि ली । चितरंजनदास ने इस मुद्दे पर सरकार की भूमिका की भर्त्सना करते हुए महन्त की गिरफ्तारी की माँग की तथा मन्दिर को एक कमेटी को सौप देने के लिए महन्त पर दबाव डाला गया । स्वराज्यवादियों को अन्ततः अपनी शर्तों पर महन्त के साथ एक समझौता करने में सफलता प्राप्त हुई । इस पूरी घटना में, स्वराज्यवादियों की कटिबद्धता उभर कर सामने आयी । उन्होंने निचले वर्गों के लिए मन्दिरों के प्रवेश पर अपना समर्थन जारी रखा। अन्तर्जातीय भेदभाव समाप्त करने की दृष्टि से उन्होंने एक अन्तर्जातीय भोज का भी आयोजन किया। स्वराज्यवादी

विधानसभा तथा प्रान्तीय परिषदों में निचले वर्गों के अधिकारों के समर्थन में आवाज उठाने का कोई अवसर नहीं खोते थे । उनके द्वारा की गई अस्पृश्यता विरोधी गतिविधियों ने सामाजिक जागरूकता पैदा की ।

शराब एवं अन्य नशीले पदार्थों के सेवन की बुराइयों की और कांग्रेस का ध्यान गया तथा इस बुराई को समाप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया । स्वराज्यवादियों ने भी अपने कार्यक्रम में नशाबन्दी लागू करना सम्मिलित किया। वे इसे समाप्त करने के पक्षधर बने रहे ।

इस प्रकार 1922 से लेकर 1929 तक कांग्रेस ने, स्वराज्यवादी अभिन्न अंग थे, रचनात्मक कार्यक्रमों को अत्यधिक महत्व दिया । लेकिन रचनात्मक कार्यों को समर्थन देते रहे किन्तु रचनात्मक कार्यों में गाँधीजी की आस्था आदर्शवादिता से वे सहमत नहीं थे ।

स्वराज्यदल की नीति में परिवर्तन

प्रारम्भ में स्वराज्यदल ने सरकार के साथ असहयोग की रीति अपनायी थी और उसके कार्यों में बाधा उपस्थित की थी, लेकिन उसे इस नीति में विशेष सफलता नहीं मिली, जिससे उसकी नीति में स्वत: परिवर्तन आने लगा । स्वराज्यवादियों की नीति 1919 के संविधान के खोखलेपन का पर्दाफाश करने के उद्देश्य में सफल रही, किन्तु वे उसे सुधारने अथवा समाप्त करने में विफल रहे । स्वराज्यवादियों के एक बड़े हिस्से ने यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि सरकार की सभी नीतियों का ध्वंसात्मक विरोध सामाजिक रूप से लाभदायक सभी नीतियों को समाप्त कर देगा । उन्होंने असहयोग के स्थान पर "उत्तरदायित्वपूर्ण सहयोग" (Responsive Co–operation) की नीति अपनाना शरण कर दिया । चितरंजनदास भी अपने जीवनकाल में अनुभव करने लगे थे कि असहयोग की रीति लाभप्रद नहीं है, परिणामस्वरूप वे भी सहयोग में रूचि दिखाने लगे थे । 1924 ई. में फरीदपुर सम्मेलन में उन्होंने सरकार के साथ समझौता करने के कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत किए –

(i) सरकार जनता के प्रतिनिधियों को कुछ उत्तरदायित्व सौंपे,

(ii) सरकार निकट भविष्य में स्वाभावित; रूप से स्वराज्य की करे,

(iii) शासक वर्ग हृदय परिवर्तन और शान्तिपूर्ण समझौते का वातावरण उत्पन्न करने का व्यावहारिक प्रदर्शन करें,

(iv) सरकार सभी राजनीतिक बन्दियों को क्षमा करे ।

फरीदपुर घोषणा ने सरकार के साथ सहयोग की ओर जाने वाली बहाव प्रक्रिया को और तेज कर दिया। 1925 ई. में देशबंन्धु चितरंजनदास की मृत्यु के बाद स्वराज्यदल की शक्ति में धीरे–धीरे पतन होने लगा और स्वराज्यवादियों ने खुलकर सहयोग की नीति का समर्थन करना शुरू कर दिया। 7 जुलाई, 1925 ई. में लॉर्ड बर्केनहेड ने अपने भाषण में "स्वराज्य पार्टी को भारत की सबसे संगठित राजनीतिक पार्टी बताया। यह वाक्य स्वराज्यवादियों को काफी प्रभावित कर गया और अब वे अड़ंगा लगाने की नीति के स्थान पर व्यवस्थापन मण्डलों में भाग लेने, उनका उपयोग करने और सरकार के साथ सहयोग तक करने की नीति अपनाने लगे । लेकिन कुछ स्वराज्यवादी अभी भी अड़ंगा की नीति में विश्वास रखते थे। 1926 ई. के बाद के स्वराज्यदल में फूट पैदा हो गई और वह दो दलों में विभाजित हो गया, जिसमें एक दल सरकर के साथ सहयोग की नीति का प्रतिपादक था और दूसरा असहयोग करने की नीति का सरकार ने इस अवसर का लाभ उठाया और सहयोगवादियों को विभिन्न समितियों में स्थान देकर प्रसन्न करना शुरू कर

दिया। स्वराज्यवादी नेताओं ने पदों पर आसीन होना स्वीकार किया और विभिन्न समितियों में भी रहे । 1924 ई. में कुछ प्रमुख स्वराज्यवादियों को "इस्पात सुरक्षा समिति" में स्थान दिया गया। 1925 ई में मोतीलाल नेहरू ने 'स्कीन समिति' की सदस्यता स्वीकार की विट्ठलभाई पटेल केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष चुने गए और एस.बी. टाम्बे, जो मध्यप्रदेश लेजिस्लेटिव कौन्सिल के अध्यक्ष थे, गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य नियुक्त हुए। रामास्वामी अयंगर ने पब्लिक एकाउन्ट्स कमेटी का नेतृत्व सम्भाला। सर बसिल ब्लैकेट ने विधानसभा में मोतीलाल नेहरू और पब्लिक एकाउन्ट्स कमेटी में अयंगर की सेवाओं की प्रशंसा की। सरकार स्वराज्यवादियों के साथ इस प्रकार की नीति अपनाकर उनसे सहयोग लेने में सफल रही । इस प्रकार स्वराज्यदल की नीति में पूर्णतया परिवर्तन हो गया और असहयोग का स्थान उत्तरदायी सहयोग ने ले लिया। फलत: स्वराज्य दल कमजोर हो गया और उसका प्रभाव तथा आकर्षण भी समाप्त हो गया।

6.6 स्वराज्यदल के पतन के कारण

यद्यपि स्वराज्यवादी कौन्सिलों में जाने के अपने कार्यक्रम की पृष्ठभूमि में 1923 में काफी सम्भावनापूर्ण लगे थे और ऐसा लगा कि वे भारतीय राजनीति की दिशा को बदल देंगे, लेकिन वे बहुत जल्दी ही पतन की ओर बढ़ते नजर आए और 1926 में उनका पतन हो गया तथा निश्चित रूप से 1929 तक उनका सम्पूर्ण प्रभाव समाप्त हो चुका था । इस पतन के क्या कारण थे? क्या यह पतन राजनीतिक परिस्थितियों में निहित था अथवा ऐसा इनकी अपनी गलतियों के कारण हुआ ? अथवा ऐसा कौन्सिलों में प्रवेश के कार्यक्रम की सीमाओं के कारण हुआ? इसके पूर्व आपने स्वराज्यवादियों की गतिविधियों एवं नीति में परिवर्तन के विषय में पढ़ा, आइए अब इसके पतन के कुछ कारणों की चर्चा करें ।

6.6.1 देशबन्धु चितरंजनदास की मृत्यु

स्वराज्यदल के जन्मदाता और इसके प्रमुख स्तम्भ चितरंजनदास की 15 जून, 1925 ई. को अचानक मृत्यु हो गयी, जिससे स्वराज्यदल की लोकप्रियता को बहुत धक्का लगा। चितरंजनदास एक अत्यन्त कर्मठ व्यक्ति होने के साथ–साथ कुशल नेता भी थे, जो स्वराज्यदल को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने में सफल हुए थे । उनकी असामायक मृत्यु से स्वराज्यदल को गहरी चोट पहुंची और वह शीघ्र ही पतन की ओर अग्रसर होने लगा। अब दल के नेतृत्व का भार पं. मोतीलाल नेहरू पर आ गया । यद्यपि पं. मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्यदल को सम्भालने की यथाशक्ति चेष्टा की, किन्तु वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सके । इसके कारण यह था कि वे एक कड़े रुख के व्यक्ति थे और उन्हें शीघ्र ही क्रोध आ जाता था ।

6.6.2 पदों की लालसा

स्वराज्यवादियों के पतन का अन्य कारण पदों की लालसा था। नौकरशाही के कठोर विरोध के घोषित उद्देश्य के आधार पर कौन्सिलों में प्रवेश के साथ उनकी गतिविधियों की एक नवीन जोश के साथ शुरूआत हुई, लेकिन शीघ्र ही इस विरोध का स्थान सहयोग ने ले लिया । इसका कारण स्वराज्यदल के कुछ सदस्यों का सरकारी पद, सम्मान एवं प्रतिष्ठा के प्रति मोह था। 1 जून, 1925 को भारत सरकार ने भारतीय सेना के भारतीयकरण के सम्बन्ध में एक

समिति, जिसे "स्कीन समिति" कहते थे, नियुक्ति की और पं. मोतीलाल नेहरू ने उसकी सदस्यता स्वीकार कर ली। एस.बी. ताम्बे, जो मध्यप्रान्त में कौन्सिल में स्वराज्यदल के प्रमुख सदस्य थे, ने गवर्नर की प्रान्तीय कार्यकारिणी परिषद् में सदस्यता को स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार 1925 ई. में वी.जे. पटेल केन्द्रीय कौन्सिल के अध्यक्ष बन गये, इस प्रकार निराधार अवरोध की नीति का प्रभाव धूमिल हो गया, जिससे स्वराज्यदल में एकता न रह सकी और पार्टी पतन की तरफ बढ़ने लगी। पार्टी के अन्दर मतभेद पैदा होने लगे तथा खुले विद्रोहों ने इसे और भी बुरी स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया। पं. मोतीलाल नेहरू ने इन विरोधी कार्यवाही कर रहे नेताओं के प्रति अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी चाही, किन्तु दल और भी अधिक विघटित होने लगा तथा दल में फूट पड़ गयी ।

6.6.3 साम्प्रदायिकता का उत्थान

देश में बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता घटनाचक्र का केन्द्र बिन्दु बन गई। चूँकि स्वराज्यवादियों ने कांग्रेस पर आधिपत्य जमा रखा था इसलिए कांग्रेस की एक धर्मनिरपेक्ष संगठन के रूप में बनी छवि धूमिल हो गई । कांग्रेस से मुसलमानों के अलगाव ने निश्चित रूप से कांग्रेस को कमजोर बनाया । भूतपूर्व मुसलमान स्वराज्यवादी मुसलमान के उम्मीदवार के रूप में भी चुनाव लड़े । धर्म से भावनात्मक जुड़ाव धर्मनिरपेक्षता की कीमत पर मजबूत हुआ। अधिकांश स्वराज्यवादी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादिता के प्रति उतने चिन्तित नहीं थे जितने कि छोटे–छोटे लाभों के प्रति । इसके परिणामस्वरूप उन्होंने जन सेवाओं एवं विधान परिषदीय चुनावों में मुसलमानों के साथ सीटों के लिए गठजोड़ बनाए। जन आन्दोलन का समाजवादी आधार ही भारत में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद का पुनर्निर्माण कर सकता था ।

6.6.4 गवर्नर जनरल की असीमित शक्तियाँ

स्वराज्यदल के अनेक नेताओं को यह अनुभव होने लगा कि कौन्सिल में रहकर शासन का निरन्तर विरोध करना असम्भव है । पं. मदनमोहन मालवीय जैसे वरिष्ठ नेता भी ऐसा ही सोचते थे क्योंकि समस्त विरोधों के पश्चात् भी गवर्नर जनरल की असीमित शक्तियों के कारण वे कोई ठोस उपलब्धि प्राप्त नहीं कर सके थे। गवर्नर 'जनरल अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर सरकार समर्थक नीतियाँ कार्यान्वित करने में सफल हो जाता था और स्वराज्यवादी कुछ भी नहीं कर पाते थे । अतः यह स्पष्ट होने लगा कि कौन्सिलों में विरोध करने मात्र से कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है । गाँधीजी की विचारधारा सही प्रमाणित हुई । अतः स्वराज्यदल धीरे–धीरे कमजोर होता चला गया और 1926 ई. के चुनावों में मद्रास के अतिरिक्त सभी स्थानों पर उनकी पराजय हुई। ए.आर. देसाई के शब्दों में, "स्वराज्य दल ने जनसाधारण का समर्थन इसलिए खो दिया कि यद्यपि चितरंजनदास ने नए कार्यक्रमों में मजदूरों और किसानों के संगठन की आवश्यकता पर जोर दिया था, किन्तु वास्तव में इस दल द्वारा इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं किया गया । स्वराज्यदल प्रारम्भ से ही पूंजीपति वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करता था।"

6.6.5 अन्य दलों का गठन

स्वराज्यदल के अनेक सदस्यों ने उदारवादी सदस्यों से गठबन्धन कर "नेशनल पार्टी" का गठन किया। एम. आर. जयकर तथा एन सी केलकर ने एक असंवेदनशील दल. का गठन किया,

जिसका उद्देश्य सहानुभूतिपूर्ण सहयोग देना था। लाजपतराय तथा पं. मदनमोहन मालवीय ने एक स्वतन्त्र दल का गठन कर लिया । इस दल ने हिन्दुत्व का नारा लगाया, जिसके झण्डे के नीचे उत्तर भारत के हिन्दू संगठित होने लगे, फलत स्वराज्य दल के अनुयायियों की संख्या तेजी से घटने लगी और 1 प 1926 ई में स्वराज्य दल की समाप्ति हो गयी ।

6.7 स्वराज्यदल के कार्यो का मूल्याँकन

अनेक विद्वानों ने स्वराज्य दल की नीतियों की कटु आलोचना की है । इन विद्वानों ने स्वराज्य दल की विरोध नीति को दोषपूर्ण, अव्यावहारिक तथा निरर्थक बताया है जिसमें अन्तर्विरोध निहित थे । सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने इस नीति को निरर्थक बताते हुए कहा है कि, "हम चाहे जितना भी स्वराज्य दल के संगठन की श्लाघा करें, हमें उसकी रणनीति की भर्त्सना करनी ही होगी..... स्वराज्य दल के प्रभुत्व के कारण बंगाल के सार्वजनिक जीवन में नैतिक पतन हुआ है.... उनका रचनात्मक राज–कौशल का प्रशासन में परीक्षण किया गया है परन्तु वे असफल ही रहे है । उनके साधन पूर्णतया अनैतिक और स्वार्थी है..... । एक ऐसा दल जो धर्मपरायणता को अपनी नीति का निदेशक तत्व नही बनाता, बहुत समय तक शक्ति में बना नहीं रह सकता।" रफीक जकारिया ने इसकी आलोचना करते हुए कहा, "स्वराज्य दल के लोग तो ऐसे लोग थे जो अपनी रोटी रखना भी चाहते थे और उसे खाना भी चाहते थे। वे अपनी लोकप्रियता बनाए रखने की भावना से अतिवाद की बात करते थे तथा दूसरी ओर संसदवादी भी बनना चाहते थे। इसके फलस्वरूप स्वराज्यदल के लोग वाक् चातुर्य में लग जाते थे कि कहां पर असहयोग है । विरोध करने के लिए विरोध करना, यह कोई नीति नहीं है और न ही यह व्यावहारिक है । इसी कारण स्वराज्यवादी नेता स्वयं ही अपने इस सिद्धान्त का अधिक समय तक पालन नहीं कर सके । यह जानते हुए कि गवर्नर–जनरल के पास शक्तियों का अपार भण्डार है, कौन्सिल में विरोध करने से किसी प्रस्ताव को पारित होने से रोका नहीं जा सकता था । चितरजनदास की मृत्यु के पश्चात् स्वराज्यवादी अपनी लोकप्रियता को बनाए नहीं रख सके । स्वराज्यवादी दल का अप्रत्यक्ष दुष्परिणाम कांग्रेस पर भी पड़ा। स्वराज्यवादियों के कार्यक्रमों के कारण कांग्रेस की लोकप्रियता एवं शक्ति और कम हो गयी। प्रो. रामगोपाल के शब्दों में, "स्वराज्य दल की कौन्सिलों में प्रवेश की नीति के कारण जनता का ध्यान स्वतन्त्रता संग्राम से हट गया । उस समय देश में जैसा राजनीतिक वातावरण था, उसमें यदि स्वाधीनता संग्राम में कुछ समय के लिए विराम आ जाता तो भी उतना नुकसान नही पहुंचता, जितना जनता का ध्यान कौन्सिलों की ओर मोड़ देने से हुआ।"

उपर्युक्त दोषों के पश्चात भी स्वराज्यदल की कुछ प्रमुख उपलब्धियों को नकारा नहीं जा सकता। स्वराज्य दल यद्यपि स्वराज्य–प्राप्ति व सरकार के कार्यो में अवरोधक उत्पन्न करने में पूर्णरूप से सफल नहीं रहा, फिर भी राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही और पाश्चात्य विचारकों ने भी इसे एक महत्वपूर्ण दल के रूप में स्वीकार किया । स्वराज्य दल की भूमिका नकारात्मक और अवरोधक की थी, परंतु अंग्रेज़ यही भाषा समझते थे और इस नीति से बड़ा लाभ हुआ। स्वशासन की उनकी माँग को स्वीकार तो नही किया गया, पर इस पर महत्वपूर्ण चर्चा अवश्य हुई और श्रमिक दल के प्रधानमंत्री रेमजे मैकडॉनल्ड ने यह घोषणा की, भारत को 'औपनिवेशिक दर्जा' (Dominion State) देना श्रमिक सरकार का उद्देश्य तथा इच्छा

है। इसके उपरान्त जब भी भारत के लिए संवैधानिक सुधार की बात होती थी तो प्रश्न का आधार औपनिवेशिक स्वशासन ही होता था । जैसा कि डी. आर. सी. मजूमदार ने ठीक ही कहा है, पहली बार विधान सभाओं ने वास्तविक राष्ट्रीय सभाओं का रूप धारण किया, जहां राष्ट्रीय शिकायतें खुलकर व्यक्त की गई और नि:संकोच रूप से राष्ट्रीय उद्देश्य तथा आकांक्षाएँ प्रकट की गई और झूठे विधानमण्डलों द्वारा अंग्रेजी शासन के वास्तविक चरित्र को निर्दयतापूर्वक उछाला गया। अब अंग्रेजी तानाशाही और भारतीय नौकरशाही अपने स्वेच्छाचार और दमन के नग्न रूप में समस्त संसार के सामने खड़े कर दिए गए थे ।..... स्वराज्यदल के उद्देश्य तथा आकांक्षाएं बहुत सीमा तक पूर्ण हो गई थी। गाँधीजी द्वारा 1922 ई. में अचानक असहयोग आन्दोलन को स्थगित करने से उत्पन्न राजनीतिक रिक्तता एवं जन–असन्तोष को समाप्त कर स्वराज्य मूल ने अपने आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत करके स्वाधीनता–संग्राम को एक नवीन दिशा प्रदान की तथा निरुत्साहित हो गई भारतीय जनता में राष्ट्रीयता के उत्साह का संचार किया। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यों से ऊब चुकी जनता में अपने कार्यक्रमों के द्वारा स्वराज्यवादियों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति उत्साह को बनाए रखने के लिए विवश किया तथा कौन्सिलों में सरकारी नीतियों का विरोध करके जनता को सत्य से अवगत कराया। स्वराज्यवादियों ने यह प्रमाणित कर दिखाया कि सरकार द्वारा पारित 1919 ई. का अधिनियम दोषपूर्ण था । विश्व के समझ यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार का यह कहना कि भारत में शासन जनता की इच्छानुसार चलाया जा रहा है, असत्य था। स्वराज्यदल के लोगों ने ब्रिटिश तानाशाही की भारतीय लोगों के प्रति निष्ठुर नीति को उजागर किया। उनके भाषणों का संसार में प्रसार हुआ और अंग्रेजों के इस कथन का खोखलापन सभी को व्यक्त कर दिया कि वे भारत का हित चाहते है । इससे संसार का ध्यान भारत की स्वराज्य की माँग की ओर आकर्षित हुआ। जब गाँधीजी कार्यशील राजनीति से पीछे हट गए तो स्वराज्यवादियों ने कार्यशील राजनीति में अपने ढंग से देश की सेवा की। आगे चलकर गाँधीजी ने भी इस बात को स्वीकार किया कि स्वराज्य दल का कौन्सिलों में आने का कार्यक्रम ठीक था और उन्होंने घोषणा की कि, 'कांग्रेस में संसदीय मनोवृत्ति जम गई है और उन्हें स्वयं ही कौन्सिलों में जाने के कार्यक्रम को समर्थन देना चाहिए था।' यद्यपि उनके कुछ कट्टरपंथी अनुयायी इस विचार से सहमत नहीं थे । स्वराज्यवादियों के दबाव के फलस्वरूप समय से पूर्व ही सरकार को साइमन कमीशन की नियुक्ति व गोलमेज सम्मेलन की व्यवस्था तथा कुछ समय पश्चात् द्वैध–शासन को समाप्त कर पूर्ण स्वराज्य देने के लिए विवश होना पड़ा। इसके साथ ही सरकार को राष्ट्रवादी नेताओं की संसदीय योग्यता, संगठन–क्षमता तथा संसद में विरोध कुशलता को मानने के लिए भी बाध्य होना पड़ा। नवम्बर, 1927 ई. में सरकार ने साइमन कमीशन नियुक्त किए जाने की घोषणा की। इस घोषणा ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नवीन दिशा प्रदान की।

6.8 सारांश

स्वराज्यपार्टी का गठन कांग्रेस के उन–उच्च मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों किया गया था, जो महात्मा गाँधी की सीधी जन–कार्यवाही में विश्वास नहीं रखते थे । आन्दोलन के पतन के साथ ही स्वराज्यवादी परिवर्तन विरोधियों, जो बहिष्कार तथा रचनात्मक कार्यो के समर्थक थे, के जबरदस्त विरोध के बावजूद कौन्सिलों में प्रवेश का नारा देने लगे। 1923 ई. के चुनावों में स्वराज्यवादियों की सफलता ने उन्हें एक राजनीतिक दल के रूप में काफी सुदृढ बना दिया और इसे देखते हुए

स्वयं गाँधीजी को अपनी इच्छाओं के विरुद्ध उन्हें कांग्रेस के संसदीय दल के रूप में मान्यता देनी पड़ी । इसके बदले में स्वराज्यवादियों ने रचनात्मक कार्यो, जैसे – खादी का प्रचार, अस्पृश्यता समाप्त करने, मद्यपान निषेध तथा हिन्दू–मुस्लिम एकता आदि में विश्वास दिखाने तथा उन्हें क्रियान्वित करने के प्रयास करने की इच्छा व्यक्त की, किन्तु रचनात्मक कार्यों में उनकी न तो वैसी श्रद्धा थी और न वैसा आदर्श, जो परिवर्तन विरोधियों का था।

स्वराज्यवादी थोड़े समय के लिए बंगाल तथा केन्द्रीय प्रान्त कौन्सिल एवं विधान मण्डल में रुकावट डालने में सफल रहे, जिसके कारण सरकार को अपने विशेषाधिकार पर निर्भर होना पड़ा। बंगाल तथा केन्द्रीय प्रान्त में उन्होंने द्विपक्षीय शासन को पतन की स्थिति में ला दिया। कौन्सिलों में उन्होंने इस उद्देश्यों से प्रवेश किया था कि या तो स्वराज्य के हित में उन्हें परिवर्तित करेंगे अथवा उन्हें समाप्त कर देंगे। न तो वे ऐसा कर सके और न ही औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत इसकी सम्भावना थी। वे ब्रिटिश उपनिवेशवादियों को उनकी साम्राज्यवादी नीति के क्रियान्वयन से भी नहीं रोक सके । यद्यपि स्वराज्यवादियों के भाषण तथा कार्यनीति के कारण साम्राज्यवादी नीतियों का खोखलापन एवं जनतन्त्र की झूठी ब्रिटिश नीति का कुछ सीमा तक पर्दाफाश हो सका ।

शीघ्र ही स्वराज्य दल में अधिकारियों के साथ समझौते की प्रवृत्तियों के कारण फूट पड़ने लगी । चितरंजनदास के फरीदपुर भाषण के साथ ही सहयोग की ओर झुकाव प्रारम्भ हो गया । शीघ्र ही दल अनुक्रियाशील स्वराज्यवादियों तथा असहयोगियों के दो गुटों में बँट गया, जिसमें अनुक्रियाशील सहयोगियों ने पद भी स्वीकार किए । स्वराज्य दल के अन्दर हतोत्साहन एवं पतन का दौर प्रारम्भ हो गया । 1926 ई. के विधान परिषदीय चुनावों में दल ने कई सीटें खो दी और उसकी स्थिति काफी कमजोर हो गयी ।

इस दल के पतन के कई कारण थे । दल का कार्यक्रम विरोधाभासों से ग्रस्त था और इसके पीछे कोई स्वस्थ वैचारिक आधार भी नहीं था। स्वराज्यवादी जमीदार, किसान, पूंजीपति और मजदूर एकता की दुहाई दे रहे थे जिनके हित आपस में टकरा रहे थे । हिन्दू–मुस्लिम तनाव ने दोनों ही समुदायों को दल से दूर ला खड़ा किया । पदों की लालसा ने पतन की प्रक्रिया को और भी तेज कर दिया। दलगत राजनीति, कौन्सिलों में कार्य तथा रचनात्मक कार्यो के प्रति अनमने सहयोग ने इसके पूर्वाग्रहों के कारण स्वराज्य दल तथा जनमानस के बीच एक लम्बी खाई खड़ी हो गयी ।

साइमन कमीशन की घोषणा और उसके बाद हुए राजनीतिक उतार–चढ़ाव के परिणामस्वरूप इस दल का कांग्रेस में विलय हो गया । कांग्रेस असहयोग तथा सविनय अवज्ञा की नीति के पालन के प्रति कटिबद्ध थी इसलिए स्वराज्य दल के साथ जुड़े सारे कार्यक्रम रद्द कर दिए गए । यद्यपि स्वराज्य दल ने 1922–26 के समय शुष्क राजनीतिक वातावरण में गर्मी पैदा कर दी और इस समय की राजनीतिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

(i) उन परिस्थितियो की विवेचना कीजिए जिनके परिणामस्वरूप 1923 ई. में स्वराज्यदल की स्थापना हुई ।

(ii) स्वराज्यदल के उद्देश्यों एवं कार्यक्रम का विवेचन कीजिए ।

(iii) कौन्सिलों में स्वराज्यदल की गतिविधियों की समीक्षा कीजिए ।

(iv) स्वराज्यदल की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

(v) स्वराज्यवादियों के पतन के कारणों का विश्लेषण कीजिए ।

6.10 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

(i) ताराचन्द	:	भारतीय स्वतन्त्रता का इतिहास, भाग– 3
(ii) विपिनचन्द, अमलेश त्रिपाठी एवं	:	भारतीय स्वतन्त्रता–संग्राम वरुण डे
(iii) ए. आर. देसाई	:	भारतीय. राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि
(iv) विपिनचन्द	:	स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष
(v) आर. सी. मजूमदार	:	स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, भाग II

इकाई – 7

साम्प्रदायिकता का विकास (1920–30)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 असहयोग आन्दोलन के दौरान हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्ध

7.2.1 मोपला विद्रोह

7.2.2 खिलाफत आन्दोलन में नया मोड़

7.2.3 असहयोग आन्दोलन के स्थगन का प्रभाव

7.2.4 खिलाफत पार्टी का विघटन

7.3 साम्प्रदायिक वैमनस्य का विस्तार

7.3.1 साम्प्रदायिक दंगे

7.3.2 शुद्धि और संगठन, तबलीग और तन्जीम

7.3.3 साम्प्रदायिक संगठनों का पुन: उद्भव

7.4 एकता के प्रयत्न

7.4.1 गाँधीजी का उपवास

7.4.2 एकता सम्मेलन

7.5 मुस्लिम और संवैधानिक राजनीति

7.5.1 प्रान्तीय राजनीति में साम्प्रदायिकता

7.5.2 दिल्ली प्रस्ताव

7.5.3 मुस्लिम लीग में आन्तरिक विरोध

7.5.4 मुस्लिम और नेहरू रिपोर्ट

7.5.5 शफी और जिन्नाह लीग का विलय

7.5.6 जिन्नाह के चौदह सूत्र

7.6 उपसंहार

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची ।

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य 1920–30 के मध्य साम्प्रदायिकता के विकास उसके लिये जिम्मेदार घटकों का निरूपण करना है । इसे पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे: –

- खिलाफत और कांग्रेस नेतृत्व के गठजोड़ के बिखराव का भारतीय खासतौर से मुस्लिम राजनीति के विकास पर क्या प्रभाव पड़ा?
- 1922 –26 के मध्य साम्प्रदायिकता ने क्योंकर साम्प्रदायिक दंगों और संगठनों का रूप लिया?
- सरकार द्वारा किये गये संवैधानिक सुधार किस प्रकार साम्प्रदायिक राजनीति के विकास में सहायक सिद्ध हुए?

7.1 प्रस्तावना

आप सभी इस बात से परिचित होंगे कि 1916 का लखनऊ समझौता कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य राजनीतिक एकता का आधार बना । खिलाफत और असहयोग आन्दोलन में यह एकता चरमोत्कर्ष पर पहुंच गयी । उलेमा वर्ग के राजनीति में आने के कारण मुस्लिम जनमानस साम्राज्यवाद–विरोधी–चेतना से प्रभावित हुआ । लेकिन इसका एक दूसरा पक्ष भी था। एक तो इससे राजनीतिक प्रश्नों को धार्मिक दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई और दूसरे मुस्लिमों को एक सम्प्रदाय के रूप में संगठित होने का अवसर मिला जिससे परवर्ती वर्षो में साम्प्रदायिकता के विकास के लिए आधार तैयार हुआ।

आगे आप पढ़ेंगे किस प्रकार फरवरी 1922 में असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद साम्प्रदायिक शक्तियों ने अपना सर उठाया और देश के कई भागों में 1923–24 के मध्य दंगे भड़क उठे । हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग जैसे साम्प्रदायिक संगठन 'जो असहयोग आन्दोलन के दौर में लगभग मृत और निक्रिय हो गये थे, पुन: पनपने लगे। हिन्दू साम्प्रदायवादियों की ओर से शुद्धि और संगठन तथा मुस्लिम साम्प्रदायवादियों के द्वारा तबलीग और तन्जीम आन्दोलन चलाये गये ।

ऐसे विषाक्त वातावरण का प्रभाव प्रान्तीय राजनीति पर भी पड़ा। स्वराज्यवादियों में फूट पड़ गयी। प्रान्तों में, विशेष रूप से बंगाल व पंजाब में प्रभावशाली हिन्दू – मुस्लिम वर्गों में संघर्ष हुआ।

राष्ट्रवादी नेतृत्व के द्वारा साम्प्रदायिक शक्तियों का विरोध करने व उनके बीच समझौता करवाने के जी–तोड़ प्रयत्न किये गये । 1927 में साइमन कमीशन के गठन के बाद इस ओर के प्रयासों में तेजी आई। आपसी मतभेद भुलाकर कांग्रेस तथा जिन्नाह के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया। मुस्लिम नेताओं ने दिल्ली प्रस्ताव द्वारा अपनी माँगें निर्धारित की। नेहरू रिपोर्ट के द्वारा भी सापदायिक समस्या के राजनैतिक समाधान का प्रयत्न किया गया। पर मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा के अड़ियल व समझौता विरोधी रूख के कारण कोई समाधान नहीं निकाला जा सका । 1930 के आते–आते भारतीय राजनीति के साम्प्रदायीकरण और धुवीकरण की प्रक्रिया नीव हो चुकी थी । परिणामस्वरूप 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में मुस्लिम भागीदारी उस सीमा तक नहीं हो पायी, जैसी असहयोग आन्दोलन के काल में हुई थी।

7.2 असहयोग आन्दोलन के दौरान हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्ध

1919 में कांग्रेस तथा खिलाफत नेतृत्व का गठजोड़ भारतीय राजनीति का एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू था । इससे न केवल खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन के विस्तार में सहायता मिली, बल्कि साम्प्रदायिक सौहार्द का वातावरण भी तैयार हुआ । 1919–22 तक आन्दोलनात्मक

संघर्ष और राष्ट्रीय एकता के इस दौर में साम्प्रदायिकता पूर्णतया पृष्ठभूमि में चली गई । किन्तु इस बीच भी कुछ ऐसे मुद्दे उठे, जिनके कारण हिन्दू– मुस्लिम गठजोड़ के मध्य तनाव की स्थितियाँ बनी । अब हम ऐसे ही कुछ घटकों का विवेचन करेंगे ।

7.2.1 मोपला विद्रोह

मोपला मद्रास प्रेसीडेन्सी के मालाबार क्षेत्र में रहने वाला कृषक मुस्लिम सम्प्रदाय था । इन्हें अपने हिन्दु जमींदारों के अत्याचारों का शिकार होना पड़ता था । स्वराज्य और खिलाफत के नारी ने मालाबार के इन मोपलों में अगस्त 1921 में व्यापक शक्तिशाली विद्रोह को जन्म दिया । मोपलों द्वारा संचार व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया गया, अनेक जमींदारों की संपत्ति लूट ली गई और उन्हें मार डाला गया । वहां पर "खिलाफत राज्य" की स्थापना की घोषणा कर दी गयी । अन्त में सरकार द्वारा इस विद्रोह को दमन कर दिया गया ।

मोपला विद्रोह समूचे देश में एक विवाद का विषय बना । मूलतः यह सामंतवाद – विरोधी विद्रोह था किन्तु"हिन्दू" जमींदारों द्वारा "मुस्लिम" किसानों के शोषण और उस क्षेत्र में मुस्लिम धार्मिक उन्माद के सामाजिक संदर्भ में इस विद्रोह का साम्प्रदायिक स्वरूप विकसित हुए बिना नहीं रह सका । साथ ही इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता कि मोपलों के मध्य ऐसे तत्व विद्यमान थे जिन्होंने इस अवसर का प्रयोग हिन्दू मन्दिरों को नष्ट अथवा अपवित्र करने तथा हिन्दुओं का बलात धर्म परिवर्तन करने के लिये किया। इन घटनाओं की सूचना से हिन्दू और मुस्लिम नेताओं के बीच गम्भीर तनाव उत्पन्न होने लगा । मून्जे जैसे हिन्दू नेताओं का कहना था कि विद्रोह के पीछे स्पष्ट रूप से हिन्दू–विरोधी भावना निहित थी । दूसरी ओर सैयद महमूद, मौलाना अबुल बारी जैसे मुस्लिम नेताओं का मत था कि हिन्दू जमींदारों द्वारा किये गये अत्याचार ही विद्रोह के मूल में निहित थे और किसी भी हिन्दू को जबरदस्ती मुसलमान बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है । किन्तु इन स्पष्टीकरणों से मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, मून्जे, स्वामी बृद्धानन्द आदि नेता सन्तुष्ट न हो सके । उन्होंने हिन्दू धर्मावलम्बियों पर होने वाले अत्याचारों की निन्दा की तथा भविष्य में ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकने के लिये हिन्दुओं को संगठित होने का आह्वान किया । शुद्धि तथा संगठन (जिनके विषय में आप आगे पढ़ेंगे) के आधार वस्तुतः इन्हीं विवादों में निहित थे । इस प्रकार, मोपला विद्रोह भविष्य के लिये साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि तैयार करने में सहायक सिद्ध हुआ ।

7.2.2 खिलाफत आन्दोलन में नया मोड़

1921 में खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन में तीव्रता आयी । आन्दोलन के पक्ष में सब स्थानों पर मुस्लिमों में अपार उत्साह देखने को मिला । यह काल हिन्दू–मुस्लिम मैत्री का चरम काल था। किन्तु शीघ्र ही आन्दोलन के भावी संचालन को लेकर नेतृत्व में मतभेद उभरने लगे । खिलाफत नेतृत्व के उग्रवादी नेताओं जैसे मौलाना हसरत मोहानी, शौकत अली, जफर अली, आजाद सोभानी, का मानना था कि आन्दोलन को सफल बनाने के लिये ब्रिटिश राज के खिलाफ बल प्रयोग किया जाना चाहिये । वास्तव में देखा जाये तो उलेमा वर्ग ने "अहिसा" को केवल कार्यनीति के तौर पर अपनाया था, किसी धर्ममत सिद्धान्त की तरह नहीं । उलेमा वर्ग के नेता मौलाना अब्दुल बारी ने जून 1921 में यह स्पष्ट कहा कि मुस्लिम सम्प्रदाय अहिंसक

असहयोग को केवल अपना असंतोष दूर करने के लिये उपयोगी अस्त्र समझता है, और वे अंहिसा को सिद्धान्त के रूप में सदा मानने के लिये प्रतिबद्ध नहीं है । स्पष्ट है कि उलेमा वर्ग गाँधी जी की नरम और अहिंसक नीति से धीरज खोना जा रहा था। और खिलाफत के प्रश्न के समाधान के लिए हिंसक उपायों को अपनाने को अनुचित नही समझता! था ।

7.2.3 असहयोग आन्दोलन के स्थगन का प्रभाव

इस उत्तेजित माहौल में 5 फरवरी 1922 को गाँधीजी ने चौरी–चौरा की घटना को लेकर असहयोग आन्दोलन को स्थगित करने का निर्णय लिया । मुस्लिम के आधुनिक इतिहासकार मुशीर–उल–हसन का कथन है कि आन्दोलन स्थगन के निर्णय पीछे खिलाफत नेतृत्व के साथ संबंधों में बढ़ता तनाव और उनकी गतिविधियों पर नियन्त्रण रख पाना भी महत्वपूर्ण कारण था । धीरे–धीरे आन्दोंलन के अहिंसक बने रहने की संभावना होती जा रही थी । अगस्त 1921 के मोपला विद्रोह के बाद यह शंकायें और अधिक बद गयी । इन सब बातों ने गाँधीजी के निर्णय को प्रभावित किया ।

कारण जो भी हो, असहयोग आन्दोलन को अनायास ही बन्द कर देने से लोग बहुत ही निराश हुए। विशेषत: मुस्लिम नेतृत्व का एक बड़ा हिस्सा गाँधीजी के प्रतिकूल हो गया। जमाइत–उल–उलेमा और खिलाफत समिति की बैठक में गाँधीजी के की तीखी आलोचना की गयी ।

यह कहा जाता है कि खिलाफत के धार्मिक विषय को राजनीति से जोड़कर गाँधीजी ने भयंकर भूल की तथा इससे भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता के विकास को गति मिली । कुछ सीमा तक यह आरोप सही भी है क्योंकि खिलाफत के प्रश्न के समावेश सै मुस्लिम राष्ट्रवाद की भावना में स्वभावत: एक धार्मिक और सर्व इस्लामवादी पुट आ गया । इसके अतिरिक्त इससे मुस्लिम जनमानस पर कट्टरपंथियों की पकड़ बनी रही और उनमें राजनीतिक प्रश्नों को धार्मिक दृष्टि से देखने–परखने की प्रवृत्ति बलवती हुई । 1919– 1922 के बीच तो इस धार्मिक दृष्टिकोण का राष्ट्रवाद के साथ सीधा टकराव नहीं हुआ बल्कि इसने राष्ट्रीय आन्दोलन में मुस्लिम भागेदारी को सार्थक बनाया । किन्तु दीर्घकालीन दृष्टि से राजनीतिक प्रश्नों को धार्मिक दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति राष्ट्रीय एकता के लिये हानिकारक सिद्ध हुई । मुस्लिमों के धार्मिक आधार पर संगठन से साम्प्रदायिक विचारधारा और राजनीति को में बढ़ावा मिला ।

7.2.4 खिलाफत पार्टी का विघटन ।

1924 में मुस्तफा कमालपाशा द्वारा खिलाफत का उन्मूलन कर दिया गया। खिलाफत व्यवस्था के इस अन्त से भारत में खिलाफत पार्टी के विघटन की आरम्भ हो गयी । खिलाफत आन्दोलन के दौरान विभिन्न मुस्लिम वर्गों में पहली बार स्थापित हुई थी । अब खिलाफत नेतृत्व की इस एकता में भी बिखराव आने लगा ।

अब हम यह देखेंगे कि इस विघटन का मुस्लिम राजनीति और कांग्रेस के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन पर क्या प्रभाव पड़ा?

खिलाफत पार्टी के विघटन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणाम था – उलेमा वर्ग का भारतीय राजनीतिक परिदृश्य से लोप । उनके कार्यकलापों का वह गौरवपूर्ण अध्याय जिसमें वह राजनैतिक निर्णय–प्रक्रिया को प्रभावित करते थे, अब समाप्त हो गया था।

युवा मुस्लिम व्यवसायी वर्ग ने भी खिलाफत समितियों से त्याग–पत्र देना आरम्भ कर दिया । अब उन्होंने अपने पृथक राजनीतिक, शैक्षणिक विशिष्ट हितों की रक्षा व संवर्धन हेतु नये संगठनों का निर्माण करना शुरू कर दिया ।

खिलाफत नेतृत्व की एक शाखा ने जिसमें हसरत मोहानी, सैफुद्दीन किचलू, शफी दाऊदी सरीखे नेता थे, साम्प्रदायिक राजनीति में रूचि लेना आरम्भ कर दिया । असहयोग आन्दोलन के दिनों में कांग्रेस का साथ देने वाले अली बन्धु और मौलाना अब्दुल बारी अब कांग्रेस के घोर विरोधी हो गये।

दूसरी ओर, मुस्लिम नेतृत्व का एक बड़ा वर्ग अभी भी राष्ट्रवादी बना रहा, और पहले की तरह कांग्रेस के साथ सहयोग करता रहा । इनमें मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, सैयद महमूद अंसारी, अजमल खाँ, ए. एम. ख्वाजा, टी .ए. के. शेरवानी, खली कुज्जमाँ, रफी अहमद किदवई इत्यादि नेता थे । यह वर्ग "राष्ट्रवादी" मुसलमानों के रूप में विख्यात हुआ। राष्ट्रवादी मुसलमानों का भारतीय राष्ट्रवाद में अटूट विश्वास बना रहा । किन्तु हिन्दुओं के साथ अपनी छवि की सम्बद्धता के कारण इनका अपने सम्प्रदाय में आधार उतना सशक्त न रह सका । जैसा कि आप आगे पढ़ेंगे, यह प्रभाव उत्तरोत्तर कमजोर होता चला गया । यही कारण है कि वे साम्प्रदायिक विद्वेष के प्रसार की प्रभावी ढंग से रोकथाम करने मे उतने सफल नहीं रहे ।

7.3 साम्प्रदायिक वैमनस्य का प्रसार

फरवरी 1922 से दिसम्बर 1928 तक साम्प्रदायिकता का तीव्रता के साथ विकास हुआ। यह प्रसार सामाजिक और राजनीतिक दोनों स्तरों पर देखने में आया। सामाजिक स्तर पर साम्प्रदायिक दंगों तथा हिन्दुओं में **"शद्धि व संगठन"** तथा मुस्लिमों में **"तबलीग** व **तन्जीम"** ने खिलाफत आन्दोलन द्वारा निर्मित आपसी सौहार्द और भाईचारे के वातावरण को विषाक्त कर दिशा राजनीतिक स्तर पर हिन्दु महासभा और मुस्लिम लीग सरीखे संगठन जो साम्प्रदायिक आधार पर राजनीतिक माँगों को प्रस्तुत करते थे, दोबारा उभरने लगे । अब हम एक–एक करके इन सब तत्वों की चर्चा करेंगे ।

7.3.1 साम्प्रदायिक दंगे

असहयोग आन्दोलन के सहसा स्थगन से उत्पन्न हताशा और क्षोभ के वातावरण में साम्प्रदायिक शक्तियों को सर उठाने का अवसर मिला । राष्ट्रीय आन्दोलन के ज्वार के समय कायम हुई हिन्दू–मुस्लिम एकता टूट गयी । 1923–27 के मध्य देश के विभिन्न भागों में साम्प्रदायिक दंगों का दौर चल निकला । अमृतसर मुल्तान, कोहाट, गुलवर्ग, जबलपुर, नागपुर, लाहौर, मेरठ, मुरादाबाद, रायबरेली, सहारनपुर, बरेली, लखनऊ, इलाहाबाद, शाहजहांपुर, कलकत्ता और दिल्ली विशेष रूप से साम्प्रदायिक दंगों के केन्द्र बने । इन दंगों की भयंकरता का अनुमान इस तालिका से लगाया जा सकता है –

तालिका

1923 – 1927 के मध्य विभिन्न प्रान्तों में साम्प्रदायिक दंगों में मृत व घायल

प्रान्त	1923		1924		1925		1926		1927	
	मृत	घायल	मृत	घायल	मृत	घायल	मृत	घायल	मृत	घायल
उ.प्र.सी.प्रा.	0	0	36	145	0	0	0	0	0	0

पंजाब	1	83	0	0	0	35	17	90	39	289
उत्तर प्रदेश	14	335	19	312	6	182	1	21	39	384
दिल्ली	0	0	16	150	1	56	4	114	3	79
बम्बई व सिन्ध	0	0	0	20	2	115	1	49	10	320
बिहार व उड़ीसा	0	0	1	34	0	0	2	34	14	84
बंगाल	0	0	0	6	1	9	151	1490	22	50
मध्य प्रदेश	2	18	14	91	3	40	0	7	20	173
मद्रास	0	0	0	0	0	0	0	0	1	7
कुल संख्या	17	436	86	758	13	337	176	2207	148	1386

(डेविड पेज, "प्रिलूड टू पार्टीशन" पृ सं. 74 से साभार)

इन साम्प्रदायिक दंगों के सम्बन्ध में पुलिस अधिकारियों को उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता । बहुधा उनके द्वारा दंगों को रोकने में यथेष्ट रूचि – दिखलायी जाती थी । स्वयं जिन्नाह ने इसे स्वीकारने हुए कहा, "यदि आप मुझे पूछे तो मै आपको स्पष्ट बना देना चाहता हूँ कि इन दंगों के लिये पुलिस अधिकारी जिम्मेदार थे, जो कभी एक तो कभी दूसरे सम्प्रदाय का पक्ष लेते थे । भारतीय रियासतों में इस प्रकार के दंगे नहीं हुए क्योंकि वहां के शासक ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर पुलिस अधिकारियों को पदच्युत करते रहे ।"

अधिकांशत : इन दंगों के पीछे बहुत छोटे और तुच्छ कारण छिपे' रहते थे । मस्जिद के सामने बाजा बजाना, गौ–हत्या, हिन्दू–मुस्लिम त्यौहारों का एक साथ, उनके जुलूसों के मार्ग के सम्बन्ध में टकराव, यही सब दंगों के लिए पर्याप्त आधार बन जाते थे । वास्तव में देखा जाये तो दोनों सम्प्रदायों के मध्य परस्पर संदेह और प्रभुत्व के भय की काल्पनिक या वास्तविक भावना ही इन दंगों का आधार बनी ।

इसी संदेह व भय की भावना ने कुछ साम्प्रदायिक व आन्दोलनों को जन्म दिया ।

7.3.2 शुद्धि और संगठन तबलीग और तन्जीम ।

हिन्दुओं द्वारा जो साम्प्रदायिक आन्दोलन इस काल में चलाए गये, वे थे – शुद्धि और संगठन । शुद्धि आन्दोलन इस मिथ्या धारणा पर आधारित था कि मुसलमान यवन व मलेच्छ है क्योंकि अधिकांशत: उन्हें जबरदस्ती मुसलमान बनाया गया है अत: उनका हिन्दुत्व में पुन: धर्म परिवर्तन उनको "शुद्ध" करके किया जा सकता है । इस आन्दोलन के प्रमुख नेता स्वामी श्रद्धानन्द थे । मुख्य रूप से शुद्धि आन्दोलन को पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पूर्वी राजस्थान के मलकाना राजपूतों के बीच अपनाया गया। साथ ही, डॉ. मून्जे के द्वारा हिन्दुओं के बीच "संगठन" आन्दोलन चलाया गया । जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है । इस आन्दोलन का उद्देश्य हिन्दुओं को एक सम्प्रदाय के रूप में "संगठित" करना था । शुद्धि और संगठन आन्दोलन के नेताओं ने बेहद उग्र और उत्तेजक ढंग से अपना प्रचार कार्य आरम्भ किया । उन्होंने राष्ट्रवाद को बहुत संकीर्ण और साम्प्रदायिक रंग देना आरम्भ किया । मून्जें का कथन था "जिस तरह इंग्लैड अंग्रेजों का, फ्रांस फ्रांसीसियों का, जर्मनी जर्मनों का है, उसी प्रकार हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है । अगर हिन्दू संगठित हो जायें तो वह अंग्रेजों और मुसलमानों को नतमस्तक कर सकते है ।"

दूसरी ओर, मुस्लिम सम्प्रदायवादियों के द्वारा "तबलीग" और "तन्जीम" नाम के साम्प्रदायिक आन्दोलन आरम्भ किये गये । "तबलीग" अम्बाला के गुलाम भीक मारंग के द्वारा गैर मुसलमानों को मुसलमान बनाने के उद्देश्य से आरम्भ किया गया। "तन्जीम" का उद्देश्य

मुसलमानों को संगठित करना था। इसे सैफुद्दीन किचलू के द्वारा शुरू किया गया, जिन्होंने असहयोग आन्दोलन के दौरान महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी भूमिका अपनायी थी ।

शुद्धि, संगठन, तबलीग व 'तन्जीम जैसे संकीर्ण प्रतिक्रियावादी आन्दोलनों ने दोनों सम्प्रदायों के मध्य परस्पर सौहार्द के वातावरण को विषाक्त किया ।

7.3.3 साम्प्रदायिक संगठनों का पुन: उद्भव

वस्तुत: इस साम्प्रदायिक विद्वेष और वैमनस्य के वातावरण में दोनों समुदायों के राष्ट्रवादी और उदारवादी नेतृत्व पर सम्प्रदायवादियों का दबाव बढ़ने लगा। इनमें से कुछ ने साम्प्रदायिक राजनीति में खुलकर भाग लेना आरम्भ कर दिया । मुहम्मद अली जैसे नेताओं ने कहना शुरू कर दिया कि "अपने धर्म और विश्वास के हिसाब से में एक गिरे और चरित्रहीन मुसलमान को भी गाँधी से बेहतर समझता हूं "। सैफुद्दीन किचलू ने यहां तक कहा कि लखनऊ समझौते जो एक प्रकार से हिन्दू–मुस्लिम एकता का घोषणा–पत्र था, को जला देना चाहिये।

यह दिखाता है कि 1916 से हिन्दू व मुस्लिम राष्ट्रीय नेतृत्व के बीच जो ऐक्य कायम हुआ था, वह अब पूरी तरह से बिखरने लगा था ऐसे में साम्प्रदायिक राजनीतिक संगठनों को पुनर्जीवित करने की सोची गयी । इसी श्रृंखला में मुस्लिम लीग का पुनरूत्थान हुआ । आपको याद होगा कि खिलाफत आन्दोलन के दौरान भारतीय मुसलमानों का राजनैतिक नेतृत्व खिलाफत समिति और जमायत–ए–उलेमा बने हाथ में आ गया था । और मुस्लिम लीग का कोई पृथक अस्तित्व –सा नहीं रह गया था। यहां तक कि 1922 में उसका सालाना अधिवेशन भी नहीं हो सका था । राष्ट्रवादी आन्दोलन के ज्वार में साम्प्रदायिक शक्तियाँ पृष्ठभूमि में चली गयीं थी । लेकिन अब साम्प्रदायिक विषाक्त वातावरण में इन्हें पुन: जीवित कर सीमित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये इसका उपयोग करने का निश्चय किया गया। मुस्लिम लीग के नेतागण ने पुन: मुस्लिम लीग को सशक्त बनाना आरम्भ कर दिया । 1925 के मुस्लिम लीग के कलकत्ता अधिवेशन में लीग का उग्र और आक्रामक स्वर दिखाई दिया । अपने अध्यक्षीय भाषण में सर अब्दुर्रहीम ने स्पष्ट कहा कि हिन्दुओं के मुस्लिम सम्प्रदाय के प्रति आक्रमणात्मक नीति के कारण अब मुसलमानों के लिये लीग और भी अधिक आवश्यक हो गयी है । मुस्लिम लीग के नेताओं ने लखनऊ समझौते के प्रति भी असंतोष व्यक्त करना आरम्भ कर दिया । उनका कहना था कि बदली हुई परिस्थितियों मे लखनऊ समझौता पुराना पड़ गया है और यह मुसलमानों दे साम्प्रदायिक हितों की रक्षा के लिये पर्याप्त नहीं रह गया है ।

दूसरी ओर, 1923 में हिन्दू महासभा का पुन: आरम्भ किया गया । लाला लाजपत राय, मदन मोहन मालवीय और एच. सी. केलकर जैसे राष्ट्रीय नेता इसके सदस्य बन गये और संकीर्ण राष्ट्रवाद व मुस्लिम विरोधी राजनीति का प्रचार करने लगे । हिन्दू महासभा का घोषित उद्देश्य ही "हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के लिये हिन्दू धर्म, हिन्दू सभ्यता संस्कृत की रक्षा करना और इसका प्रचार करना था। " ।

हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग की इन गतिविधियों के कारण साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया और तीव्र हुई ।

7.4 एकता के प्रयत्न

साम्प्रदायिक राजनीति की चर्चा करते समय हमें समय–समय पर हुए एकता के प्रयत्नों को अनदेखा नहीं करना चाहिये । जहां एक ओर साम्प्रदायिक विद्वेष संकीर्ण प्रान्तीय राजनीति और दंगों के रूप में भड़क रहा था, वहीं दूसरी ओर हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिये व्यक्तिगत व सामूहिक स्तर पर प्रयास किये जा रहे थे । इनमें पहली कोटि मे गाँधी जी का इक्कीस दिनो, का उपवास तथा दूसरी श्रेणी में सर्वधर्म एकता सम्मेलन का आयोजन प्रमुख है ।

7.4.1 गाँधी जी का उपवास

देश भर में हो रहे साम्प्रदायिक दंगों से गाँधीजी को आत्मिक कष्ट पहुंचा । इस साम्प्रदायिक हिंसा का उत्तरदायित्व उन्होंने अपने ऊपर लेते हुए प्रायश्चित के तौर पर इक्कीस दिन का उपवास आरम्भ किया । यह उपवास 18 सितम्बर 1924 से 8 अम्बर 1924 तक चला । उनके इस कदम का व्यापक प्रभाव पड़ा और साम्प्रदायिक एकता के प्रयासों में तीव्रता आने लगी।

7.4.2 एकता सम्मेलन

इसी शृंखला में दिल्ली में 26 सितम्बर 1924 से 20 नवंबर 1924 तक एकता सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न धर्मो को मानने वाले 300 समूहों के लोग सम्मिलित हुए । इस एकता सम्मेलन में धार्मिक विचारों के प्रकटीकरण, गोवध, मस्जिद के सामने बाजा, पूजा स्थलों की पवित्रता आदि से सम्बन्धित बातों के विषय में महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये । समाचार पत्रों को साम्प्रदायिक प्रश्नों के सम्बन्ध में उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से काम करने का आह्वान किया गया । साम्प्रदायिक एकता को मजबूत करने की दृष्टि से गाँधीजी की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पंचायत का गठन किया गया जिसके प्रमुख सदस्य हकीम अजमल खाँ, लाला लाजपत राय, के. एम. नरीमन, ए. के. दत्त और मास्टर सुन्दर सिंह बने ।

7.5 मुस्लिम और संवैधानिक राजनीति

साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया संवैधानिक राजनीति में भी परिलक्षित हुई । साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न प्रान्तीय और राष्ट्रीय राजनीति में बना रहा। समय–समय पर आपसी तालमेल द्वारा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की समस्या का सम्मिलित हल खोजने का प्रयास भी किया गया । यही सब हम इस भाग में पढ़ेंगे ।

7.5.1 प्रान्तीय राजनीति में साम्प्रदायिकता

1922 में हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य के बिखराव के साथ ही प्रान्तों में सत्ता के लिये संघर्ष तीव्र हुआ । इस संघर्ष की जड़े 1909 के मिंन्टो–मार्ले सुधारों में तलाश की जा सकती है । आपको याद होगा कि मिन्टो–मार्ले सुधारों ने मुसलमानों के लिये पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की थी । इसी का लाभ उठाकर कई मुस्लिम संगठन मुसलमानों के लिये उनकी संख्या, सामाजिक स्तर और स्थानीय महत्व के आधार पर विशेष सुविधाओं व अधिकारों की माँग रखने लगे । यूं तो यह संगठन सारे भारतीय मुसलमानों के प्रतिनिधि होने का दावा करते थे परन्तु वास्तव में ये कुछ मुस्लिम जमीदारों, व्यवसायियों व सरकारी नौकरों का ही प्रतिनिधित्व करते थे । सरकार भी ऐसे संगठनों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपना समर्थन देती थी ।

1919 के मान्टेग्यू – चेम्सफोर्ड सुधारों से प्रान्तीय राजनीति के साम्प्रदायीकरण को और भी अधिक बल मिला । इसके द्वारा प्रान्तों मे द्वैत व्यवस्था को लागू किया गया जिसमें सरकारी विभाग को "संरक्षित" व "हस्तांतरित" दो भागों में विभक्त किया गया । इनमें "संरक्षित" विभागों पर तो गवर्नर सहित परिषद का पूर्ववत् अधिकार बना रहा, किन्तु शिक्षा, कृषि, स्थानीय स्वशासन जैसे विभाग प्रान्तीय परिषदों के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को "हस्तांतरित" हुए । दूसरी ओर केन्द्रीय विधायी संस्थाओं में निर्वाचित गैर–सरकारी बहुमत बना । साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को न केवल बरकरार रखा गया बल्कि उसको स्थानीय स्वशासनिक संस्थाओं पर भी लागू कर दिया गया।

सवाल यह उठता है कि इस नई वैधानिक व्यवस्था से साम्प्रदायिक सम्बन्ध क्यों और किस प्रकार प्रभावित हुए?

हाल में हुए ऐतिहासिक शोध ने यह सिद्ध कर दिया है कि वैधानिक परिषदों और मताधिकार के विस्तार ने स्थानीय स्तर पर साम्प्रदायिक चेतना को तीव्र कर साम्प्रदायिक गठजोड़ को और अधिक बढ़ावा दिया । मताधिकार के विस्तार के कारण अब स्थानीय म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की सीट का महत्व पहले से बढ़ गया क्योंकि इनके सदस्य अपने प्रभाव का प्रयोग अपने सम्प्रदाय वालों के लिये रोजगार, विभिन्न पदों पर नियुक्ति और सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए ठेका दिलवाने में कर सकते थे । स्थानीय संस्थाओं की सीट के इस बढ़ते महत्व के कारण प्रान्तीय राजनीति में सत्ता व संरक्षण (patronage) के लिये प्रतियोगिता बढ़ी । डेविड पेज ने अपने पुस्तक “प्रिलूड टू पार्टीशन" में महत्वपूर्ण प्रान्तों की राजनीति का गहन अध्ययन करके दर्शाया है कि किस प्रकार प्रान्तीय विधायी सभाओं को सला के हस्तांतरण के साथ राजनीतिज्ञों के लिये स्वयं अपने व अपने सम्प्रदाय के लिए सत्ता हासिल करना उनके राजनैतिक क्रियाकलापों का मुख्य बिन्दु बन गया । वही राजनीतिज्ञ जिन्होंने 1916 में सुधारों की योजना बनाने में एक दूसरे के साथ सहयोग किया था, अब सत्ता–संघर्ष में एक दूसरे के प्रतियोगी बन गये ।

ऐसा इसलिये भी हुआ क्योंकि दोनों सम्प्रदायों की सब प्रान्तों में एक सी स्थिति नहीं थी।कुछ प्रान्तों में जैसे बंगाल और पंजाब में मुसलमान आर्थिक व राजनीति दृष्टि से पिछड़े हुए थे।यहां पर जनसंख्या में हिन्दुओं से अधिक होते हुए भी अपनी गरीबी और अशिक्षा के कारण वह काफी पीछे थे, और प्रान्तीय विधायी संस्थाओं में उनका जनसंख्या के अनुपात में काफी कम प्रतिनिधित्व था । अत : इन प्रान्तों के मुस्लिम नेताओं ने बहुमत के आधार पर मुसलमानों के लिय विशेष लाभों और सीटों के आरक्षण की माँग को जायज ठहराया । वास्तव में देखा जाये, तो इन्हीं दो प्रान्तों में प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर ही आगे भी बार–बार संवैधानिक गतिरोध की स्थिति आई।

1927 में 1919 के मान्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों पर पुनर्विचार करने के लिए साइमन कमीशन का गठन किया गया । साइमन कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य को सम्मिलित नहीं किया गया था । इससे भारतीय आत्मसम्मान का धक्का पहुंचा और कांग्रेस समेत कई राजनीतिक दलों ने आपस में सलाह–मशवरा करके संवैधानिक माँगों का एक प्रारूप तैयार करने का निश्चय किया। अब हम देखेंगे कि इस दिशा में क्या प्रयत्न हुए और उनका मुस्लिम राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा?

7.5.2 दिल्ली प्रस्ताव

इसी शृंखला में मुस्लिम सम्प्रदाय के विभिन्न नेता 20 मार्च, 1927. में मुहम्मद अली जिन्नाह के नेतृत्व में दिल्ली में एकत्रित हुए और उन्होंने सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि अगर उनकी कुछ विशेष मांगों को स्वीकार कर लिया जाये तो मुस्लिम सम्प्रदाय, साम्प्रदायिक निर्वाचन व्यवस्था को त्याग कर संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था को अपना लेगा ।

यह माँगें थी –

1. सिन्ध को बम्बई प्रेसीडेन्सी से अलग करके एक पृथक प्रान्त बनाया जाये ।
2. अन्य प्रान्तों के समान सुधारों को उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त व बलूचिस्तान में भी लागू किया जाये।
3. पंजाब और बंगाल के मुसलमानों को उनकी जनसंख्या के अनुरूप प्रतिनिधित्व दिया जाये ।
4. केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में कम से कम एक तिहाई मुस्लिम प्रतिनिधित्व रहेगा।

यह माँगें जो "दिल्ली प्रस्ताव" के नाम से जानी जाती है, 1920 के दशक के अन्त और 1930 के दशक के आरम्भ की मुस्लिम राजनीति के विकास के लिये बहुत महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इन्हीं को आधार बनाकर कांग्रेस के साथ समझौता करने का प्रयास किये गये । हिन्दू महासभा ने इन प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया।

दिल्ली प्रस्ताव 1920 के दशक के अन्त की मुस्लिम राजनीति के बढ़ते साम्प्रदायीकरण की ओर इंगित करते है । कांग्रेस के लिये भले ही यह देश की साम्प्रदायिक समस्या का हल निकालने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हो, पर वास्तव में इससे समस्या सुलझी नहीं । इतिहासकार मुशीर–उल–हसन का मानना है कि "दल्ली प्रस्ताव" मुस्लिम लीग के लिये बहुत बड़ी सफलता थी क्योंकि इनके द्वारा लीग उन क्षेत्रों को भी (जैसे सिन्ध और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त) साम्प्रदायिक रस्साकशी के दायरे में लाने में सफल हो गई जो अभी तक संस्थागत राजनीति के बाहर थे। (मुशीर–उल–हसन, कम्यूनल एण्ड पान – इस्लामिक ट्रेन्ड्स इन कोलोनियल इंडिया, दिल्ली 1989, पृ सं. 289) । इसके अतिरिक्त, इन प्रस्तावों द्वारा मुस्लिम ने अपनी उन संवैधानिक माँगों के लिए कांग्रेस की स्वीकृति हासिल कर ली, जिन्हें वे अपने पृथक साम्प्रदायिक हित के लिये सरकार से मनवाना चाहते थे। बाद में दिल्ली प्रस्ताव से लेशमात्र भी पीछे हटना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। दूसरी ओर, हिन्दू महासभा ने दिल्ली प्रस्तावों को पूर्णरूपेण अस्वीकार कर दिया। दोनों साम्प्रदायिक संगठनों के अड़ियल रुख ने आगे चलकर साम्प्रदायिक हल ढूंढने की दशा के प्रयासों में बाधा पहुंचायी और साम्प्रदायिक अलगाव की खाई को गहरा किया।

7.5.3 मुस्लिम लीग में आन्तरिक विरोध

दिल्ली प्रस्ताव को तैयार करने और उसको मुस्लिम लीग द्वारा स्वीकृत कराने में जिन्नाह का विशेष रूप से हाथ था । पिछले कुछ वर्षों में साम्प्रदायिक आरक्षण के प्रश्न को लेकर वह तेजी से मुस्लिम लीग के नेतृत्व की स्थिति में उभर रहे थे ।

पंजाब और बंगाल में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर मुस्लिम लीग में आन्तरिक विरोध था। पंजाब के मुस्लिम लीग नेता मुहम्मद शफी दिल्ली प्रस्ताव के द्वारा संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था के प्रावधान से असन्तुष्ट थे । उनको वह अन्य मांगों के साथ साम्प्रदायिक निर्वाचन

व्यवस्था को बनाये रखना चाहते थे । इसके अतिरिक्त, जिन्नाह के विपरीत मुहम्मद शफी साइमन कमीशन के साथ सहयोग के भी पक्षपाती थे ।

"जिन्नाह गुट" और "शफी गुट" के आन्तरिक संघर्ष को लेकर मुस्लिम लीग में फूट पड़ गयी । फलत: 1927 में मुस्लिम लीग के दो अधिवेशन हुए – एक शफी की अध्यक्षता में लाहौर में और दूसरा जिन्नाह के नेतृत्व में कलकत्ता में । लाहौर अधिवेशन में शफी ने बॉयकाट – विरोधी प्रस्ताव पारित करते हुए मुसलमानों से अपने सामुदायिक हितों के लिये साइमन कमीशन के साथ सहयोग करने की अपील की । दूसरी ओर जिन्नाह ने मुस्लिम लीग के कलकत्ता अधिवेशन के द्वारा मुहम्मद शफी द्वारा आयोजित लाहौर अधिवेशन की कार्यवाही को असंवैधानिक ठहराते हुए घोषणा की कि साइमन कमीशन से मुसलमानों को कुछ भी लेना–देना नहीं है ।

यह दिखाता है कि अभी तक जिन्नाह ने पूरी तरह से साम्प्रदायिक राजनीति को नहीं अपनाया था और वह कांग्रेस के साथ साम्प्रदायिक समस्या का हल निकालने के सम्बन्ध में आशावादी दृष्टिकोण रखते थे ।

इस प्रकार, साइमन कमीशन का बहिष्कार कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा मिलकर किया गया । एक बार फिर साम्राज्यवाद–विरोधी आन्दोलन ने जोर पकड़ा । जहां एक ओर साइमन कमीशन का व्यापक प्रतिरोध हुआ, वही दूसरी ओर सर्वदल सम्मेलनों के द्वारा एकमत होकर देश के हित के लिये नये संविधान के निर्माण की दिशा में सक्रिय प्रयास हुए ।

7.5.4 मुस्लिम और नेहरू रिपोर्ट

सर्वदलीय सम्मेलनों के द्वारा पंडित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति बनाने का निर्णय किया गया। इस समिति को भावी भारतीय संवैधानिक मांगों का प्रारूप तैयार करने का उत्तरदायित्व सौपा गया। इस समिति के अन्य, सदस्य इस प्रकार थे -

संगठन		**प्रतिनिधि**
कांग्रेस मुसलमान	:	अली इमाम, शुआब कुरैशी
हिन्दू महासभा	:	एम एस. आणे, एम आर. जयकर
सिक्ख लीग	:	सरदार मंगल सिंह
उदारवादी दल	:	तेज बहादुर सप्रू

इस समिति ने तीन माह में अपनी रिपोर्ट तैयार की जो नेहरू रिपोर्ट के नाम से जानी जाती है । नेहरू रिपोर्ट में साम्प्रदायिक निर्वाचन के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था को स्थान दिया गया, लेकिन इसके साथ ही अल्पसंख्यक वर्गों के लिये जनसंख्या के आधार पर स्थान सुरक्षित रखे गये । मुसलमानों को उनके धार्मिक व सांस्कृतिक हितों की रक्षा का पूरा आश्वासन दिया गया। सिन्ध को बम्बई प्रान्त से अलग कर पृथक प्रान्त बनाने की सिफारिश भी की गयी। रिपोर्ट में उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त को ब्रिटिश भारत के अन्य प्रान्तों के समान वैधानिक दर्जा देने की माँग को भी स्वीकार किया गया ।

नेहरू रिपोर्ट को लेकर मुस्लिम लोकमत में विवाद उत्पन्न हो गया। अली इमाम, अंसारी, आजाद जैसे राष्ट्रवादी और कांग्रेसी मुसलमानों ने रिपोर्ट के पक्ष में करना शुरू कर दिया । कांग्रेस की आशायें मुख्य रूप से जिन्नाह पर केन्द्रित थी लेकिन जिन्नाह का रूख इस रिपोर्ट के प्रति

उत्साहजनक नहीं था। उन्होंने दिसम्बर माह में नेहरू रिपोर्ट पर विचार करने के लिये आयोजित कलकत्ता सम्मेलन में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए तीन संशोधन प्रस्तुत किये –

(1) मुसलमानों को केन्द्रीय विधान मण्डल में एक तिहाई स्थान दिये जायें ।

(2) पंजाब और बंगाल के विधान मण्डलों में मुसलमानों को उनकी जनसंख्या के अनुसार आने वाले दस वर्षो तक प्रतिनिधित्व दिया जाये।

(3) अवशिष्ट शक्तियों केन्द्र के पास न रह कर प्रान्तों के पास रहें ।

कलकत्ता सम्मेलन की उपसमिति ने इन प्रस्तावों को नामंजूर कर दिया। इससे जिन्नाह बेहद निराश हुए और उन्होंने सम्मेलन का बहिष्कार कर दिया । लीग एवं कांग्रेस के सम्बन्धों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। स्वयं जिन्नाह के शब्दों में कलकत्ता के सम्मेलन से "रास्ते अलग–अलग हो गये।"

7.5.5 शफी व जिन्नाह लीग का विलय

कलकत्ता सम्मेलन की असफलता का जिन्नाह के राजनीतिक दृष्टिक़ोण पर बहुत असर पड़ा । उन्हें अनुभव हुआ कि कांग्रेस से मुसलमानों के लिये न्याय की आशा करना व्यर्थ रहेगा। उन्हें यह भी लगा कि मुस्लिम जनमत को संगठित करके ही कांग्रेस से अपनी बातें मनवायी जा सकती है। इस बीच मुस्लिम लीग के शफी गुट द्वारा भी जिन्नाह गुट से पुन: एकीकरण के प्रयत्न किये गये। 28 मार्च, 1929 में मुस्लिम लीग की बैठक में दोनों गुट एक बार फिर एकबद्ध हो गये। इसी बैठक में जिन्नाह ने नेहरू संविधान को अस्वीक़ार करते हुए न्यूनतम मुस्लिम माँगों के चौदह सूत्र प्रस्तुत किये ।

7.5.6 जिन्नाह के चौदह सूत्र

यह सूत्र थे –

(1) भारत का भावी संविधान संघीय हो जिसमें अवशिष्ट शक्तियाँ प्रान्तों को दी जायें ।

(2) सभी प्रान्तों को एक समान स्वायत्तता प्रदान की जाये।

(3) देश के सभी चुने हुए निकायों और विधान मण्डलों स गठन अल्पसंख्यकों को पर्याप्त तथा प्रभावशाली प्रतिनिधित्व के निश्चित आधार पर हो और प्रान्त में भी बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यक के बराबर अथवा उनसे अधिक न दिया जाये।

(4) केन्द्रीय विधान मण्डल में मुसलमानों को एक –तिहाई प्रतिनिधित्व दिया जाये।

(5) साम्प्रदायिक वर्गो के प्रतिनिधित्व के लिये पृथक निर्वाचन मण्डलों की व्यवस्था चलती रहे ।

(6) भविष्य में कोई भी प्रादेशिक पुनर्गठन हो, तो वह इस प्रकार किया जाये कि पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त और बंगाल में मुस्लिम बहुमत अप्रभावित रहे ।

(7) किसी चुने हुए निकाय या विधान मण्डल में कोई ऐसा विधेयक पारित नहीं किया जायेगा, जिसका किसी सम्प्रदाय के 374 सदस्य इसलिये विरोध करते हों कि उससे उस सदस्य पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

(8) सभी सम्प्रदायों को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता दी जायेगी ।

(9) सिन्ध को बम्बई प्रेसीडेन्सी से अलग कर दिया जायेगा।

(10) उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा बलूचिस्तान में अन्य प्रान्तों के समान सुधार लागू किए जायेंगे ।

(11) संविधान में ऐसा प्रावधान रखा जायेगा कि विभिन्न राजकीय सेवाओं और स्थानीय स्वशासन निकायों में मुसलमानों को पर्याप्त भाग दिया जायेगा।

(12) संविधान में मुस्लिम संस्कृति, शिक्षा, भाषा व धर्म के संरक्षण के लिये उचित प्रावधान रखे जायेंगे।

(13) केन्द्र तथा प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों का इस प्रकार गठन किया जायेगा कि उनमें मुसलमान मंत्रियों की संख्या मंत्रिमण्डलों के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई से कम न हो ।

(14) भारतीय संविधान में केन्द्रीय विधानमण्डल द्वारा कोई परिवर्तन बिना भारतीय संघ में सम्मिलित सभी राज्यों की स्वीकृति के नहीं किया जायेगा।

नेहरू समिति ने इन चौदह सूत्रों को मानने से इन्कार कर दिया। कई सूत्रों का कहना है कि यदि उस समय इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया जाता तो शायद पाकिस्तान न बन पाता। इन प्रस्तावों की अस्वीकृति से मुस्लिम साम्प्रदायिक शक्तियों का एकीकरण हुआ जो 1930 के बाद की भारतीय राजनीति के लिये घातक तत्व सिद्ध हुआ ।

7.6 उपसंहार

स्पष्ट है कि कांग्रेस द्वारा साम्प्रदायिकता के खिलाफ एक गहन वैचारिक संघर्ष के स्थान पर मुस्लिम लीग के कुछ चुने हुए वरिष्ठ नेताओं के साथ उच्च राजनीतिक स्तर पर समझौता करने की नीति न केवल साम्प्रदायिक समस्या के समाधान की दृष्टि से पूर्णतया असफल रही, बल्कि इसके बहुत घातक परिणाम निकले ।

(1) ऐसा करके कांग्रेस ने परोक्ष रूप से साम्प्रदायिक नेताओं के अपने सम्प्रदाय विशेष के हितों के प्रतिनिधित्व के दावे को वैधता दे दी, और उन्हें उनके सम्प्रदाय विशेष का नेता स्वीकार कर लिया।

(2) इससे धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रवादी कांग्रेसी मुस्लिम नेता जैसे आजाद, अंसारी, आसफ अली की मुस्लिम सम्प्रदाय और राजनीति में स्थिति कमजोर हुई ।

(3) लगातार रियासतों से साम्प्रदायिक मांगे प्रबल होती गयी जिन्हें कर पूर्ण कर पाना फिर कांग्रेस की शक्ति के बाहर हो गया। वास्तव में देखा जाये आगे चलकर साम्प्रदायिक शक्तियों को दीर्घकाल तक संतुष्ट रखना सम्भव नहीं रह गया।

7.7 सारांश

1920 के दशक में साम्प्रदायिक चेतना का विस्तार भारतीय इतिहास का एक दुखद पहलू है। 1922 में असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद साम्प्रदायिंकता का तेजी के साथ विकास हुआ जो कई रूपों में परिलक्षित हुआ। देश के विभिन्न भागों में राम्प्रदायिक का भयंकर दौर चला। हिन्दू साम्प्रदायवादियों के द्वारा "तबलीग" व "संगठन" व मुस्लिम साम्प्रदायवादियों के द्वारा चलाये गये "तबलीग" व "तन्जीम"जैसे प्रतिक्रियावादी आंदोलनो ने जोर पकड़ा । हिन्दू महासभा और मुस्लिम लोग का पुनरूत्थान हुआ और इन दोनों ने अपने समुदाय विशेष के काल्पनिक या वास्तविक हितों की रक्षा व संवर्धन करना आरम्भ कर दिया। संवैधानिक राजनीति के क्षेत्र में भी हिन्दू–मुस्लिम नेताओं के बीच मतभेद व्यापक हुए। अपने सम्प्रदाय विशेष के हितों

पर अतिरंजित बल और अपने अड़ियल रवैये के कारण संवैधानिक समस्या को सुलझाने के लिए समय–समय पर किये गये प्रयत्नों में बाधा पहुंची। इससे अलगाववाद व साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया बढ़ी जो आगे के वर्षो मे राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध हुई ।

7.9 शब्दावली

खिलाफत आंदोलन	–	तुर्की का सुल्तान जो सारे जगत का खलीफा था, उसे उसका पद पुनःदिलवाने के लिए किया गया आंदोलन।
सर्वइस्लामवाद	–	इस्लाम धर्म के आधार पर विभिन्न वर्गो के मुसलमानों को एकजुट करना।
पृथक निर्वाचन व्यवस्था	–	मुसलमानों को अपने मुस्लिम प्रतिनिधियों को अलग से चुनने की व्यवस्था।
संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था	–	हिन्दुओ व मुसलमानों द्वारा मिलकर अपने प्रतिनिधि चुनने की व्यवस्था
उलेमा वर्ग	–	मुसलमान समुदाय के धार्मिक नेताओं का वर्ग जो शरीअत के सिद्धांतो पर चलने का हिमायती था।
सम्प्रदायवाद	–	दूसरे संप्रदाय के हितों के विरूद्ध अपने ही संप्रदाय–विशेष के हितों पर बल देना।
ध्रुवीकरण	–	दो विपरीत दिशाओं मे बदने की स्थिति
प्रतिक्रियावाद	–	प्रगति विरोधी, संकीर्ण मानसिकता से ग्रस्त होना।

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) 1922 के बाद भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता के विकास के लिये कौन से कारण उत्तरदायी थे?

(2) राष्ट्रीय आन्दोलन में खिलाफत के प्रश्न के समावेश का भारतीय साम्प्रदायिकता के विकास पर क्या प्रभाव पड़ा?

(3) राष्ट्रवादी मुसलमान कौन थे? उनके कार्यो का मूल्यांकन करिये ।

(4) 1920–3019 के मध्य मुस्लिम लीग भारतीय मुसलमानों पर अपना प्रभाव स्थापित करने में किस प्रकार सफल हुई?

(5) सही पर निशान लगायें –

1. नेहरू रिपोर्ट में निम्नलिखित निर्वाचन व्यवस्था की गयी थी।
   (क) संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था
   (ख) पृथक निर्वाचन व्यवस्था
   (ग) दस वर्षों के लिए मुसलमानों के लिये पृथक निर्वाचन।
2. किस राजनीतिक दल ने साइमन कमीशन के साथ सहयोग किया।

(क) कांग्रेस

(ख) मुस्लिम लीग (शफी गुट)

(ग) मुस्लिम लीग (जिन्नाह गुट)

(घ) हिन्दू महासभा

3. हिन्दू महासभा की स्थापना किस वर्ष में हुई?

(क) 1923

(ख) 1924

(ग) 1925

(घ) 1926

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

हिन्दीं :

(1) सरकार, सुमित : आधुनिक भारत 1885 – 1947

(2) सिंह, अयोध्या : भारत का मुक्ति–संग्राम

(3) मिश्र, जेपी. : भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास

अग्रेज़ी :

(1) Chandra, Bipan : India's struggle for independence, (New Delhi).

(2) Chandra, Bipan : Communalism is modern India, (New Delhi).

(3) Dixit, Prabha : Communalism– a struggle for power, (New Delhi, 1974)

(4) Hasan, Mushirul : Nationalism and communal politics in India(New Delhi,1979)

(5) Hasan, Mushirul (ed) : Communal and pan–Istanic trends in Colonial India, (New Delhi, 1981)

(6) Kaura, Uma : Muslims and Indian Nationalism. (Delhi, 1977)

(7) Page, David : Prelude to partition; All India Muslim Politics 1920–32 (Oxford).

(8) Pannikar, K.N. (ed.) : Communism in India–history Politics and culture (New Delhi, 1991)

(9) Qureshi,I.H. : Ulema in politics (Karachi, 1972)

इकाई – 8
क्रान्तिकारी आतंकवादी गतिविधियां

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन का आरम्भ

8.3 क्रांतिकारियों के उद्देश्य और कार्य पद्धति

8.4 क्रांतिकारी आन्दोलन के दो चरण

8.5.1 क्रान्तिकारी आतंकवादी गतिविधियों का प्रथम चरण

– बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियां

– महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी गतिविधियां

– पंजाब में क्रान्तिकारी गतिविधियां

– अन्य राज्यों में क्रान्तिकारी गतिविधियां

8.5.2 विदेशों में क्रान्तिकारी गतिविधियां

– लंदन में क्रान्तिकारी कार्य

– कनाडा में क्रान्तिकारी कार्य

8.5.3 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान विदेशों में क्रांतिकारी गतिविधियां

8.5.4 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत में क्रांतिकारी गतिविधियां

8.6 क्रांतिकारी आतंकवादी गतिविधियों का द्वितीय चरण

– पंजाब में क्रान्तिकारी गतिविधियां

– बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियां

– अन्य राज्यों में क्रान्तिकारी गतिविधियां

8.7 क्रांतिकारी आन्दोलनों के दो चरणों में अन्तर

8.8 क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता के कारण

8.9 क्रांतिकारी आन्दोलन का महत्व

8.10 सारांश

8.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत क्रांतिकारी आतंकवादी गतिविधियों की जानकारी देना है । इस इकाई का कर लेने पर आपको निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जायेगा –

- क्रांतिकारी गतिविधियों के उद्भव के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां

- भारत के विभिन्न राज्यों में होने वाली क्रांतिकारी आतंकवादी
- विदेशों में भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियां
- क्रांतिकारी आन्दोलन के दो चरणों में अन्तर
- क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता के कारण
- क्रांतिकारी आन्दोलन का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान।

8.1 प्रस्तावना

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ ही उसका विरोध हुआ। प्रारम्भिक काल में विरोध की अभिव्यक्ति नागरिक विद्रोह, सैनिक विद्रोह आदि रूप में यत्र तत्र प्रकट हुई। सन 1857 के विप्लव के रूप में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति की अभिव्यक्ति व्यापक स्तर पर हुई। पर संस्थागत विरोध सैर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ प्रारम्भ हुआ। प्रारंम्भिक काल में कांग्रेस की मांगें सीमित थी और उनके साधन भी वैधानिक थे। दो दशकों में उनकी सीमित उपलब्धियों ने भारतीयों में असन्तोष उत्पन्न किया, फलत: उग्रवाद का प्रादुर्भाव हुआ। उग्रवादियों ने "निष्क्रिय प्रतिरोध" की नीति का अवलम्बन किया। उन्होंने 'स्वराज्य' अपना जन्म–सिद्ध अधिकार बताया। पर उग्रवादियों में भी एक वर्ग निक्रिय प्रतिरोध से सन्तुष्ट नहीं था। वह हिंसा के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य को जड़ से उखाड़ने के लिए आतुर था। राष्ट्रवादियों का यही वर्ग क्रांतिकारियों का वर्ग था। उन्होंने सर्वोत्कृष्ट बलिदान के द्वारा सीमित सफलताओं के उपरान्त भी भारतीय स्वतन्त्रता के संघर्ष में एक प्रेरणादायक तथा रंगीन पृष्ठ जोड़ा।

8.2 क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन का आरम्भ

19 वीं शताब्दी के तीसरे दशक में भारतीय राजनीतिक रूप से जागृत हो चुके थे। भारत में ब्रिटिश शासन से असन्तुष्ट जनता में अत्यधिक रोष व्याप्त हो बुझ था। उन्होंने आरम्भ में प्रस्तावों द्वारा अधिकारियों की मांग की और वैधानिक आन्दोलन का मार्ग अपनाया। परन्तु 1905 तक उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। ब्रिटिश शासन की दमनात्मक नीतियां, बंगाल के विभाजन, महाराष्ट्र में प्लेग और अकाल की घटनाओं और उस विषय में सरकार की अकर्मण्यता और अन्य परिस्थितियो ने असन्तोष में वृद्धि की। परिणामस्वरूप 20वीं सदी के आरम्भ में भारत में एक अपूर्व राष्ट्रीय जागृति की लहर आई वे दो भागों में बंट गई। इसकी एक धारा थी – उग्र राष्ट्रवाद, जिसका नेतृत्व लाल–बाल–पाल की त्रिमूर्ति ने किया। ये उग्रवादी निष्क्रिय प्रतिरोध के सिद्धान्त के आधार पर ब्रिटिश सरकर के विरुद्ध संघर्ष करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त नवयुवकों का एक ऐसा वर्ग था, जिन्हें उग्रवादियों के शान्तिपूर्ण संघर्ष में विश्वास नहीं था। वे तुरन्त कुछ करना चाहते थे जिसे ह्यूम के शब्दों में कहें तो 'ऐसा कुछ करना चाहते थे जिसका अर्थ हिंसा होता है।' ये हिंसा और आतंक द्वारा शासकों को भयभीत कर उनके शासन को समूल नष्ट करना चाहते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति और व्यापकता के उपरान्त भी बंगाल के विभाजन को रद्द नहीं किया गया था। अत: विद्रोही मन:स्थिति वाले बैचेन नवयुवकों के दिमाग पर तात्कालिक प्रभाव पड़ा। उग्रवादी नेता तिलक ने अपने युवक अनुयायियों के मन को इतना उत्तेजित कर दिया जो उनसे निजी तौर पर क्रांतिकारी कार्य कराने के लिए काफी था।

सर 1897 ई. में पूना के चिपलूणकर बंधुओं, दामोदर और बालकृष्ण ने दो बदनाम अंग्रेज अधिकारियों की हत्या कर दी थी। बंगाल के विभाजन के बाद की घटनाओं ने बहुत से

युवक भारतीयों की क्रांतिकारी भावना को उभार दिया । विपिन चन्द्र पाल तथा अन्य नेताओं ने बंगाल के बंटवारे को समाप्त करने के लिए जुलूस निकाले । अरविन्द घोष ने क्रांतिकारी गतिविधियों की योजना बनाई । ब्रिटिश सरकार ने जनता की ओर ध्यान देने की बजाय दमनकारी कानून पास किए और बड़े–बड़े नेताओं को कैद कर लिया । जब ब्रिटिश सरकार ने लोकमत की पूर्ण उपेक्षा शुरू कर दी, जुलूसों पर प्रतिबंध लगा दिए और हजारों लोगों को अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन करने के कारण जेलों में डाल दिया और उनपर घोर अत्याचार किए तो कुछ देशभक्तों के पास क्रांतिकारी आन्दोलन चलाने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रहा।

8.3 क्रान्तिकारियों के उद्देश्य. और कार्य पद्धति

क्रांतिकारी सरकार के विरुद्ध गुप्त सभाएं करते थे, लोगों को राष्ट्रीय विचारों द्वारा जागृत करते और उनको संगठित करते थे । वे सेना में विद्रोह फैलाने का प्रयत्न करते थे । क्रांतिकारी अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने के लिए त्याग और बलिदान के लिए तैयार रहते थे । उनका उद्देश्य अंग्रेजों को मारने का नहीं था। अंग्रेज अधिकारियों से तो वे उस समय बदला लेते थे, जब वे देशभक्तों पर बहुत अधिक अत्याचार करते थे । अत: क्रांतिकारियों का उद्देश्य समाज में आतंक फैलाना नहीं था, बल्कि अत्यंत अत्याचारी अंग्रेज अधिकारियों के मन में यह आतंक पैदा करना अवश्य था कि जनता पर अत्याचार करना उनके लिए मौत से खेलना है।

अंग्रेजों ने इन क्रांतिकारियों को हत्यारे और आतंकवादी की संज्ञा दी । उनका ऐसा कहना स्वाभाविक था क्योंकि क्रांतिकारी विदेशी सत्ता का अन्त करना चाहते थे । क्रांतिकारी देश को मुक्त कराकर, सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे । अत: उन्हें आतंकवादी कहना अनुचित है क्योंकि उनका उद्देश्य समाज में आतंक का राज्य स्थापित करना नही था । वे तो अत्याचारी शासकों को आतंकित करना चाहते थे । इसके अतिरिक्त वे न तो हत्यारे थे और न ही डाकू । उन्हें हम क्रांतिकारी इसलिए कहते है कि उनका उद्देश्य क्रांति द्वारा भारत को स्वतन्त्र करना था। वे असमानताओं पर आधारित समाज को बदलकर समानता के आधार पर राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। क्रांतिकारी अपने साहित्य द्वारा राष्ट्रीय भावना का प्रचार करना चाहते थे । वे मातृभूमि के नाम पर सैनिकों को अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करना चाहते थे । वे संगठित क्रांति के लिए योजना बनाते थे । कुछ भ्रान्तियों के अनुसार क्रांतिकारियों के साहसिक कार्यो को, अंग्रेजी सरकार के प्रति मात्र बदले की भावना से प्रेरित बताया गया लेकिन यह कहना अनुचित है । क्रांतिकारी अंग्रेजों से केवल बदला ही नहीं लेना चाहते थे बल्कि उन्हें भविष्य के लिए चेतावनी भी देना चाहते थे, कि उनकी दमन–नीति बहुत दिन तक जारी नहीं रह सकती, क्योंकि क्रांतिकारी भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए कटिबद्ध है ।

क्रांतिकारियों ने बम, पिस्तौल और आतंक के निजी कामों का रास्ता अपनाया । सविनय अवज्ञा और संवैधानिक आन्दोलन पर से उनका विश्वास उठ गया। उन्होंने सोचा कि अंग्रेजों को निश्चय ही ताकत से पछाड़ना होगा । बारिसाल अधिवेशन (1906) को पुलिस द्वारा भंग कर दिये जाने के बाद क्रांतिकारियों के विश्वास को अभिव्यक्ति देते हुए युगान्तर ने एक संपादकीय में लिखा – "निदान स्वयं जनता के पास है । दमन के अभिशाप को रोकने के लिए भारत में बसने वाले तीस करोड़ लोगों को अपने साठ करोड़ हाथ उठाने ही चाहिए । निश्चय ही, ताकत को ताकत से रोकना होगा ।"

इन युवक क्रांतिकारियों ने ऐसी क्रांति को संगठित या आयोजित यही किया जो हिंसा पर आधारित हो और उसमें सारा देश और उसकी जनता शामिल हो । उन्होंने आयरी आतकवादियों और रूसी निषेधवादियों के चरण चिन्हों पर चलने का किया। वे जनता को राजनैतिक दृष्टि से उभारना चाहते थे और अन्ततः अंग्रेजों को से खदेड़ना चाहते थे । इन नेताओं पर फ्रांसीसी क्रांति, इतालवी पुनर्जागरण, अमरीका के स्वतन्त्रता संग्राम और आगे चलकर सिन फिनर्स और रूस की समाजवादी क्रांति का प्रभाव था।

8.4 क्रांतिकारी आन्दोलन के दो चरण

क्रांतिकारी गतिविधियों को हम दो चरणों में विभाजित कर सकते है –

1. प्रथम चरण सर 1906– 1914 तक
2. द्वितीय चरण सर 1915– 1932 तक । ।

8.5.1 क्रांतिकारी आतंकवादी गतिविधियों का प्रथम चरण (1906–1914)

क्रांतिकारी गतिविधियों के प्रथम चरण में अपने भावी कार्यक्रम बारे में क्रांतिकारी स्पष्ट नहीं थे । वे सिर्फ इतना ही जानते थे कि विदेशी राज्य को "आन्दोलन के माध्यम से उखाड़ा नहीं जा सकता ।" वे इसी नतीजे पर पहुंचे थे कि एक बुरे शासन को हिंसा के द्वारा ही हटाया जा सकता है । उन्होंने व्यक्तिगत हिंसा को महिमा प्रदान की और विद्यार्थियों तथा नौजवानों को बारूद आदि बनाने की शिक्षा देने के लिए संगठित करने का फैसला किया । इस समय क्रांतिकारी नेता राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत थे । मगर इस में जनता को साथ लेकर चलने और स्वतन्त्र भारत में कैसा समाज बनाया जाना चाहिए, विषयों की तरफ उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया।

क्रांतिकारियों में इस समय दो विचारधाराएं थीं और उनकी गतिविधियों के दो केन्द्र थे । कुछ नेता अंग्रेजों से सशस्त्र आन्दोलन करने के लिए भारतीय सेना की। और यदि संभव हो तो अंग्रेजों की विरोधी विदेशी ताकतों से भी सहायता लेने में विश्वास रखते थे । दूसरी विचारधारा के नेता देश में हिंसात्मक कार्यक्रम जैसे ब्रिटिश अफसरों, पुलिस वाले लोगों की हत्या करने की नीति में विश्वास रखते थे। दूसरी विचारधारा के नेता देश में हिंसात्मक कार्यक्रम जैसे – ब्रिटिश अफसरों, पुलिस और क्रांतिकारी नेताओं के विरुद्ध सूचना देने वाले लोगों की हत्या करने की नीति में विश्वास करते थे । आन्दोलन के पहले चरण में पहली विचारधारा पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अधिक प्रचलित थी और दूसरी विचारधारा को बंगाल और महाराष्ट्र में अधिक समर्थन मिला।

क्रांतिकारी गतिविधियां लगभग सारे भारत में फैली। विभिन्न राज्यों में क्रांतिकारी गतिविधियां इस प्रकार थी –

बंगाल में क्रांतिकारी गतिविधियां

बंगाल में क्रांतिकारी घटनाएं बंग–भंग और उसके विरुद्ध आन्दोलन के साथ शुरू हुई । "अनुशीलन समिति" बंगाल की पहली क्रांतिकारी संस्था थी । इसे 1907 ई. में बारीन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्र दत्त के नेतृत्व में स्थापित किया गया । कई समान विचार वाले शिक्षित युवाजन इसमें सम्मिलित हुए। अनुशीलन समिति के अतिरिक्त इसी तरह की अनेक गुप्त समितियां, जैसे – साधना समाज, शक्ति समिति, युगान्तर समिति आदि भी स्थापित की गई । "भवानी मंदिर" नामक पुस्तक में क्रांतिकारियों की संस्था स्थापित करने की योजना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया

गया। दूसरी पुस्तक "वर्तमान रणनीति" में उन्होंने युद्ध के नियमों के बारे में लिखा और युवकों से सैनिक शिक्षा लेने की अपील की । "युगान्तर" और संध्या जैसी पत्रिकाओं में सशस्त्र विद्रोह करने पर प्रचार किया गया। अनुशीलन समिति के दो सदस्य बारूद बनाने की शिक्षा लेने जापान गए और वापिस आने पर कलकत्ता के पास मानिकतला में बम बनाने शुरू किए ।

ब्रिटिश राज्य का तख्ता उलटने के लिए क्रांतिकारियों ने छह–सूत्रीय कार्यक्रम बनाया जो इस प्रकार था

1. प्रेस के द्वारा जोरदार प्रचार के माध्यम से शिक्षित वर्ग में ब्रिटिश राज्य के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न करना
2. देश में शहीदों की जीवनियों को संगीत और नाटक द्वारा लोगों के सामने रखकर मातृभूमि के प्रति प्रेम जागृत करना
3. जलसे, जुलूस, हड़तालें आदि करके दुश्मन को व्यस्त रखना,
4. सैनिक शिक्षा, व्यायाम, धार्मिक कार्यक्रम, शक्ति–पूजा इत्यादि के लिए युवकों को भर्ती करना,
5. हथियार प्राप्त करना, बम बनाना, बंदूकें इत्यादि चोरी करना, विदेशों में शस्त्र खरीदकर देश में चोरी–छुपे लाना,
6. चंदे और डकैती के जरिए पैसा इकट्ठा करना आदि ।

सन 1907–09 के बीच बंगाल में क्रांतिकारियों ने महत्वपूर्ण कार्य किए । 6 दिसम्बर 1907 को मिदनापुर के पास लेफ्टिनेंट गवर्नर की गाड़ी को बम से उड़ाने का प्रयास किया गया । इसी तरह ढाका के प्रथम जिला मजिस्ट्रेट एलन को भी 23 दिसम्बर, 19०7 को कत्ल करने का प्रयास किया गया जो असफल रहा । क्रांतिकारी आतंकवादी की तरफ जनता का ध्यान गंभीरतापूर्वक तब गया, जब खुदीराम बोस औr प्रफुल्ल चाकी नाम के दो क्रांतिकारी युवकों ने 30 अप्रैल सन 1908 को मुजफ्फरनगर के मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड की हत्या का प्रयत्न किया । इस बम से दो निर्दोष अंग्रेज महिलाएं सुश्री कैनेडी और श्रीमती कैनेडी मारी गई । खुदीराम बोस को गिरफ्तार कर लिया गया । प्रफुल्ल ने समर्पण करने के स्थान पर आत्महत्या कर ली । अलीपुर में अरविंद घोष, उनके भाई बारीन्द्र और अन्य लोगों पर षड्यन्त्र के आरोप में मुकदमा चला। लेकिन जेल के अहाते में ही क्रांतिकारी आतंकवादियों द्वारा मुखबिर की हत्या कर दिये जाने से मुकदमें की सुनवाई में बाधा पैदा हो गई थी । जांच करने वाले अधिकारियों और इस्तगासे की पैरवी करने वालों की भी एक–एक करके हत्या कर दी गई । अरविन्द छूट गए लेकिन अगली पंक्ति के उसके चार साथियों को देश निकाला देकर अंडमान भेज दिया गया। कई अन्य लोगों को जेल की लम्बी सजाएं दी गयी । खुदीराम को फांसी दी गई । मुखबिर की हत्या करने वाले सत्येन बसु और कान्हाई दत्त को फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया। शहीद खुदीराम बंगाल में अत्यन्त प्रसिद्ध हुए घर–घर में उनके चित्र लगाए गए । लोक गीतों में उनकी प्रशंसा गाई जाने लगी। युवकों ने अपनी धोतियों और पोशाकों के किनारे पर खुदीराम का नाम छपवाया।

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार 1907–17 के बीच 64 आदमी मारे गए जिनमें पुलिस अधिकारी, वकील, पुलिस को सूचना देने वाले मुखबिर, क्रांतिकारियों के विरुद्ध गवाही देने वाले लोग शामिल थे । सरकारी सूत्रों के अनुसार इन्हीं वर्षो में 112 डकैतियां, 12 बम विस्फोट और तीन रेल गाड़ियों को उलटने की कोशिश की गई ।

"अनुशीलन समिति" ने बंगाल से बाहर, बिहार में पटना, देवोधर, डुमका और उत्तर प्रदेश में वाराणसी तथा इलाहाबाद में क्रांतिकारी संस्थाएं स्थापित की । यहां भी बंगाल की तरह कार्यक्रम बनाया गया। सरकारी सूत्रों में सत्येन्द्र सान्याल की गतिविधियों का विस्तृत विवरण मिलता है ।

महाराष्ट्र में क्रांतिकारी गतिविधियां

महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आन्दोलन का उदय बंगाल से भी पहले 1899 ई. में हुआ, जब प्लेग कमीश्नर लेफ्टिनेंट रैड और उसके सहायक असिस्टेंट की हत्या चापेकर बंधुओं, दामोदर और बालकृष्ण ने की। यहां क्रांतिकारी आन्दोलन के अन्य नेता। श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर तथा गणेश सावरकर थे। इन नेताओं का कथन था, "प्राण देने से पहले प्राण ले लो।" रैण्ड की हत्या का षड्यंत्र बनाने में श्यामजी कृष्ण वर्मा का हाथ था, अत: भारत की अंग्रेजी सरकार से बचने के लिए वे लन्दन चले गए । सावरकर बंधु विनायक दामोदर सावरकर और गणेश सावरकर ने "अभिनव भारत" नामक संस्था की स्थापना सन 1906 में की । महाराष्ट्र के विभिन्न शहरों के साथ–साथ पूना और बंबई की कई कालेजों में भी "अभिनव भारत" की शाखाएं खोली। देश के अन्य प्रान्तों में भी इसकी शाखाएं खोली गई । इस संस्था की गतिविधियों में बम बनाना, घुड़सवारी, शस्त्र चलाने के प्रशिक्षण आदि कार्यक्रम शामिल थे। अभिनव भारत ने क्रांतिकारी पुस्तिकाओं के प्रकाशन एवं वितरण, गणपति और शिवाजी उत्सव तथा राष्ट्र–भक्ति गीतों द्वारा राष्ट्रवादी भावनाएं जागृत करने का प्रयास किया। इस संस्था का वार्षिक सम्मेलन गुप्त रूप से आयोजित किया जाता था। इसका एक उद्देश्य कहीं से भी किसी प्रकार शस्त्र एकत्र करना था। बम बनाना सीखने के लिए वी. एन. बापट को पेरिस भेजा। उसने यह कार्य हेमचन्द्र दास और मिर्जा अब्बास के साथ मिलकर किया । इन्होंने मिलकर बन बनाने की प्रक्रिया सिखाने वाली एक रुसी पुस्तक "बम मैन्युअल" की एक प्रति प्राप्त की। इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद कर, इसकी प्रतियां भारत भेजी गई । सर 1906 में विनायक दामोदर सावरकर (वीर सावरकर) लन्दन चले गये। उन्होंने वहां भी "अभिनव भारत" की स्थापना की। उन्होंने मिर्जा अब्बास, सिकन्दर हयात् और अन्य लोगों के साथ कई पिस्तौले भारत भेजी। चतुर्भुज नामक एक व्यक्ति एक बक्से के तले में 20 पिस्तौलें भारत लाने में, सफल रहा। "अभिनव भारत" ने बंबई, पूना और नासिक में बम बनाने के लिए गुप्त कारखाने स्थापित किए ।

गणेश सावरकर को ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रवादी कविताएं लिखने के अपराध में 9 जून, 1909 को देश से आजीवन निर्वासन का आदेश दिया। इस समय सर कर्जन वाइली भारत सचिव के मुख्य परामर्शदाता थे। वह भारत सचिव और भारत सरकार पर वास्तविक नियंत्रण रखता था। गणेश सावरकर के देश निर्वासन में उसका हाथ था। बुलाई 1909 में मदनलाल ढींगरा ने इसे गोली मार दी।

पंजाब मे क्रांतिकारी गतिविधियां

पंजाब में क्रांतिकारी गतिविधियां 1904 से ही आरंभ हो चुकी थी, जब सहारनपुर के कुछ युवाओं ने एक गुप्त संस्था बनाई, और भारत की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने का प्रण किया। शीघ्र ही लाला लाजपतराय, सूफी अंबा प्रसाद और अजीतसिंह इसके सदस्य बन गये।

पंजाब मे गुप्त संगठन बार–वार अकालों और लगान तथा सिंचाई कर में वृद्धि के कारण फला –फूला। नहरी बस्तियों में रहने वालों को भय था कि उनकी मिलकियत के अधिकारों को बाधित किया जायेगा। बेगार–प्रथा ने भी आक्रोश को जन्म दिया। 1857 के विप्लव की 58वी जयन्ती निकट आ रही थी। क्रांतिकारियों द्वारा बार–बार सिख रेजीमेंट को विद्रोह करने का आह्वान किया जा रहा था। अंग्रेजी सरकर ने उपनिवेशन बिल द्वारा पंजाब में जमीन संबंधों का आधार बदलने का प्रयास किया।

पंजाब के क्रांतिकारी नेताओं ने इसके विरोध में एक उग्रवादी आन्दोलन को जन्म दिया। यह पंजाब में अपने प्रकार का पहला क्रांतिकारी आन्दोलन था। ये लगातार बंगाल के क्रांतिकारियों के सम्पर्क में रहे और इन्हें स्वदेशी आन्दोलन से भी सीख मिली। इन नेताओं ने भी अन्य स्थानों की तरह सभाओं और क्रांतिकारी साहित्य द्वारा लोगों में क्रांतिकारी विचारधारा फलाने का यत्न किया। इन क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी राज्य को सशस्त्र विद्रोह द्वारा उलटने की भी योजना बनाई । खर्च पूरा करने के लिए सरकारी खजानों, डाकखानों इत्यादि को लूटने की भी योजना बनाई गई। सरकार ने लाला हरदयाल, अजीतसिंह को जून 1907 में बर्मा के मांडले जेल में भेज दिया। इससे देश भर में रोष व्याप्त हो गया। कांग्रेसी नेता और जन दबाव के कारण सरकार को लाला हरदयाल और अजीतसिंह को रिहा करना पड़ा। रिहा होते ही उन्होंने अपनी गतिविधियां फिर आरंभ कर दी। सरकार ने भी दमनकारी नीति अपनाई, उनके घरों पर छापे मारे और जिन प्रेसों में उनका साहित्य छपता था, उन्हें जष्ट कर लिया। कई क्रांतिकारी पुन: जेल भेज दिए गए। विवश होकर सूफी अंबा प्रसाद और अजीतसिंह देश छोड़कर अफगानिस्तान चले गये और वहां से उन्होंने यूरोप के लिए प्रस्थान किया। इन नेताओं के विदेश जाने पर, रासबिहारी बोस ने क्रांतिकारी गतिविधियां जारी रखी । उनके दल ने ही 1911 में लार्ड हार्डिंग पर दिल्ली में बम फेंकने का कार्य किया।

अन्य राज्यों मे क्रांतिकारी गतिविधियां

पंजाब, बंगाल और महाराष्ट्र के साथ–साथ भारत के अन्य राज्यों में भी क्रांतिकारी गतिविधियां हुई। बंगाल के विभाजन के बाद राजस्थान में भी क्रांतिकारी संगठन की स्थापना हुई। सचीन्द्र सान्याल ने अपने दो साथियों को बम लेने खैरवा भेजा। बंगाल के दो अन्य क्रांतिकारियों को कुचामन के ठाकुर ने 1908– 1911 के बीच शरण दी। 1911 ई. तक इस स्थानीय संगठन में बहुत से युवाओं ने सदस्यता ग्रहण की। उन्हें दिल्ली के प्रसिद्ध क्रांतिकारियों जैसे – अमीरचन्द, अवध बिहारी और बालमुकुन्द से प्रशिक्षण दिलवाने दिल्ली भेजा गया। क्रांतिकारी युवकों ने जोधपुर के महन्त की हत्या धन एकत्र करने के उद्देश्य से गई ।

जयपुर में अर्जुनलाल सेठी ने एक शिक्षण संस्थान खोला जो शीघ्र ही क्रांतिकारियों का केन्द्र बन गया। यहां छात्रों को बंगाल के आदर्श क्रांतिकारियों के उदाहरण देकर उनसे प्रेरणा लेने की सीख दी जाती थी । उन्हें यह पाठ पढ़ाया जाता था कि स्वराज प्राप्त करने के लिए डकैती, रिवाल्वर पिस्तौलें बन आदि आवश्यक है । इस संस्था के तीन छात्रों ने 1913 ई. में एक मन्दिर की तिजौरी लूटने के उद्देश्य से महन्त की हत्या की । परन्तु वे लोहे की तिजोरी नहीं तोड़ पाये । इस असफलता के बाद भी उनका उत्साह कम नही हुआ और उन्होंने क्रांतिकारी कार्य जारी रखे ।

वाराणसी भी क्रांतिकारियों का गढ़ था । यह रासबिहारी बोस और सचीन्द्र सान्याल का मुख्यालय था। मद्रास में भी कई क्रांतिकारी गतिविधियां हुई । एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार

ऐसा विपिन चन्द्र पाल के एक प्रेरणादायक भाषण से हुआ । यहां के प्रमुख क्रांतिकारी चिदम्बरम् पिल्लई थे, जिन्होंने स्पष्ट रूप से पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग रखी। सन 1908 ई. में उनकी गिरफ्तारी के बाद तूतीकोरन और तिन्नावेली में भीषण दंगे हुए जिसमें सार्वजनिक इमारतें, फर्नीचर और रिकार्ड जला दिए गए । "भारत माता संघ" नामक एक गुप्त संस्था बना ली गई । इसके सदस्यों ने जो सावरकर के शिष्य थे, युवाओं को पिस्तौल चलाना, हत्या आदि करना सिखाया । इस संस्था के एक सदस्य वांची अय्यर ने तिन्नावेली के जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर एशे की हत्या की । उन्होंने तिन्नावेली के दंगे का दमन किया था। इस क्रांतिकारी ने शपथ द्वारा ब्रिटिश सरकार को सूचित किया कि यह हत्या उन 3000 मद्रासियों के शपथ का प्रतीक है, जो सम्राट जार्ज पंचम को भारत में पहुंचते ही समाप्त कर देंगे । 13 नवम्बर 1909 को गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो और लेडी मिंटो की गाड़ी पर अहमदाबाद में बम फैका गया।

23 दिसम्बर, 1912 को जब भारत के गवर्नर जनरल लार्ड । हार्डिंग दिल्ली के चांदनी चौक से राजकीय जुलूस के साथ निकल रहे थे, तब उनके ऊपर बम फेंका गया, जिससे वे जख्मी हो गये और उनका अंगरक्षक मारा गया । इस षड्यंत्र नेता रास बिहारी बोस थे जो भागने में सफल हुए । मगर अन्य षड्यन्त्रकारियों, अवध बिहारी, हमीरचंद, बाल मुकुन्द और बसंत कुमार को फांसी की सजा दी गई । बलवंतसिंह और हनुवंत सहाय को आजीवन कारावास का दंड दिया गया। यह घटना दिल्ली षड्यंत्र मुकदमे के नाम से जानी जाती है ।

8.5.2 विदेशों में क्रांतिकारी गतिविधियां

लंदन में क्रांतिकारी कार्य :

आरम्भ से ही क्रांतिकारी विदेशों में अपने केन्द्र स्थापित करने के महत्व को पहचानते थे। उन्होंने उन देशों से सहायता प्राप्त करने की योजना बनाई जिनके संबंध ब्रिटेन से मित्रतापूर्ण नहीं थे । इसके अतिरिक्त वे हथियार प्राप्त करके गुप्त रूप से अपने भारतीय मित्रों के पास भेजते थे। सर्वप्रथम इसका उदाहरण श्यामजी कृष्ण वर्मा ने दिया जो 1897 में लन्दन में बस गए थे। उन्होंने विदेशों में पढ़ने वाले भारतीय छात्रों के लिए 1000 रुपये वार्षिक की छः छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की। एक अन्य क्रांतिकारी सरदार सिंह राणा ने 2000 रुपये वार्षिक की तीन छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की। बहुत से भारतीय क्रांतिकारी इनसे जुड़ गए जिनमें सावरकर, हरदयाल, मदनलाल ढींगरा, मेडम कामा, भाई परमानन्द आदि प्रमुख थे।

कुछ अंग्रेज मित्रों की सहायता से इन्होंने इंडियन सोशियोलोजिस्ट नाम से एक समाचार पत्र आरंभ किया जिससे अंग्रेजों के समक्ष भारतीय दृष्टिकोण रखा जा सके और भारतीयों की शिकायतों को प्रकाश में लाया जा सके । उन्होंने 1905 ई. में "होम रूल सोसायटी" और "इंडिया हाऊस" की स्थापना की । छात्रवृत्ति पर लंदन आने वाले भारतीय छात्रों के इंडिया हाऊस में रहने की सस्ती जगह प्राप्त हो जाती। साथ ही लंदन में रहने वाले भारतीयों के लिए भी ऐसी जगह प्राप्त हो गई जहां वे एक दूसरे से मिल सकते थे और अपने विचारों का आदान–प्रदान कर सकते थे । श्यामजी कृष्ण वर्मा के नेतृत्व में होम रूल आंदोलन को इंग्लैण्ड में लोकप्रियता प्राप्त हुई । एक ही वर्ष में इसकी सदस्य संख्या 119 हो गई । इंग्लैण्ड की लोकतांत्रिक चेतना और श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा गठित राजनैतिक गतिविधियों से अनेक भारतीय नवयुवकों में सोई हुई राष्ट्रीय भावना जाग उठी । आरंभ से ही श्यामजी कृष्ण वर्मा सक्रिय प्रतिरोध की क्षमता से सहमत थे

क्योंकि वे इसे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए एक प्रबल अस्त्र मानते थे । आगे चलकर उन्होंने अपने लक्ष्य की प्राप्ति में शक्ति के इस्तेमाल का खुलकर प्रचार किया । उनका यह विश्वास था कि भारत में अत्याचारी विदेशी शासन को हिंसक साधनों से ही समाप्त किया जा सकता है और इसका एकमात्र प्रभावी रास्ता है रूसी क्रांतिकारियों की पद्धति।

इस गुट के अन्य महत्वपूर्ण सदस्य थे, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, वी. एस. अय्यर, तिरुमल आचार्य आदि । जब जी एस. खपरडे, लाला हरदयाल, समभुज दल और विपिनचन्द्र पाल इंगलैंड आ गए तो लन्दन क्रांतिकारियों का एक सक्रिय केन्द्र हो गया । ब्रिटिश सरकार का ध्यान श्यामजी कृष्ण वर्मा की गतिविधियों की ओर गया । ब्रिटिश समाचार पत्र उनकी आलोचना करने लगे । अत: वर्मा (1907) में लंदन छोड़कर पेरिस चले गये। इंडिया हाउस का दायित्व अब वीर सावरकर के हाथ में आ गया ।

सावरकर, श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा चलाई "छत्रपति शिवाजी" छात्रवृत्ति के मिलने पर बैरिस्ट्री पढ़ने लंदन गए थे । 1907 ई. में अंग्रेजों ने 1857 की क्रांति को सफलतापूर्वक दबाने की प्रसन्नता में जब अर्ध शताब्दी मना रहे थे । इसका विरोध करने के लिए वीर सावरकर ने 8 मई 1908 ई. को इंडिया हाउस में 1857 के स्वतन्त्रता दिवस की अर्ध शताब्दी बहुत ही धूमधाम से मनाई । उन्होंने इस अवसर पर एक पुस्तक "1857 ईस्वी का स्वतंत्रता संग्राम" लिखी । पहले यह मराठी में लिखी गई, बाद में इसका अनुवाद अंग्रेजी में कराया गया । जब भारत में वीर सावरकर के भाई गणेश सावरकर को नासिक षड्यन्त्र केस के अन्तर्गत 8 जून 1909 को देश निर्वासन की सजा दी गई, तब वे पेरिस में थे । अन्य नेताओं के मना करने पर भी वे लंदन पहुंच गये जहां उन्हें पहुंचते ही 13 मार्च 1910 को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें भारत लाया गया और 22 मार्च 1911 को 50 वर्ष की कैद में अण्डमान भेज दिया गया।

गणेश सावरकर के देश निर्वासन में भारत सचिव के मुख्य परामर्शदाता सर कर्जन वाइली का हाथ था। भारत सचिव और भारत सरकार पर उनका ही वास्तविक नियंत्रण था । वे इंगलैंड में आये हुए भारतीय विद्यार्थियों पर कड़ी निगरानी रखते थे । वे क्रांतिकारियों को भी बहुत तंग करते थे। अत: वीर सावरकर की प्रेरणा से एक सभा में 1 जुलाई, 1909 को सर कर्जन वाइली को मदल लाल ढींगरा ने गोली से उड़ा दिया । ढींगरा को वही गिरफ्तार कर लिया गया । उन्हें 16 अगस्त, 1909 को मृत्यु दण्ड मिला ।

सावरकर पर मुकदमा चलने के बाद लंदन के क्रांतिकारियों ने महसूस किया कि लंदन अब सुरक्षित नहीं है । अत: वे पेरिस या अन्य यूरोपीय देशों की राजधानियों में चले गये। पेरिस इंडियन सोसाइटी से जुड़े प्रमुख भारतीय थे मैडम कामा, टी. आचार्य, सरदार सिंह राणा, के आर. कोटवाल आदि ।

लन्दन में ही सरदार सिंह राणा और मैडम कामा ने क्रांतिकारी साहित्य की रचना में श्यामजी कृष्ण वर्मा का साथ दिया । राणा क्रांतिकारियों के पत्र, "वंदे मातरम्", "तलवार". और "इंडियन फ्रीडम" से जुड़े रहे । उन्होंने 1909 ई में बीस ओटोमेटिक शाइनिग पिस्तौलें और गोलियां भारत भेजी थीं । इसी के द्वारा ढाका के मजिस्ट्रेट जैक्सन की हत्या की गई । प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ होने पर उन्हें मार्तिनिक द्वीप भेज दिया गया और युद्ध की समाप्ति पर ही उन्हें लन्दन लौटने की अनुमति मिली ।

मैडम भीकाजी कामा ने 30 वर्षों तक भारतीय स्वतन्त्रता के लिए इंग्लैंड और फ्रांस में काम किया। अगस्त 1907 में जर्मनी के स्टुअर्ट गार्ट नगर में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में सरदार सिंह राणा और मैडम कामा ने भारत का प्रतिनिधित्व किया । मैडम कामा ने यहां भारतीय स्वतंत्रता के झण्डे को फहराया। 20 सितम्बर को लन्दन के कैक्सटन हाल में भारतीय देश –भक्तों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें खापर्ड़े सभापति थे । इस सम्मेलन में लाला लाजपतराय और विपिन चन्द्र पाल ने भी भाग लिया। मैडम कामा ने इसमें विदेशी वस्तुओं वो बहिष्कार का प्रस्ताव रखा। विश्व युद्ध के समय उन्हें विशी नामक टापू पर भेज दिया गया । मैडम कामा और सरदार सिंह राणा के एक अन्य महत्वपूर्ण साथी थे– बारिन्द्र चट्टोपाध्याय, जो सरोजिनी नायडू के भाई थे ।

कनाडा में क्रांतिकारी कार्य :

भारत और यूरोप से क्रांतिकारी आन्दोलन कनाडा और अमेरिका भी पहुंचा। 20वीं सदी के आरंभ से ही पंजाब के लोग नियमित रूप से विदेशों में जाकर बस रहे थे । इनमें से अधिकतर बर्मा, मलाया, सिंगापुर, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में जाकर बस गये । आन्तरिक शक्तियों के दबाव के कारण कनाडा सरकार पंजाबी अप्रवासियों के खिलाफ रंगभेद की नीति अपना रही थी । तंग आकर भारतीयों ने पोर्टलैंड में "हिन्दुस्तान एसोशिएसन ऑफ दि पैसिफिक कोस्ट" नामक संस्था की स्थापना की । इस संस्था के अध्यक्ष थे मोहन सिंह भखना । इस संस्था का उद्देश्य विदेश में रहने वाले भारतीयों के अधिकारों की रक्षा करना और भारत की आजादी के लिए भारतीयों में चेतना उत्पन्न करना था। इस संस्था ने गदर नामक एक अखबार निकाला, जिससे संस्था का नाम भी गदर पार्टी पड़ गया। इस संस्था के मुख्य सदस्य थे – लाला हरदयाल, पंडित काशीनाथ, भाई परमानन्द, करतारसिंह सराबा और रामचन्द्र । गदर पार्टी क्रांतिकारियों से कुछ भिन्न थी क्योंकि इन्होंने पहली वार गुरिल्ला युद्ध पद्धति द्वारा भारत को स्वतंत्र कराने की योजना बनाई । इस आन्दोलन से अमेरिका और दूसरे देशों के भारतीय बहुत प्रभावित हुए और गदर पार्टी में सम्मिलित हो गये । गदर पार्टी ने एक प्रेरणादायक विज्ञापन प्रकाशित किया, "आवश्यकता है वीर सिपाहियों की" । वेतन – मृत्यु, पुरस्कार – शहादत, पेंशन – स्वतंत्रता और युद्ध स्थल – भारत ।

8.5.3 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान विदेशों में क्रांतिकारी गतिविधियां :

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान विदेशों में भी क्रांतिकारियों ने भारत को स्वतन्त्र कराने का प्रयास किया। उनके लिए ब्रिटेन की विपदा, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सुनहरा अवसर था। उनकी यह योजना थी कि जर्मनी की सक्रिय सहायता से तटस्थ अमेरिका को अपना केन्द्र बनाकर कुछ कार्य किया जाय। जर्मनी भी इन क्रांतिकारियों को सहायता देने के लिए आतुर था । बर्लिन में एक संस्था बना ली गई और अमेरिका में रहने वाले भारतीय क्रांतिकारियों से संपर्क स्थापित किया गया। जर्मनी सरकार ने धन और सेना – दोनों की सहायता देने का वचन दिया। 3 सितम्बर, 1914 को "जर्मन यूनियन ऑफ फ्रैन्डली इंडिया" नामक संस्था बनाई गई, जिसका अध्यक्ष कैसर का मित्र था। इस संस्था ने कई महत्वपूर्ण कार्य किये जैसे बम बनाना सिखाना तथा नये शस्त्र चलाना सिखाना, कुछ व्यक्तियों को युद्धबंदी शिविरों में ले लाया गया, जहां वे भारतीय युद्धबंदियों में अपनी विचारधारा का प्रचार कर सकें और नौ सैनिक अधिकारियों से

बातचीत की ताकि वे शस्त्र भारत पहुंचाने में उनकी सहायता करें । ये क्रांतिकारी कई पूर्वी देशों जैसे – जापान, चीन, फिलीपीन्स, स्याम, जावा आदि गये । यह तय हुआ कि स्याम में रहने वाले जर्मनवासी भारतीयों के साथ मिलकर बर्मा पर आक्रमण करेंगे । चीन में रहने वाले जर्मनवासी दो भागों में विभाजित होंगे । एक भाग स्याम जायेगा और दूसरा भाग बर्मा पर आक्रमण करेगा । शस्त्रों से भरे तीन बड़े जहाज भारत भेजे जायेंगे । पहले जहाज में 500 जर्मन सैनिक अधिकारी और 1000 जर्मन सैनिक होंगे, जो अंडमान जाकर राजनीतिक बंदियों को कैद से मुक्त कराकर कलकत्ता जायेगा । दूसरा जहाज कलकत्ता के एक अन्य स्थान पर जायेगा । जैसे ही बर्मा पर आक्रमण होगा बंगाल और पंजाब में भी क्रांतिकारी विद्रोह होगा और अफगानिस्तान तथा बलूचिस्तान की ओर से भारत पर आक्रमण किया जायेगा। परन्तु यह योजना क्रियान्वित न हो सकी ।

अमेरिका में भी क्रांतिकारियों ने काम किये । रामचन्द्र नामक एक व्यक्ति को बर्लिन स्वतन्त्रता समिति ने भारत में शस्त्र और सैनिक भेजने का कार्य सौपा । वे जर्मन व्यापारियों और अधिकारियों की सहायता से शंघाई और स्वातो के चीनी बंदरगाहों से स्याम पहुंचते और वहां से चुपचाप भारतीय सीमा में प्रवेश कर लेते । अमरीका स्थित जर्मन दूतावास ने भारत में शस्त्र भेजने की एक विस्तृत योजना बनाई । लगभग 10,000 सैनिकों के लिए शस्त्र खरीदकर जनवरी 1915 में कैलिफोर्निया भेजे गये । यहां से उसे एक अन्य जहाज द्वारा एक सुनसान स्थान पर ले जाना था जहां ये शस्त्र एक तेल के जहाज के खाली टैंकर में भारत भेजे जाने थे । दुर्भाग्यवश तेल का जहाज नियत स्थान पर शस्त्र लेने नहीं पहुंच पाया ।

फरवरी 1916 में बर्लिन समिति ने चन्द्रकान्त चक्रवर्ती को अमेरिका भेजा । उसने अपना एक एजेन्ट जापान से सहायता प्राप्त करने भेजा और एक अन्य प्रतिनिधि वेस्ट इन्डीज में रहने वाले भारतीयों को अपील करने भेजा। इन कार्यों का सम्पूर्ण खर्च जर्मन सरकार उठा रही थी । तारकनाथ दास ने भी जापान सरकार की जर्मनी के साथ संधि कराने का प्रयास किया, परन्तु जापानी नेता सनयातसेन जर्मनी के साथ कोई संधि नहीं करना चाहता था । अत: भारतीय क्रांतिकारियों को चीन और जापान के प्रभावशाली व्यक्तियों से केवल सहानुभूति मिली, सहायता नहीं । प्रशान्त महासागर के तटीय देशों में रहने वाले सिख चन्द्रकान्त चक्रवर्ती के खिलाफ थे । वे रामचन्द्र के नेतृत्व के भी खिलाफ थे । मार्च 1917 में चक्रवर्ती को न्यूयार्क में गिरफ्तार कर लिया गया । अमेरिका के विश्वयुद्ध में भाग लेने के अगले ही दिन रामचन्द्र और सोलह अन्य भारतीय क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

जर्मन सहायता से भारत में क्रांति की योजना असफल हो जाने के बाद भी भारतीय क्रांतिकारी जर्मनी की सलाह पर कार्य कर रहे थे । उन्हें जर्मनी से यथेष्ट आर्थिक सहायता प्राप्त हो रही थी। अब्दुल हफीज और अन्य व्यक्तियों को शिकागो स्थित जर्मन कौन्सल ने धन दिया । प्रसिद्ध क्रांतिकारी बरकतुल्ला जर्मन शिविर में युद्ध बंदियों में क्रांति का प्रचार कर रहे थे । इसी समय सिंगापुर और स्याम में भी क्रांतिकारियों ने विद्रोह किए ।

सिंगापुर की नियमित सेना में एक ब्रिटिश बटालियन और एक भारतीय बटालियन पांचवी लाइट इन्फेन्ट्री बटालियन थी । बिट्रिश बटालियन इस समय इंग्लैंड भेज दी गई । पाँचवी लाइट इन्फेन्ट्री में इस समय अधिकतर भारतीय मुसलमान थे । 15 फरवरी 1915 को हांगकांग रवाना होने से पहले इस भारतीय बटालियन ने विद्रोह कर दिया । योजना के अनुसार विद्रोहियों ने स्वयं

को तीन भागों में विभाजित किया, यह तय हुआ कि पहला भाग जर्मन युद्धबंदियों को रिहा करायेगा। दूसरा कमाडिंग आफीसर के घर पर आक्रमण करेगा और तीसरा सिंगापुर के बाहर से कोई सहायता नहीं पहुंचने देगा । पहली टुकड़ी ने युद्ध बंदी शिविर पर आक्रमण किया किन्तु जर्मन युद्धबंदियों ने उनकी सहायता करने से इन्कार कर दिया। कमाण्डर के घर पर किया गया आक्रमण सफल रहा। तीसरी टुकड़ी ने कई ब्रिटिश सैनिक अधिकारियों और नागरिकों को मौत के घाट उतार दिया। यह विद्रोह 17 मार्च तक चलता रहा । फ्रांसीसी और जापानी जल बेड़े की सहायता से 18 मार्च को इस विद्रोह का दमन किया गया । पांचवी लाइट इन्फेन्ट्री को भंग कर दिया गया।

स्याम में भी प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान कुछ गतिविधियां हुई । क्रांतिकारी हेरम्ब गुप्ता बर्लिन से सेनफ्रांसिस्को गए ताकि वे बर्मा–स्याम सीमा पर कुछ डिपो बनाये । इन डिपों से जर्मन अधिकारियों से प्रशिक्षित भारतीय क्रांतिकारी बर्मा पर आक्रमण करने का प्रयास करते । क्रांतिकारी सिख भगवान सिंह ने चीन, जापान और मनीला जाकर भारतीयों को लाने का प्रयास किया । परन्तु उनके आगमन के कुछ समय बाद ही अगस्त 1915 में गिरफ्तार कर लिया गया । कुछ साक्ष्य यह प्रमाणित करते है कि स्वेज नहर पर तैनात भारतीयों को भी प्रभावित करने का प्रयास किया गया । तुर्की में भारतीय युद्धबंदियों को मिलाकर एक रेजीमेन्ट बनाने का प्रयास किया गया, परन्तु यह हिन्दू–मुस्लिम द्वेष के कारण संभव न हो सका ।

इस सब प्रयासों में महत्वपूर्ण था राजा महेन्द्र प्रताप के नेतृत्व में एक भारत–जर्मन मिशन का काबुल भेजा जाना। राजा महेन्द्र प्रताप उत्तर प्रदेश के हाथरस के सरदार थे । विश्वयुद्ध आरंभ होते ही राजा महेन्द्र प्रताप यूरोप चले गये । वे जेनेवा में लाला हरदयाल से मिले और उनके साथ जर्मनी चले गये। वहां कैसर ने उनका स्वागत किया । राजा महेंद्र प्रताप ने कैसर, को प्रभावित कर 26 भारतीय नरेशों को क्रांतिकारियों को सहायता देने के लिए पत्र लिखवाये साथ ही एक प्रतिनिधि मण्डल काबुल भेजा । इस इंडो–जर्मन प्रतिनिधि मण्डल में राजा महेन्द्र प्रताप, मौलाना बरकतुल्लाह और जर्मन कूटनीति सेवा के एक अधिकारी सम्मिलित थे । मार्ग में यह मिशन इस्तांबूल रूका, जहां सुल्तान ने उसका स्वागत किया और अफगानिस्तान के अमीर के लिए एक पत्र भेजा। बरकतुल्लाह ने शेख–उल–इस्लाम से एक फतवा प्राप्त किया जिसमें भारतीय मुसलमानों को हिन्दुओ के साथ मिलकर कार्य करने को कहा गया । मार्ग में ईरानी सैनिकों का सामना करते हुए, यह मिशन बड़ी कठिनाई से अफगानिस्तान पहुंचा। काबुल सरकार ने मिशन के सदस्यों को शाही स्वागत किया। अफगानिस्तान को अमीर हबीबुल्ला की सहमति से 1 दिसम्बर को भारत की एक अस्थाई सरकार बनाई गई । इसमें राजा महेन्द्र प्रताप राष्ट्रपति बने और बरकतुल्लाह प्रधानमंत्री । अस्थायी सरकार और अफगान सरकार के बीच एक संधि भी हुई । जर्मन चांसलर के पत्र भारतीय नरेशों के पास भेजे गये । रूस के जार को भी पत्र भेजा गया। एक विशेष संदेशवाहक को पत्र लेकर नेपाल के राजा के पास भेजा गया । इन सब प्रयासों के बावजूद कोई सफल परिणाम नहीं आए और राजा महेन्द्र प्रताप बर्लिन लौट आए ।

8.5.4 प्रथम विश्व–युद्ध के दौरान भारत में क्रांतिकारी गतिविधियां :

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारत में भी बर्लिन समिति और गदा पार्टी की गतिविधियों का प्रभाव पड़ा। जैसे ही भारतीय क्रांतिकारियों को यह शत हुआ कि जर्मनी से भारी मात्रा में शस्त्र

आ रहे है, तो भारत में एक आम क्रान्ति की योजना बनाई गयी । उसके अन्तर्गत क्रांति के लिए शस्त्र आदि एकत्र कर उन्हें गुप्त स्थान पर रखने की योजना थी । इस योजना की प्रमुख जिम्मेदारी जतिन मुखर्जी और यदुगोपाल मुखर्जी पर थी। उन्हें यह अंदेशा था कि जर्मन तेल जहाज शस्त्र लेकर उड़ीसा में बालासोर के निकट पहुंचेगा और कुछ शस्त्र सुंदरबंस के रायमंगल नामक स्थान पर उतारे जायेंगे । यदुगोपाल एक जमींदार की सहायता प्राप्त कर रहे थे । शस्त्र उतारने के सारे इन्तजाम हो गए परन्तु शस्त्रों से भरा जहाज भारत पहुंचा ही नहीं । इधर जतिन मुखर्जी ने बालासोर के निकट एक फर्म की स्थापना कर ली थी ताकि उनका कार्य आसान हो जाय । इस फर्म को बटाविया से आर्थिक सहायता प्राप्त हो रही थी । इस आर्थिक सहायता की एक किश्त सरकार के हाथ लग गई और क्रांतिकारियों का पर्दाफाश हुआ । एक बार तो क्रांतिकारी भागने में सफल हुए परन्तु तीन दिन बाद एक मुठभेड़ में जतिन मुखर्जी बुरी तरह जख्मी होकर वीरगति को प्राप्त हुए ।

पंजाब में मुस्लिम षड्यंत्र :

साधारणतया मुसलमानों ने क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय भाग नहीं लिया परन्तु भारत के उत्तर–पश्चिमी सीमान्त के पार एक छोटा–सा मुस्लिम सम्प्रदाय "मुजाहिद्दीन सम्प्रदाय" अंग्रेजों के खिलाफ जिहाद करने के लिए कटिबद्ध था । तुर्की के विश्वयुद्ध में प्रवेश करते ही भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश विरोधी भावनाएं तीव्र हो गई । फरवरी 1915 में लाहौर से 15 छात्र, पेशावर और कोहत से कई छात्र मुजाहिद्दीनों से मिल गए और काबुल पहुंच गए । ये गतिविधियां पंजाब में ही सीमित नही थी। जनवरी 1917 में पूर्वी बंगाल में ढाका और रंगपुर के मुसलमान भी मुजाहिद्दीनों से जा मिले । इससे यह प्रमाणित होता है कि ये छुट पुट घटनाएं भारत में अंग्रेजों के खिलाफ मुस्लिम षड्यंत्र का या तो एक भाग थी या उससे प्रभावित थी । इस आंदोलन के मुखिया मौलवी ओबीद्दौला थे, जिनके सहायक थे मौलाना महमूद हसन। ये भारत के उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रान्त पर आक्रमण कर उसके साथ पूरे भारत में मुस्लिम विद्रोह कराकर ब्रिटिश शासन का अन्त कर देना चाहते थे । इसी उद्देश्य से ओबीद्दौला मुजाहिद्दीनों से मिले और गुप्त रूप से काबुल के लिए रवाना हो गए । वहां उन्हें भारतीय क्रांतिकारियों के साथ कैद कर लिया गया, परन्तु राजा महेन्द्र प्रताप के कहने पर छोड़ दिया गया।

मौलाना महमूद हसन और उनके कुछ साथी अरेबिया में हैदजाज के तुर्की सैनिक गवर्नर से अंग्रेजों के खिलाफ जिहाद की अनुमति लेने में सफल हुए। जब वे काबुल पहुंचे तो क्रांतिकारी अस्थायी सरकार बना चुके थे । ओबीद्दौला ने कुछ पत्र दो छात्रों के घरेलू नौकर के साथ भारत भेजने का प्रयास किया। पत्र पीले रेशमी कपड़े पर फारसी में लिखकर नौकर के कोट के अस्तर में सिल दिए गए । जब वह नौकर उन छात्रों के पिता के पास पहुंचा तो उन्हें उन पर शक हुआ और वे पत्र ब्रिटिश पुलिस को सौप दिए गए। इस प्रकार रेशमी पत्र षड्यन्त्र भी असफल हो गया।

जब भारतीय क्रांतिकारी, जर्मनी की सहायता से भारत में शस्त्र भेजने का प्रयास कर रहे थे, उसी समय गदर पार्टी भारतीयों में, विशेषतया पंजाबियों में क्रांतिकारी विचारधारा भरकर, भारत में क्रांति करने के लिए भेजना चाहते थे । रामचन्द्र और उसके साथी जगह–जगह का दौरा करके यही प्रयास कर रहें थे । परिणामस्वरूप कनाडा, जापान, शंघाई, सिंगापुर, हांगकांग, मनीला, दक्षिण अफ्रीका आदि कई देशों में रहने वाले भारतीयों ने क्रांतिकारियों की सहायता की । लगभग 3000 भारतीय अलग–अलग जत्थों में अलग–अलग मार्गो से भारत पहुंचे । ब्रिटिश सरकार इसकी

सूचना पाते ही सतर्क हो गयी। 29 अगस्त 1914 को "एस. एस. कोरिया" नामक जहाज सेनफ्रांसिस्को से 60 क्रांतिकारियों को लेकर भारत की ओर चला। मार्ग में 100 क्रांतिकारी इस जहाज में और सवार हुए। हांगकांग ने दूसरे जहाज "टोसा–मारु" में बैठकर 29 अक्टूबर 1914 को कलकत्ता पहुंचे । इसमें अधिकतर अमेरिका, मनीला, शंघाई और हांगकांग के सिख थे । कुछ अन्य जहाज भी लगभग 3000–5000 भारतीयों को लेकर भारत पहुंचे । इनमें से कई कैद कर लिये गये और लगभग 2500 भारतीयों को अपने गांवों में ही रहने का आदेश दिया गया। इन क्रांतिकारियों की यह योजना थी कि जैसे ही भारत में जर्मन शस्त्रों की सहायता पहुंचेगी, पूरे भारत में विद्रोह आरंभ किया जायेगा। क्रांतिकारियों ने भारतीय सिपाहियों से भी संपर्क किया। इन्होंने धन इकट्ठा' करने के लिए दिसम्बर 1914 से फरवरी 1915 तक लगभग 20 डकैतियां डाली, छः बार रेलों ने पटरी से उतारने का प्रयास किया गया। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ये क्रांतिकारी निम्नलिखित कार्य करते थे – हांगकांग सहित कई भारतीय सैनिक छावनियों को क्रांतिकारी भावनाओं से प्रेरित कर षड्यंत्र में शामिल करना, बम इकट्ठा करना, अन्य शस्त्र एकत्र करना, अंग्रेजी अधिकारियों की हत्या, खजानों और थानों को लूटना, राजद्रोही का प्रकाशन और प्रचार आदि–आदि।

अखिल भारतीय विद्रोह की योजना :

12 जून 1915 को अमृतसर के दो गार्डो की हत्या कर गई और कई घायल हुए । क्रांतिकारी छह राइफल और भारी मात्रा में बारूद, लेकर भागने में सफल हुए । ये सब अखिल भारतीय विद्रोह के पूर्व की तैयारी थी । इस समय भारत में ब्रिटिश सेना की कमी थी, जर्मनी शस्त्र देने को तैयार था और तुर्की सरकर भारतीय मुसलमानों से क्रांति के लिए तैयार कर रही थी। इस संपूर्ण योजना के मुखिया थे – रासबिहारी बोस। इन्होंने वाराणसी को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया। यहां 1914 में अमेरिका से लौटे हुए कई क्रांतिकारी उनके साथ आ मिले। बोस के अभिन्न सहयोगी सचीन्द्र सान्याल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उत्तर भारत के दिनाजपुर से लगाकर जालंधर तक की सैनिक छावनियों से संपर्क किया गया। सब रेजीमेंटों ने विद्रोह आरंभ होने के बाद क्रांति में सम्मिलित होने का वायदा किया। पंजाब की दो रेजीमेन्टों ने क्रांति आरंभ करना स्वीकार किया।

उपर्युक्त अखिल भारतीय विद्रोह की योजना इस प्रकार थी – एक निश्चित दिनांक को रात्रि में उत्तर भारत की सभी सैनिक छावनियां अचानक अंग्रेजों पर –आक्रमण करेंगी। जो अंग्रेज आत्मसमर्पण करेंगे उन्हें कैद कर लिया जायेगा। अन्य सभी को मार दिया जायेगा। उसी रात तार–व्यवस्था काट दी जायेगी, खजाने लूटे जायेंगे। अंग्रेज नागरिकों को कैद किया जाएगा और भारतीय कैदियों को मुक्त कर दिया जायेगा। एक व्यक्ति को प्रशासन संभालने के लिए चुना जायेगा, फिर क्रांतिकारी लाहौर में एकत्र होंगे।

बंगाल के क्रांतिकारियों को भी इस योजना की सूचना दी गई। वहां भी क्रांतिकारी उत्साहित हो गए। सभी प्रकार की तैयारियां आरंभ कर दी गई। ढाका से लाहौर तक क्रांति की लहर फैल गई । क्रांति के लिए 21 फरवरी का दिन निश्चित किया गया। परन्तु एक देशद्रोही कृपालसिंह ने, जो धोखे से बोस के गुट का सदस्य बन गया था, पुलिस को इस संपूर्ण योजना की सूचना दे दी। क्रांतिकारियों को भी यह सूचना प्राप्त हो गई। उन्होने 21 फरवरी के बजाए 19 फरवरी को विद्रोह करना निश्चित किया । कड़ी निगरानी के बावजूद कृपालसिंह यह सूचना

भी अंग्रेजों को देने में सफल हुआ। सरकार ने तत्काल संदेहास्पद रेजीमेंटों को दूसरे स्थानों पर भेज दिया। बहुत बड़ी संख्या में गिरफ्तारियों की गयी। रासबिहारी बोस और पिंगले छुपकर वाराणसी पहुँचने में सफल हुए। क्रांतिकारियों के, लाहौर आफिस से सरकार ने राजद्रोही साहित्य. बम, बारूद, क्रांतिकारी झंडे, शंख, ताले, तिजोरियां आदि बरामद की । इस षड्यंत्र को "लाहौर षड्यंत्र" कहा गया।

8.6 क्रांतिकारी आतंकवादी गतिविधियों का द्वितीय चरण (1915–1932) :

1922 में गाँधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद क्रांतिकारी गतिविधियां पुन: आरंभ हो गई । सरकार ने अम्बर 1924 को बंगाल आर्डिनेन्स नामक दमनकारी कानून पास किया । परन्तु क्रांतिकारी इससे हतोत्साहित नहीं हुए। उन्होंने देश में सशस्त्र क्रांति के लिए हथियार खरीदे। लेकिन उनके पास धन की कमी थी । अत: निश्चय किया गया कि जब सरकारी खजाना ले जाने वाली रेल लखनऊ के समीप काकोरी पहुंचे, तो उसे लूट लिया जाय। 9 अगस्त 1925 को दस नवयुवक सब हथियारों सहित हरदोई से लखनऊ जाने वाली रेलगाड़ी में बैठे । काकोरी गांव के पास रेल की जंजीर खींच ली गई । नवयुवकों ने रेल के डिब्बे से सरकारी खजाने का बक्स बलपूर्वक निकाल लिया और उसे तोड़कर धन लूट लिया और भाग निकले । ब्रिटिश पुलिस ने चालीस व्यक्तियों को गिरफ्तार किया। उन पर अभियोग चलाया गया। इस केस को काकोरी षड्यन्त्र कहा जाता है । इस केस में रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहेड़ी और ठाकुर रोशनसिंह को दिसम्बर 1927 में फांसी की सजा हुई ।

पंजाब में क्रांतिकारी गतिविधियां :

1919 के बाद क्रांतिकारी गतिविधियां फिर आरंभ हुई। 1919 के मांन्टेग्यू – चेम्सफोर्ड सुधार के सफल क्रियान्वयन हेतु और क्रांतिकारी गतिविधियों में शिथिलता को देखते हुए अंग्रेजी सरकार ने राजनीतिक बंदियों और भारतीय सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत बंदी भारतीयों को 1920 में रिहा कर दिया। कई पुराने क्रांतिकारियों ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। परन्तु उसके स्थगन के साथ क्रांतिकारी गतिविधियां फिर आरंभ हो गईं। दूसरे चरण में क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन का स्वरूप कुछ भिन्न था । इसमें नौजवान सभा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इस सभा के सदस्यों का गांधीवादी विचारधारा में विश्वास नहीं था। वे असहयोग और शांतिपूर्ण प्रतिशोध आन्दोलन को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं समझते थे। कांग्रेस का नेतृत्व अब उन्हें आकर्षित नहीं कर सकता था। पहली बार इन क्रांतिकारियों ने कांग्रेस का विकल्प ढूंढने के उद्देश्य से आजादी के बाद एक समाज की रचना का कार्यक्रम दिया जो समाजवाद पर आधारित था।

1926 में भगतसिंह, छबीलदास और यशपाल आदि नवयुवकों ने नौजवान सभा की स्थापना की। इस सभा के राजनैतिक उद्देश्य इस प्रकार थे -

1. सारे भारत में संपूर्ण स्वतन्त्र मजदूर और किसानों के राज्य की स्थापना,
2. संगठित भारत राष्ट्र बनाने के लिए देश के युवकों में देशभक्ति की भावना उत्तेजित करना,

3. ऐसे आर्थिक, औद्योगिक और सामाजिक आन्दोलन के साथ सहानुभूति प्रकट करना जो साम्प्रदायिकता से दूर रहकर देश को उनके उद्देश्य अर्थात् संपूर्ण आजादी और किसान तथा मजदूर राज्य लाने में सहायता करे,
4. मजदूरों और किसानों को संगठित करना।

नौजवान सभा ने अपना उद्देश्य प्राप्त करने और क्रांतिकारी विचारों का प्रचार करने के लिए कई प्रकार की कार्यवाहियां शुरू की। इनके मुख्य कार्यकर्ताओं में केदारनाथ सहगल शार्दूल सिंह, कवीश्वर मेहता, आनंद किशोर सोढी, पिडीदास इत्यादि मशहूर आन्दोलनकरी थे । इस सभा को अलग–अलग अवसर पर भूपेन्द्रनाथ दत्त, सी. पी. डांगे, फिलिप सम्राट (ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य) और जवाहरलाल नेहरू ने संबोधित किया। अप्रैल 1928 को अमृतसर में एक कान्फ्रेन्स में किसानों की एक संस्था, किरती किसान पार्टी के सहयोग से नौजवान सभा ने पंजाब के हर गांव में शाखा खोलने का फैसला किया । इस समय सारे संसार में आर्थिक मंदी थी और इसका प्रभाव पंजाब पर भी पड़ा । शिक्षित युवकों में बेकारी बहुत बढ़ गई, जिसके फलस्वरूप इनमें असन्तोष की लहर फैल गई और वे नौजवान सभा के प्रचार से प्रभावित हुए । ब्रिटिश सरकार नौजवान सभा, किरती किसान सभा और कांग्रेस के गठजोड़ से घबरा गई और उसने इस आन्दोलन को कुचल डालने का निर्णय किया।

फिर भी नौजवान सभा ने अपनी गतिविधियां जारी रखीं । इसने भारतीय युवकों को आयरलैंड, तुर्की, जापान, चीन आदि के स्वतन्त्रता संग्राम का अनुसरण करने का अह्वान किया। वे साम्यवादी और बोल्शेविक आन्दोलन से भी प्रभावित थे । इस सभा ने "रूस के साथ मित्रता सप्ताह" और "काकोरी दिवस" मनाया। 1919 में मोन्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार पारित करते समय ब्रिटिश सरकार ने निश्चय किया था कि दस वर्ष बाद इस अधिनियम की कार्यप्रणाली के निरीक्षण के लिए एक आयोग भारत भेजा जायेगा । कांग्रेस, स्वराज्य दल और क्रांतिकारी आन्दोलन से विवश होकर ब्रिटिश सरकार ने यह आयोग एक वर्म पहले अर्थात् 1928 में भारत भेजा । इस कमीशन के प्रधान थे इंगलैण्ड के प्रसिद्ध वकील साइमन । इस कमीशन में आठ सदस्य थे, जो अंग्रेज थे । एक भी भारतीय को सम्मिलित नहीं किया गया। अत: भारत की राजनीतिक संस्थाओं ने इस कमीशन का बहिष्कार करने का निश्चय किया । जहां–जहां यह कमीशन गया, इसे काले झण्डे दिखाये गये और "साइमन वापस जाओ" के नारे लगाये गये। 20 अक्टूबर 1928 को यह कमीशन लाहौर पहुंचा। इसको बहिष्कार करने लाहौर में लाला लाजपतराय के नेतृत्व में जुलूस निकाला गया। जुलूस पर लाही चार्ज किया गया, जिसमें लाला जी घायल हुये । उसी दिन शाम को एक विशाल सभा में लाला जी ने भाषण देते हुए कहा, "मेरे ऊपर की गई चोट ब्रिटिश साम्राज्य के लिए कील सिद्ध होगी।" कुछ ही दिनों के बाद लालाजी की मृत्यु हो गई । लाला जी की मृत्यु का बदलो लेने के लिए नौजवान सभा के सदस्य भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरु और जयगोपाल ने दिसम्बर 1928 में अंग्रेज अधिकारी सांडर्स और उसके रीडर, चरणसिंह को गोली दी। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नौजवान सभा ने देश के अन्य भागों के क्रांतिकारी की गतिविधियों में सामंजस्य लाने का प्रयत्न किया । चन्द्रशेखर आजाद, सान्याल, जोगेश चन्द्र चटर्जी, रामप्रसाद बिस्मिल आदि के साथ मिलकर इन्होंने 1928 मे "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन" की स्थापना की । मगर अभी इन नेताओं में इस संगठन के उद्देश्य पर मतभेद था। 8 सितम्बर, 1928 को दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान एक सभा में इन्होंने फैसला किया कि

सब क्रांतिकारी पार्टियों को अपने कार्य इस सभा में केन्द्रीत करने चाहिए और समाजवाद को अपना उद्देश्य घोषित किया। इन्होंने "हिंदुस्तानी रिपब्लिकन एसोसिएशन" का नाम बदलकर "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन" रख लिया । अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इन्होंने अपने कार्यकर्ताओं को बम बनाने की, के लिए बंगाल के कार्यकर्ताओं को निमन्त्रण देने का फैसला किया। इन्होंने क्रांति के लिए बैंक डाकखाने और सरकारी खजानों पर धावा बोलने का भी निश्चय किया। इन ने "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन फौज" बनाने का फैसला किया । इस पहली बार आतंकवादी क्रांतिकारियों ने स्पष्ट तौर पर आजादी के बाद समाजवादी समाज स्थापित करने की घोषणा की और गांधीवादी विचारधारा का विकल्प लोगों के सामने रखा (इस सभा के अधिकतर नेता और कार्यकर्ता शहरों के मध्यम वर्ग और निचले मध्य वर्ग में से थे। इसलिए लेनिन के दर्शाये हुये मार्ग से हटकर इन्होंने संघर्ष के लिए जनता को संगठित करने के बजाय अपने वीरतापूर्ण कार्यो और वैयक्तिक आतंकवाद के द्वारा लोगों तक अपना 'पहुंचाने का निश्चय किया। इनका नारा था – "हमारी लड़ाई आखिरी फैसला होने तक की लड़ाई है – यह फैसला है जीत या मौत।"

जब गर्वनर जनरल ने केन्द्रीय विधानसभा की अस्वीकृति के उपरान्त लोक सुरक्षा विधेयक और व्यापारी विवाद अधिनियम लागू किया तो इन क्रांतिकारियों को संसदीय मार्ग और संघर्ष की संवैधानिक विधियों की व्यर्थता को जनता के सामने रखने का अवसर मिला । भगतसिंह और बटुकेश्वर दल ने विधानसभा के केन्द्रीय हाल में बम फैंककर इन बिलों के खिलाफ अपना रोष और विरोध प्रकट किया। बम फैंकने के बाद इश्तिहार फेंकते हुए, उन्होंने "क्रांति जिन्दाबाद", "साम्राज्यवाद मुर्दाबाद", "दुनिया भर के मजदूर एक हो जाओ" आदि नारे लगाये । इस घटना पर टिप्पणी करने हुए जवाहरलाल नेहरू ने लिखा कि, "यह बम देशवासियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक बहुत बड़ा धमाका था" ।

भगतसिंह और बी. के. दत्त के पकड़े जाने, लाहौर में बम का कारखाना मिलने तथा हिन्दुस्तान रिपब्लिकन सोशलिस्ट एसोसियेशन के कुछ अन्य सदस्यों के गिरफ्तार होने के कारण सरकार को इस सभा की सभी गतिविधियों की जानकारी मिल गई । भगतसिंह और दत्त को आजीवन कारावास का दण्ड मिला मगर जब भगतसिंह के बारे में यह पता चला कि उसने सुखदेव और राजगुरू का साथ दिया था, तो उसे मौत की सजा सुनाई गई । क्रांतिकारियों ने जेल में भी संघर्ष जारी रखा । वे राजनैतिक कैदी थे, अत: उन्हें प्रथम श्रेणी की जेल, अच्छा खाना, अखबार, लिखने का सामान और अन्य सुविधाएं मिलनी चाहिए थी। ये सुविधाएं उन्हें नहीं दी गई। इस दुर्व्यवहार के विरोध में यतीन्द्रनाथ दास ने अनशन किया। 13 सितम्बर 1929 को अनशन के 62वें दिन यतीन्द्रनाथ शहीद हो गए । 23 मार्च, 1931 को सरदार भगतसिंह, राजगुरू और सुखदेव को फांसी दे दी गई । उनकी लाशें गुप्त रूप से रात्रि को जला दी गई ।

बंगाल मे क्रांतिकारी गतिविधियां :

1927 के के पश्चात् आतंकवादियों की गतिविधियों में ठहराव आ गया । सरकार को लगा कि वह इस आन्दोलन को दबाने में सफल हो गई है । अत: 1928 में कुछ नजरबंद राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया गया । अपराध कानून संशोधन अधिनियम तथा 1925 के अध्यादेश की अवधि को 1930 में और आगे नहीं बढ़ाया। मगर 1928–29 के आर्थिक हालात और बढ़ती हुई बेरोजगारी के कारण शिक्षित नवयुवकों में बेचैनी बहुत अधिक बढ़ गई । काकोरी

और लाहौर षड्यन्त्र केस और यतीन्द्र दास की शहादत ने युवकों की गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया। 1929 में कई युवक और विद्यार्थी संगठन स्थापित किये गए। क्रांतिकारी गतिविधियां चलाने के लिए गुप्त सभाएं स्थापित की गईं । द्वितीय चरण में बंगाल में पंजाब की तरह समाजवादी विचारधारा का अधिक प्रभाव नहीं दिखाई देता । इस चरण में क्रांतिकारी व्यक्तियों पर हमला करने की बजाय सरकारी संस्थानों पर हमला करने पर जोर देते थे । पूर्वी बंगाल में चटगांव नामक बंदरगाह पर मशहूर क्रांतिकारी सूर्यसेन के नेतृत्व में वहां के युवक और युवतियों ने विद्रोह करने का प्रयत्न किया। सूर्यसेन ने भारतीय गणतन्त्र सेना की ओर से एक घोषणा पत्र जारी किया जिसमें चटगांव, मेमनसिंह, बारीसाल के सरकारी शस्त्रागारों पर एक ही समय हमला करने की योजना थी । सूर्यसेन और उनके साथ अंबिका चक्रवर्ती, लोक्ताथ बाल और गणेश घोष ने इस काम के लिए स्थानीय कॉलेजों और स्कूलों के विद्यार्थियों को प्रेरित किया। इनमें प्रीतिलता वाड़ेदर और कल्पना दत्त जैसी नवयुवतियां और आनन्द गुप्त और टेगराबल जैसे नवयुवक थे ।

इन क्रांतिकारियों ने पुलिस शस्त्रागार, सहायक टुकड़ी पर कब्जा करने और टेलीफोन एक्सचेंज और तारघरों को नष्ट करने के लिए चार जत्थे भेजे। 50 युवक युवतियों ने ब्रिटेन की भारतीय सेना की वर्दी पहनकर पुलिस शस्त्रागार पर हमला किया। यह घटना चटगांव आर्मरी रेड के नाम से मशहूर हुई । मगर जल्दी में ये लोग बंदूकों के कारतूस उठाना भूल गये । जब ये बंदूकें लेकर भागे तो पुलिस की छोटी–सी टुकड़ी ने उन्हें पहाड़ियों पर शरण लेने को मजबूर किया। 22 मई को जलालाबाद पहाड़ी पर अंग्रेजों की एक टुकड़ी ने 57 क्रांतिकारियों को घेर लिया। इनमें से कुछ मारे गए और कई गुरिल्ला युद्ध जारी रखने के लिए भाग निकले। इन क्रांतिकारियों ने 64 अंग्रेज सिपाहियों को मार डाला। सूर्यसेन एक साथी द्वारा विश्वासघात के कारण पकड़े गए और उन्हें फांसी की सजा हुई। आर्मरी रेड के मुकदमें के फलस्वरूप कई क्रांतिकारियों को अंडमान में आजीवन कारावास की सजा दी गई। प्रीतिलता वाड़ेदर ने एक टुकड़ी के साथ यूरोपीय क्लब पर हमला किया था, फिर कैद होने से बचने के लिए आत्महत्या कर ली। कल्पना दत्त को कैद कर लिया गया ।

चटगांव आर्मरी रेड ने युवक युवतियों को क्रांतिकारी आन्दोलन में सम्मिलित होने को प्रेरित किया। इससे प्रेरित होकर कलकत्ता की युगांतर पार्टी के नेता ने आतंकवादी योजना बनाई और बम बनाने के प्रबंध किये। इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार थी -

1. यूरोपियनों की होटलों, क्लबों, सिनेमाघरों इत्यादि में हत्या करना,
2. दमदम हवाई अड्डा मे पैट्रोल से जलाना,
3. कलकत्ता की गैस और बिजली सप्लाई को, गैस और बिजलीघरों को नष्ट करके काटना, ।
4. बज–बज पर पैट्रोल के डिपो को नष्ट करके कलकत्ते की पैट्रोल सप्लाई को काटना,
5. कलकत्ता की ट्राम सर्विस को नष्ट करना,
6. कलकत्ता और बंगाल के शेष जिलों में तार के साधनों को नष्ट करना,
7. बम और बारूद से पुलों और रेल लाइनों को नष्ट करना।

किन्तु इस दिशा में युगान्तर पार्टी के कार्यकर्ता कुछ अधिक कार्य नहीं कर पाये। 1930–33 के बीच व्यक्तियों की हत्या और डकैतियों की ओर अधिक ध्यान दिया गया । सरकारी आकड़ों के अनुसार इस दौरान 20 हिंसक दंगे हुए । इन दंगों में 27 हत्याएं करने की कोशिश की

गई, 16 स्थानों पर डाके डालने की कोशिश की गई, बम फेंकने की 16 घटनाएं हुई बन विस्फोट की 8 घटनाएं हुई और एक सशस्त्र हमला किया गया। इसी अवधि में हड़तालों में 23 सरकारी कर्मचारी और 20 गैर सरकारी व्यक्ति मारे गये, 70 घायल हुए, 33 क्रांतिकारी मारे गए और 8 क्रांतिकारी घायल हुये । सूर्यसेन को फांसी दिये जाने के बाद बंगाल में क्रांतिकरी गतिविधियां काफी कम हो गयीं ।

अन्य राज्यों में क्रांतिकारी गतिविधियां :

पंजाब और बंगाल के अतिरिक्त अन्य राज्यों में भी द्वितीय चरण में कुछ क्रांतिकारी गतिविधियां हुई । रामप्रसाद बिस्मिल की मृत्यु के बाद क्रांतिकारी दल का नेतृत्व चन्द्रशेखर आजाद के हाथ में आ गया। उन्होंने साण्डर्स की हत्या में भगतसिंह के साथ भाग लिया था।

जिस समय सरदार भगतसिंह जेल में थे, उन्होंने भगतसिंह को जेल से मुक्त कराने का असफल प्रयास किया था। भगतसिंह के बाद आजाद ने पंजाब के क्रांतिकारी दल के संगठन का उत्तरदायित्व यशपाल और भगवतीचरण बोहरा को सौप दिया। बोहरा की धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गा देवी ने भी क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लिया । श्रीमती सुशीला देवी, श्रीमती प्रेमवती और प्रकाशवती कपूर भी क्रांतिकारी आन्दोलन की कार्यकर्तियाँ थी ।

गांधीजी ने भगतसिंह और उसके साथियों की सजा को कम करने की प्रार्थना की परन्तु वायसराय लार्ड इरविन ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अतः आजाद और यशपाल ने 23 दिसम्बर 1929 को वाइसराय की ट्रेन को उड़ाने की योजना बनाई । दिल्ली–मथुरा रेल लाइन पर निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन के पास पटरियों के नीचे बन रख दिया गया। जैसे ही रेल बम पर से गुजरी विस्फोट हुआ, परन्तु वायसराय बाल–बाल बच गये। 23 दिसम्बर 1930 को जब पंजाब के गवर्नर पंजाब विश्वविद्यालय का दीक्षान्त भाषण पढ़ रहे थे, पर क्रांतिकारी हरकिशन ने गोली चलायी। गवर्नर इसमें घायल हुए। 9 जून, 1931 को हरकिशन को फांसी की सजा दी गई।

27 फरवरी, 1931 को चन्द्रशेखर आजाद, यशपाल और सुरेन्द्र पांडे इलाहाबाद पहुंचे। आजाद, यशपाल को रूस से सहायता प्राप्त करने भेजना चाहते थे । इलाहाबाद के असल्फ्रेड पार्क में आजाद और एक अन्य क्रांतिकारी मन्त्रणा कर रहे थे कि पुलिस अचानक पहुंच गई । आजाद पुलिस की गोली से मारे गये ।

चन्द्रशेखर आजाद की मृत्यु के बाद हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी (क्रांतिकारी दल) ने यशपाल को अपना नेता चुन लिया। यशपाल ने बिखरे हुये दल को संगठित किया। 23 जनवरी, 1932 को यशपाल किसी से मिलने इलाहाबाद पहुंचे। वहां पुलिस ने उन्हें कैद कर लिया। उन्हें 14 वर्ष की सजा हुई परन्तु जब 1937 में उत्तर प्रदेश में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई, तो मुख्यमंत्री पण्डित गोविन्द वल्लभ पंत ने 2 मार्च, 1938 को यशपाल को बिना शर्त रिहा कर दिया।

8.7 क्रांतिकारी आन्दोलनों के दो चरणों में अन्तर :

क्रांतिकारी आन्दोलन भारत की आजादी के उद्देश्य को लेकर शुरू किया गया था । दोनों चरणों में हुए क्रांतिकारी आन्दोलनों में अन्तर रिम प्रकार से है -

1. पहले चरण में अधिकतर क्रांतिकारी नेता राष्ट्रवादी थे और उनमें से कुछ में, विशेषत: बंगाल में, रहस्यवाद की झलक मिलती है, जैसे – शक्ति पूजा। रहस्यवाद की झलक दूसरे चरण में दिखाई नही देती।
2. पहले चरण में क्रांतिकारी योजनाओं में व्यक्तियों की हत्या और व्यक्तियों को लूटने पर अधिक बल दिया जाता था। किन्तु दूसरे चरण में क्रांतिकारी, सरकारी संस्थानों पर हमला करने, उनके कार्य में रूकावट पहुंचाने आदि पर अधिक बल दिया जाता था। दूसरे चरण में सशस्त्र क्रांति की योजनाएं भी बनाई गईं जो सफल नहीं हो पाई ।
3. पहले चरण में क्रांतिकारी केवल राष्ट्रवादी थे। वे भारत को स्वतन्त्र कराना चाहते थे। परन्तु स्वतन्त्रता के बाद कैसे समाज की रचना की जाए, इस प्रश्न पर किसी ने विचार नहीं किया। दूसरे चरण का क्रांतिकारी आन्दोलन गांधीजी के असहयोग आन्दोलन की असफलता की प्रतिक्रिया और रूसी समाजवादी क्रांति के फलस्वरूप आरंभ किया गया। अत: क्रांतिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण में उत्तर भारत, विशेषतया पंजाब में समाजवादी विचारधारा का प्रभाव था । वे मजदूर–किसान राज्य की स्थापना तथा पूंजीवादी जागीरवादी राज्य का अन्त उनका उद्देश्य था । इन्हें विश्वास था कि कांग्रेस गांधीवादी तरीकों से आजादी प्राप्त नहीं कर पायेगी । उनका यह मानना था कि कांग्रेस एक मध्य वर्ग की संस्था है, अत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वह नवीन समाज की रचना करने का प्रयत्न नहीं कर पायेगी ।

8.8 क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता के कारण :

यद्यपि क्रांतिकारियों ने भारतवासियों को अपूर्व राष्ट्रीय चेतना प्रदान की, लेकिन वे अपने मूल लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहे । क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित है

केन्द्रीय संगठन का अभाव, क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता का एक महत्वपूर्ण कारण था। केन्द्रीय संगठन न होने से विभिन्न प्रान्तों के क्रांतिकारी नेताओं में पारस्पारिक सहयोग और सम्बन्धों का अभाव रहा और वे संगठित रूप में कार्य न कर सके । क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता का एक कारण इस आन्दोलन का मध्यम वर्ग के शिक्षित नवयुवकों तक ही सीमित होना था। इस आन्दोलन में भाग लेने वाले नवयुवकों का जनता पर विशेष प्रभाव नहीं था और वे साधारण जनता के सहयोग तथा समर्थन प्राप्त नहीं कर सके । क्रांतिकारी आन्दोलन को उच्च मध्यम वर्ग के व्यक्तियों और राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य संचालकों की सहानुभूति भी प्राप्त नहीं थी। उच्च वर्ग के ये नेता क्रांतिकारी कार्यों को घृणा की दृष्टि मे देखते थे और स्वराज्य प्राप्त करने के लिए वैधानिक उपायों में विश्वास करते थे। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी और आशुतोष मुकर्जी जैसे नेताओं ने सरकार से इनका दमन करने के लिए कठोर साधनों और उपायों से काम लेने का अनुरोध किया था।

क्रांतिकारी आंदोलन की असफलता का एक अन्य कारण ब्रिटिश सरकार की आंदोलनकारियों के प्रति अत्यन्त कठोर नीति का पालन भी था। ब्रिटिश सरकार ने 1907 में सभाएं करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया और 1908 में "विद्रोही सजा अधिनियम" भी पास कर दिया जिसका उल्लंघन करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था। 1908 में फौजदारी कानून से और कठोर बनाकर अधिकारियों को उसे सख्ती से प्रयोग करने की अल्ला दी गई । 1908 और 1910

में प्रेस अधिनियम पास करके उग्रवादियों के समाचार पत्र के प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया गया। 1911 में एक अधिनियम पास कर अधिकारियों को अधिकार दिया गया कि वे सभाओं पर नियन्त्रण रखने के लिए अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग कर सकते है । क्रांतिकारियों पर अभियोग चलाते हुए ऐसी जूरी की व्यवस्था की जाती जिसमें यूरोपियन बहुमत में होते और मामूली से अपराधों के लिए भारतीयों को मृत्यु दण्ड, काला पानी, देश निर्वासन या कठोर कैद की सजायें दी जाती । जरा सी भी शंका होने पर लोगों को बंदी बनाकर उन्हें सजा दे दी जाती । इस प्रकार सरकार ने जनता में ऐसा आतंक स्थापित कर दिया कि लोग भयभीत होकर क्रांतिकारियों से दूर भागने लगे।

क्रांतिकारी आंदोलन के नेताओं और कार्यकर्ताओं में अपूर्व उत्साह और साहस था। वे हंसते–हंसते अपने प्राण न्यौछावर करने को तैयार रहते लेकिन उनके पास साधनों का नितान्त अभाव था। उन्हें अस्त्र–शस्त्र प्राप्त करने में विशेष कठिनाई होती थी । उनको गुप्त रूप से कार्य करना पड़ता था। सरकार उनके प्रति सदैव सचेत रहती थी । वे सरकार की आखों में अधिक समय तक धूल झोंकने में सफल नहीं हो सकते थे ।

क्रांतिकारियों के प्रति कांग्रेस हमेशा उदासीन रही। 1885 से ही भारत की सबसे प्रभावशाली राजनैतिक संस्था भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस थी लेकिन कांग्रेस की उदारवादिता के कारण क्रांतिकारियों का इस संस्था की सहानुभूति प्राप्त होना तो दूर रहा, उन्हें इस संस्था से आलोचना और विरोध ही प्राप्त हुआ। क्रांतिकारियों के प्रति कांग्रेस के इस दृष्टिकोण के करण एक ओर तो क्रांतिकारियों को बन–समर्थन प्राप्त नहीं हुआ और दूसरी तरफ ब्रिटिश शासन द्वारा कठोर दमनात्मक नीति अपनाई जा सकी।

उपरोक्त बाधाओं के होते हुए भी यदि भारतीय जनता को अपने देश की मुक्ति के लिए क्रांतिकारी आन्दोलन का कोई विकल्प प्राप्त नही होता, तो जनता का झुकाव कालान्तर में क्रांतिकारी आन्दोलन की ओर हो सकता था । लेकिन महात्मा गांधी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश कर सत्याग्रह के रूप में जनता के सम्मुख क्रांतिकारी आन्दोलन का विकल्प प्रस्तुत किया, जो भारतीय जनता में अधिकाधिक लोकप्रिय होता गया । वह अहिंसात्मक क्रांति क्रांतिकारी आन्दोलन के लिए घातक सिद्ध हुई और अन्ततः वह समाप्त हो गया।

इन सभी कारणों से क्रांतिकारी आंदोलन तत्काल ही अपना लक्ष्य प्राप्त करने में असफल रहा। इसकी असफलता के कारणों के सम्बन्ध में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी लिखते है कि क्रांतिकारी आन्दोलन की विफलता का मुख्य कारण ब्रिटिश सरकार की दमन नीति थी। इक्के साथ ही यह इस कारण भी असफल रहा कि हिंसा का विचार हिन्दुओं की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है । हिन्दू लोक क्रांति यहां तक कि उसकी छाया से भी घृणा करते है ।

8.9 क्रांतिकारी आन्दोलन का महत्व :

क्रांतिकारी तत्काल ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति में भले ही असफल रहे ही, क्रांतिकारी आंदोलन ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में अपूर्व योगदान दिया । देश के लिए सर्वस्व बलिदान करने वाले, हंसते–हंसते फांसी के तख्ते पर चढ़ने वाले तथा जेलों में बर्बरतापूर्ण व्यवहार और यातनाएं सहने वाले, क्रांतिकारियों ने भारत के युवकों में जागृति फैलाने और साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष में जुट जाने के लिए तैयार करने में जो भूमिका निभाई वह किसी से कम नहीं है। अगर यह कहा जाए कि उन्होंने अपने बलिदान से नौजवानों को स्वतन्त्रता संघर्ष के भागीदार बनने के लिए उत्साहित किया तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। एम. एन. दास के अनुसार, "कांग्रेस ने सरकार को

चिन्तातुर बना दिया, पर असली समस्याएं अराजकतावादियों ने ही खड़ी की। यदि उनकी एक के बाद एक लहर आती ही चली जाती, तो इस महाद्वीप पर बिखरे हुए मुट्ठी भर अंग्रेज इन अराजकतावादियों के हमले को अधिक समय तक रोक नहीं पाते और आजादी वास्तव में जिस समय मिल सकी उससे बहुत पहले मिल गई होती.....।

1942 की क्रांति आशिक रूप से इस क्रांतिकारी आन्दोलन का ही अंग थी और सुभाष चन्द्र बोस द्वारा आजाद हिन्द सेना संगठित कर भारत को स्वतन्त्र कराने की चेष्टा भी इस क्रांतिकारी आन्दोलन का ही अंग कहा जा सकता है । वास्तविकता यह है कि जहां गांधीजी और कांग्रेस ने अपने ढंग से स्वतन्त्रता संघर्ष और जनता में जागृति फैलाने का कार्य किया वहां क्रांतिकारियों ने अपने ढंग से जनता में क्रांति लाने और उसे क्रांति के लिए तैयार करने का कार्य किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में कांग्रेस के वैधानिक आन्दोलन और क्रांतिकारी आन्दोलन ने एक दूसरे के पूरक का कार्य किया ।

क्रांतिकारी आन्दोलन के द्वारा एक और प्रकार से भी राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति में योगदान दिया गया। ब्रिटिश सत्ता क्रांतिकारियों से बहुत घबराती थी और यह नहीं चाहती थी कि अधिक लोग इसमें भाग लें । यह तभी संभव था जबकि भारतीय जनता 'को कुछ न कुछ राजनैतिक अधिकार दिये जाते रहे, ताकि लोगों का कांग्रेस और वैधानिक आन्दोलन से बिल्कुल विश्वास न उठ जाय। इस प्रकार क्रांतिकारी आन्दोलन के कारण ब्रिटिश सरकार के लिए भारतीयों की कुछ राजनीतिक मांगें मानना आवश्यक था ।

डॉ. आर. सी. मजूमदार के अनुसार,"गुरिल्ला युद्ध को तो सभ्य समाज विशुद्ध रूप से नैतिक आधार पर किसी हद तक माफ कर देता है पर क्रांतिकारी आतंकवाद इससे एक कदम बढ़कर था। आतंकवादी यह दलील दे सकता है कि कुछ सरकारी अफसरों की हत्या कर देना या थोड़े से व्यक्तियों को लूटे लेना बड़ा पाप–कार्य नहों है जितना कि आधुनिक शहरों पर बन गिराकर या आधुनिक शस्त्रों द्वारा हजारों लोगों को खत्म कर देना है। वस्तुतः इसके लिए युगों से चली आ रही हमारी युद्ध विषयक धारणा ही जिम्मेदार है कि हम खुले युद्ध के नाम पर बड़े पैमाने पर की गई अमानवीय क्रूरता को भी सहन कर लेते है, किन्तु यदि ये सैनिक कार्यवाहियां युद्ध के बारे में हमारी परम्परागत धारणा के अनुरूप नहीं हुई तो इस क्रूरता का दस–लाखवां अंश भी सहन करने को तैयार नहीं होते । "

विपिन चन्द्र ने भी क्रांतिकारियों की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "राष्ट्रवाद के उद्देश्य की वजह से ही क्रांतिकारियों को देश को जा!त करने और अपने देशवासियों का प्यार व आदर प्राप्त कर पाने में सफलता मिलना यह कोई मामूली सफलता नहीं थी, पर इस सफलता का लाभ परम्परागत कांग्रेसी नेताओं ने बटोर लिया जबकि क्रांतिकारियों ने उन्हें बुर्जुआ और मध्यवर्ग कहकर उनकी निन्दा की थी और यह आशा की थी कि उनका स्थान कोई नई शक्ति लेगी ।

क्रांतिकारियों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास में एक रंगीन और प्ररेणादायक अध्याय जोड़ा। अपने खतरनाक कामों, साहसिक योजनाओं, नपी–तुली क्रियाओं और मृत्यु के प्रति निःशकता के कारण उन्होंने राष्ट्र की स्मृति में एक स्थायी जगह बना ली। अपने आप मे इतना पूर्ण त्याग बिलकुल बेकार नहीं जाता। देश उन शहीदों, को याद करता रहा क्योकि "उन्होंने हमारे पौरुष का स्वाभिमान वापिस दिया। "

8.10 सारांश

भारत में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध संग्राम लगभग इस देश में अंग्रेजी शासन के आरंभ से ही शुरू होता है। भारतीयों ने विदेशी राज्य के विरुद्ध संघर्ष कई तरीकों से किया। 1857 तक उन्होंने अपने राजाओं, धार्मिक नेताओं और बेदखल जमींदारों के नेतृत्व में संघर्ष किए । इस प्रकार के संघर्ष 1857 के विप्लव के साथ चरम सीमा पर पहुंच गये । इसके अतिरिक्त ब्रिटिश राज्य के अत्याचार के विरुद्ध कई जनवादी संघर्ष भी हुए, जैसे 1855 का "संथाल विद्रोह" 1860 का "नील आन्दोलन" दक्षिण भारत में 1870 का "किसान जागरण", पंजाब में "कूका आन्दोलन" और उत्तर–पूर्व में "बहावी आन्दोलन"। 19वीं सदी के अन्तिम चरण में कई सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन आए जिससे लोगों में एक नई राष्ट्रीय और राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। दो दशकों में कांग्रेस की सीमित उपलब्धियों ने भारतीयों में असन्तोष उत्पन्न किया, फलत: उग्रवाद का प्रादुर्भाव हुआ । उग्रवादियों ने "निष्क्रिय प्रतिरोध" की नीति का अवलम्बन किया। परंतु उग्रवादियों में भी एक वर्ग निष्क्रिय प्रतिरोध से असन्तुष्ट था। वह हिंसा के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य को जड़ से उखड़ने के लिए आतुर था। राष्ट्रवादियों का यही वर्ग क्रांतिकारियों का वर्ग था। उन्होंने सर्वोत्कृष्ट बलिदान के द्वारा सीमित सफलताओं के 'उपरान्त भी भारतीय स्वतन्त्रता के संघर्ष में एक् प्रेरणादायक तथा रंगीन पृष्ठ जोड़ा ।

ब्रिटिश शासन की दमनात्मक नीतियां, बंगाल के विभाजन, महाराष्ट्र में प्लेग और अकाल की घटनाओं और उस समय में सर्कार की अकर्मण्यता और अन्य परिस्थितियों ने असंतोष में वृद्धि की । परिणामस्वरूप 20वी सदी के आरंभ में भारत में अपूर्व जागृति की लहर आई जिसकी दो धाराएं थी – उग्र राष्ट्रवाद और क्रांतिकारी विचारधारा।

अंग्रेजो ने इन क्रांतिकारियों को हत्यारे और आतंकवादी की संज्ञा दी। परन्तु उनका यह कथन असत्य है। क्रांतिकारी देश को अंग्रेजों से मुक्त कराकर, सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। सविनय अवज्ञा और संवैधानिक आन्दोलन पर सै विश्वास उठ जाने के कारण, क्रांतिकारियों ने बम, पिस्तौल और आतंक के निजी कामों का रास्ता अपनाया ।

क्रांतिकारी आन्दोलन को दो पलों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम चरण 1906–1914 ई. तक चला; द्वितीय चरण 1915 – 1932 ई. तक चला। प्रथम चरण में बंगाल में अनेक गुप्त समितियां, जैसे – अनुशीलन समिति, साधना समाज, शक्ति समिति, युगांतर समिति आदि द्वारा क्रांतिकारी कार्य किए गए। बंगाल के प्रमुख क्रांतिकारी थे - अरविन्द घोष, भूपेन्द्रनाथ दत्त, प्रफल्ल चाकी, खुदीराम बोस आदि । महाराष्ट्र में क्रांतिकारी गतिविधियां 1895 में आरंभ हुई जब प्लेग कमीश्नर और उसके सहायक की हत्या की गई । बंगाल और महाराष्ट्र के अलावा पंजाब, राजस्थान, मद्रास आदि में भी इस काल में क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन किया गया। क्रांतिकारियों के कार्य केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहे वरन विदेशों में भी इन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता के लिए कार्य किया। विदेशों में इनकी मुख्य शाखाएं लंदन, पैरिस तथा अमेरिका के सेनफ्रांसिस्को तथा न्यूयार्क नगर थे । विदेशों में क्रांतिकारी कार्य करने वाले भारतीयों में विनायक दामोदर सावरकर, श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम कामा, लाला हरदयाल का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है । प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारत और विदेशो मे क्रांतिकारियों ने भारत को स्वतंत्र कराने की कई योजनाएं बनाई जो असफल रही ।

क्रांतिकारी आन्दोलन के द्वितीय चरण में पंजाब की नौजवान सभा और हिंदुस्तान सोशलिस्ट रेपब्लिकन एसोशिएशन ने महत्वपूर्ण कार्य किए। द्वितीय चरण में बंगाल में प्रसिद्ध क्रांतिकारी सूर्यसेन के नेतृत्व मे चटगांव आर्मरी रेड की गई। पंजाब, बंगाल के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में चन्द्रशेखर आजाद, यशपाल आदि ने क्रांतिकारी कार्य जारी रखे। द्वितीय महायुद्ध के दौरान सुभाषचन्द्र बोस और उनकी आजाद हिन्द सेना द्वारा कार्य किया गया ।

क्रांतिकारियों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास में रंगीन और प्रेरणादायक अध्याय जोड़ा । अपने खतरनाक कामों, साहसिक योजनाओं, नपी–तुली क्रियाओं और मृत्यु के प्रति नि:शक्ता के कारण उन्होंने राष्ट्र की स्मृति में एक स्थायी जगह बना ली । लेकिन सारे आदर्शों और दुखो के बावजूद उनकी असफलता निश्चित थी । निजी स्तर पर किये गये हिंसा के कामों ने (भले ही वे कितने ही वीरोचित क्यों न रहे हों), जनता को संचालित नहीं किया। अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ साम्राज्यवाद उससे आसानी से निपट सकता था । एक कड़ी में षड्यन्त्र के बहुत से मुकद्दमों को कायमी, निर्मम सजाओं और सख्त कानून ने उनकी कमर तोड़ दी। समाचार–पत्र, विधेयक, आपराधिक कानून, संसोधन विधेयक, विस्फोटक सामग्री, विधेयक और भारतीय प्रेस विधेयक हथियार के रूप में नौकरशाही के शस्त्रागार में और जुड़ गये। दूसरे, अधिकतर समय में आतंकवादी बिना किसी केन्द्रीय नेतृत्व और समान योजना के एक दूसरे का उद्देश्य काट देने वाले काम करते रहे। तीसरे, जनता के बीच में उनका आधार नहीं था। गुप्त संगठन होने के नाते वे जनता को अपना विश्वासपात्र नहीं बना सकते थे । यह भी तथ्य ध्यान रखने योग्य है कि समितियों में मध्यवर्गीय शिक्षित भरे हुए थे जिनका किसानों और मजदूरों से कोई संपर्क नहीं था। नरमपंथियों ने खुले रूप में उन्हें अस्वीकृत कर दिया और बहुत से उग्रपंथियों ने उन्हें अपनाने में अनिच्छा दिखायी ।

लेकिन अपने–आप में इतना पूर्ण त्याग बिलकुल बेकार नहीं जाता। देश उन शहीदों को याद करता रहेगा क्योंकि "उन्होंने हमारे पौरुष का स्वाभिमान वापिस दिया।"

8.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान क्रांतिकारी आतंकवादी पर एक लेख लिखिये ।

प्रश्न 2 प्रथम चरण में क्रांतिकारी आतंकवादियों की क्या गतिविधियां रही?

प्रश्न 3 विदेशों में भारतीय क्रांतिकारियों की उपलब्धियों पर एक निबन्ध ।

प्रश्न 4 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत में क्रांतिकारियों ने क्या योजनाएं?

प्रश्न 5 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान विदेशों में क्रांतिकारियों ने भारत को दिलाने के लिए क्या कार्य किए?

प्रश्न 6 द्वितीय चरण में क्रांतिकारी गतिविधियों का उल्लेख कीजिये ।

प्रश्न 7 "सारे आदर्शों और दु:खों के बावजूद क्रांतिकारियों की निश्चित थी", विवेचन कीजिए ।

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. विपिनचन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, – स्वतन्त्रता संग्राम वरुन दे
2. आर सी अग्रवाल – भारतीय संविधान विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन
3. रामलखन शुक्ल द्वारा संपादित – आधुनिक भारत का

4. दै. बी एल. ग्रोवर व यशपाल – आधुनिक भारत का
5. पुखराज जैन – भारत का राष्ट्रीय तथा संवैधानिक विकास
6. R.C. Majumdar॰ (ed.) – Struggle for freedom.

इकाई – 9

स्वतंत्रता आन्दोलन मे साम्यवादियों का योगदान

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 साम्यवादी आन्दोलन के उदय के कारण

9.3 साम्यवादी दल की स्थापना, उद्देश्य, एवं कार्यक्रम

9.4 साम्यवादी विचारधारा के विभिन्न विचारक एवं उनका योगदान

9.5 साम्यवादी आन्दोलन के विभिन्न चरण

9.6 साम्यवादी आन्दोलन का विकास एवं भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान

9.7 सारांश

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.9 संदर्भ ग्रंथो की सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे कि –

- वामपन्थी दल की प्रमुख प्रथम धारा–साम्यवादी दल अर्थात विचारधारा की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उद्भव होना ।
- 1920 ई. में एम.एन. राय तथा भारतीय प्रवासियों द्वारा साम्यवादी दल बनाने की घोषणा किया जाना ।
- भारत में साम्यवादी दल की स्थापना हेतु किन परिस्थितियों ने योगदान दिया? भारत में साम्यवादियों के क्या लक्ष्य एवं उद्देश्य थे । उन्होंने क्या कार्यक्रम निश्चित किए जिनके आधार पर उनकी गतिविधियाँ संचालित हुयी ।
- भारत में साम्यवादियों - एम. एन. राय, नलिनी गुप्त, अंबनी मुखर्जी, एम.ए. डांगे, मुजपफर अहमद शौकत उसमानी, रजनीपाम दत्त, लेट, आदि का स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय योगदान रहा।
- साप्रदावादियों की कार्य प्रणाली, एवं आन्दोलनात्मक गतिविधियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस अध्याय में करेंगे ।
- साम्यवादियों की गतिविधियों का भारतीय स्वतंत्रता के क्षेत्र में क्या प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप स्वतंत्र भारत के निर्माण को प्रोत्साहन मिला।

9.1 प्रस्तावना

भारत में 19वी शताब्दी का काल विपिन राजनैतिक दलों के उद्भव विचारधारा के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण युग माना जाता है । क्योंकि इस काल में वामपंथी दल के अन्तर्गत उसकी प्रमुख धारा साम्यवाद का उदय हुआ जो कि एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना मानी जाती है ।

साम्यवादियों ने अपने अथक प्रयत्नों एवं आन्दोलनात्मक गतिविधियों के द्वारा जो सक्रिय कार्य किए उनके परिणामस्वरूप भारतीय स्वतंत्रता को प्राप्त करने में योगदान मिला।

साम्यवादियों के उत्थान के समय भारत में अंग्रेजी शासन का स्वरूप एवं प्रभाव बना हुआ था । इस समय अंग्रेजी शासन की दासता, शोषण, अत्याचार, अन्याय, एवं भारतीयों को राजनैतिक, प्रशासनिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व, अधिकार, प्राप्त न होने की स्थिति बनी हुई थी । भारतीयों में अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष उग्रवादी भावना, विद्रोह का वातावरण बना हुआ था । राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियाँ निरन्तर रूप में सक्रिय हो रही थी। 1920–21 ई. में महात्मा गांधी का भी राजनैतिक व राष्ट्रीय आन्दोलन में पर्दापण हो चुका था । वामपंथियों की गतिविधियाँ प्रभावशाली हो गयी थी । इसके अन्तर्गत साम्यवादी व कांग्रेस समाजवादी विचारधारा के नेताओं ने ब्रिटिश सरकार की नीतियों का विरोध अपने–अपने दलों के माध्यम से करना प्रारम्भ कर दिया था, परिणामस्वरूप एम एन. राय के नेतृत्व में सर्वप्रथम साम्यवादी विचारधारा की स्थापना हुयी, जिसके उदय एवं उद्भव हेतु निम्नांकित परिस्थितियों ने योगदान किया।

9.2 साम्यवादी आन्दोलन के उदय के कारण

भारत में साम्यवादी दल के उद्भव में विपिन परिस्थितियों ने योगदान दिया था, जिसके उदय के निम्नांकित प्रमुख कारण थे :–

1. **प्रथम महायुद्ध से उत्पन्न सामाजिक व आर्थिक दोषपूर्ण स्थिति** :

भारत में 1914 ई. से 1918 ई. तक प्रथम विश्वयुद्ध की भूमिका रही । इस युद्ध के परिणाम स्वरूप एक ओर जन धन की हानि हुई उसी प्रकार दूसरी तरफ सामाजिक व आर्थिक बुराईयों को प्रोत्साहन मिला । इस समय जीवन की आवश्यक वस्तुओं के भाव काफी बढ़ गए थे। जनसाधारण के लिए विशेषकर मध्यमवर्ग, कृषक, मजदूरों आदि के लिए जीवन निर्वाह असहनीय हो गया था। देश में अकाल की स्थिति भी उत्पन्न हो गयी थी । समाज में सामाजिक असमानता, चोरी, डकैती, वर्गसंघर्ष निम्न जीवनस्तर की स्थिति बन गयी थी । इस वातावरण में अंग्रेजी सरकार के द्वारा भारतीयों के हित में किसी प्रकार के कदम नहीं उठाए गए। परिणामस्वरूप भारतीयों में असन्तोष व विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गयी थी । ऐसी स्थिति में मध्यमवर्ग में 19वी सदी के उदारवाद से विश्वास उठ गया था। उनमें क्रांतिकारी विचारधारा उत्पन्न हुई । जो अतिवादी थे उनमें महात्मा गांधी की अहिंसा नीति के प्रति निष्ठा नहीं थी । परिणाम स्वरूप साम्यवादियों के सक्रिय सहयोग के फलस्वरूप भारत में साम्यवादी विचारधारा को प्रोत्साहन मिला।

2. 1917 ई. की बोलशेविक क्रांति का प्रभाव :

1917 ई. में रूस में जो बोलशेविक क्रांति हुयी उसका भी भारत में प्रभाव हुआ और साम्यवादी विचारधारा के उदय में प्रोत्साहन मिला । इस क्रांति के सम्पूर्ण प्राचीन विश्व के देशों में भयंकर विस्फोटक परिणाम हुए थे । दलित और शोषित वर्ग मास्को को एक नया स्वर्ग समझने लगे तथा लेनिन की पितामह और मसीहा के रूप में पूजा करने लगे । इसका कारण यह था कि इस क्रांति के परिणामस्वरूप समाज के पिछड़े वर्ग, शोषित वर्ग जिसमें किसान व मजदूर प्रमुख थे उन्हें सामाजिक, आर्थिक अधिकार सुविधाएं प्राप्त हुई । इसी प्रकार भारत के इस वर्ग ने महसूस किया एवं प्रेरणा प्राप्त की कि उनके साथ भी रूस के समान परिस्थितियां है उन्हें दूर

करने के लिए यह आवश्यक है कि भारत में क्रांति लाई जाये और वह साम्यवादी दल के माध्यम से संभव है । अत: भारत के विभिन्न साम्यवादी विचारक मानवेन्द्र नाथ राय, जवाहरलाल नेहरू आदि को रूस से प्रेरणा मिली तथा भारत व अन्य देशों में मार्क्सवादी व लेनिनवादी विचारधारा प्रवेश करने लगी ।

3. भारतीय साम्यवादियों का योगदान :

भारत में मार्क्सवादी विचारधारा के लोग – मानवेन्द्र नाथ राय, जवाहरलाल नेहरू, अबानी मुखर्जी, नलिनी गुप्त, सन्तोख सिंह, गुरुमुख सिंह, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय, भूपेन्द्र दत्त, अमृत डांगे, रजनी पामदत्त आदि ने अपने विचारों व सक्रिय गतिविधियों के माध्यम से साम्यवादी दल की स्थापना में सक्रिय सिद्ध हुए।

मानवेन्द्र नाथ राय भारतीय साम्यवाद के संस्थापकों में से थे । उन्होंने ताशकन्द में कुछ लोगों को मार्क्सवादी सिद्धान्त सिखाने का प्रयास किया था । शताब्दी के तीनों दशकों में राय ने अपनी ओजस्वी रचनाओं के द्वारा कुछ अन्य भारतीय युवकों को मार्क्सवादी विचार धारा में दीक्षित करने का प्रयास किया। अंबानी मुखर्जी, नलिनी गुप्त आदि युवकों ने मास्को प्राप्य विद्यापीठ में मार्क्सवाद की दीक्षा ग्रहण की। 1928 ई में राय को भाग्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय दल से निकाल दिया गया । क्रांतिकारी जिसमें संतोख सिंह, रतन सिंह, गुरुमुख सिंह आदि कुछ सदस्य मास्को गए और साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय चतुर्थ सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इसी प्रकार 1921 ई में वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय, भूपेन्द्र दत्त, पी.खान खोजी तथा नलिनी गुप्त आदि मास्को गए । उन्होने अपने को साग्यवादी बतलाया । बंबई के श्रीपत अमृत डांगे पुराने बोलशेविक रहे, रजनी पामदत्त विदेशों में भारतीय साम्यवाद के प्रमुख प्रवक्ता तथा भारतीय साम्यवादियों के गुरु और पथप्रदर्शक रहे हैं । इन साम्यवादियों के सतत् प्रयत्नों के कारण भारत में साम्यवादी विचारधारा की त्यागना हुयी ।

4. ब्रिटिश सरकार की दोषपूर्ण नीति :

भारत में अंग्रेजी सरकार का साम्राज्यवादी, सामाजिक, आर्थिक दोषपूर्ण नीतियाँ के फलस्वरूप जो अव्यवस्था तथा असंतोष की स्थिति बनी हुयी थी उसके परिणाम स्वरूप भारत में साम्यवादी विचारधारा को प्रोत्साहन मिला। भारतीय जो कि अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध एवं असन्तुष्ट थे, उन्हें साम्यवादियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ । परिणाम स्वरूप साम्यवादियों के कारण उक्त परिस्थिति में भारत में साम्यवादी दल की स्थापना को प्रेरणा प्राप्त हुयी।

5. शिक्षित मध्यम वर्ग का योगदान :

भारत में साम्यवादी विचारधारा एवं दल की स्थापना में भारतीय शिक्षित मध्यम वर्ग का भी सक्रिय योगदान रहा। इस वर्ग का अंग्रेजों की उदारवादी नीति में अविश्वास उत्पन्न हो गया था, जिन्हें बेरोजगारी, भुखमरी की स्थिति से गुजरना पड़ रहा था। यह वर्ग अब ब्रिटिश सरकार विरोधी नीति में विश्वास रखने लगा और उन्होंने भारत में साम्यवादी दल की स्थापना करना जगाना प्रमुख लक्ष्य समझा ।

6. गांधीजी की अंहिसावादी नीति से उत्पन्न असंतोष :

भारत में गांधीजी के नेतृत्व में जो राष्ट्रीय आंदोलन चलाया जा रहा था वह अहिंसावादी सिद्धान्तों, पर आधारित था । लेकिन भारत में एक विशिष्ट वर्ग गांधीजी की इस नीति से असन्तुष्ट था । वह इस नीति को अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध आन्दोलन के विकास के मार्ग में

बाधक समझता था अन इस अतिवादी वर्ग ने भारत में साम्यवादी दल की स्थापना को महत्व प्रदान किया

7. निम्न वर्ग का योगदान :

भारत में प्रमुखत किसान, मजदूर व शिक्षित बेरोजगार वर्ग अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध था। उनके सामाजिक स्तर उनके हितों उद्देश्यों को पूर्ति के प्रति सरकार के उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण सरकार के प्रति जीवन निर्वाह के साधन उपलब्ध न करवाने की स्थिति मे भारतीयों में अंग्रेजी सरकार के प्रति असन्तोष एवं विद्रोह की भावना बढ़ी, परिणामस्वरूप उन्होंने भारत में साम्यवादी विचारधारा के नेतृत्व को स्वीकार करने व उन्हें सहयोग प्रदान करने का उद्देश्य बनाया जिसके फलस्वरूप साम्यवादी दल की स्थापना को प्रोत्साहन मिला ।

9.3 साम्यवादी दल की स्थापना, उद्देश्य, एवं कार्यक्रम

ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्य पूर्ण माना जाता है कि भारत में साम्यवादी दल की स्थापना जुलाई 1924 में एम एन राय के नेतृत्व एवं सहयोग के परिणाम स्वरूप हुयी थी। रूस के नेताओं जिनमें लेनिन, ट्रोटस्की के नाम उल्लेखनीय है, उन्होने भारत में अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की शाखा स्थापित करने का निर्णय किया था। भारत में मानवेन्द्र नाथ राय को इन संबंधों को स्थापित करने का श्रेय जाता है। एम.एन. राय 1920 ई. में प्रथम बार रूस गये थे। 1921–22 ई में उन्होंने यूरोप के कई स्थानों से अंग्रेजी पत्रिका निकाली जिसका नाम पहले “वेनगार्ड" और बाद में "मासिज ऑफ इण्डिया" था। इस पत्रिका की अनेकों प्रतियां भारत में मजदूरों राष्ट्रवादियों और शिक्षित वर्ग के लोगों में वितरित की गयी। 1924 ई. में एम.एन. राय की सिफारिश पर भारत मे अंतर्राष्ट्रीय दल ने अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की शाखा भारत का साम्यवादी दल स्थापित करना स्वीकार किया।

भारत में साम्यवादी दल एवं साम्यवादियों के निम्नांकित प्रमुख उद्देश्य एवं कार्यक्रम थे कि –

1. साम्यवादियों का प्रमुख उद्देश्य भारत के निम्नवर्ग किसान, मजदूर, शिक्षित बेरोजगार वर्ग को उनकी दैनिक सुविधाएं, आवश्यक साधन, रोजगार उपलब्ध करवाने हेतु अंग्रेजी सरकार से मांग करना एवं आन्दोलनात्मक गतिविधि कर उनको पूरा कराने का प्रयास करना था।
2. साम्यवादियों का अन्य लक्ष्य भारतीयों को उनके स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय सहयोग प्रदान कर भारतीयों को स्वतंत्रता दिलाने का प्रयास करना ।
3. गांधीजी के अहिंसा पूर्ण स्वतंत्रता आन्दोलन की नीति का विरोध करना एवं भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हिंसात्मक आन्दोलन को प्रोत्साहित करना था ।
4. साम्यवादियों का अन्य लक्ष्य इसमें निहित था कि उत्पादन के क्षेत्र में जो किसान व मजदूर कार्य कर रहे है उनके हाथ में शक्तियां प्रदान की जायें ।
5. साम्यवादियों ने इस बात का भी प्रयास किया कि भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस को यह स्पष्ट किया कि भारत में उनके द्वारा जो ब्रिटिश सरकार विरोधी आंदोलन प्रारम्भ किए गए है वे तभी सफल हो सकते है जबकि राष्ट्रीय कांग्रेस समाज में विद्यमान सामाजिक व आर्थिक दोषों को दूर करे एवं आम जनता को राहत पहुंचाए ।

6. साम्यवादी दल का गठन भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस को बलशाली, सुदृढ़ बनाने एवं उसकी नीतियों को सक्रिय स्वरूप व आधार प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया था।

9.4 साम्यवादी विचारधारा के विभिन्न विचारक एवं उनका योगदान

मानवेन्द्र नाथ राय साम्यवादी आन्दोलन के प्रमुख साम्यवादी विचारक माने जाते है । उनका जन्म 6 फरवरी 1886 ई. में हुआ था । उनका प्रारम्भिक नाम नरेन्द्र भट्टाचार्य था। वे अपने विद्यार्थी जीवन से ही क्रांतिकारी बन गए थे । उन पर प्रारम्भ में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ व दयानन्द का प्रभाव पड़ा था। बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप उथल–पुथल मची हुयी थी उसी काल में उन्हें राजनीतिक बोध हुआ और उनके राजनैतिक जीवन की शुरूआत हुयी थी ।

1920 ई. में वे रूस गए और औपनिवेशिक समस्याओं पर बोलशेविक पार्टी के सलाहकार बन गए। 1922 ई. में राय ने अपनी पुस्तक "इण्डिया इन ट्रांजीशन" में समकालीन भारत का समाज शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने मार्क्सवादी व्याख्या प्रस्तुत की । उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि भविष्य का भारतीय राष्ट्र भारतीय समाज में निहित प्रगतिशील शक्तियों के अपरिवर्तनशील का संक्रमण उन सामाजिक शक्तियों की गतिविधि का परिणाम है जो पुरानी पतनशील सामाजिक आर्थिक व्यवस्था लै बदलने के लिए संघर्ष कर रही है । राय ने अपनी पुस्तक में तीन विषयों की विवेचना की। भारतीय पूंजीपति वर्ग का उदय, कृषक जनता का दरिद्रीकरण तथा नगरीय सर्वहारा की निर्धनता । राय ने बताया कि वृहत उद्योग ही भारत के भविष्य का निर्धारण करेगा। औद्योगिक विकास से मजदूरों की संख्या तथा शक्ति में अनिवार्यत वृद्धि होगी इसलिए भारत का पूंजीपति वर्ग उस साम्राज्यीय पूंजीपति वर्ग के साथ समझौता करना चाहेगा। जिसका प्रतिनिधित्व ब्रिटिश संसद तथा भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने का काम अनिवार्यत: उन किसानों और मजदूरों को करना पड़ेगा जो सचेत रूप से संगठित होंगे और वर्ग संघर्ष के आधार पर युद्ध करेंगे ।

1922 ई के अन्त में एम. एन. राय ने "इण्डियाज प्राब्लम्स एंड देयर सोल्यूशन" नामक पुस्तक प्रकाशित की । इस पुस्तक में उन्होंने पूर्णत मार्क्सवादी दृष्टि मे गांधीवादी सामाजिक विचारधारा की मध्ययुगीनता तथा पुरातनवाद की आलोचना की। राम ने सविनय अवज्ञा के स्थान पर जो कि कांग्रेस की कार्य प्रणाली थी, जुझारू सामूहिक कार्यवाही की सलाह दी । 1942 ई के भारत छोड़ो आन्दोलन की निन्दा की। उनका कहना था कि यह आन्दोलन कांग्रेस के औद्योगिक तथा वित्तीय संरक्षकों द्वारा संगठित किया गया है । राय ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों की सहायता करने की सलाह दी ।

इसी प्रकार जवाहरलाल नेहरू भी अन्य साम्यवादी विचारक हुए। उहोने नवम्बर 1927 ई में सोवियत संघ की यात्रा की थी । इस यात्रा के दौरान उन्होंने शिक्षा, स्त्री उद्धार तथा किसानों की दशा के सुधार के क्षेत्र की जानकारी प्राप्त की थी। 1927 ई में रूस से लौटने के बाद उन्होंने साम्यवाद व समाजवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया था ।

नेहरू को मार्क्स की विश्व तथा इतिहास की धारणा से प्रेरणा मिलीं थी । लेकिन कालान्तर में नेहरू का विश्वास साम्यवाद के प्रति पूर्ण रूप से नही रहा ।

इसी भांति अबानी मुखर्जी, नलिनी गुप्त, सन्तोख सिंह, गुरुमुख सिंह, रजनीपाम दत्त आदि साम्यवादी विचारक मास्को गए । उन्होंने वहां की साम्यवादी विचारधारा, व्यवस्था का भली

भांति अध्ययन किया और जब वे भारत लौटे तो उन्होंने भारत में साम्यवादी आन्दोलन में सक्रिय रूप में भाग लिया। भारत में विद्यमान सामाजिक, आर्थिक असमानता विषमताओं को दूर करने, कृषकों, मजदूरों, को उनके अधिकार दिलाने एवं सम्पूर्ण सामाजिक वह अर्थव्यवस्था को सुधारने हेतु आन्दोलनात्मक गतिविधियाँ की । इसके परिणामस्वरूप भारत में साम्यवादी विचारधारा एवं आन्दोलन को गतिशील स्वरूप प्राप्त हुआ।

9.5 साम्यवादी आन्दोलन के विभिन्न चरण

साम्यवादी आन्दोलन के इतिहास को सुविधानुसार पांच चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

1. प्रथम चरण :

इस अवस्था को तीन षड्यंत्रों के मुकदमों का काल भी कहा जाता है । भारतीय साम्यवादियों का पहला दल मास्को से प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् भारत में आया तो वे महामहिम सम्राट के विरुद्ध षड्यंत्र करने के दोषी ठहराए गए। इंग्लैण्ड के साम्यवादी दल ने इस भारतीय दल के निदेशन का दायित्व अपने ऊपर ले लिया तथा उनका एक प्रतिनिधि श्री फिलिपस्थ्रट दिसम्बर 1926 ई. में भारत में आया और उसने भारत में कई संघों का गठन किया। समाचार पत्रों का सम्पादन, युवकों को संगठित तथा साम्यवादी संगठनों को आरम्भ किया। बंगाल, बम्बई, पंजाब और उत्तरप्रदेश में चार कामगार तथा कृषकों के दलों को गठन किया गया। दिसम्बर 1928 ई. में अखिल भारतीय कामगार तथा कृषक दल अस्तित्व में आया। 1928–29 ई. में साम्यवादी दल ने बम्बई में अनेक हड़तालें करवायी।

इस काल में साम्यवादी दल ने तीन षडयंत्रों में संबंधित होने के कारण विशेष ध्यान आकर्षित किया। ये थे पेशावर षड्यंत्र मुकदमा 1922–23 ई., कानपुर षड्यंत्र मुकदमा 1924 ई. और मेरठ षड्यंत्र मुकदमा 1929–39 ई.। इसमें 27 लोगों को दण्ड मिला, इनमें से लगभग आधे तो राष्ट्रवादी अथवा व्यापार संघ के लोग थे । परिणामस्वरूप साम्यवादी शहीद कहलाए । इनके अंग्रेज विरोधी रुख के कारण राष्ट्रवादी इनसे सहानुभूति रखने लगे और कांग्रेस कार्यकारिणी ने इनके मुकदमों के लिए एक केन्द्रीय सुरक्षा समिति का गठन किया तथा 1500 रु. इसके लिए दिया गया । इस मुकदमें में जवाहरलाल नेहरू, कैलाश नाथ काटजू और डॉ. एफ. एच. अन्सारी जैसे लोग प्रतिवादी की ओर से पेश हुए । गांधीजी इन अपराधियों को जेल में मिलने गए और साम्यवादी नेताओं के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की । इस परिस्थितियों में साम्यवादियों को केन्द्रीय विधानसभा में कांग्रेसी सदस्यों का समर्थन मिला और उन्होंने सरकार द्वारा प्रस्तुत सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक जो कि मुख्यत: साम्यवादियों के विरुद्ध था, का विरोध किया और बिल पारित नहीं होने दिया । इस परिस्थिति में मुकदमें का लाभ उठाकर साम्यवादी नेताओं ने राजनैतिक रंग में भरे वक्तव्य दिए जिनकी राष्ट्रवादी समाचार पत्रों ने काफी महत्व प्रदान किया। 1934 ई. तक भारत में साम्यवादी आन्दोलन ने अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी । जुलाई, 1934 ई. में भारतीय साम्यवादी दल अवैध घोषित कर दिया गया।

2. दूसरा चरण :

महात्मा गांधी के नेतृत्व में जब राष्ट्रवादी आन्दोलन निरन्तर अग्रसर हो रहा था और जनता में विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध भावनाएं जगाने में आन्दोलन को सफलता मिल रही थी,

उसी समय साम्यवादी आन्दोलन को संगठन और विचारधारा संबंधी प्रश्नों, के कारण बहुत हानि उठानी पड़ी । 1928 ई. के साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के संकेत प्राप्त कर उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वामपन्थी और दक्षिणपन्थी अंगों पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया । इस समय जब कांग्रेस ने साइमन कमीशन का बहिष्कार, पूर्णस्वराज्य का प्रस्ताव पारित करना एवं द्वितीय सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रस्ताव किया था । उस समय साम्यवादी दल ने यह चाहा था कि वह इस संघर्ष को त्रिकोण का रूप देकर कांग्रेस की शक्ति कैंप कर दें । साम्यवादियों को यह विश्वास था कि कांग्रेस उन उद्योगपतियों का समर्थन कर रही है, जो भारतीय श्रमिक वर्ग का, शोषण कर रहे है । अत: कांग्रेस भी उतनी ही दोषी है जितने साम्राज्यवादी शोषक, परिणाम स्वरूप साम्यवादियों ने साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ–साथ भारतीय शोषक वर्ग के विरुद्ध भी आन्दोलन किया।

3. **तीसरा चरण** :

इस अवस्था को साम्यवादी और साम्राज्यवाद विरोधी संयुक्त मोर्चा योजना अवस्था भी कहा जाता है। 1936 ई में आर पी दत्त और बेन ब्रेडले ने अपना निबंध "भारत में साम्राज्यवाद विरोधी जनता का मोर्चा" प्रकाशित किया । उन्होंने साम्यवादियों को दिया कि वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित हो जाएं । उनके सगंठन का करें और कांग्रेस समाजवादी दल को सुदृढ़ बनाए तथा जो प्रति क्रियावादी दक्षिण पन्थी है उन्हें निकाल बाहर करें। साम्यवादियों, कांग्रेस समाजवादियों और व्यापार संघों ने न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर लोकप्रिय मोर्चा बनाने पर विचार किया । लेकिन यह नहीं बन सका।

4. **चौथा चरण** :

1939 ई में जब द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ उस परिस्थिति में रूस के निर्देश पर भारतीय साम्यवादी नेता सभी प्रकार के साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी संयुक्त नीति का अनुसरण करते रहे, बल्कि कांग्रेस से भी आगे सफलता प्राप्त करते चले । क्योंकि कांग्रेस की नीति इस युद्ध के संबंध में स्पष्ट नहीं थी । महात्मा गांधी ने ही इस युद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध घोषित किया था।

जून, 1941 ई. में जब हिटलर ने रूस पर आक्रमण कर दिया तो भारतीय साम्यवादियों की स्थिति विचित्र हो गयी थी । भारतीय साम्यवादियों ने अब द्वितीय विश्वयुद्ध को साम्राज्यवादी न कहकर लोक युद्ध कहना आरम्भ किया। अगस्त 1942 ई में कांग्रेस ने छोड़ो का नारा लगाया तो साम्यवादियों ने इस आन्दोलन को अन्तध्र्वस्त करने के अंग्रेजों की ओर से भेदियों की भूमिका भी निभाई ।

5. **पाँचवा चरण** :

इस काल में साम्यवादी दल की नीति मुस्लिम समर्थन की थी । इन्होंने । कांग्रेस भेदों को बढ़ावा देने का प्रयास किया तथा कभी पृथक्कीकरण की भावनाओं को और उनका उद्देश्य यह था कि भारत छोटे–छोटे राज्यों में बंट जाए । लेकिन लीग ने इस मित्रता को स्वीकार नहीं किया परिणाम स्वरूप भारतीय साम्यवादी दल कलंकित संस्था बन गई ।

1942 ई. में साम्यवादियों ने एक प्रस्ताव पारित किया था कि भारत एक बहुराष्ट्रवादी राज्य है और इस में कम से कम 16 राष्ट्र है। 1946 ई में उन्होंने मंत्रिमण्डलीय शिष्ट मण्डल के सामने एक प्रस्ताव रखा कि भारत को 17 पृथक प्रभुसत्ता पूर्ण राज्यों में बांट दिया जाए। 1947

ई. तक साम्यवादी दल अपनी प्रतिष्ठा व स्थान को खो चुका था। भारतीयों के लिए जिस समय अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्ति प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य बन गया था, उस समय भारतीय साम्यवादी दल विदेशियों के दिशा निर्देश पर निर्भर था। परिणाम स्वरूप वह भारत के संदिग्ध संस्था बन गया था ।

मार्क्सवादियों के दो मूल सिद्धान्त "वर्ग द्वेष" और "आतंकवाद" भारतीय परम्परा के विरुद्ध थे।

9.6 साम्यवादी आन्दोलन का विकास एवं भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान

भारत में साम्यवादी आन्दोलन एवं साम्यवादियों की भूमिका का स्वरूप प्रमुखत 1925 ई. में द्रितीय महायुद्ध के आरम्भ तक माना जा सकता है। इस स्थिति का विवेचन प्रसिद्ध विद्वान एन. के. कृष्णन के तथ्यपूर्ण आधार पर किया. है।

भारत में साम्यवादी दल की स्थापना के पश्चात् 1925 ई से भारत ने समस्त गुटों का सामंजस्य पूर्ण कार्य यह रहा कि उन्होंने भारत की ठोस परिस्थितियों में मार्क्स और लेनिन के विचारों को लागू करके राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए एक कार्यक्रम किया, जिसमें आन्दोलन के उद्देश्यों तथा उन तक पहुंचने के उपायों का दिग्दर्शन कराया गया था । उस समय तक राष्ट्रीय आन्दोलन की मांग डोमिनियन पद तक सीमित थी । इसके स्थान पर साम्यवादी दल के कार्यक्रम में पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता का लक्ष्य सामने रखा गया था ।

साम्यवादियों ने अर्थव्यवस्था पर से साम्राज्यवादी प्रभाव को हटाने, जमींदारों और राजे रजवाड़ों को समाप्त करने तथा बह्राजीवी लोगों को पूर्ण लोकतांत्रिक स्वतंत्रताए दिए जाने की मांग करके सभी वर्गो के लोगों के लिए इसने स्वाधीनता के लक्ष्य को ठोस रूप प्रदान किया था । साम्यवादियों ने भारतीय लोगों को पूर्ण सत्ता के हस्तान्तरित किए जाने की मांग की थी। जिससे कि वे अपनी स्वतंत्र रूप से निर्वाचित राष्ट्रीय संविधान सभा द्वारा एक लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना कर सकें । इन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की सभी शक्तियों दमा एकता के माध्यम से लाई गयी जून क्रांति के जरिए ब्रिटिश साम्राज्यवादी. शामन को हटाने का आव्हान किया । इस जनक्रांति में मजदूरों और किसानों से संगठनो तथा उनके कार्यो की महत्वपूर्ण भूमिका रही ।

साम्यवादी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन में अपन कार्यक्रम प्रस्तुत किया करते थे । इन्होंने कांग्रेस के भीतर की वामपंथी शक्तियों को एक स्पष्ट, न्यायपूर्ण एवं क्रांतिकारी दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान किया था। साम्यवादियों का कार्यक्रम 1930 ई. में तैयार किया गया और इसे कार्य प्रारूप मंच की संज्ञा दी गयी ।

1926–27 ई. के पश्चात् इस साम्यवादी दल ने उग्र श्रमिक संघ आन्दोलन और किसान आन्दोलन संगठित करने का बीड़ा उठाया । साम्यवादी राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर भी सक्रिय रूप से कार्यरत रहे और वे इसके लिए आन्तरिक रूप में रहते हुए भी इसके क्रांतिकारी वर्गों को निरन्तर अपना समर्थन प्रदान करते रहे। 1926–29 ई. की अवधि में दल की प्रगति की दृष्टि से संगठनात्मक और राजनीतिक मंच पर किया गया कार्य महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ । इस युग में भारत के विभिन्न राज्यों मे किसानों और मजदूरों की पार्टियों की स्थापना भी की गई । साम्यवादियों ने

मजदूरों के शक्तिशाली संघर्षो को नेतृत्व प्रदान किया । इस समय बम्बई गिरनी कारगार संघ एशिया के शक्तिशाली उग्र श्रमिक संघ के रूप में विकसित हुआ ।

1934 ई के आरम्भ में साम्यवादी दल में एकता स्थापित हुई। इस अवधि से लेकर भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक साम्यवादी दल ने अपने राष्ट्रीय आन्दोलन के वामपंथी पथ को एक मुख्य संगठित अखिल भारतीय राजनीतिक शक्ति के रूप में परिपक्व किया। इस काल में शक्तिशाली अखिल भारतीय श्रमिक संघ, किसान और छात्र संगठनों की स्थापना की गई।

1935 ई. में साम्यवादियों की संख्या लगभग एक हजार थी। 1943 ई में जब इस दल का सम्मेलन आयोजित किया गया था, इसकी सदस्य संख्या 16,000 हो गई थी। 1947 ई के अन्त तक साम्यवादियों के सदस्यों की संख्या 10,000 थी।

1936 ई के प्रारम्भ में, साम्यवादी दल ने दो दस्तावेज प्रकाशित किए। इनमें पहला तो साम्राज्यवाद विरोधी, संयुक्त मोर्चा स्थापित करने के लिए था और दूसरा संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा स्थापित करने के बारे में था । साम्यवादी दल ने साम्यवादियों को कांग्रेस में शामिल होने के लिए कहा बल्कि उन्हें इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे अपने प्रभाव में आए अन्य लोगों को भी कांग्रेस में शामिल होने की प्रेरणा दे । साम्यवादी दल ने श्रमिक संघों और किसान संगठनों को कांग्रेस के साथ सामूहिक रूप से संबंध स्थापित करके कांग्रेस को शक्तिशाली बनाने का प्रस्ताव किया ।

साम्यवादी दल ने यह भी प्रस्ताव किया था कि कांग्रेस, समाजवादी दल और साम्यवादी दल को मिलकर मार्क्सवादी के आधार पर एक मजूदर दल का रूप धारण कर लेना चाहिए। कांग्रेस समाजवादी दल के दक्षिण पंथी नेताओं ने इस प्रस्ताव को रह कर दिया तथापि इस प्रस्ताव को साधारण सदस्यों का पर्याप्त समर्थन प्राप्त था। साम्यवादी दल का प्रस्ताव था कि दल के अन्दर वामपंथी शक्तियों को ठोस कार्यक्रम अपनाकर और बाहर से जनकार्य और संघर्ष करके राष्ट्रीय आन्दोलन को एक क्रांतिकारी दिशा प्रदान करनी चाहिए ।

1937 ई में भारत शासन अधिनियम 1935 ई के आधीन सामान्य निर्वाचन हुए। सामान्य निर्वाचन में हिस्सा लेने की तैयारी हेतु और कांग्रेस का चुनाव घोषणा पर स्वीकार करने के लिए 1936 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का फेजपुर में अधिवेशन बुलाया गया था । साम्यवादी दल ने एक संशोधन के माध्यम से संविधान सभा की स्थापना के लिए सार्वजनिक संघर्ष की तैयारी की मांग की और साथ ही यह प्रस्ताव पारित किया कि यदि कांग्रेस को स्पष्ट बहुत प्राप्त हो जाता है तो इसे सत्ता स्वीकार नहीं करनी चाहिए । इन प्रस्तावों को रह कर दिया गया ।

साम्यवादियों ने 1939 ई. में जब द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ उसे साम्राज्यवादी युद्ध कहकर विरोध किया था और स्वतंत्रता के लिए एक राष्ट्रीय संघर्ष करने की घोषणा की थी। दल ने अपने राष्ट्रव्यापी संघर्ष के कार्यक्रम को अपने पेम्पलेट "प्रोलोटेरियम पाथ' में प्रस्तुत किया। इसमें देश में महंगाई भत्ता बढ़ाने के लिए युद्ध विरोधी हड़तालों तया हड़ताल संघर्षों के लिए मजदूरों का आव्हान किया।

1941 ई में हिटलर ने जब रूस पर आक्रमण किया और फासिस्ट शक्तियों के विरुद्ध एक संगठन का निर्माण हुआ । उस समय साम्यवादी दल का यह तर्क था कि फासिस्ट विरोधी युद्ध

को हमारा समर्थन बिना किसी शर्त के होना चाहिए और ऐसी ही स्थिति को हमारी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए किए जा रहे आन्दोलन का आधार बनाया जाना चाहिए ।

1942 ई के भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रति साम्यवादियों ने नकारात्मक नीति अपनायी थी। मई 1943 ई में साम्यवादी दल के सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन प्रान्तीय समितियों और जिला इकाईयों सहित दल के संगठन की राष्ट्रव्यापी संरचना के निर्माण की शुरुआत हुयी थी ।

1945 ई के अन्त तक प्रान्तीय सभाओं और केन्द्रीय विधान सभा के लिए निर्वाचनों की घोषणा के साथ जो चुनाव अभियान प्रारम्भ हुए उसमें अत्याधिक हिंसात्मक साम्यवाद विरोधी आन्दोलन चलाए गए । साम्यवादी दल को देशद्रोही दल कहकर बदनाम किया गया । इसकी चुनाव सभाओं पर आक्रमण किए गए और इसके कार्यकर्ताओं की पिटाई की गई।

साम्यवादी दल ने 1945–46 ई. में निर्वाचनों में कुटनीतिक पूर्ण ढंग से भाग लिया। दल ने ब्रिटिश और अन्य विदेशी पूंजी के राष्ट्रीयकरण, जमींदारी उन्मूलन और किसानों को जमीन, रजवाड़ों की समाप्ति, लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में देश के एकीकरण और भाषायी सांस्कृतिक समरूप इकाईयों के स्वैच्छिक संघ के आधार पर स्वतंत्र लोकतांत्रिक और समृद्ध भारत के निर्माण का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस वातावरण में साम्यवादी दल ने इस निर्वाचन में 7 लाख मत प्राप्त किए और प्रान्तीय विधान सभाओं में 9 स्थान प्राप्त हुए।

फरवरी 1946 ई. में बम्बई स्थित रॉयल इण्डियन नेवीं के सैनिकों के द्वारा जो विद्रोह प्रारम्भ किए, साम्यवादी दल ने इस क्रान्ति को ध्यान में रखते हुए सभी मोर्चों पर जनता के संघर्षों को समर्थन प्रदान करने और उन्हें संगठित करने की नीति निर्धारित की ताकि उन्हीं के आधार पर साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रहार किया जा सके तथा कांग्रेसी नेताओं द्वारा इन संघर्षों को रोकने अथवा समाप्त करने के प्रयासों को भी विफल किया जा सके ।

1945–46 ई. के ब्रिटिश विरोधी क्रांतिकारी जन आन्दोलन में भारतीय साम्यवादी दल की पर्याप्त महत्वपूर्ण भूमिका रही । परिणाम स्वरूप भारत में अंग्रेजी सेना का अस्तित्व अव्यवस्थित हो गया और उन्हें यह आभास होने लगा कि वे अब अधिक समय तक क्षमता पूर्ण रूप में शासन संचालित नहीं कर सकेंगे । इस समय साम्यवादियों ने गोल्डन के रेल मजदूरों, कोयम्बटूर के कमला मिल मजदूरों और कलकत्ता, कानपुर, बम्बई तथा त्रावणकोर में हड़तालों तथा संघर्षों का नेतृत्व किया। कृषक आन्दोलनों के संदर्भ में भी यह स्पष्ट है कि बंगाल के तेमागा आन्दोलन उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों के काश्तकारों का संघर्ष, बिहार का बकाश्त संघर्ष और बम्बई के आदिवासियों, किसानों और श्रमिकों के संघर्ष के नेतृत्व साम्यवादियों ने किया था । इस दल को चीन, त्रावणकोर में राजे–रजवाड़ों तथा जमींदारों का शासन समाप्त करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा पुन: रुप्पा वायालार के सशस्त्र संघर्ष को भी नेतृत्व प्रदान किया था। इसी प्रकार साम्यवादियों ने तेलंगाना में सामंतीय जमींदारों के अत्याचार के विरुद्ध कृषकों के सशस्त्र संघर्ष का भी नेतृत्व किया था।

15 अगस्त 1947 ई. को जब भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुयी और माउण्टबेटन पंचाट का प्रकाशन हुआ उस स्थिति में भी साम्यवादियों ने नई परिस्थितियों का मूल्यांकन किया और अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करना उचित समझा । इस दल ने जो, दृष्टिकोण व्यक्त किया वह जून 1947 ई. में दल की केन्द्रीय समिति द्वारा स्वीकार किए गए संकल्प के माध्यम से व्यक्त

किया गया था कि भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन की अदम्य शक्ति क्रो स्वीकारते हुए अब ब्रिटिश साम्राज्यवाद को यह विशेष आशा नहीं है कि अब अधिक समय तक भारत पर प्रत्यक्ष शासन कर सके। 1948 ई. में साम्यवादियों ने भारत के दक्षिण में हिंसात्मक कार्यवाही की, किन्तु उनके विरुद्ध कठोर कार्यवाही की गई। फरवरी 1950 ई. में सरदार पटेल के आग्रह पर संसद ने विद्रोहात्मक कार्यवाहियों को रोकने के लिए निवारक नजरबन्दी कानून पास कर दिया गया। 1950 ई. के बाद साम्यवादी दल ने अपने को जनता के दल के रूप में निर्मित करने का प्रयास किया, जिससे कि वह श्रमिकों और किसानों को संगठित करने में सफल हो सकें इसके पश्चात् साम्यवादियों की निरन्तर भूमिका बनी रही।

9.7 सारांश

इस प्रकार भारतीय साम्यवादियों की स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय एवं महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनकी भूमिका का स्पष्ट एवं तथ्यात्मक ऐतिहासिक विवेचन करने के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि साम्यवादियों ने अपने धर्म योद्धाओं जैसे उत्साह और संघर्ष शीलता के द्वारा भारतीय राजनीति में श्रमिक वर्गो की मांगों को मुखरित करने का प्रयास किया था। उन्होंने भारतीय राजनीतिक जीवन के दुर्बल पहलुओं से लाभ उठाने में कूटनीति व चतुरता का परिचय दिया है।

साम्यवादियों ने भारतीय इतिहास एवं दर्शन के अध्ययन में ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्तों को लागू करने का प्रयास किया है । साम्यवादियों की रचनाएं यद्यपि अतिश्योक्ति पूर्ण रही तथापि उन्होने भारतीय समाज के सामन्तवादी तथा शोषण मूलक स्वरूप की कटु आलोचना की है । उनकी इस आलोचना पूर्ण नीति के कारण भारतीयों की जो आध्यात्मिक संस्कृति के संबंध में अहंकार व भावुकता की भावना बनी हुयी थी उसमें परिवर्तन की स्थिति को प्रोत्साहित किया था। इसी प्रकार विवेचन के फलस्वरूप यह भी स्पष्ट होता है कि भारतीय साम्यवादी दल बहुराष्ट्रवाद तथा उपराष्ट्रवाद के सिद्धान्त का प्रचार करके विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दे रहा है ।

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न– 1

पाँच पंक्तियों में उत्तर लिखें :

1. साम्यवादी दल की स्थापना एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. साम्यवादी विचारक मानवेन्द्र नाथ राय की विचारधारा बताईये?

   .....

   .....

   .....

   .....

3. जवाहरलाल नेहरू के साम्यवादी विचारों का वर्णन कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न–2

निम्नांकित वाक्यों को पढ़कर उनके सम्मुख सही () या गलत () का निशान लगाईये ।

1. साम्यवादी दल वामपंथी दल की विचारधारा थी।
2. साम्यवादी दल की स्थापना 1924 ई. में की गयी थी ।
3. जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव साम्यवादी विचारधारा के व्यक्ति थे ।
4. साम्यवादी आन्दोलन के क्षेत्र में नलिनी गुप्त, अबानी मुखर्जी, एम .ए. डांगे, रजनीपाम दत्त का सक्रिय योगदान रहा।
5. साम्यवादी आन्दोलन को भारत में रूस की बोलशेविक क्रांति ने प्रोत्साहन दिया था ।
6. प्रथम महायुद्ध से उत्पन्न सामाजिक व आर्थिक दोषपूर्ण स्थिति के कारण भारत में साम्यवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ।
7. "इण्डिया इन ट्रांजिशन" "इण्डियाज प्रॉबलम्स एण्ड देयर सोल्यूशन", एम एन. राय की पुस्तक है ।
8. भारत के साम्यवादी दल का मुख्य सचिव जयप्रकाश नारायण को बनाया गया था।

बोध प्रश्न–3

निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर 100 शब्दों में लिखिए ।

1. भारत में साम्यवादी दल की स्थापना हेतु विभिन्न परिस्थियों का वर्णन कीजिए ।
2. भारत में साम्यवादी दल के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए ।
3. साम्यवादियों के विकास एवं स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान का विवेचन कीजिए ।

9.9 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. एम आर. मसानी "दि कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया"
2. जी डी. ओवरस्ट्रीट एण्ड विन्डमिलर "कमुनिस्म इन इण्डिया"
3. माइरन "पार्टी पालिटिक्स इन इण्डिया – दि डेवेलपमेन्ट ऑफ मल्टी पार्टी सिस्टम"
4. एल पी. सिन्हा –"लेफ्ट विंग इन इंडिया" ।
5. एस. आर. चौधरी "लेफ्ट विंग मूवमेंट इन इंडिया (1917–47ई)
6. वी. वी. वाला भूशेविच 'ए कन्टेम्परेरी हिस्ट्री ऑफ इंडिया (1918– 1955 ई)
7. ग्रोवर व यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास.
8. वी .पी. वर्मा "मॉडर्न पोलिटिकल थॉट.
9. एन.के. कृष्णन भारतीय साम्यवादी दल.
10. डी. कृषणकान्त मिश्र –भारत की राजनीतिक प्रणाली'
11. प्रताप सिंह 'आधुनिक भारत' (1906– 1950 ई)
12. विपिनचन्द्र "कम्यूनलिज्म इन मॉडर्न इण्डिया

13. आर सी मजूमदार स्ट्रगल फॉर फ्रीडम
14. आर सी मजूमदार -"बिटिश पेरामाउंटसी एण्ड इण्डियन रेनेशा"
15. एच एच. डोडवेल "कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया. खण्ड–71
16. आबिद अली "दी इण्डियन कम्युनिस्ट"
17. जी. अधिकारी –डोक्यूमेनट्स ऑफ दि हिस्ट्री ऑफ दि कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया.
18. एन ई. बलराम "ए शोर्ट हिस्ट्री ऑफ दि कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया"
19. जे. पी. हेथकोक्ष कमूनिज़्म एण्ड नेशलिज़्म इन इण्डिया.
20. मधु लिमए - "कम्युनिस्ट पार्टी -फेक्ट्स एड फिक्शन"
21. विल्डमिलर मार्शल "कमूनिज्म इन इण्डिया.'
22. पैट्रीडे विड "कमूनिज्म इन इण्डिया"
23. सेन गुप्ता - "कमूनिज्म इन इण्डिया पालिटिक्स"
24. एस. टैगोर –"हिस्टोरिक्ल डेवलपमेन्ट ऑफ दि कमुनिस्ट मूवमेन्ट इन इण्डिया"
25. मुजफ्फर अहमद "दि कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया एंड इट्स फोर्मेशन एब्रोड़"
26. एन॰जी रंगा किसान एण्ड कम्युनिस्ट.

इकाई – 10

साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 साइमन कमीशन की घोषणा

10.2.1 कमीशन की घोषणा के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां

10.2.2 कमीशन का उद्देश्य

10.2.3 भारतीयों द्वार– कमीशन का बहिष्कार

10.2.4 साइमन कमीशन की सिफारिशें

10.2.5 साइमन कमीशन रिपोर्ट का मूल्यांकन

10.3 नेहरू रिपोर्ट

10.3.1 सर्वदल सम्मेलन

10.3.2 नेहरू समिति की सिफारिशें

10.3.3 नेहरू रिपोर्ट पर प्रतिक्रिया

10.3.4 नेहरू रिपोर्ट का मूल्यांकन

10.4 सारांश

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.6 प्रासंगिक पठनीय ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य छात्रों को भारत के संवैधानिक विकास के अन्तर्गत साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट की जानकारी देना है । इस इकाई का अध्ययन कर लेने पर आपको निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जायेगा -

- साइमन कमीशन को भारत भेजने के उद्देश्य
- किन कारणों से कमीशन को समय से पहले भारत भेजा
- भारतीयों द्वारा कमीशन का बहिष्कार
- साइमन कमीशन की सिफारिशें
- भारत में सर्वदल सम्मेलन का आयोजन ।
- नेहरू. समिति का गठन
- नेहरू समिति की कठिनाईयाँ
- नेहरू समिति की सिफारिशें
- नेहरू रिपोर्ट पर प्रतिक्रिया
- साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट का मूल्यांकन

10.1 प्रस्तावना

भारतीय शासन अधिनियम 1919 की धारा 84 के अनुसार अधिनियम की क्रियान्विति के दस वर्ष बाद भारत में उत्तरदायी सरकार की प्रगति की जाँच करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति का प्रावधान रखा गया था। । चूंकि ये सुधार 1921 ई. में लागू किए गए थे, इसलिए कमीशन की नियुक्ति 1931 ई. में होनी चाहिए थी, या अधिक से अधिक 1929 में होनी चाहिए थी । परन्तु ब्रिटिश सरकार ने भारतीय सुधारों की जांघ करने के लिए 1927 में एक कमीशन नियुक्त किया। इसके अध्यक्ष ब्रिटिश लिबरल पार्टी के एक सदस्य सर जॉन सॉइमन थे। सर जॉन सॉइमन इंग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध वकील भी थे ।

इस कमीशन की समय से पहले नियुक्ति के अनेक कारण है । ब्रिटिश सरकार के अनुसार समय से पूर्व नियुक्ति का कारण भारतीयों द्वारा 1919 के सुधारों में शीघ्र परिवर्तन की मांग थी । परन्तु वास्तव में समय से पूर्व इस आयोग की नियुक्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे:–

1. जब 1922 में कमाल पाशा ने तुर्की को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित कर दिया तो खिलाफत आन्दोलन का महत्व स्वत: ही समाप्त हो गया। इसके परिणाम स्वरूप हिन्दू–मुस्लिम एकता को गहरा आघात लगा । मुस्लिम लीग के नेता जो खिलाफत आंदोलन के दौरान अपना राजनीतिक प्रभाव खो चुके थे, अब पुन: अवसर का लाभ उठाकर सक्रिय हो गये। उन्होंने साम्प्रदायिक राजनीति का प्रयोग कर मुस्लिम लीग को पुन : सक्रिय कर दिया।

   1923 में हिन्दू महासभा की स्थापना और स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि आन्दोलन ने आग में घी डालने का कार्य किया। परिणामस्वरूप भारत में साम्प्रदायिक दंगों की एक बाढ़ सी आ गई । दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, जबलपुर और नागपुर में साम्प्रादायिक दंगे भड़क उठे । गांधी जी दुर्बल स्वास्थ्य के कारण 5 फरवरी, 1924 को जेल से छूट गये थे । उन्होंने उसी वर्ष सितम्बर में 21 दिन का उपवास करके दंगों में प्रदर्शित अमानुषिकता पर पश्चाताप करने और साम्प्रदायिक कीटाणुओं के प्रसार को रोकने का प्रयास किया। लेकिन उसका बहुत कम असर हुआ। उपवास के फलस्वरूप एकता सम्मेलन हुए लेकिन सदभाव की परिस्थिति नहीं उत्पन्न हो सकी । अगले दो वर्षो में साम्प्रदायिकता का प्रसार अत्यधिक भयंकर रूप में हुआ । 1925 ई. में कम से कम 16 दंगे हुए। 1926 ई. के कलकत्ता के दंगे सबसे भयंकर थे । ब्रिटिश सरकार इस साम्प्रदायिक तनाव का लाभ उठाकर भारतीयों को कम से कम राजनीतिक सुविधा देने के उद्देश्य से शीघ्रता से कमीशन भारत भेजना चाहता था।

2. 1929 में इंग्लैण्ड में चुनाव होने वाले थे और इस चुनाव में अनुदार दल अपनी पराजय की आशंका से ग्रस्त था। इसलिए अनुदार दल भारत के भविष्य को मजदूर दल के हाथ में नहीं छोड़ना चाहता था, क्योंकि उसे इस बात की आशंका थी कि मजदूर दल उसके समान साम्राज्य के हितों की रक्षा नही कर सकेगा। भारत के सचिव लार्ड बरकन हैड ने भारतीय

वायसराय लार्ड इरविन से कहा – "हम यह खतरा जरा भी मोल नहीं ले सकते कि 1927 के कमीशन का मनोनयन हमारे उत्तराधिकारियों के हाथों में चला जाय। "

3. ब्रिटिश राजनीतिज्ञ, आयोग का उपयोग स्वराज्य दल को छिन्न–भिन्न करने के लिए करना चाहते थे और इस दृष्टि से 1927 का वर्ष उपयुक्त था ।
4. प्रोफेसर कीथ के अनुसार आयोग की समय से पूर्व नियुक्ति जवाहर लाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के निर्देशन में चल रहे युवा आंदोलन के कारण हुई ।

10.2 साइमन कमीशन की घोषणा

भारत में वायसराय लार्ड इरविन ने 8 नवम्बर, 1927 को घोषणा की कि ब्रिटेन के "हाऊस ऑफ कॉमन्स" के उदार दल के सदस्य सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक सात सदस्यीय राजकीय कमीशन शीघ्र ही भारत आने वाला है । इस कमीशन के समस्त सात सदस्य अंग्रेज थे और ब्रिटिश संसद के सदस्य थे।

कमीशन के सात सदस्य निम्नलिखित थे – सर जॉन साइमन (अध्यक्ष), विसकाउंट बर्नहेम, बेरन स्ट्रेथकोना, ई. सी. जी. काडोगन, स्टीफैन वैलश (उनके त्यागपत्र देने पर वरनन हार्ट्सहार्न उनके स्थान पर आये), जी आर. लेन फाक्स तथा सी. आर. एटली । बरकनहेड को डर था कि मिश्रित कमीशन के अन्दर भारतीय तथा ब्रिटिश मजदूर प्रतिनिधियों के बीच अवास्तविक मैत्री हो सकती थी। बरकनहेड की रणनीति को वायसराय द्वारा स्वीकृति मुख्यत: भारत में उनके अति विश्वासपात्र परामर्शदाताओं सरकारी कर्मचारियों के दृष्टिकोण के कारण थी । ये कर्मचारी यह सोचने में एकमत थे कि कमीशन में सब सदस्यों का ब्रिटिश होना बहुत तर्कपूर्ण और उपयुक्त योजना है । तीस वर्ष बाद लिखते हुए इरविन ने स्वीकार किया कि "बाद में होने वाली घटनाओं को देखते हुए भारतीयों को कमीशन से पूरी तरह बाहर रखा जाना गलत है, पर अपने अतीतदर्शी सर्वेक्षण में भी उन्होंने कहा कि मिश्रित कमीशन एकमत होकर निर्णय नहीं ले सकता था, और पार्लियामेन्ट विभाजित तथा अनिश्चित परामर्श से बाधाग्रस्त हो जाती ।

10.2.1 कमीशन की घोषणा के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां

कमीशन की इस रचना से भारतीयों का अप्रसन्न होना स्वाभाविक था । एक तो इसलिए कि यह कमीशन भारतवर्ष में प्रचलित संविधान की जांच करने के लिए और भावी संविधान के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए नियुक्त किया गया था लेकिन इसमें एक भी भारतीय सम्मिलित नहीं था। दूसरे, कमीशन की नियुक्ति के पूर्व कांग्रेस दल ने यह घोषणा की थी कि यदि कमीशन में बराबर के भारतीय सदस्य नहीं लिए जायेंगे तो उसका भारतवर्ष में विरोध किया जायेगा । लेकिन भारत मंत्री मि. बर्किनहेड ने कांग्रेस की इस चेतावनी की परवाह न करते हुए भारतीयों को इससे बिलकुल पृथक रखा । ब्रिटिश सरकार का यह मत था कि इस कमीशन की रिपोर्ट ब्रिटिश संसद के सामने पेश की जानी है, इसलिए भारतीयों को इसमें सदस्यता देना सम्भव नहीं है । किन्तु सरकार का यह स्पष्टीकरण भारतीयों के लिए केवल एक भुलावा था क्योंकि इस समय दो भारतीय लार्ड सिन्हा और मि. सकलातवाल भी ब्रिटिश संसद के सदस्य थे । भारतीयों के नाराज होने का तीसरा कारण यह था कि अंग्रेजों का कहना था कि भारतवर्ष में अनेक राजनीतिक दल है। यदि एक दल के प्रतिनिधियों को कमीशन में लिया गया तो दूसरे दल उसका विरोध करेंगे ।

प्रत्येक दल के सदस्यों को सम्मिलित करने की अवस्था में कमीशन की सदस्य संख्या बहुत बढ़ जायेगी । ब्रिटिश सरकार के ये तर्क ठोस नहीं थे। वास्तविकता यह थी कि वह भारत की संवैधानिक प्रगति का नियन्त्रण अपने हाथों में रखना चाहती थी और इस सम्बन्ध में भारतीयों को किसी प्रकार की सुविधा या अधिकार नहीं देना चाहती थी।

10.2.2 कमीशन का उद्देश्य

ब्रिटिश शासन द्वारा कमीशन को यह कार्य सौपा गया कि वह ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों में पता लगाये कि सरकार कैसे चल रही है, प्रतिनिधि संस्थाएं कहां तक ठीक कार्य कर रही है, राजनैतिक चेतना का कहां तक विकास हुआ है, उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त को किस रूप में अपनाया जाय और इसके किस प्रकार के अन्य परिवर्तन किये जायें ।

कमीशन को यह भी रिपोर्ट करना था कि "क्या और कहां तक उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्त की स्थापना वांछनीय है या क्या अधिनियम के अन्तर्गत चल रही उत्तरदायी सरकार के परिमाण या मात्रा को बढ़ाया जाए, संशोधित किया जाए या प्रतिबंधित किया जाए । यह सावधिक जांच तथा विधि निर्माण की पद्धति यह सुनिश्चित करने के लिए थी कि सांविधानिक प्रगति चरणों में प्राप्त की जाएगी। परन्तु सांविधानिक विकास की समस्या के प्रति यह बहुत अदूरदर्शी दृष्टि थी। इसके अतिरिक्त किसी वास्तविक मूल्यांकन के लिए अवधि बहुत छोटी थी ।

10.2.3 भारतीयों द्वारा कमीशन का बहिष्कार

कमीशन के गठन तथा उसके सीमित उद्देश्यों के कारण कमीशन के, प्रति भारतीयों में क्षोभ उत्पन्न होना नितान्त स्वाभाविक था। कमीशन के प्रति क्षोभ प्रकट करने में कांग्रेस के द्वारा पहल की गई । कांग्रेस ने दिसम्बर 1927 ई. के मद्रास अधिवेशन, के प्रति अपने दृष्टिकोण तथा नीति को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया । इस सम्बन्ध में कांग्रेस का प्रस्ताव इस प्रकार था –

"चूंकि ब्रिटिश सरकार ने भारत में आत्मनिर्णय के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा करके एक शहरी कमीशन नियुक्त किया है, अत: यह कांग्रेस निश्चय करती है कि भारत के लिए आत्म–सम्मान पूर्ण एकमात्र मार्ग यही है कि वह कमीशन का हर हालत में और हर प्रकार से बहिष्कार करे । "

कांग्रेस के समान ही भारत के अन्य राजनैतिक दल भी कमीशन की नियुक्ति से इसलिए अप्रसन्न और असन्तुष्ट थे कि उसमें एक भी भारतीय को स्थान नहीं दिया गया था । अत: अन्य राजनैतिक दलों द्वारा भी कमीशन के बहिष्कार का निश्चय किया गया । श्री दिनशावाचा जैसे अखिल भारतीय उदार नेताओं ने कमीशन के विरुद्ध एक घोषणा–पत्र तैयार किया । कांग्रेस के अतिरिक्त भारत के सभी राजनैतिक दलों के प्रातिनिधियों ने इस घोषणा–पत्र पर हस्ताक्षर किये । कमीशन की नियुक्ति पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्रीमती बेसेन्ट ने कहा कि, "यह जले पर नमक छिड़कना नहीं है तो और क्या है? जब साइमन कमीशन फरवरी 1928 ई. में भारत आने वाला था, तो लाला लाजपतराय ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया था कि "कमीशन की योजना सर्वथा अमान्य है और किसी सदस्य को

इससे किसी भी स्तर अथवा किसी भी रूप में कोई सरोकार नही है।" उनका यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ ।

साइमन कमीशन के साथ व्यवहार के सम्बन्ध में मुस्लिम लीग में मतभेद उत्पन्न हो गया । मुस्लिम लीग के एक वर्ग ने साइमन कमीशन का स्वागत करने का निश्चय किया, लेकिन दूसरे वर्ग ने उसका विरोध करने का निश्चय किया । प्रथम वर्ग का नेतृत्व सर मुहम्मद शफी और दूसरे वर्ग का नेतृत्व मि. मुहम्मद अली जिन्ना कर रहे थे । मि. जिन्ना ने कहा कि किसी भी स्वाभिमानी भारतीय के लिए कमीशन का बहिष्कार करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं था, क्योंकि उन्हें सर जॉन साइमन के साथ बराबर की हैसियत से बैठने के योग्य नहीं समझा गया था । वस्तुतः मद्रास की जस्टिस पार्टी, अखिल भारतीय अछूत फेडरेशन, केन्द्रीय सिक्ख संघ और मुस्लिम लीग के शफी गुट, जिनमें से किसी का भी भारतीय जनता पर विशेष प्रभाव न था, के अतिरिक्त भारत के सभी राजनैतिक दलों और वर्गों द्वारा कमीशन के बहिष्कार का निश्चय किया गया । मिस. विलिकिन्सन के अनुसार, "जलियांवाला बाग की दुखान्त घटना के बाद सारे देश में जितनी इस कमीशन की निन्दा की गई, उतनी अंग्रेजों के और किसी काम की नहीं हुई। पहली बार भारत के समस्त राजनीतिक दल एक हुए। "

एस. श्रीनिवास आयंगर ने, जो 1926 में कांग्रेस अध्यक्ष थे, ने कहा, "पहले हमने सब ब्रिटिश अधिकारियों पर, उसके बाद उच्चतर अधिकारियों पर, उसके बाद वायसराय पर, उसके बाद ब्रिटिश सरकार पर, उसके बाद पार्लियामेन्ट पर, उसके बाद लेबर पार्टी पर विश्वास किया । सब हमारे लिए बेकार और बेमतलब ही रहा । अब हमें अपने ही प्रयासों पर विश्वास है । ब्रिटेन की सद्भावना और नेकनियती पर राष्ट्रवादी भारत के विश्वास के उठ जाने के बारे में यह दर्दभरी, आत्मस्वीकृति है। " "विरोध तथा सन्देह" केवल कांग्रेस क्षेत्रो तक ही सीमित नहीं रहे । वायसराय का अनुभव भी रहस्योद्घाटन करने वाला है – "नरमदलीय व्यक्ति और सर तेज बहादुर गप्रू या श्री एम. आर. जयकर या श्री श्रीनिवास शास्त्री जैसे ब्रिटेन के दोस्तों ने..... मोतीलाल नेहरू..... की तरह भारी मन से महसूस किया । " जिन्ना ने कहा, "जलियांवाला बाग में शारीरिक तौर पर हमारी हत्या की गई । साइमन कमीशन हमारी आत्मा के साथ कसाई का सा व्यवहार है । "

"भारतीय मत" की अभिव्यक्ति के लिए कमीशन ने दो व्यापक प्रावधान बनाये । एक, केन्द्रीय विधानमण्डल अपने चुने हुये और मनोनीत किये हुये गैर सरकारी सदस्यों में से चुनकर संयुक्त समिति नियुक्त करेगा, जो अपने विचार लिखित रूप में कमीशन के सामने रखेगी । प्रान्तीय विधान मण्डलों को भी यही विशेषाधिकार दिया जाना था । दो, कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर पार्लियामेन्ट के सामने रखे प्रस्तावों को दोनों सदनों की संयुक्त समिति के सामने रखा जायेगा तथा उस समिति से वार्ता करने के लिए भारतीय विधानमण्डल को प्रतिनिधि भेजने की सुविधा दी जाएगी ।

साइमन कमीशन दो बार भारत आया । पहली बार वह 3 फरवरी, 1928 ई को भारतवर्ष पहुंचा और 31 मार्च को वापिस इंग्लैण्ड चला गया । इसके बाद वह उसी वर्ष 11 अक्टूबर को भारत में आया और 13 अप्रैल, 1929 ई तक यहाँ रहा । भारत के सभी राजनीतिक दलों ने कमीशन के बहिष्कार का फैसला किया । इस निर्णय के अनुसार भारतवासियों को न तो कमीशन के सामने अपनी राय देनी थी और न ही उसके काम में किसी प्रकार से सहायता करनी था। साथ

ही उन्हें कमीशन का हड़तालों तप विरोधी प्रदर्शनों से स्वागत करके जनता के असन्तोष का दिखावा करना था ।

जिस दिन कमीशन बम्बई में आकर उतरा, उसी दिन सम्पूर्ण भारत में हडताल रखने हुए कमीशन का श्रीगणेश कर दिया गया । स्थान–स्थान पर काले झण्डों व "साइमन वापिस जाओ" के नारी से कमीशन का विरोध किया गया । अनेक स्थानों पर पुलिस तथा जनक के मध्य संघर्ष भी हुए । लाहौर में लाला लाजपतराय के नेतृत्व में कमीशन के विरोध में एक विशाल जुलूस का आयोजन किया गया । पुलिस द्वारा लाला लाजपतराय पर लाठियों और डण्डों की भीषण वर्षा की गई, जिससे उनके हृदय पर भीषण चोट पहुंची । "ऐसा विश्वास किया जाता है कि उनकी मृत्यु इन चोटों के कारण ही हुई । " पंजाब केसरी में उन्होंने इस लाठी प्रहार पर कहा कि, "मेरे ऊपर किया गया लाठी का प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील सिद्ध होगा। " इस घटना से कमीशन के प्रति और अधिक विरोध प्रदर्शित किया गया तथा बंगाल व पंजाब में इससे आतंकवादी कार्यों को प्रोत्साहन मिला । भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने भारतीय भावनाओं को प्रकट करने के लिए केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में बम फेंका और लाला जी पर लाठी प्रहार के लिए उत्तरदायी मि. साण्डर्स की लाहौर में हत्या कर दी गई । लखनऊ में पुलिस ने जवाहरलाल नेहरू और गोविन्द वल्लभ पंत पर भी लाठियों का प्रहार किया था ।

कमीशन ने लगभग 21,000 मील के लम्बे–चौड़े दौरे किए । विधान सभा ने एक प्रस्ताव (फरवरी 1928) स्वीकार करके कमीशन की योजना अस्वीकृत कर दी और किसी भी चरण में और किसी भी प्रकार से इससे सहयोग करने से इन्कार कर दिया। परन्तु राज्य परिषद् ने अपने लिए निर्धारित अनुपात में सदस्यों का चुनाव कर दिया और विधानसभा के स्थानों पर इरविन ने लोगों को नामजद कर दिया । इस तरह भारतीय केन्द्रीय समिति बनी जिसकी अध्यक्षता सर शंकरन नायर ने की । मध्य प्रान्त की विधान परिषद् के अतिरिक्त सब प्रान्तीय विधानमण्डलों ने कमीशन से सहयोग करने के लिए समितियां नियुक्त कर दीं ।

विधान सभा द्वारा सहयोग करने के इन्कार और प्रान्तीय विधान मण्डलों के बाहर कमीशन की कार्यवाहियों के बहिष्कार से हुई क्षति की पूर्ति किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती थी । यह स्पष्ट हो गया कि जिस प्रकार के सहयोग की ब्रिटिश। सरकार को आशा थी, वह नहीं मिला । इरविन को उनके शासकीय परामर्शदाताओं ने बताया था कि मुसलमान कमीशन का बहिष्कार नही करेंगे और यदि उन्होंने बहिष्कार नहीं किया तो हिन्दू बहिष्कार करने का साहस नहीं करेंगे । बरकनहेड सारी बातें भाग्य पर छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे । उन्होंने इरविन को सलाह दी कि "विशाल हिन्दू जनता को यह खतरा दिखाकर डराया जाय कि इस कमीशन पर मुसलमानों का कब्जा होने जा रहा है और इसलिए यह ऐसी रिपोर्ट दे सकता है जो हिन्दुओं के हितों को बिल्कुल नष्ट कर देगी।" "बहिष्कार की प्रवृत्ति की काट के लिए यह बहिष्कार न करने वाले मुसलमानों, दलित समुदाय, व्यापारी हितों और अन्य कई लोगों पर निर्भर थे।" "फूट डालो और राज करो" की यह नीति पूर्णतया सफल नही रही और देश के राजनीतिक जीवन पर इसका सामान्य प्रभाव अच्छे भारत–ब्रिटिश सम्बन्धों के विकास पर प्रतिकूल पड़ा । एक अतीतदर्शी बयान में इरविन ने कहा कि बहिष्कार ने "सरकार तथा राजनीतिक बुद्धिजीवी वर्ग के बीच के सम्बन्धों को बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचाया । "

10.2.4 साइमन कमीशन की सिफारिशें

साइमन कमीशन की रिपोर्ट मई 1930 में प्रकाशित हुई । कूपलैण्ड ने इसे "ब्रिटिश राजनीतिशास्त्र के पुस्तकालय के लिए सर्वश्रेष्ठ महत्व की कृतियों में माना है । यह माण्टेगयू–चेम्सफोर्ड से कही अधिक विस्तृत है सर्वेक्षण शीर्षक वाले पहले खण्ड में भविष्य के लिए सिफारिशें देने से पहले विचारार्थ आवश्यक मुख्य बातों का उल्लेख किया गया है । माण्टेग्यू – चेम्सफोर्ड व्यवस्था और इसकी 1927 तक की कार्यप्रणाली पर सविस्तार टीका की गई है । दूसरे खण्ड का शीर्षक सिफारिशें था। यह माण्टेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के सम्बन्धित भाग से अधिक विस्तृत तथा व्याख्यायुक्त है । "

कमीशन की सिफारिशों का क्षेत्र 1917 में माण्टेग्यू द्वारा परिभाषित लक्ष्य तक सीमित था तथा "विचार करने योग्य कुछ प्रस्ताव" वे थे जिनकी संकल्पना माण्टेग्यू की घोषणा की "भावना के अनुरूप" की गई थी । कमीशन ने 1925 की राष्ट्रीय मांग पर यहां तक कि इरविन की अक्तूबर की घोषणा पर भी ध्यान नही दिया ।

प्रान्तीय सरकारों से संबंधित सिफारिशें :

कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में ये सिफारिशें की –

1. प्रान्तों में प्रचलित द्वैध शासन–प्रणाली को समाप्त किया जाए (क्योंकि त्रुटिपूर्ण होने के कारण इसका अधिक समय तक सफलतापूर्वक काम करना असम्भव था) और इसके स्थान पर स्वायत्त शासन प्रणाली की व्यवस्था की जाए । इस नई शासन प्रणाली के अन्तर्गत प्रान्तीय विधायी परिषद् क्षेत्रों में सरकार के हस्तक्षेप को रोकने की व्यवस्था की जाय ।
2. प्रान्तीय विधायी परिषदों की सदस्य संख्या बढ़ा दी जाए । अधिक महत्वपूर्ण प्रान्तों की परिषदों में 200 से 250 तक सदस्य रखे जाएं । इन परिषदों में सरकारी अधिकारियों को स्थान न दिया जाए और मनोनीत गैर–सरकारी अधिकारियों की संख्या भी परिषदों की कुल संख्या के 1/10 (दसवें) भाग से अधिक न हो । जिन प्रान्तों में मुसलमानों की जनसंख्या बहुत कम हो वहां की कौंसिलों में उन्हें विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाए ।
3. अल्प–संख्यक जातियों तथा सरकारी सेवकों के हितों की रक्षा के लिए प्रान्तीय गवर्नरों को विशेष अधिकार दिये जायें । उन्हें विशेष परिस्थितियों में मंत्री वर्ग के परामर्श की उपेक्षा कर सकने और शासन प्रबन्ध को अपनी इच्छानुसार चला सकने के लिए कुछ विशेष अधिकार दिए जायें । संविधान के असफल होने पर भी प्रान्तीय गवर्नरों को अपनी विशेष शक्तियों के अनुसार शासन चलाने का अधिकार प्राप्त हो ।

केन्द्र सरकार सम्बन्धी सिफारिशें :

1. कमीशन ने केन्द्र में उत्तरदायी सरकार को स्थगित करने की मांग को अस्वीकार दिया और यह सिफारिश की कि केन्द्र में पहले की तरह अनुत्तरदायी सरकार को रखा जाए । उसका विश्वास था कि जब तक देश की प्रतिरक्षा का सन्तोषजनक हल नहीं भिन्नता, केन्द्र में उत्तरदायी शासन को स्थापित न किया जाय ।
2. केन्द्र में अल्प–संख्यक जातियों तथा सरकारी सेवकों की रक्षा के लिए गवर्नर जनरल को विशेष अधिकार दिए जायँ ।

3. निकट भविष्य में भारतीय संघ की स्थापना को असम्भव मानते हुए कमीशन ने यह सिफारिश की कि अभी विशाल भारत की परिषद स्थापित की जाए । इस परिषद में ब्रिटिश इंडिया और देशी रियासतों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों और इसे समस्त सामान्य मामलों में सोच–विचार करने का अधिकार दिया जाय ।
4. केन्द्रीय लेजिस्लेटिव कौंसिल का संघीय आधार पर पुनर्गठन किया जाए । इसमे निम्न सदन में भावी संघ में सम्मिलित होने वाले प्रान्तों के प्रतिनिधि शामिल किए जायें, लेकिन देशी रियासतों के प्रतिनिधि उस समय सम्मिलित किए जायें जबकि वे संघ में शामिल होने को तैयार हों ।

कमीशन ने सेना के भारतीयकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया, लेकिन साथ ही यह सिफारिश की कि जब तक भारत अपनी रक्षा के लिए पूर्णरूप से तैयार न हो, अंग्रेजी सैनिकों को भारत में रहने दिया जाए ।

मताधिकार आदि सम्बन्धी सिफारिशें :

कमीशन ने ये सिफारिशें कीं कि –

1. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौंसिलों के सदस्यों को चुनने के लिए शर्तें कम कड़ी दी जाएं जिससे कम से कम 10 से 15% लोगों को वोट देने का अधिकार मिल सके । इससे पहले केवल 2.8% मत जनता को वोट देने का अधिकार प्राप्त था ।
2. केन्द्रीय लैजिस्लेचर के दोनों सदनों के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली और प्रान्तीय लैजिस्लेचरों के चुनाव के लिए प्रत्यक्ष चुनाव–पद्धति को अपनाया जाय ।
3. साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली को प्रान्तीय कौंसिलों के चुनाव का आधार बना दिया जाय ।

प्रादेशिक पुनर्गठन सम्बन्धी सिफारिशें :

कमीशन ने यह भी सिफारिश की कि बर्मा को भारतवर्ष से और सिंध को बम्बई से पृथक किया जाय।

भारत की इंग्लैण्ड–स्थित सरकार सम्बन्धी सिफारिशें :

भारत में चिरकाल से यह मांग की जा रही थी कि भारत की मंत्री –परिषद (इंडिया कौंसिल) को तो बना रहने दिया जाय, लेकिन उसकी शक्तियों को कम कर दिया जाए ।

10.2.5 कमीशन की रिपोर्ट का मूल्यांकन :

सर जॉन साइमन निस्सन्देह अपने देश के एक प्रसिद्ध वकील थे । उनके साथी भी बड़े अनुभवी और योग्य थे । उन सबने मिलकर अपने कार्य को निभाने के लिए घोर परिश्रम किया । लेकिन इन समस्त बातों के होते हुए भी उनके द्वारा पेश की गई रिपोर्ट निराशाजनक थी । इसका मुख्य कारण यह था कि उन्होंने इस महान पत्र को तैयार करते समय उस उचित उदारता तथा निष्पक्षता का प्रमाण न दिया जिसकी ऐसे महान् व्यक्तियों से आशा की जा सकती थी। मि रिचर्ड बी. ग्रैग लिखते है कि "कमीशन के सदस्यों ने कई तथ्यों का जानबूझ कर इस प्रकार का उल्लेख किया कि इंग्लैण्ड और अमेरिका के लोग यह समझने लगे कि भारतीय समस्या बड़ी जटिल तथा कठिन है " ।

निस्सन्देह कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में द्वैध–शासन–पद्धति को समाप्त करने की सिफारिश की, लेकिन इसके स्थान पर उसने जिस नई शासन–पद्धति को लागू करने का सुझाव दिया, वह काफी त्रुटिपूर्ण था । गवर्नरों को दिए जाने वाले विशेष अधिकारों के कारण उसका भी सफलतापूर्वक कार्य करना असम्भव था। भारतीयों की केन्द्र में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की मांग को स्वीकार नहीं किया गया था और न ही उनके हाथों में प्रतिरक्षा को सौंपने की सिफारिश की गई थी । इससे अधिक निराशाजनक बात यह थी कि असहयोग आन्दोलन के कारण भारतवासियों में उत्पन्न हुई आकाक्षाओं की रिपोर्ट में उपेक्षा की गई थी। मि. एण्ड्रूज लिखते है कि कमीशन के सदस्यों ने रिपोर्ट तैयार करते समय उस भारत को अपने सम्मुख रखा था जो कि राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ होने से 30 वर्ष पूर्व का था, राष्ट्रीय जागृति के परिणामस्वरूप उदीयमान युवक–भारत को समझने की चेष्टा नहीं की थी । 1

10.3 नेहरू रिपोर्ट

साइमन कमीशन की नियुक्ति के सम्बन्ध में घोषणा करते हुए भारतमंत्री लार्ड बर्कनहेड ने भारतीयों को चुनौती दी कि वे अपनी राजनीतिक समस्याओं को हल करने में असमर्थ है । उनका यह भी कहना था कि वे स्वयं ऐसा संविधान नहीं तैयार कर सकते जो भारत के सभी राजनीतिक दलों को स्वीकार हो । भारतमन्त्री की यह घोषणा भारतीय राजनीतिज्ञों के लिए एक चुनौती थी, जिसका उत्तर देने के लिए वे स्वयं को अयोग्य नही समझते थे । साइमन कमीशन की भारत यात्रा के समय देश का वातावरण राष्ट्रीय एकता के अनुकूल था । कांग्रेस के प्रयत्न से दिल्ली में एक सर्वदल सम्मेलन बुलाया गया ।

10.3.1 सर्वदल सम्मेलन

इससे हिन्दू महासभा, नेशनल लिबरल फैडरेशन, मुस्लिम लीग, सेन्ट्रल सिक्ख लीग, ऑल इण्डिया कॉन्फ्रेन्स, ऑफ इण्डियन क्रिश्चियन, एंग्लो–इण्डियन एशोसिएशन, स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फेन्स, ट्रेड यूनियन और कई दूसरे संगठनों को निमन्त्रण भेजे गये ।

सर्वदल सम्मेलन की पहली बैठक 28 फरवरी 1928 में दिल्ली में हुई । इसमें लगभग 29 राजनीतिक दलों और संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इस सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि भारत में संविधान बनाने के फैसले पूर्ण स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के आधार पर किए जाएं। यद्यपि 1929 के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता के लक्ष्य को स्वीकार कर लिया गया था फिर भी सभी दलों को एक समान योजना के पीछे एकत्र करने के उद्देश्य से कांग्रेस ने अपनी निर्धारित लक्ष्य की स्वीकृति ली । कुछ अन्य मौलिक बातों को तय करने के बाद इसे स्थगित कर दिया गया ।

सम्मेलन की दूसरी मीटिंग तीन माह बाद बम्बई में बुलाई गई । काफी सोच विचार के बाद पण्डित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसे भारत के लिए एक अच्छा तथा सन्तोषजनक संविधान बनाने का कार्य सौंपा गया। पण्डित मोतीलाल के अतिरिक्त इस समिति में सुभाषचन्द्र बोस, तेज बहादुर सप्रू, सरदार मंगल सिंह, मि. कुरेशी, श्री जी आर. प्रधान, सर अली इमाम, श्री जवाहर लाल नेहरू तथा एम एस अणे थे । डॉ राजेन्द्र प्रसाद लिखते है कि संविधान बनाने का यह प्रयत्न केवल भारतमन्त्री की चुनौती का उत्तर देने की भावना से ही प्रेरित नही था । बल्कि इण्डियन नैशनल कांग्रेस अन्य दलों की सहमति से

तैयार हुये संविधान के द्वारा अपने देशवासियों के सामने अपने विचारों एवं मांगों को भी पेश करना चाहती थी । इसका यह विचार था कि ब्रिटिश सरकार से ऐसे संविधान को मंजूर कराने में विशेष कठिनाई नहीं होगी।

नेहरू कमेटी ने लगभग 28 बैठकें कीं और इसके सदस्यों को संविधान तैयार करने के लिए घोर परिश्रम करना पड़ा। भारत की विभिन्न समस्याओं के कारण यह कार्य बड़ा कठिन था और इस कठिन कार्य को करने के लिए समय बहुत थोड़ा था। इस समिति की रिपोर्ट अगस्त 1928 में प्रस्तुत हुई । सम्मेलन ने उसी महीने कुछ संशोधनों सहित उसे स्वीकार कर लिया । बाद में इसे दिसम्बर 1928 में कलकत्ता में हुए सर्वदल सम्मेलन के सामने रखा गया। सन 1928 के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन ने "भारत की राजनीतिक तथा साम्प्रदायिक समस्याओं के हल की दिशा में महान योगदान" के रूप में इसका स्वागत किया और उसकी सिफारिशों पर लगभग मतैक्य होने पर समिति को बधाई दी । कूपलैण्ड के अनुसार, "अब तक भारतीयों द्वारा साम्प्रदायिकता की कठिनाइयों का खुलकर सामने करने से सम्बन्धित यह सबसे अधिक स्पष्ट प्रयास था ।

नेहरू समिति के सामने दो प्राथमिक कठिनाइयां थी । चूंकि इसके सदस्य विभिन्न राजनीतिक विचारधारा और विभिन्न राजनीतिक गुटों के थे, उनमें भारत के राजनैतिक लक्ष्य के बारे में मतैक्य नहीं था । कांग्रेस "पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता" से प्रतिबद्ध थी, पर दूसरे संगठनो के सामने 1926 के साम्राज्यिक सम्मेलन द्वारा परिभाषित डोमीनियन स्थिति का लक्ष था ।

समझौता इस सूत्र के आधार पर हुआ :

'ब्रिटिश साम्राज्य के नाम से उल्लेख की जाने वाली राष्ट्रों की मंडली में वही सांविधानिक पद जो कनाडा के डोमीनियन, आस्ट्रेलियाई राज्य संघ, न्यूजीलैण्ड के डोमीननियन, दक्षिण अफ्रीका संघ और आइरिश फ्री–स्टेट को मिला हुआ है । समिति ने पाया कि "किसी और अधिक ऊंची आधार भूमि पर सामान्य समझौता नही हो सकेगा।" इस समझौते का यह मतलब नहीं हुआ कि कांग्रेस की बात तो दूर बल्कि किसी एक कांग्रेसजन ने थी पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य को कमजोर माना । "पूर्ण स्वाधीनता" से संबंधित प्रस्ताव पर दृढ़ रहते हुए कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन ने समिति द्वारा बनाए गए संविधान को "राजनीतिक प्रगति पर एक महान वरदान" कहकर अनुमोदित किया।

दूसरी कठिनाई अल्पसंख्यकों का समस्या से संबंधित थी । समिति के अनुसार, "प्रत्येक समुदाय के लोगों के दिमाग से दूसरे समुदाय के प्रति निराधार डर को दूर करने और सब समुदायों को सुरक्षा की भावना देने से सारी समस्या स्वयं खत्म हो जाती है । मुसलमानों को कुल मिलाकर उनके अल्पमत में होने के कारण भय था कि बहुमत उन्हें पीड़ित करेगा, और इस कठिनाई का मुकाबला करने के लिए उन्होंने नया सुझाव दिया है – "कि उन्हें कम से कम भारत के कुछ भागों में अधिक प्रभावशाली स्थिति में रहना चाहिए..... " अपने अखिल भारतीय बहुमत के बावजूद हिन्दू, मुसलमान बहुल प्रान्तों में मुसलमानों से डरते थे।

समिति को विश्वास था कि आजादी पाने के बाद चूंकि "विदेशी एजेंसी तथा हस्तक्षेप से बाधा नहीं पहुंचेगी ।" अत: भारतीय लोग असाम्प्रदायिक मुख्यतया आर्थिक आधारों पर दल बनायेंगे । परन्तु मुसलमानों के डर को दूर करने के लिए तीन प्रस्ताव रखे गये –

1. संविधान में अधिकारों की घोषणा सम्मिलित की जाए जिसमें अन्तःकरण की आजादी और सार्वजनिक व्यवस्था तथा नैतिकता के अधीन..... धर्म का प्रचार और धर्म के अनुसार आचरण करने की आजादी के लिए प्रावधान किया जाए ।
2. उत्तर–पश्चिम सीमान्त प्राप्त का अन्य प्रान्तों जैसा ही सांविधानिक दर्जा होना चाहिए तथा सिंध को बम्बई प्रेसीडेन्सी से अलग करके प्रान्त बना दिया जाना चाहिए ।
3. समिति ने पृथक् निर्वाचक वर्गो की प्रणाली उन्मूलन की सिफारिश की ।

10.3.2 नेहरू समिति की सिफारिशें

नेहरू समिति की प्रमुख सिफारिशों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है –

1. औपनिवेशिक स्वराज्य – भारत का राजनीतिक ध्येय :

इस रिपोर्ट में पूर्ण स्वराज्य के स्थान पर औपनिवेशिक स्वराज्य को भारत का राजनीतिक ध्येय माना गया और सिफारिश की गई कि भारत को तुरन्त औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया, जाए, अर्थात् उसे ब्रिटिश साम्राज्य में वही दर्जा दिया जाए जो कि न्यूज़ीलैण्ड, कैनेडा, आस्ट्रेलिया आदि को प्राप्त है । कॉमन वैल्थ ऑफ आस्ट्रेलिया की तरह भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति पर कॉमन वैल्थ ऑफ इंडिया का नाम दिया जाए ।

2. भारत मे पूर्ण उत्तरदायी शासन की व्यवस्था :

कॉमन वैल्थ ऑफ इण्डिया में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाए । अर्थात् केन्द्र और प्रान्तों में मन्त्रिमण्डलात्मक सरकार कायम की जाए जो कि अपनी कार्यवाहियों के लिए विधानपालिका के निर्वाचित सदस्यों के प्रति उत्तरदायी हो । चूंकि राजनैतिक दलों की संख्या बहुत अधिक थी, इसलिए गठजोड़ के कारण मन्त्रिमण्डलों को प्रारम्भ में कठिनाईयां उत्पन्न हो सकती थी । उनको इस सम्भावना से बचाने के लिए यह सिफारिश की गई कि प्रारम्भिक तीन वर्षो में किसी भी प्रान्तीय या केन्द्रीय मंत्रिमण्डल को सिवाय रिश्वत के अन्य किसी भी कारण पदच्युत न किया जाय । इसके अतिरिक्त मंत्रिमण्डल को हटाने के लिए 273 बहुमत का नियम भी बनाया जाए ।

3. केन्द्रीय सरकार :

संसद और कार्यकारिणी परिषद् कॉमन वैल्थ ऑफ इंडिया की विधानपालिका को संसद का नाम दिया जाए जिसके दो सदन ही – सीनेट और हाऊस ऑफ रिप्रैजन्टेटिव्स । सीनेट संसद का ऊपरी सदन हो और इसके 200 सदस्य हों जिन्हें प्रान्तीय कौंसिलों द्वारा चुना जाए । प्रत्येक प्रान्त को उसकी जनसंख्या के आधार पर इसमें प्रतिनिधित्व दिया जाए । सीनेट के सदस्यों का चुनाव एकल संक्रमणीय वोट और आनुपातिक चुनाव प्रणाली द्वारा किया जाए । संसद के निम्न सदन में 500 सदस्य हों जिन्हें वयस्क मताधिकार के आधार पर चुना जाए। 21 वर्ष या उससे अधिक आयु वाले प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को इस सदन के चुनाव में भाग लेने का अधिकार हो जो कानून के द्वारा अयोग्य नहीं ठहराया गया हो । इस संसद को कॉमन वैल्थ ऑफ इंडिया में शांति व्यवस्था और सुशासन बनाए रखने के लिए कानून बनाने का अधिकार हो । इंग्लैण्ड नरेश भी इस संसद का अंग हो ।

कॉमन वैल्थ ऑफ इंडिया की कार्यपालिका गवर्नर–जनरल और उसकी कार्यकारिणी परिषद् को मिलाकर बनाई जाए । कार्यकारिणी परिषद् मे एक प्रधान मंत्री व छह अन्य मंत्री सम्मिलित हों । प्रधान मंत्री गवर्नर–जनरल द्वारा नियुक्त किया जाए और फिर प्रधान मंत्री के परामर्श से गवर्नर–जनरल अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करें । केन्द्रीय कार्यकारिणी अपनी सब कार्यवाहियों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी हो।

4. प्रान्तीय सरकारें :

कार्यपालिका और विधानपालिका –

भारत में संघ शासन की सम्भावना पर विचार करने के बाद नेहरू कमेटी ने यह सिफारिश की कि केन्द्र और प्रान्तीय सरकारों में संघीय आधार पर शक्तियों का बंटवारा किया जाए । अवशेष शक्तियां केन्द्र को दी जाएं । प्रान्तीय कार्यपालिका गवर्नर और उसकी कार्यकारिणी परिषद् को मिलाकर बनाई जाएं । प्रान्तीय कार्यकारिणी परिषद् में पांच से अधिक मंत्री न हों । मुख्यमन्त्री की नियुक्ति प्रान्तीय गवर्नर द्वारा की जाए और फिर उनके परामर्श से गवर्नर अन्य मन्त्रियों को नियुक्त करें । प्रान्तों में केवल एक सदन की विधानपालिका हो ।

5. **साम्प्रदायिक चुनाव–पद्धति की समाप्ति और मुसलमानों को विशेष रियायतें –**

इस रिपोर्ट में साम्प्रदायिक चुनाव–प्रणाली को समाप्त करने की सिफारिश की गई। संसद के निम्न सदन तथा प्रान्तीय विधानपालिकाओं को सदस्यों के संयुक्त प्रणाली द्वारा चुनने का समर्थन किया गया । लेकिन इसके साथ ही मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से सिफारिश की गई कि–

1. संसद के निम्न सदन तथा उन प्रान्तों की विधानपालिकाओं में जहां कि मुसलमानों की अल्पसंख्या है, उनके लिए सीटें सुरक्षित की जाएं ।
2. उन्हें सुरक्षित सीटों के अतिरिक्त अन्य सीटों पर भी चुनाव लड़ने की सुविधा दी जाए । पश्चिमोत्तर सीमा–प्रान्त को दूसरे प्रान्तों के समान दर्जा दिया जाए और सिंध को बंबई से अलग करके एक नया प्रान्त बनाया जाए । पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की विधान पालिस में हिन्दुओं के लिए भी कुछ सीटें सुरक्षित कराई जाएं।

6. सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना –

कॉमन वैल्थ ऑफ इंडिया में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना की जाए जिसे संविधान की व्याख्या से संबंधित मामलों और प्रान्तों में आपसी झगड़ों का निर्णय करने का अधिकार हो । सपरिषद गवर्नर–जनरल द्वारा अनुच्छेद 85 के अनुसार इसके पास भेजे गये मुकदमें भी इसके अधिकार–क्षेत्र में ही । ऐसे मुकदमों का, जिनमें एक पक्ष कॉमन वैल्थ ऑफ इंडिया या इसकी ओर से कोई व्यक्ति हो, फैसला करने का अधिकार भी इस सर्वोच्च न्यायालय को दिया जाय।

7. मौलिक अधिकार और धर्म निरपेक्ष राज्य –

नेहरू रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया था कि भारत के भावी संविधान में मौलिक अधिकारों को एक विशेष स्थान दिया बाए ताकि समस्त भारतीयों को अन्य सुविधाओं के अतिरिक्त अन्त:करण तथा धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता मिल सके। कॉमन वैल्थ ऑफ इंडिया या

इसके किसी भाग का राज्य धर्म न हो और न ही –राज्य में धर्म के आधार पर किसी प्रकार का पक्षपात किया जाए।

8. प्रतिरक्षा और प्रतिरक्षा समिति –

नेहरू रिपोर्ट में यह भी सिफारिश की गई थी कि प्रतिरक्षा का अन्तिम नियंत्रण एक मंत्री मे सौंपा जाय और उसकी सहायता के लिए एक प्रतिरक्षा समिति बनाई जाए जिसमें प्रधान मंत्री, विदेश मंत्री, सेना के विभिन्न विभागों के अध्यक्षों के अतिरिक्त कुछ सैनिक विशेषज्ञ भी शामिल हों ।

9. देशी राज्य, हाई कमीश्नर आदि -

नेहरू रिपोर्ट में देशी रियासतों के संबंध में भी कुछ सिफारिशें की गई थी । उनमें कहा गया था कि कॉमन वैल्थ ऑफ इंडिया की स्थापना होने पर उसे देशी रियासतों पर वही अधिकार दिया जाए जो कि उनके सम्बन्ध में अब केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है । किसी रियासत का संधि या सनद के बारे में झगड़ा उठने की अवस्था में सपरिषद् गवर्नर–जनरल को इस रियासत की सलाह से वह मामला सुप्रीम कोर्ट के पास न्याय के लिए भेजने का अधिकार हो। कॉमन वैल्थ ऑफ इंडिया को कैनेडा तथा अन्य उपनिवेशों की तरह विदेशों में अपने हाई कमीश्नर तथा प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जाय ।

नेहरू रिपोर्ट पर प्रतिक्रिया और कांग्रेस की अंतिम चेतावनी

नेहरू रिपोर्ट निसंदेह एक उच्चकोटि की रचना थी । राष्ट्रवादी मुसलमानों ने इसका हार्दिक स्वागत किया और इसे न्यायोचित भी माना। लखनऊ में बुलाए गए सर्वदल सम्मेलन ने इसे सर्वसम्मति से मंजूर कर लिया। लेकिन तत्पश्चात् जब कलकत्ता कन्वेंशन में इस पर वाद–विवाद हुआ तो बिना ने संविधान के प्रति असन्तोष प्रकट किया और इसमें निम्नलिखित संशोधन पेश किए –

1. केन्द्रीय असेम्बली में मुसलमानों के लिए 173 (एक तिहाई) सीटें सुरक्षित रहनी चाहिए।
2. प्रान्तों को उन सब विषयों पर अधिकार मिलना चाहिए जो कि केन्द्रीय सरकार को स्पष्ट रूप में विधान द्वारा नहीं दिए गए है ।
3. पंजाब और बंगाल के लेजिस्लेचरों में मुसलमानों को इन प्रान्तों की दस वर्ष की जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाए । चूंकि बिना के संशोधनों को बहुमत ने नामंजूर कर दिया, इसलिए वह नाराज हो गये और मुस्लिम लीग के रूढ़िवादी नेताओं से जा मिला । तत्पश्चात उन सबने मिलकर प्रथम जनवरी, 1929 ई को अखिल भारतीय मुस्लिम सम्मेलन किया जिसमें यह घोषणा की गई कि भारतीय मुसलमान किसी भी ऐसे संविधान को मानने के लिए तैयार नहीं जो उनकी साम्प्रदायिक आकांक्षाओं की पूर्ति न कर सके । जिन्ना ने इसके बाद ही मुसलमानों की ओर से अपनी चौदह मांगें पेश की और उनकी मंजूरी को किसी भी समझौते के लिए अनिवार्य ठहराया।

लीग के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियों तथा वर्गो ने भी, विशेषतया गैर ब्राह्मणों, सिक्खों, ईसाइयों और अछूतों ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार न किया। उनमें से प्रत्येक का यह मत था कि संविधान में उनके हितों को उचित रूप से सुरक्षित रखने की व्यवस्था नहीं की गई है । सरकार ने नेहरू–रिपोर्ट को अधिक क्रान्तिकारी घोषित करते हुए इसे मानने से इन्कार कर दिया।

सारांश यह है कि नेहरू रिपोर्ट पर विचार करते समय किसी भी उपर्युक्त दल तथा वर्ग ने उस सहानुभूति का प्रदर्शन न किया जिसकी कि इसे आवश्यकता थी । भारत के आधुनिक संविधान पर दृष्टिपात करने से यह विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है क्योंकि नेहरू रिपोर्ट की बहुत सी सिफारिशों को इसमें स्थान दिया गया है ।

नेहरू रिपोर्ट के विषय पर कांग्रेस–दल में भी कुछ मतभेद हो गया । चूंकि रिपोर्ट औपनिवेशिक स्वराज्य को ध्येय मानकर तैयार की गई थी, इसलिए जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, श्रीनिवास अयंगर ने, जो पूर्ण स्वराज्य को ही कांग्रेस। का ध्येय स्वीकार करना चाहते थे, इसका कटु विरोध किया । इससे गांधीजी विचित्र दुविधा में पड़ गए । वे एक ओर तो नेहरू–रिपोर्ट को स्वीकार करने के पक्ष में थे लेकिन दूसरी ओर विरोधियों की इच्छाओं की अवहेलना करना भी सुगम नहीं था। अन्त में उन्होंने पूर्ण–स्वराज्य के समर्थकों तथा विरोधी पक्ष में एक समझौता करवाया, जिसके द्वारा यह तय हुआ – "एक वर्ष तक औपनिवेशिक स्वराज्य को ही, जैसा कि नेहरू रिपोर्ट में दिया गया है, कांग्रेस का ध्येय मान लिया जाए । यदि सरकार इस वर्ष के भीतर स्वराज्य दे दे तो ठीक है, नहीं तो एक वर्ष के बाद कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य को ही ध्येय मानकर उसकी प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ करेगी । तत्पश्चात् गांधी जी ने इस समझौते के प्रस्ताव को पेश किया और वह स्वीकृत हो गया । ।

10.4 सारांश

भारतीय शासन अधिनियम 1919 की धारा 84 के अनुसार अधिनियम की क्रियान्विति के दस वर्ष बाद भारत में उत्तरदायी सरकार की प्रगति की जाँच करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति का प्रावधान रखा गया था। चूंकि ये सुधार 1921 ई. में लागू किए गए थे, अत कमीशन की नियुक्ति 1931 ई. में होनी चाहिये थी, लेकिन इसकी नियुक्ति कुछ कारणों से 1927 ई में ही कर दी गई। ब्रिटेन की अनुदार सरकार ऐसे समय में जाँच आयोग भारत भेजना चाहती थी, जब भारत में साम्प्रदायिक दंगों की बहुलता थी। 1929 ई. इग्लैंड में चुनाव होने वाले थे और अनुदार दल के हारने की आशंका थी । इतना ही नही ब्रिटिश राजनीतिज्ञ आयोग का उपयोग स्वराज्य दल को छिन्न–भिन्न करने के लिए करना चाहते थे।

8 नवम्बर, 1927 को सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक लत सदस्यीय कमीशन की घोषणा की गई, जिसके सभी सदस्य अंग्रेज थे । कमीशन की इस रचना से भारतीय क्षुब्ध हुए परन्तु अंग्रेजों ने अपने तर्क देकर उन्हें शान्त करने का प्रयास किया, जिसमें वे असफल रहे । ब्रिटिश शासन द्वारा कमीशन को यह कार्य सौपा गया कि वह पता लगाए कि ब्रिटिश भारत में सरकार कैसे चल रही है, राजनैतिक चेतना का कहां तक विकास हुआ है, उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त को किस रूप में अपनाया जाय और इसमें किस प्रकार के अन्य परिवर्तन किए जाएं । कांग्रेस सहित भारत के सभी राजनैतिक दलों ने कमीशन के बहिष्कार का निश्चय किया।

साइमन कमीशन दो बार भारत आया। उसने पहली बार 3 फरवरी, 1928 से 31 मार्च, 1928 और दूसरी बार 11 अम्बर, 1928 से 13 अप्रैल 1929 तक भारत का दौरा किया। भारत के सभी राजनीतिक दलों ने न तो उसके सामने अपनी राय रखी न किसी प्रकार की सहायता की, बल्कि हड़तालें और विरोधी प्रदर्शनों से उसका स्वागत किया ।

इस विरोध के बावजूद कमीशन ने अपना कार्य जारी रखा और मई 1930 में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की । रिपोर्ट दो खण्ड में प्रकाशित हुई। "सर्वेक्षण" शीर्षक वाले पहले खण्ड में

भविष्य के लिए सिफारिशें देने से पहले "विचारार्थ आवश्यक मुख्य बातों" का उल्लेख किया गया और मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड की व्यवस्था तथा 1927 तक की कार्यप्रणाली की सविस्तार टीका की गई । दूसरे खण्ड का शीर्षक "सिफारिशें" था । प्रान्तीय सरकारों संबंधी सिफारिशों में प्रान्तों में प्रचलित द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त करने की सिफारिश की गयी । यह कहा गया कि प्रान्तीय विधायी परिषदों की सदस्य संख्या बढ़ा दी जाए। अल्पसंख्यक जातियों तथा सरकारी सेवकों के हितों की रक्षा के लिए प्रान्तीय गवर्नरों को विशेष अधिकार दिए जाएं । केन्द्र सरकार संबंधी सिफारिशों में कमीशन ने केन्द्र में उत्तरदायी सरकार को स्थगित करने की मांग को अस्वीकार कर दिया । निकट भविष्य में भारतीय संघ की स्थापना को असम्भव मानते हुए विशाल भारत की परिषद् की स्थापना की जाए । साथ ही केन्द्रीय लेजिस्लेटिव कौंसिल का संघीय आधार पर पुनर्गठन किया जाए। कमीशन ने सेना के भारतीयकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया । कमीशन ने मताधिकार संबंधी सिफारिशें भी की, जिसमें केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिलों के सदस्यों को चुनने के लिए शर्तें कम कड़ी कर दी जाएं । केन्द्र के दोनों सदनों के लिए अप्रत्यक्ष व प्रांतीय विधानपालिका के लिए प्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को अपनाया जाय । कमीशन ने बर्मा को भारतवर्ष और सिंध को बंबई से अलग करने की सिफारिश की । इंग्लैण्ड स्थित गृह सरकार में भारत मंत्री की परिषद को तो बना रहने दिया जाए, परन्तु उसकी शक्तियों को कम कर दिया जाए ।

यद्यपि साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट तैयार करने में घोर परिश्रम किया, परन्तु उनके द्वारा पेश की गई रिपोर्ट निराशाजनक थी ।

साइमन कमीशन की नियुक्ति के संबंध में घोषणा करते हुए भारतमंन्त्री लार्ड बर्कनहेड ने भारतीयों को चुनौती दी थी कि वे स्वयं ऐसा संविधान नहीं तैयार कर सकते थे जो भारत के सभी राजनीतिक दलों को स्वीकार हो ।

भारतीय राजनीतिज्ञों ने इस चुनौती को स्वीकार कर दिल्ली में एक सर्वदल सम्मेलन बुलाया जिसमें हिन्दू महासभा, नेशनल लिबरल फैडरेशन, मुस्लिम लीग, सेन्ट्रल सिख लीग, ऑल इंडिया कान्फ्रेंस ऑफ इंडियन क्रिश्चियन, एंग्लो इंडियन एसोशिएशन, स्टेट्स पीपुल्स कांफ्रेंस, ट्रेड यूनियन और कई दूसरे संगठनों के लगभग 29 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यह बैठक 28 फरवरी 1928 को हुई थी । सम्मेलन की दूसरी मीटिंग तीन माह बाद बंबई में बुलाई गई जहां पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई, जिसे भारत के लिए एक अच्छा और संतोषजनक संविधान बनाने का कार्य सौपा गया । इस समिति ने लगभग 28 बैठके की और इसके सदस्यों को भारत की विभिन्न समस्याओं के कारण घोर परिश्रम करना पड़ा । इसकी रिपोर्ट अगस्त 1928 में प्रस्तुत हुई। सम्मेलन ने उसी महीने कुछ संशोधनों सहित उसे स्वीकार कर लिया। बाद में इसे दिसम्बर 1928 में कलकत्ता में हुए सर्वदल सम्मेलन के सामने रखा गया।

नेहरू समिति के सामने दो प्राथमिक कठिनाइयां थी। चूंकि इसके सदस्य विभिन्न राजनीतिक विचारधारा और विभिन्न राजनीतिक गुटों के थे, उनमें भारत के राजनैतिक लक्ष्य के बारे में मतैक्य नहीं था। दूसरी कठिनाई अल्पसंख्यकों की समस्या थी।

समिति कई प्रमुख सिफारिशें निम्न थी। इसने भारत का राजनीतिक लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य रखा। भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की सिफारिश की गई । केन्द्र में

संसद में दो सदन ही – सीनेट और हाऊस ऑफ रिप्रैजेण्टेटिव्स। प्रान्तों में केवल एक सदन की विधानपालिका हो। केन्द्र और प्रान्तीय सरकारों में संघीय आधार पर शक्तियों का बंटवारा किया जाए । अवशेष शक्तियां केन्द्र को दी जाएं । साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति को समाप्त किया जाए और मुसलमानों को विशेष रियायतें दी जाए । सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना का प्रावधान रखा गया। नागरिकों को मौलिक अधिकार दिये जाए और भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य हो ।

नेहरू रिपोर्ट निस्संदेह एक उच्चकोटि की रचना थी। राष्ट्रवादी मुसलमानों ने इसका हार्दिक स्वागत किया। लखनऊ में बुलाए गए सर्वदल–सम्मेलन ने इसे सर्वसम्मति से मंजूर कर लिया। लेकिन तत्पश्चात् जब कलकत्ता कन्वेंशन में इस पर वाद–विवाद हुआ तो जिन्ना ने इसके प्रति असन्तोष व्यक्त किया और कुछ संशोधन पेश किए। लेकिन इन्हें बहुमत ने नामंजूर कर दिया। नाराज होकर जिन्ना ने अपनी चौदह मांगें पेश की। लीग के अतिरिक्त ब्राह्मणों, सिखों, ईसाइयों और अछूतों ने भी नेहरू रिपोर्ट से स्वीकार नहीं किया। वास्तव में उन्होंने रिपोर्ट पर विचार करते समय उस पर सहानुभूति का प्रदर्शन नहीं किया जिसकी इसे आवश्यकता थी । भारत के आधुनिक संविधान पर दृष्टिपात करने से इसका महत्व स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि नेहरू रिपोर्ट की बहुत सी सिफारिशों को उसमें स्थान दिया गया है ।

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उन कारणों का विवेचन कीजिए जिनमें साइमन कमीशन की नियुक्ति समय से पहले की गई।
2. भारतीय राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार क्यों किया?
3. साइमन कमीशन की सिफारिशों पर एक लेख लिखिए।
4. "साइमन कमीशन की रिपोर्ट, निःसंदेह ब्रिटिश राजनीतिशास्त्र के पुस्तकालय के लिए सर्वश्रेष्ठ महत्व की कृतियों में से एक है" – इस कथन का विवेचन सजिए।
5. नेहरू रिपोर्ट की सिफारिशों पर प्रकाश डालिये।
6. नेहरू रिपोर्ट का मूल्यांकन कीजिए ।

10.6 प्रासंगिक पठनीय ग्रंथ

1. एसी. बैनर्जी : भारत का संवैधानिक इतिहास
2. एसएल. सीकरी : भारतीय संविधान का विकास
3. आर.सी. अग्रवाल : राष्ट्रीय आन्दोलन औ र भारत का संवैधानिक विकास
4. एम.पी. राय : भारतीय शासन और राजनीति
5. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : भारत का संवैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास
6. वीं–पीं. मेनन : ट्रान्सफर ऑफ पावर इन इंडिया ।

इकाई –11

सविनय अवज्ञा आन्दोलन और गोलमेज कान्फ्रेंस

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 1928 – 1929 में युवा वर्ग का अपूर्व उत्साह

11.3 1929 का कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन

11.4 गाँधी जी का वायसराय इरविन को पत्र तथा ग्यारह मांगे

11.5 गाँधी जी का नमक कर भंग आन्दोलन का आव्हान

11.6 गाँधी जी की दण्डी यात्रा

11.7 सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा दण्डी यात्रा का ऐतिहासिक प्रभाव

11.8 नमक भण्डारों पर सत्याग्रहियों के आक्रमण

11.9 बहिष्कार तथा बाइकाट का वातावरण

11.10 बल्लभभाई पटेल तथा बारडोली आन्दोलन

11.11 कलकत्ता, शोलापुर तथा पेशावर सविनय अवज्ञा के मुख्य केंद्र

11.12 गाँधी – इरविन समझौते की शर्तें

11.13 गाँधी – इरविन समझौते की समालोचना

11.14 गोलमेज कान्फ्रेंस का उद्‌गम तथा आवश्यकता

11.15 प्रथम गोलमेज सम्मेलन का उद्‌घाटन

11.16 प्रथम–गोलमेज सम्मेलन की कार्यवाही

11.17 प्रथम गोलमेज सम्मेलन का मूल्यांकन

11.18 द्‌वितीय गोलमेज सम्मेलन

11.19 तृतीय गोलमेज सम्मेलन 17 नवम्बर से 24 दिसम्बर 193

11.20 सारांश

11.21 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.22 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में अध्ययन करेंगे –

- स्वराज्य पार्टी, साइमन कमीशन तथा नेहरू रिपोर्ट से भारतीय राजनीति में ठहराव आ चुका था।
- 1929 में क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया जिसका प्रभाव कांग्रेस पर आना निश्चित था।
- 1928–1929 में भारतीय युवा वर्ग में अपूर्व उत्साह के फलस्वरूप कांग्रेस का अधिवेशन 1929 महत्वपूर्ण बन गया ।

- सविनय अवज्ञा आन्दोलन का स्वरूप, दण्डी यात्रा का महत्व, तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अखिल भारतीय स्वरूप।
- गाँधी–इरविन समझौते की शर्तें तथा आलोचना।
- प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय गोलमेज सम्मेलन तथा उनका मूल्यांकन

11.1 प्रस्तावना

गाँधी जी ने अपने प्रथम असहयोग आन्दोलन 1921–22 के द्वारा भारतीय क्रान्ति को नैतिक तथा आध्यात्मिक आधार प्रदान किया था । गाँधी जी का दूसरा महत्वपूर्ण आन्दोलन सविनय अवज्ञा आन्दोलन 1930 का था । जिसे अन्तर्राष्ट्रीय जगत ने देखा तथा भारतीय स्वतन्त्रता के प्रश्न को महत्व दिया ।

1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में कांग्रेस का राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया । इस आन्दोलन ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को जन–चेतना के रूप को स्पष्ट कर दिया तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के रूप को विश्व के सामने उजागर कर दिया । ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए तिलक, "भारतीय असन्तोष का पिता था" "गाँधी जी उनका अडिग शत्रु था।" तिलक ने राष्ट्रीय आन्दोलन को गुनगुनी गर्मी प्रदान की । जबकि गाँधी जी उस गर्मी को उबाल–बिन्दु तक ले गये ।

11.2 1928–1929 में युवा वर्ग का अपूर्व उत्साह

भारतीय राजनीति में 1918–29 के वर्ष युवा पीढ़ी की अपूर्व चेतना और उत्साह के वर्ष है। कांग्रेस में युवा पीढ़ी ने अपने आपको जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में संगठित करके एक इंडीपेंडेंस लीग की स्थापना की और पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचार शुरू किया । युवा वर्ग में पूर्ण स्वराज्य की भावना इस हद तक बढ़ चुकी थी कि जब 1928 में नेहरू रिपोर्ट जिसमें डोमिनियन–स्टेट्स का लक्ष्य रखा गया और जिसे कांग्रेस समिति ने पारित कर दिया था । उस पर जवाहर लाल नेहरू ने प्रतिवाद स्वरूप कांग्रेस के सचिव पद से त्याग दे दिया। जब 1928 में कांग्रेस कलकत्ता अधिवेशन में बुलाई गई, तो युवा वर्ग ने नेहरू रिपोर्ट में पूर्ण स्वराज्य की मांग को सम्मिलित करने के लिए कहा । जब ब्रिटिश सरकार डोमिनियन–स्टेट्स के लिए राजी नहीं हुई तो गाँधी जी के पास सम्पूर्ण स्वराज्य के अतिरिक्त कोई विकल्प नही बचा ।

11.3 1929 का कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन

इन परिस्थितियों में 29 दिसम्बर 1929 को लाहौर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बुलाया गया । जवाहर लाल नेहरू इसके अध्यक्ष चुने गए। डॉ. पट्टा भी सीता रम्मैया ने अपनी ऐतिहासिक रचना "कांग्रेस के इतिहास में" कांग्रेस के इस अध्यक्ष पद पर जवाहर लाल नेहरू के चुने जाने की प्रशंसा की है । उनके अनुसार इंजन एक युवक के हाथ में होना अच्छा है । जो जोश, हिम्मत और आत्म–विश्वास से भरा मे । पर ब्रेक पर अनुभवी तथा पुराने राजनीतिज्ञ का अधिकार बना रहे । इस समय जवाहर लाल नेहरू सबसे युवा–प्रिय नेता थे, परन्तु ब्रेक अभी भी गाँधी जी के अधिकार में थे । दिसम्बर 31, 1929. की मध्य रात्रि में रावी नदी के किनारे पर कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित कर दिया । यह भी निर्णय लिया गया कि 26 जनवरी स्वतन्त्र दिवस के रूप में प्रतिवर्ष मनायी जाये, और कांग्रेस समिति ने महात्मा गाँधी के–

इस बात का अधिकार दिया कि वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करें, जिसमें टैक्स न देना भी शामिल हो और जिसका लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य और पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति हो ।

11.4 गाँधी जी का वायसराय इरविन को पत्र तथा ग्यारह मांगे

गाँधी जी ने 2 मार्च, 1930 को वाइसराय को एक पत्र लिखा जिसमें ब्रिटिश राज्य की बुराइयों का वर्णन किया गया और उनके निराकरण की मांग की गई । गाँधी जी ने अपने निर्णय की सूचना दी कि वे सत्याग्रह आन्दोलन शुरू कर देंगे जिसकी शुरूआत डांडी गांव में, जो गुजरात में समुद्र किनारे पर है, नमक बनाने से होगी, यानि सरकार ने उनकी मांगों को नहीं माना । गाँधी जी ने अपने पत्र में ग्यारह बिन्दुओं को पूरा करने के लिए कहा, जो इस प्रकार से है –

1. पूर्ण नशाबन्दी ।
2. रुपया तथा स्टर्लिंग के अनुपात में परिवर्तन।
3. भूमि कर में कमी ।
4. नमक कर समाप्त ।
5. सैनिक खर्चे में कमी ।
6. नागरिक प्रशासन दो खर्चे में कमी ।
7. विदेशी कपड़ों पर शुल्क ।
8. डाक सुरक्षा बिल को मानना ।
9. गुप्तचर विभाग को समाप्त कर उसे नागरिकों को देना ।
10. सभी राजनीतिक बन्दियों को मुक्त करना।
11. आत्म रक्षा के लिए हथियार के लाइसेन्स देना।

11.5 गाँधी जी का नमक कर भंग आन्दोलन का आव्हान

लार्ड इरविन ने गाँधी जी की इन मांगों पर कोई ध्यान नहीं दिया । उन्हें चेतावनी दी कि उनके सत्याग्रह आन्दोलन के परिणाम उनके लिये अच्छे नहीं होंगे । और गाँधी जी से मिलने से इन्कार कर दिया । यह गाँधी जी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की शुरूआत थी । सुभाषचन्द्र बोस ने अपनी महत्वपूर्ण रचना "द इण्डियन स्ट्रगल" में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की मौलिकता का वर्णन करते हुए कहा है कि "गाँधी जी के यह कदम और योजना उनके नेतृत्व की शानदार उपलब्धियां है और ये कदम बताते है कि कठिन समय में भी गाँधी जी का कूटनीतिज्ञ नेतृत्व किस हद तक पहुंच सकता है" गाँधी जी ने अपने आश्रम के चुने हुए 78 साथियों के साथ नमक कानून को तोड़ने की घोषणा की। इस अभियान में अहमदाबाद से चल कर समुद्री तट डांडी पहुंचना था डांडी पहुंच कर गाँधी जी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करना था । इस संकेत पर पूरे राष्ट्र को आन्दोलन शुरू करना था । महात्मा गाँधी ने यह आन्दोलन इसलिए अपनाया क्योंकि यह आन्दोलन पूरे राष्ट्र में लोकप्रिय होता और विशेषत: गरीब इसमें अधिक उत्साह दिखाते । अनादिकाल से मानव समुद्र के पानी से नमक बनाने का आदि रहा है । ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों से यह अधिकार छीन लिया था । नमक कानून के अनुसार न तो भारतीय प्रकृति द्वारा दिये गये नमक का प्रयोग कर सकते थे, बल्कि भारतीयों को मजबूर होकर विदेश से नमक मंगवाना पड़ता था । यही नहीं नमक कर देने के कारण नमक के दाम बढ़ गये थे । और गरीब से गरीब भारतीय को नमक खरीदना पड़ता था । अपने पूर्व घोषित अभियान के अनुसार गाँधी जी

ने 12 मार्च, 1930 को तीन हफ्ते की दाण्डी यात्रा शुरू की । गाँधी जी अपने 78 साथियों के साथ साबरमती से चल कर 5 अप्रैल को दाण्डी के समुद्र तट पर पहुंचे । यहां पहुंच कर 78 साथियों सहित गाँधी जी ने नमक कानून तोड़ते हुए नमक बनाया । सविनय अवज्ञा आन्दोलन की इस आरम्भिक अवस्था में गाँधी जी ने अपने आप को आश्रम के 78 साथियों तक सीमित रखा । यहां तक की बल्लभ भाई पटेल को भी अपने साथ नहीं लिया । गाँधी जी का अनुमान था कि उनके आन्दोलन की शुरूआत से यह आन्दोलन सभी स्थानों और दिशाओं में फैल जायेगा । जहां पर नमक बनाने के स्थान नहीं थे, वहां पर नमक के डिपो पर अधिकार करके आन्दोलन शुरू किया जा सकता था । गाँधी जी की यह योजना उनकी आन्तरिक आत्मा से प्रेरित थी न कि किसी पूर्व योजना पूर्ण तर्क पर आधारित थी । उनकी आन्तरिक आवाज ही उनकी मित्र, दार्शनिक और पथ प्रदर्शक थी । जैसा कि लार्ड जार्ज ने कहा है कि गाँधी जी ने शताब्दियों के विकास को दशक में समा लिया था ।

11.6 गाँधी जी की दाण्डी यात्रा

गाँधी जी की दाण्डी यात्रा शुरू होने से पहले सभी आवश्यक तैयारियां कर ली गयी थी । उनके 78 साथी, आश्रम और विद्यापीठ से लिये गये थे । यह दाण्डी यात्रा दो सौ मील की पद यात्रा थी । गाँधी जी से पहले बल्लभ भाई पटेल उनके चले । ब्रिटिश सरकार को यह समझने में देर नहीं लगी कि बल्लभ भाई पटेल का यह कदम ईसा मसीह से पहले जॉन बाप्टिस्ट की तरह है। सरकार ने पटेल को तीन महीने का कारावास दे दिया। पटेल के कैद होने पर, पूर्ण गुजरात ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह के लिये तैयार हो गया । साबरमती की रेत पर 75,000 लोगों ने एकत्रित होकर यह प्रस्ताव पारित किया कि "अहमदाबाद के नागरिक उसी पथ पर चलेंगे जिस पथ पर बल्लभ भाई गये है और हम पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे । बिना स्वतंत्रता प्राप्त किये हुए न तो हम शान्त बैठेंगे और न ही सरकार को शान्ति देंगे । हम घोषित करते है कि भारत की मुक्ति सत्य और अहिंसा में ही है।"

गाँधी जी ने 12 मार्च, 1930 को अपने 78 साथियों के साथ दांडी यात्रा शुरू की । जैसे वैसे यात्रा आगे बढ़ती गयी । 300 गांव स्तर के सरकारी अफसरों ने सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। आरम्भ में दांडी यात्रा का मजाक उड़ाया गया, बाद में बड़े दिलचस्पी के साथ देखा गया और अंत में इसकी प्रशंसा की गयी । आंग्ल–हिन्दुस्तानी अखबारों ने गाँधी जी की दांडी यात्रा पर व्यंगात्मक लेख लिखे । और कलकत्ता के "स्टेटस्मेंट्स अखबार ने अपने सम्पादकीय लेख में लिखा कि गाँधी जी तब तक समुद्र का पानी उबालते रहेंगे जब तक कि डोमिनियन स्टेट्स नहीं प्राप्त हो जाता। गाँधी जी की दांडी यात्रा सुरक्षित नमक डिपो के विरुद्ध नहीं थी और न ही यह असीम समुद्र के विरुद्ध थी। यह तो करोडों भारतीयों की ब्रिटिश शासन, ब्रिटिश कानून और ब्रिटिश व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का परिचायक थी। गाँधी जी की दाण्डी यात्रा से एक विचार उभरा कि भारत ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध रक्त हीन विद्रोह कर रहा है । सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी महत्वपूर्ण रचना "इण्डियन स्ट्रगल" में लिखा है कि "दांडी तक यात्रा एक ऐतिहासिक महत्व की घटना थी, इसकी तुलना नेपोलियन की एलवा से पेरिस मार्च से की जा सकती है या मुसोलिनी के रोम यात्रा से की जा सकती है जब वह राजसत्ता प्राप्त करना चाहता था । महात्मा के सौभाग्य से भारत में और भारत के बाहर अच्छी प्रेस थी। भारत में काफी दिनों तक समाचार पत्रों ने

विस्तार से इस यात्रा का प्रकाशन किया। पदयात्रा से सम्पूर्ण गांव आन्दोलन के लिये उठ खड़े हुए और गाँधी जी ने जन सम्पर्क से जन चेतना पैदा कर दी ।"

गाँधी जी ने जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन की शुरूआत की वह संख्या, धन तथा प्रभाव में जोर पकड़ता चला गया । सम्पूर्ण देश में यह आन्दोलन एक घर से दूसरे घर फैल गया । यह आन्दोलन आसानी से मौलिक धरातल से वैचारिक धरातल तक वैचारिक धरातल से आध्यात्मिक धरातल तक पहुंच गया । गाँधी जी को आन्दोलन शुरू किये एक हफ्ता भी नही हुआ था, ब्रिटिश प्रशासन, जो ऊपर से निश्चित लग रहा था, अचानक अपना संतुलन खो बैठा। मार्च के प्रथम हफ्ते में, गाँधी जी के महाप्रयाण से पहले, बल्लभ भाई को कैद किया जाना एक गैर कानूनी कार्य था और उनका चार मास का कारावास और भी गैर–कानूनी था । दाण्डी यात्रा के बाद ब्रिटिश सरकार ने एक आदेश द्वारा गाँधी जी की दाण्डी यात्रा की सिनेमा फिल्म पर प्रतिबन्ध लगा दिया और बम्बई, यू.पी., पंजाब तथा मद्रास प्रान्तों में यह प्रतिबन्ध लागू कर दिया गया ।

भारत में बीसवीं शताब्दी का आश्चर्य देखने को मिला जब हजारों भारतीय गाँधी जी के झण्डे के नीचे साबरमती आश्रम में 6 मार्च, 1930 को एकत्रित हुए और दाण्डी यात्रा में गाँधी जी का साथ दिया जहां तक उनकी टांगें उनके शरीर को ले जा सकी । गाँधी जी के साथ चलने वालों में भारत से आये विभिन्न भागों से तथा विदेशों के पत्रकार सम्मिलित थे । इनमें फोटोग्राफर तथा फिल्म बनाने वाले भी शामिल हो गये । "बॉम्बे क्रोनिकल्स" समाचार ने लिखा कि इस महान राष्ट्रीय घटना के पहले, साथ में तथा बाद में जो दृश्य पैदा हुए उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।" राष्ट्र प्रेम की भावना जो मानवता में उस समय नजर आयी वह भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में एक महान आन्दोलन की महान शुरुआत मानी जायेगी । सम्पूर्ण यात्रा में गाँधी जी की जय का नारा आसमान तक गुंजने लगा। थी सी. राय ने कहा है कि गाँधी जी की ऐतिहासिक दाण्डी यात्रा की तुलना मोजिस के नेतृत्व में इजरायलों की यात्रा से की जा सकती है । जब तक महात्मा अपने लक्ष्य स्थान पर नहीं पहुंच जाते, वह अपनी कमर नहीं दिखायेंगे ।

पाँच अप्रैल 1930 को गाँधी जी दाण्डी पहुंच गये । प्रात:कालीन प्रार्थना के बाद गाँधी जी अपने साथियों सहित समुद्र किनारे की ओर बड़े जहां पर नमक उठा कर गाँधी जी ने नमक कानून को तोड़ा । पूरा देश एक किनारे से दूसरे किनारे तक जोश से भड़क गया क्योंकि 6 अप्रैल से पूरे देश को नमक सत्याग्रह शुरू करने की इजाजत मिल गयी । सभी बड़े शहरों में बड़ी–बड़ी जन सभायें आयोजित की गयी जिसमें लाखों लोग एकत्रित हुए, गाँधी जी ने घोषित किया कि वह "दरशाना" और "चौराया" के नमक कारखानों पर धावा बोलेंगे । सबसे पहले सूरत जिले के दरशाना डिपो पर धावा बोला गया । गाँधी जी का मत था कि हवा, पानी की तरह नमक भी जनता की सम्पत्ति है। ब्रिटिश सरकार का यह अधिकार नहीं है कि वह इन नमक डिपो पर एकाधिकार स्थापित करे जो कि जनमत के विरुद्ध है । अत : जनता का सरकारी डिपों पर अधिकार है । इस योजना के अनुसार गाँधी जी ने "धरना" डिपो पर अधिकार करना निश्चित किया । इसी समय गाँधी जी को कैद करके पुलिस उन्हें मोटर लारी में अपने साथ ले गयी । गाँधी जी को रेल से बम्बई के पास बोरीविली ले जाया गया जहां से उन्हें मोटर कार द्वारा यरवदा जैल ले जाया गया ।

गाँधी जी के कैद होने पर सम्पूर्ण देश में एक कोने से दूसरे कोने तक जनता ने सद्भावना का प्रदर्शन किया। बम्बई, कलकत्ता और दूसरे बहुत से स्थानों में पूर्ण हड़ताल रखी गयी । बम्बई

में एक बहुत बड़ा जुलूस निकाला गया जिसमें 50,000 लोगों ने हिस्सा लिया । गाँधी जी के बंदी बनाये जाने पर कपड़ा व्यापारियों ने 6 दिन की हड़ताल शुरू कर दी । जिस के द्वारा गाँधी जी के बंदी बनाये जाने का विरोध किया । पूना में पूर्ण हड़ताल रखी गयी । समय–समय पर सरकारी नौकरियों तथा पदों से त्याग पत्र दिया गया ।

11.7 सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा दाण्डी यात्रा का ऐतिहासिक प्रभाव

गाँधी जी के बन्दी बनने पर विश्व भर में प्रतिक्रिया तथा दिलचस्पी प्रदर्शित की गई । पनामा में जो भारतीय व्यापार करते थे, उन्होंने 24 घंटे की हड़ताल की । सुमात्रा के पूर्वी समुद्र तट पर बसे भारतीयों ने भी वाइसराय को तार द्वारा गाँधी जी के बन्दी बनने पर अफसोस प्रकट किया । फ्रांस के अखबारों में गाँधी जी और उनके कार्यों का वर्णन किया गया। गाँधी जी के बहिष्कार आन्दोलन का प्रभाव जर्मनी पर भी पड़ा । यहां के कपड़ा निर्यात करने वालों को भारत में उनके प्रतिनिधियों का यह निर्देश था कि वह अपना निर्यात बन्द कर दे । रायटर अखबार ने रिपोर्ट दी थी कि शैक्शन में सस्ता प्रिंटिड सूती कपड़ा बनाने वाले विशेष तौर से प्रभावित हुए थे, नैरोबी में भारतीय समुदाय ने गाँधी जी के बंदी होने पर हड़ताल घोषित कर दी। अमेरिका के 102 पादरियों ने जो विभिन्न धार्मिक संस्थाओं से सम्बन्धित थे, रामजैमैकडोनाल्ड को केबिल से संदेश भेजा कि वह गाँधी जी तथा भारतीयों से शान्तिपूर्ण समझौता करें । सन्देश भेजने वाले यह मानने के लिए तैयार नही थे । कि मैक्डोनाल्ड जो स्वतन्त्रता, प्रजातंत्र और भाई चारे में विश्वास करता है, गाँधी जी के साथ समझौता करने में असफल हो सकता है क्योंकि गाँधी जी आध्यात्मिक विचारों के प्रतीक बन चुके है ।

11.8 नमक भण्डारी पर सत्याग्रहियों के आक्रमण

गाँधी जी के सदी बनने के बाद नमक धावे चलते रहें, श्रीमती सरोजनी नायडू 'दरसाना" की ओर तेजी से बढ़ी और धरने का निर्देश दिया। सरोजनी नायडू तथा उनके साथियों को पुलिस ने हिरासत में ले लिया गया और बाद में छोड़ दिया गया, सत्याग्रहियों के दस्तों ने नमक डिपो पर धावे बोले। उन्हें पुलिस द्वारा पीटा गया, और भगा दिया गया । उस शाम 220 सत्याग्रहियों को पुलिस द्वारा पकड़ा गया और "दरसाना" में रोक लिया गया, और उन पर गैर–कानूनी रूप से इकट्ठा होने का अभियोग लगाया गया । इसके बाद भारी संख्या में सत्याग्रहियों ने बडाला नमक कारखाने पर धावा बोल दिया परन्तु पुलिस कार्यवाही से 400 सत्याग्रहियों को कैद करके धावे को रोक दिया गया । बडाला तथा दरसाना नमक धावों का तथा सत्यग्रहियों पर हुए लाठी चार्ज का ब्रिटिश समाचार प्रतिनिधियों के मस्तिष्क पर भारी प्रभाव पड़ा । डेली हिराल्ड अखबार के जार्ज सलोकोम्ब ने महसूस किया कि "बन्दी महात्मा" भारतीय आत्मा का अवतार बन गया ।

जेल में बन्द महात्मा स्वतन्त्र महात्मा से अधिक शक्तिशाली हो गये । आरम्भ में लार्ड इरविन गाँधी जी को बन्दी नही बनाना चाहते थे । गाँधी जी की दाण्डी यात्रा ने सम्पूर्ण राष्ट्र को उद्वेलित कर दिया । भारत के हर भाग में जुलूस निकाले गये । गाँधी जी के आवाहन पर हजारों महिलाओं ने सत्याग्रह आन्दोलन में हिस्सा लिया । वह ब्रिटिश सरकार के लिये सिरदर्द बन गयी।

महिलाओं ने शराब की दुकानों तथा विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना दिया जिससे पुलिस धर्म संकट में फंस गयी ।

11.9 बहिष्कार तथा बाइकाट का वातावरण

1930 के गाँधी जी के नमक कर आन्दोलन में बहिष्कार का वातावरण बलवती होता चला गया । विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, सभी की दिलचस्पी का केन्द्र विंदु बन गया । बम्बई इस आन्दोलन का गढ़ बन गया। कपड़ा कारखानों के मालिकों की इस आन्दोलन में परोक्ष रूप से स्वाभाविक रूप से दिलचस्पी थी । मोतीलाल नेहरू बम्बई गये। और अहमदाबाद तथा बम्बई की मिलों से समझौता किया । उन्होंने वो किया जो असम्भव नजर आ रहा था । सैकड़ों कपड़ों की गाँठे समुद्र तट पर यार्ड में पड़ी थी जो व्यापारियों द्वारा उठाई नहीं जा रही थी । आयात करने वाले व्यापारियों ने तय किया कि वह पड़े हुए माल को नहों उठायेंगे । इससे देश में कपड़े की कमी होगी । इससे विदेशी कपड़ों का बल्कि अधिक से अधिक कारगर होता चला गया। एक मिल के बाद दूसरी कपड़ा मिल कांग्रेस का वचन निभाती चली गई । इस मौके पर "ऑल इण्डिया कांग्रेस समिति" को गैर कानूनी घोषित किया गया और 10 जुलाई 1930 को पंडित मोतीलाल नेहरू को 6 माह के कारावास दिया गया।

11.10 बल्लभ भाई पटेल तथा बारडोली आन्दोलन

बल्लभ भाई पटेल तीन महीने जेल में रहने के बाद रिहा कर दिये गये । उन्हें पंडित मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस का कार्यवाहक सभापति नियुक्त किया। वल्लभ भाई पटेल ने बम्बई और गुजरात आन्दोलन तेज कर दिया और सविनय अवज्ञा आन्दोलन को संगठित किया । बल्लभ भाई पटेल के भाषणों ने सत्याग्रहियों में नया उत्साह पैदा किया । उन्होंने उस कानून का हवाला दिया जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की सभी संस्थाओं को गैरकानूनी घोषित कर दिया है और कांग्रेस के दफ्तरों पर कब्जा कर दिया है । इसलिये भारत का हर घर कांग्रेस का दफ्तर बनना चाहिए और हर भारतीय कांग्रेस संस्था बननी चाहिये। लेकिन इस सब में सबसे केन्द्रीय घटना गुजरात के वारडोली तथा बोरसाड़ ताल्लुके में हुई जहां पर टेक्स न देने का आन्दोलन सफलता पूर्वक चलाया गया । ब्रिटिश सरकार द्वारा सत्याग्रह आन्दोलन को दबाने का बहुत बड़े स्तर पर प्रयास किया गया जिसकी वजह से अस्सी हजार लोग ब्रिटिश प्रदेश से बड़ोदा राज्य के गांव में पलायन कर गये । बल्लभ भाई पटेल की माता जो 80 वर्ष की थी, उनके खाना बनाने के बर्तन तोड़ दिये गये। गांव की गरीब जनता के चावलों में पत्थर और रेत मिला दी गयी। इसके अलावा गांव की गरीब जनता को अनेक यातना दी गई । लेकिन इन गांव वालों का संगठन आश्चर्यजनक रहा, और सबसे आश्चर्य की बात थी कि जनता ने आन्दोलन में केवल अहिंसा का प्रयोग किया । यह अहिंसा का शस्त्र शब्द तथा आत्मा से प्रयुक्त हुआ ।

11.11 कलकत्ता, शोलापुर तथा पेशावर सविनय अवज्ञा के मुख्य केन्द्र

भारत के सभी प्रान्तों में कुछ तत्व सामान्य थे – जैसे कांग्रेस दफ्तरों का बन्द करवाना, कांग्रेस पत्रों, किताबों, हिसाब के बही खातों तथा झण्डे को जबरदस्ती ले जाना तथा पुलिस के द्वारा लाठी चार्ज करवाना और जन सभा को भंग करवाना। दफा 144 घोषित कर दी गयी । घरों

तथा समाचार पत्रों, छापे खाने पर पुलिस के द्वारा छापे मारे गये । ऐसा लगने लगा कि सरकार का एकमात्र उद्देश्य विदेशी कपड़ा और विदेशी शराब के स्वार्थों को बचाना है । कलकत्ता में देश बंधु दास के सालाना एनेवर्सरी पर पुलिस द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया, जब जुलूस में सम्मानित पुरुषों को बुरी तरह से पीटा गया, महिलाओं ने घरों से बाहर निकल कर जख्मी पुरुषों के सामने बचाव के लिए अपने आप को खड़ा कर लिया, जिससे कि वे घोड़ों के खुरों से बच सके । पुलिस महाविद्यालयों के प्रांगणों में घुस गयी और क्या में बैठे विद्यार्थियों को पीटा। 31 दिसम्बर, 1931 के दिन जब सुभाष बाबू लाहौर स्वतन्त्रता दिवस की एनेवर्सरी के जुलूस में भाग ले रहे थे, तब उनको बुरी तरह से पीटा गया, वह जेल से बाहर विद्रोही होने के एक साल की सजा के बाद बाहर आये थे, लाहौर में ब्रिटिश सरकार ने असहयोग आन्दोलन के वृक्ष की तस्वीर पर प्रतिबन्ध लगा दिया । लुधियाना में एक मुस्लिम पर्दानसीन जो धरना दे रही थी, को कैद कर लिया गया । उन घरों पर "सयापा" डाला गया जहां पर विदेशी कपड़े बेचे जाते थे, विदेशी शराब बेचने वाली दुकानों पर धरना देने के कारण सरकार को 40 लाख रुपये की हानि हुई ।

शोलापुर में जहां औद्योगिक जनसंख्या का बाहुल्य था, उसने विद्रोह करके तथा वहां की पुलिस पर अधिकार कर लिया। सारे शहर पर अधिकार करके, तिरंगा लहरा दिया और अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया । कुछ समय तक उनका शहर में कब्जा बना रहा परन्तु शीघ्र ही सरकार ने बम्बई से सेना भेज कर ब्रिटिश राज को फिर से कायम कर लिया । शहर में मार्शल ली स्थापित किया गया और उसके बाद आतंक का राज्य स्थापित किया गया। इस आतंक राज्य के दौरान जनता पर बहुत सी पाबंदियां लगा कर उन पर जुर्म किया गया । जनता को सार्वजनिक जीवन में गाँधी टोपी लगाने की मनाही कर दी गयी और जहां कहीं भी राष्ट्रीय झण्डा नजर आया उसे उखाड़ दिया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान पेशावर और उसके पठानों का विशेष स्थान है । इन पठानों को जो हिंसा और जुर्म के प्रतीक माने जाते है, अहिंसा के सच्चे प्रतीक मेमने बन गये । खान अब्दुल गफ्फार खान ने खुदाई खिदमतगारों को इस तरह अनुशासित किया कि भारत का वो भाग जिससे सब डरते थे, अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का सुरक्षित केन्द्र बन गया, सीमा के इस प्रांत में एक महत्वपूर्ण घटना घटी । शोषण के दौरान, गढ़वाली सैनिकों को हुक्म दिया गया कि वह जनसभा पर गोली चलायें उन्होंने उस लारी पा चढ़ने से इन्कार कर दिया जो उन्हें जनता पर गोली चलाने के लिये लाई गयी थी। इन सैनिकों पर सैनिक कार्यवाही की गयी । और उन्हें 10 वर्ष से 14 वर्ष तक की सजा दी गई। मार्च, 1931 के समझौते में सरकार तथा कांग्रेस में इन बन्दियों की रिहायी एक मुख्य मुद्दा बन गयी ।

इस तरह से 1930–31 का आन्दोलन अपने साथ बहुत से बलिदान लाया। करीबन 75,000 निर्दोष पुरुष व स्त्रियों को कैद कर लिया गया, बिना सोचे समझे अमानवीय लाठी प्रहार किये गये। जेल में बंद कैदियों पर जुल्म ढाये गये । सैकड़ों आदमियों को गोली का निशाना बनाया गया, सम्पत्ति लूटी गयी, तथा घरों को जला दिया गया । इस पर भी यह आन्दोलन उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त से लेकर उत्तर पूर्व तक लोकप्रिय था जिसमें नागालैण्ड तथा मणिपुर ने भी हिस्सा लिया।

11.12 गाँधी इरविन समझौते की शर्तें

अगस्त, 1930 में सर तेज बहादुर सप्रू और जयकर ने कांग्रेस तथा सरकार के बीच समझौता माना चाहा परन्तु वे विफल हुए क्योंकि सरकार ने इस बात पर बल दिया कि सबसे पहले आन्दोलन वापस ले लिया जाय, लार्ड इरविन इस समय दोहरी नीति अपना रहे थे, एक ही सांस में वे गर्म नीति के अन्तर्गत आर्डिनेन्स कानून लागू कर रहे थे, और दूसरे भारतीय स्वतंत्रता की ठण्डी प्रशंसा भी कर रहे थे ।

इसी बीच साइमन कमीशन की रिपोर्ट पेश कर दी गयी । ब्रिटिश सरकार ने प्रथम गोलमेज कांफ्रेन्स बुलाई, जिसमें भारतीय नेताओं से संविधानिक सुधारों के बारे में बातचीत की जा सके । कांग्रेस ने इस कांफ्रेन्स में हिस्सा नहीं लिया । सरकार को कांग्रेस के साथ समझौता करने के लिए मजबूर होना पड़ा । 26 जनवरी, 1931 को कांग्रेस समिति के सदस्यों को गाँधी जी सहित जेल से मुक्त कर दिया गया । कांग्रेस तथा सरकार के बीच समझौता लाने का एक बार फिर प्रयास तेज बहादुर सप्रू, डॉ. जयकर तथा एस. एस. शास्त्री द्वारा फिर शुरू किया गया। इस बार यह प्रयास सफल हुआ । परिणाम स्वरूप गाँधी–इरविन समझौते पर हस्ताक्षर हो गये। गांधी–इरविन समझौते की सफलता तथा उससे बनी उम्मीदों का अन्दाजा हम पं. मोतीलाल नेहरू के आखिरी शब्दों से लगा सकते है, जो इन्होंने अपनी मृत्यु पर समझौते पर हस्ताक्षर होने से पहले कहे थे, "भारत के भाग्य का निर्णय स्वराज भवन में तय होना चाहिए, इसका निर्णय मेरी उपस्थिति में होना चाहिए, मेरी मातृभूमि के भाग्य के निर्णय में एक पार्टी के रूप में होना चाहिए। अगर में मरूं तो स्वतंत्र भारत की गोद में मरूं । में अपनी आखिरी नींद परतंत्र देश में न लेकर, स्वतंत्र देश में ले सकूं।"

गाँधी–इरविन समझौता 15 दिन की सरकार तथा कांग्रेस के बीच कड़ी वार्ता के पश्चात् सम्भव हो सका। यह गाँधी जी तथा इरविन की मानव के रूप में सबसे अच्छे गुणों का परिणाम था। गाँधी जी ने इसे दोनों पक्षों की विजय बताया, अर्थात् कांग्रेस तथा ब्रिटिश सरकार दोनों ही विजय हुए इस समझौते के अनुसार सरकार ने इन शर्तो को मान लिया।

(अ) सभी आर्डिनेंस और न्यायालय में चल रहे मुकदमों को वापस ले लेना ।

(ब) सभी राजनीतिक कैदियों को मुक्त कर देना । सिवाय उनके जो हिंसा में। लिप्त थे।

(स) सत्याग्रहियों की जल की गई सम्पत्ति को वापस दे देना ।

(द) शराब, अफीम तथा विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देने की इजाजत देना।

(य) समुद्र तट के पास निश्चित परिधि में रहने वाले लोगों को नमक इकट्ठा करने तथा बनाने की इजाजत दे दी गयी । दूसरी तरफ कांग्रेस ने इन शर्तों को मानना तय किया।

1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन को भंग करना ।

2 पुलिस शोषण के खिलाफ किसी कमेटी की मांग के लिये दबाव नहीं डालना ।

3 बहिष्कार आन्दोलन को समाप्त कर देना ।

4 दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंस में हिस्सा लेना ।

11.13 गाँधी–इरविन समझौते की समालोचना

गाँधी–इरविन समझौते का कांग्रेस के युवा–नेताओं ने विरोध किया । भूमि–सम्बन्धी समझौते पर बल्लभ भाई पटेल असन्तुष्ट थे । संवैधानिक प्रश्न पर जवाहर लाल नेहरू संतुष्ट

नही थे । सुभाष बोस को महात्मा गाँधी ने विश्वास दिलाया कि समझौते के बावजूद वह भारत स्वतंत्रता के पक्ष में है। मार्च, 1931 में कराची अधिवेशन में कांग्रेस ने समझौते को मान्यता दे दी । द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेंस में गाँधी जी को एक मात्र कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया गया ।

यद्यपि युवा संस्था तथा राजनीतिकों को इरविन–गाँधी समझौता "अंत तक की लड़ाई" एक समझौता नजर आया था परन्तु जन मानस को यह गाँधी जी की एक बड़ी विजय प्रतीत हुई। चर्चिल जो कि ब्रिटिश साम्राज्य का कट्टर समर्थक था । इस समाचार से बैचेन हो गया कि इरविन ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के नेता का स्वागत भाव से अभिनन्दन किया। चर्चिल को इस बात से घृणा हुई कि गाँधी जी का इनर टेम्पिल का वकील था, अब पूर्व का विद्रोही फकीर बन कर, वाइसराय की महल की सीढ़ियों पर चढ़कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन का संचालन करते हुए भी बराबर के स्तर पर सम्राट के प्रतिनिधि से बातचीत कर रहा था। गाँधी जी की सफलता और लोकप्रियता मार्च, 1931 के कराची कांग्रेस अधिवेशन में और भी पक्की हो गई । सुभाष बोस ने अपनी रचना "द इण्डियन स्ट्रगल. में लिखा है, "कराची कांग्रेस निश्चित रूप से महात्मा की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा का चरम बिन्दु है । मैने उनके साथ कुछ दिन यात्रा की है और यह देखा कि अपार जन समूह ने हर स्थान पर उनका स्वागत किया । मुझे आश्चर्य है कि ऐसा अभूतपूर्व स्वागत कभी किसी नेता को कहीं भी दिया गया हो । वे लोगों के सामने केवल एक महात्मा की तरह ही प्रस्तुत नहीं हुए बल्कि राजनीतिक संघर्ष में एक नायक के रूप में नजर आये"।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने प्रत्यक्ष कर दिया कि भारतीय जनता में राजनीतिक जागरण पैदा हो चुका है और वे भारतीय स्वतंत्रता के लिये इस हद तक तैयार है जिसके बारे में पहले सोचा भी नहीं जा सकता था । दूसरे, सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने भारत में ब्रिटिश शासन की नग्नता को प्रदर्शित कर विश्व की ऑखों के सामने इसे गिरा दिया । सुभाष बोस ने इस समय गाँधी जी का विवेचन करते हुए कहा है कि "यद्यपि वे क्रांतिकारी शक्ति प्रतीत हुए भारत की बहुत सी जनता के लिये वह अत्यधिक क्रांतिकारी भी नहीं थे । अगर वह ऐसे होते तो उनसे डर लगता। इससे वे प्रेरणा की जगह डर पैदा करते । वह अपनी तरफ आकर्षित करने की जगह, अपने से दूर रखते । उनकी नीति एकता की नीति थी। वे हिन्दू और मुसलमानों को एक करना चाहते थे, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग को एक करना चाहते थे, उद्योगपति और मजदूर वर्ग को एक करना चाहते थे, जमींदार और किसान को एक करना चाहते थे । अपनी मानवतावादी विचार धारा के कारण तथा नफरत से परे रहने के कारण, गाँधी जी अपने शत्रु के दिल में भी सद्भावना पैदा कर लेते थे।

जबकि सामान्य व्यक्ति गाँधी जी के महात्मा चरित्र की ओर आकर्षित था, पढ़ा लिखा वर्ग उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व से प्रभावित था इस बात का श्रेय गाँधी जी को जाता है, जो कि विश्व इतिहास में आश्चर्य है, कि जनता में पूर्ण समर्पण तथा आकर्षण पैदा कर सके जो कि केवल एक धार्मिक गुरु ही कर सकता है और जिसका प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यों के लिये किया गया । धनगोपाल मुखर्जी ने बताया कि जब 1930 में उन्होंने बम्बई युवा कांग्रेस के नेता से पूछा कि वे गाँधी जी के नेतृत्व को क्यों मानते है, तो उनका उत्तर था। "गाँधी इस समय भारत में इस तरह कूच कर रहे है जैसा कि महात्मा बुद्ध ने भारत में किया था । जब आप उनके साथ

चलते हो, उनसे एक रोशनी निकलती है जो आपको अपनी चमक से भर देती है । गाँधी का अवतार एक नया आश्चर्य है ।" गाँधी जी के ने इनमें 1930 में, कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के समानान्तर एक नया संगठन बन गया था । इसी बात को दो अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने अलग ढंग से प्रस्तुत किया है । विन्सटन चर्चिल गाँधी जौ को पक्का दुश्मन समझते थे, जबकि मिस एलन विलिन्सटन उन्हें अंग्रेजों के लिए सबसे अच्छा सैनिक समझती थी । अंग्रेजों के लिये तिलक ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए बैचेनी का पिता था और गाँधी जी उनके कट्टर दुश्मन थे । यह कितना सत्य है । तिलक राष्ट्रीय आन्दोलन को बुलबुलों की गर्मी तक ले गये जब कि गाँधी इसे उबलती गर्मी तक ले गये।

11.14 गोलमेज कान्फ्रेंस का उद्गम तथा आवश्यकता

गोलमेज सम्मेलन का विचार स्वयं ब्रिटिश शासकों का नही था । सर्वप्रथम स्वराज दल ने फरवरी 1924 को केन्द्रीय विधान सभा में एक प्रस्ताव में भारत की संवैधानिक समस्या पर विचार करने के लिये एक प्रतिनिधि गोलमेज सम्मेलन की मांग की थी, परन्तु ब्रिटिश शासक उस समय इसके लिये तैयार नहीं थे। जब 1928 में सर्व दलीय सम्मेलन की असफलता के बाद भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता घर कर गई थी, सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कारण राष्ट्रीय भावनाएं बड़े वेग से बढ़ने लगी थी और 1930 में साइमन आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित होने से उग्र आलोचना होने लगी थी तो ब्रिटिश सरकार ने 12 नवम्बर 1930 को इंग्लैण्ड में गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया।

11.15 प्रथम गोलमेज सम्मेलन का उद्घाटन

गोलमेज सम्मेलन में कुल 89 सदस्यों ने भाग लिया था। इसके 57 ब्रिटिश भारत के थे, 16 भारतीय देशी राज्यों के थे और 16 ब्रिटेन के प्रमुख तीन राजनीतिज्ञ दलों के सदस्य थे। सम्मेलन में भाग लेने वाले सदस्यों को भारत के प्रतिनिधि कहना गलत होगा। प्रथम, इनका चयन भारतीय जनता या भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा नहीं किया गया था। द्वितीय, भारत के प्रमुख राष्ट्रीय दल कांग्रेस ने इसमें भाग नहीं लिया था। तृतीय, वाइसराय लार्ड इरविन ने इसके सदस्यों का चयन राष्ट्रीयता के आधार पर नहीं बल्कि संप्रदाय, जाति, वर्ग और हितों के आधार पर किया था। चतुर्थ, वाइसराय ने ऐसे लोगों का चयन किया जो, नव स्वभाव के थे, जो वाइसराय की नीति में विश्वास करते थे, और जो भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रखने के इच्छुक थे । डॉ. ताराचंद ने अपनी प्रसिद्ध रचना हिस्ट्री ऑफ दी फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया में' इस तथ्य को स्पष्ट उजागर किया है । बेलसफोर्ड ने ठीक लिखा है कि "सेन्ट जेम्स भवन में भारतीय नरेश, हरिजन, सिख, मुसलमान, हिन्दू, ईसाई, जमींदारों, मजदूर संघों और वाणिज्य संघों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे, परन्तु भारत माता (कांग्रेस) वहां उपस्थित नहीं थी । यह बिना दूल्हे की बरात थी।

11.16 प्रथम गोलमेज सम्मेलन की कार्यवाही

12 नवम्बर, 1930 को ब्रिटिश सम्राट लार्ड पंचम ने सेन्ट जेम्स भवन में सम्मेलन का उद्घाटन किया। सम्मेलन की अध्यक्षता प्रधानमंत्री मैक्डोनाल्ड ने की । सम्मेलन 19 जनवरी,

1931 तक चला। मैल्डोनाल्ड ने अपने अध्यक्षीय भाषण में उन आधारों का उल्लेख किया जिन पर विचार विमर्श किया जाना था । वे आधार मुख्यत: तीन थे –

1. भारत के लिये संघीय व्यवस्था। इसमें ब्रिटिश प्रान्त और देशी रियासतों को सम्मिलित करने का प्रस्ताव था।
2. भारत में उत्तरदायी सरकार – इसके अन्तर्गत केन्द्र और प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रस्ताव था परन्तु केन्द्र में सुरक्षा और विदेश विभाग गवर्नर जनरल के अधीन रखने का प्रस्ताव था ।
3. अन्तरिम काल में रक्षात्मक विधान की व्यवस्था ।

सम्मेलन ने इन आधारों का समर्थन कर लिया। विवाद को प्रारम्भ करते हुए सप्रू ने भारतीय संघ और अखण्ड भारत की मांग की । देशी रियासतों के राजाओं की ओर से बोलते हुए बीकानेर के राजा ने "संघ और "स्वशासक" के विचारों का समर्थन किया । जिन्ना और मोहम्मद शफी ने भी संघ और अधिराज्यों की समानता के विचार का समर्थन किया ।

11.17 प्रथम गोलमेज सम्मेलन का मूल्यांकन

प्रथम गोलमेज सम्मेलन की यही सबसे बड़ी उपलब्धि थी कि किसी भी अल्पमत ने स्वशासन की मांग का विरोध नहीं किया । सभी सत्ता हस्तान्तरण के पक्ष में थे और उत्तरदायी सरकार की स्थापना चाहते थे । इसकी दूसरी उपलब्धि यह भी थी कि "सामान्य हितों के लिये सामान्य विषय पर विचार करने हेतु भारतीय एक स्थान पर एकत्रित हुए ।"

सम्मेलन की सबसे दुखद असफलता साम्प्रदायिक प्रश्न पर थी । अल्पमत समिति इसका समाधान करने में असफल रही और इसी के कारण सम्मेलन असफल रहा। वस्तुत: सम्मेलन में प्रत्येक ने अपनी–अपनी हांकने की कोशिश की । बहुसंख्यक संयुक्त निर्वाचन प्रणाली के पक्ष में थे यद्यपि वे अल्पसंख्यकों के लिए स्थानों को सुरक्षित रखने के लिए तैयार थे। डॉ. अम्बेडकर ने दलित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग की । जिन्ना ने अपनी 14 मांगों पर बल दिया और सिक्ख सदस्य सरदार उज्जल सिंह अपने हितों के संरक्षण की मांग करने लगे । इस तरह अल्पसंख्यकों ने चेतावनी दी कि जब तक संविधान अल्प मतों के हितों की रक्षा नहीं करता और उनमें सुरक्षा की भावना पैदा नहीं करता तब तक उन्हें कोई संविधान स्वीकार नहीं होगा । अखण्ड भारत का जो स्वरूप सम्मेलन के प्रारम्भ मे उभरता हुआ नजर आ रहा था । वह डूबता हुआ नजर आने लगा । ऐसा होना स्वाभाविक भी था । क्योंकि साम्प्रदायिकता, जाति, वर्ग या हित के आधार पर मनोनीत किये गये सदस्यों से इससे अधिक अच्छे व्यवहार की आशा भी नहीं की जा सकती थी। डॉ ताराचन्द ने ठीक लिखा है "सम्मेलन का उद्देश्य भारत की एकता को प्रदर्शित करने के स्थान पर उसकी भिन्नताओं का प्रचार करना था।"

11.18 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन इंग्लैण्ड में 7 सितम्बर, 1931 को शुरू हुआ और 1 दिसम्बर, 1931 को समाप्त हुआ । प्रथम गोलमेज सम्मेलन की भांति द्वितीय गोलमेज सम्मेलन भी साम्प्रदायिक समस्या का समाधान न कर सकने के कारण असफल रहा। सम्मेलन में न केवल मुस्लिम सदस्यों का दृष्टिकोण अराष्ट्रीय और प्रतिक्रियावादी था, बल्कि सिक्खों, दलित वर्गो और अल्पसंख्यक वर्गों का दृष्टिकोण भी संकीर्ण और प्रतिक्रिया वादी था। मुस्लिम सदस्य पंजाब और

बंगाल में पूर्ण बहुमत चाहते थे, गुरुभार चाहते थे तथा केन्द्र में 173 प्रतिनिधि चाहते थे । सिख, मुसलमानों की भांति पंजाब में गुरुभार चाहते थे, यूरोपीय बंगाल में गुरुभार चाहते थे । डी. अम्बेडकर के नेतृत्व में दलित वर्ग पृथक निर्वाचन की मांग कर रहे थे, आदि। महात्मा गाँधी का दृष्टिकोण राष्ट्रीय था, परन्तु उनकी अपीलों का कोई प्रभाव नहीं था ।

सम्मेलन में कुल 107 सदस्यों ने भाग लिया, कांग्रेस की ओर से महात्मा गाँधी एक मात्र प्रतिनिधि थे । कांग्रेस को छोड़कर बाकी सभी भारतीय सदस्यों की नियुक्ति साम्प्रदायिक या वर्गीय आधारों पर की गई थी, वे भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे । सम्मेलन में लार्ड बर्किन हैड और सैमुअल होर जैसे उन ब्रिटिश प्रतिनिधियों को लिया गया था । जो या तो साम्राज्यवादी या कांग्रेस विरोधी दृष्टिकोण अपनाते थे । सम्मेलन में उन ब्रिटिश राजनीतिक को नहीं लिया गया । जो भारत के प्रति उदार या सद्भावना की नीति अपनाते थे । गाँधी इरविन समझौते और द्वितीय गोल मेज सम्मेलन के बीच कुछ घटनायें ऐसी हुई जिन्होंने वातावरण को बदल दिया । लार्ड इरविन की जगह लार्ड विलिंगटन को वाइसराय बना दिया गया । लार्ड विलिंगटन पक्का प्रतिक्रियावादी था । और उसने सरकार की शोषण की नीति को फिर से पुन: जागृत कर दिया। इंग्लैण्ड में भी जब द्वितीय गोलमेज सम्मेलन हो रही थी आम चुनाव हुए और नवम्बर 1936 को कंजरवेटिव पार्टी सत्ता में आ गयी । इससे पूरा वातावरण ही बदल गया। कन्जरवेटिव सरकार भारत को भी प्रकार की सुविधा देने के लिए तैयार नहीं थी । गाँधी जी दिसम्बर, 1931 में निराश भारत लौटे। उन्होंने देखा कि ब्रिटिश सरकार ने शोषण की नीति को फिर से शुरू कर दिया । अत सम्मेलन असफल रहा ।

11.19 तृतीय गोलमेज सम्मेलन

तृतीय गोलमेज सम्मेलन इंग्लैंड में 17 नवम्बर से 24 दिसम्बर 1932 तक हुआ। यह सम्मेलन प्रथम दो सम्मेलनों की तुलना में आकार में बहुत छोटा और कार्यवाही में निर्जीव था वस्तुत यह सम्मेलन केवल दिखावा मात्र था । कांग्रेस ने इसमें भाग नहीं लिया था । ब्रिटिश श्रमिक दलों ने इसमें भाग लेने से इंकार कर दिया था। क्योंकि सरकार को बेजबूड़ बेन और ली स्मिथ इसके प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार नहीं थे । भारतीय नरेशों की रूचि इसमें नहीं थी । यही कारण है कि इसमें नरेशों के स्थान पर उनके मंत्रियों या अधिकारियों ने भाग लिया ।

सम्मेलन के समक्ष विचार के लिए कोई मूलभूत प्रश्न नहीं थे । इसलिए इसकी कार्यवाही में कोई जान नहीं थी। सम्मेलन में केवल उन्हीं बातों की पुष्टि की गई जिन पर निर्णय प्रथम व द्वितीय सम्मेलन में किए गये थे। इस तरह से यह सम्मेलन ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति वफादारी का सम्मेलन सिद्ध हुआ ।

11.20 सारांश

गाँधी जी ने 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के माध्यम से कांग्रेस आन्दोलन को वास्तविक जन आन्दोलन में बदल दिया। उन्होंने भारतीय जनता में राष्ट्रीय चेतना पैदा कर दी । कांग्रेस को वास्तविक क्रान्तिकारी संस्था में परिवर्तित कर दिया गया। गाँधी जी के इस आन्दोलन के द्वारा भारतीय जनता में स्वतन्त्रता प्राप्ति की तीव्र इच्छा पैदा हुई और इसे प्राप्त करने के लिए जनता ने दृढ़ निश्चय कर लिया । कांग्रेस राष्ट्रीय आन्दोलन का चरम बिन्दु 1930 में पहुंच चुका था। चारों तरफ वातावरण में आशावाद और आत्म विश्वास भर गया था । जनता के सम्मुख

भारत की स्वतंत्रता में आने वाली बाधाओं की जानकारी बड़ी आसानी से समझ में आ गई थी और उन्हें लगने लगा था कि भारत की सब समस्याओं के लिए ब्रिटिश शासन जिम्मेवार है । जो भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होते ही दूर हो जायेंगे ।

11.21 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कारण एवं महत्व का परीक्षण करें ।
2. गाँधी आन्दोलन में 1930 का आन्दोलन कांग्रेस आन्दोलन का चरम बिन्दु था। इस मत पर अपने विचार प्रकट कीजिए?
3. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए –
   (i) गाँधी–इरविन समझौता
   (ii) दण्डी यात्रा
   (iii) गोलमेज सम्मेलन

11.22 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. Bose, Subhash Chandra	:	The Indian Struggle
2. कश्यप, सुभाष	:	संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष
3. Tara Chand	:	History of the Freedom Movement in India
4. Lumby, E. W.R.	:	The transfer of Power in India
5. Dr. Pattabhi Sitaramayya	:	History of India: National Congress
6. Singh, G.N.	:	Land marks in Indian Constitutional and National Movement
7. Zacharia	:	Renascent India.

इकाई – 12

कांग्रेस समाजवादियों का उत्थान एवं विकास रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 कांग्रेस समाजवादी आन्दोलन के उत्थान के कारण
12.3 कांग्रेस समाजवादी विचारधारा के उद्देश्य व कार्यक्रम
12.4 समाजवादी विचारधारा की श्रेणियां
12.5 कांग्रेस समाजवादियों का योगदान
12.6 कांग्रेस समाजवादियों का विकास
12.7 समाजवादी आन्दोलन का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता आन्दोलन के क्षेत्र में प्रभाव
12.8 सारांश
12.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
12.10 संदर्भ ग्रंथों की सूची

12.0 उद्देश्य

इस अध्याय में आप अध्ययन करेंगे –

- 19वी शताब्दी के अन्तर्गत भारत में आर्थिक एवं सामाजिक पुनर्निर्माण के क्षेत्र में समाजवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ ।
- 1920 ई. के बाद की राजनीतिक घटनाओं ने भारत में वामपंथी विचारधारा के समर्थकों को यह विश्वास करने के लिए बाध्य किया कि वे शुद्ध राष्ट्रवाद एक संकुचित एवं अपर्याप्त विचारधारा अथवा आन्दोलन है तथा राजनीतिक स्वतंत्रता आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में अर्थहीन है ।
- भारत में समाजवादी आन्दोलन किन परिस्थितियों में हुआ जिसके परिणामस्वरूप भारत में समाजवादी कांग्रेस की स्थापना हुयी ।
- समाजवादी आन्दोलन की स्थापना के क्या उद्देश्य एवं नीतियां निर्धारित की गयी, जिसके आधार पर भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के क्षेत्र में इस दल ने अपने उद्देश्य के अनुरूप गतिविधियां की ।
- भारत में समाजवादी आन्दोलन में अरविन्द, तिलक, लाला लाजपत राय, चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं का सक्रिय योगदान रहा और भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में इसकी अहम भूमिका रही ।
- इस आन्दोलन की कार्यप्रणाली एवं आन्दोलनात्मक गतिविधियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस अध्याय में आप करेंगे ।
- समाजवादी आन्दोलन का भारतीय स्वतंत्रता के क्षेत्र में क्या प्रभाव हुआ, जिससे 1947 ई. में भारत की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त हुआ।

12.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारत के इतिहास एवं स्वतंत्रता आन्दोलन के संदर्भ में मई 1934 ई. में कांग्रेस के समाजवादी दल की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी । प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत में जो राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुयी उन परिस्थितियाँ में भारत में सर्वप्रथम वामपंथी विचारधारा का विकास हुआ। इस विचारधारा का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांसीसी क्रांति के समय किया गया था। इसका तात्पर्य है राजा के विरोधी विचार रखने वाले विचारक। अत: भारत में भी 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध वामपंथियों का उद्भव हुआ जिसमें समाजवाद व साम्यवाद के उत्थान के पश्चात् वामपंथी शब्द का प्रयोग किया जाने लगा।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह माना जाता है कि भारत में वामपंथी आन्दोलन की दो मुख्य धाराएँ विकसित हुयी थी – (1) कांग्रेस सोशलिस्ट दल (2) साम्यवादी दल। ये दोनों आन्दोलन भारत में साम्राज्यवाद और अंग्रेजी सरकार विरोधी विचारधारा से जुड़े हुए थे । इन्होंने भारत की स्वतंत्रता के उद्देश्य से रचनात्मक एवं आन्दोलनात्मक गतिविधियां की जिससे भारतीय स्वतंत्रता के क्षेत्र में सक्रिय योगदान मिला।

12.2 कांग्रेस समाजवादी आन्दोलन के उत्थान के कारण

भारत में समाजवादी आन्दोलन के उत्थान में, भारत में विद्यमान विभिन्न आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों एवं भारत में नेतृत्व के उद्भव के कारण प्रोत्साहन मिला । इस दृष्टि से निमांकित परिस्थितियों के कारण कांग्रेस समाजवादी दल का उदय हुआ :

1. भारत में प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अर्थव्यवस्था काफी अव्यवस्थित हो गयी थी । अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में – कृषि, व्यापार, उद्योग के अन्तर्गत असन्तुलन एवं अव्यवस्था की स्थिति बन गयी थी। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में आर्थिक स्थिति काफी शोचनीय बन गयी थी । भारतवासियों का जीवन स्तर निम्न हो गया था । उन्हें दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ मुख्यत: भोजन की प्राप्ति संतोषजनक रूप में प्राप्त नहीं हो पा रही थी । यदि उपभोग की वस्तुएं मिलती थी तो उनके दाम काफी ऊंचे होते थे । जो कि जनसाधारण के सामर्थ्य की बात नहीं थी । इससे भारतीयों में आर्थिक असन्तोष बढ़ा । इस कठिनाईपूर्ण स्थिति का विशेषकर व्यापारियों व साहूकारों ने लाभ उठाया क्योंकि उन्होंने जनता के साथ बेईमानी व चोरी का बर्ताव किया अर्थात उन्हें माल होते हुए भी उपलब्ध नहीं करवाया एवं ऊंचे भाव में बेचा । उन्हें ऊंची ब्याज दरों पर पैसा ऋण के रूप में प्रदान किया। इससे भारत में जो अव्यवस्था की स्थिति बनी उस वातावरण में ब्रिटिश सरकार के द्वारा किसी प्रकार की व्यवस्था संबंधी नीति एवं राहत कार्य नहीं किया गया जिससे अंग्रेजी सरकार का साम्राज्यवाद व पूंजीवाद का स्वरूप भारतीय जनता के समक्ष स्पष्ट हो गया । इस स्थिति से असन्तुष्ट होकर भारतीयों में समाजवादी कांग्रेस दल की स्थापना को प्रोत्साहन मिला ।
2. भारत में कांग्रेस समाजवादियों की स्थापना के क्षेत्र में 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति का भी प्रेरणा के रूप में सक्रिय योगदान रहा । भारत में समाजवादी दल के समर्थक यह महसूस करने लगे कि भारत में जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अव्यवस्था की स्थिति विद्यमान थी और इन परिस्थितियों के विरुद्ध फ्रांसीसियों ने संगठित होकर फ्रांसीसी सरकार के विरुद्ध क्रांति प्रारम्भ की थी और उन्होंने सफलता प्राप्त कर फ्रांस में समाजवाद की

स्थापना की थी । अत क्यों नहीं भारत में समाजवादी दल की स्थापना कर भारत में स्वतंत्रता प्राप्त की जाए । अत: उक्त प्रेरणापूर्ण परिस्थिति के कारण भी भारत में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुयी ।

3. भारत में अंग्रेजी सरकार की साम्राज्यवादी, आर्थिक, सामाजिक दोष पूर्ण नीतियों के कारण जो अव्यवस्थित स्थिति विद्यमान थी, उस वातावरण में यद्यपि भारतीय इस स्थिति से असन्तुष्ट एवं अंग्रेजी सरकार विरोधी थे, लेकिन उन्हें नेतृत्व कांग्रेस समाजवादी दल के कारण प्राप्त हुआ । इस दल की स्थापना में रूस की राज्य क्रांति 1917 ई. की प्रेरणा स्वरूप भी योगदान प्राप्त हुआ। क्योंकि रूस में जब साम्यवादी सरकार अस्तित्व में आई उस परिस्थिति को भारत में भारतीयों ने महसूस किया । सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों को भारत में बुद्धिजीवियों, राजनैतिक नेताओं, आतंकवादियों और श्रमिकों आदि ने समझा और उन्होंने इन परिस्थितियों में वामपंथी आन्दोलन के अन्तर्गत समाजवादी कांग्रेस दल की स्थापना की ।
4. कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना में अन्य परिस्थिति इस रूप में संभव हुयी कि भारत में महात्मा.गाँधी जी के स्वदेशी और स्वराज्य के नारे ने इस विचारधारा को प्रोत्साहित किया । इस विचार को भारत के हर क्षेत्र में सर्वव्याप्त रूप में भारतीय जनता तक पहुंचाने में सहयोग मिला, जिससे राजनीतिक आन्दोलन को एक नवीन रूप प्रदान किया, जिससे कांग्रेस समाजवादी दल के उदय को प्रोत्साहन मिला ।
5. भारत में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना में इस परिस्थितिवश भी योगदान मिला कि भारत में शिक्षित मध्यवर्ग का वह वर्ग जो अब अंग्रेजों की उदारवादी नीति में अविश्वास करने लगा था जिन्हें अब बेरोजगारी, भुखमरी की स्थिति का सामना करना पड़ा था वह वर्ग अब ब्रिटिश विरोधी नीति में विश्वास रखने लगा और उन्होंने भारत में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना करना अपना उद्देश्य समझा। यह वर्ग आतंकवाद, समाजवादी विचारधारा की ओर आकर्षित बे गया।
6. भारत में गांधीवादी युग में कांग्रेस का एक वर्ग ऐसा था जो कि गांधीजी की अहिंसावादी नीति, विचारों से असन्तुष्ट था । इसके अतिरिक्त यह वर्ग गांधीजी के क्षीण और तरल सुधारवाद से भी असन्तुष्ट था । क्योंकि यह वर्ग इन नीतियों को भारत में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध आन्दोलन एवं उसके विकास में बाधक मानता था । अत : इस अतिवादी वर्ग ने भारत में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना को महत्व प्रदान किया ।
7. भारत में मजदूर, किसान, व बेरोजगार लोग अंग्रेजी सरकार की नीति के विरुद्ध थे क्योंकि उनके सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने, उन्हें रोजगार व जीवन निर्वाह के साधन उपलब्ध करवाने में सरकार असफल रही । इससे उनमें सरकार के विरुद्ध असन्तोष व्याप्त था । इस परिस्थिति में उन्होंने भारत में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की ।
8. इस दल की स्थापना में दलीय समर्थन पूर्ण नेताओं का सक्रिय योगदान रहा । इस दृष्टि से लाला लाजपतराय पहले व्यक्ति थे जिन्होंने समाजवाद के विषय में लिखा था। जुलाई 1931 ई में जयप्रकाश नारायण, फूलन प्रसाद वर्मा तथा अन्य लोगों, ने बिहार में

समाजवादी दल की नींव रक्खी थी। 1933 ई में पंजाब में समाजवादी दल बना था और 1934 ई में विधिवत् अखिल भारतीय कांग्रेसी समाजवादी दल का गठन आ।

12.3 कांग्रेस समाजवादी विचारधारा के उद्देश्य व कार्यक्रम

1934 ई में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुयी थी । इस समय समान विचारधारा रखने वाले विभिन्न सदस्य पटना और बम्बई में एकत्रित हुए थे । इस दल का मुख्य सचिव जयप्रकाश नारायण को बनाया गया था। इस दल में आचार्य नरेन्द्र देव, डी. राम मनोहर लोहिया, कमला देवी चट्टोपाध्याय, युसूफ मेहरअली, सुन्दरेया नम्बूदरीपाद, एम एम. जोशी, मीनू मसानी तथा राममूर्ति अन्य सदस्य थे। यद्यपि नम्बूदरीपाद, राममूर्ति तथा सुन्दरेया कुछ समय बाद समाजवादी दल को छोड़कर साम्यवादी दल में सम्मिलित हो गए थे तथापि उनके जयप्रकाश नारायण के साथ सोहार्दपूर्ण संबंध बने रहे ।

1934 ई. में बम्बई में, समाजवादी दल ने अपनी प्रथम सभा में 15 सूत्रीय कार्यक्रम बनाया था । इस कार्यक्रम की निमांकित बाते निश्चित की गयी।

1. कार्यक्रम के तहत् यह निश्चय किया गया कि है। इस ऋण अनुपयोगी एवं अनुचित है । इस ऋण की सदस्यों द्वारा निन्दा की गयी ।
2. कार्यक्रम में यह व्यवस्था की गयी कि उत्पादन के क्षेत्र में जो मजदूर एवं श्रमिक कार्य कर रहे है, उनके हाथ में शक्तियां दीजिए ।
3. राज्य द्वारा योजना के आधार पर देश के आर्थिक जीवन का विकास किया जाए तथा विदेशी व्यापार पर राज्य का एकाधिकार स्थापित किया जाना चाहिए।
4. कृषि के संबंध में यह कार्यक्रम निश्चित किया गया कि कृषि कार्य सहयोग व सामूहिक रूप में किया जाना चाहिए ।
5. उत्पादन के लिए सहयोग समितियां बनायी जानी चाहिए ।
6. कांग्रेस समाजवादी विचारधारा का उद्देश्य कांग्रेस में नया जीवन और जोश उत्पन्न करना था।
7. इस दल के समर्थकों ने कांग्रेस के नेताओं को विश्वास दिलाया कि राष्ट्रीय संघर्ष को सफलतापूर्वक चलाने के लिए आवश्यक है कि आन्दोलन का आधार मजदूरों और किसानों को नहले से अधिक क्रियात्मक भाग लेने की प्रेरणा देकर विस्तृत किया जाए ।
8. समाजवादी दल ने भारतीय जनता को अपने उद्देश्य में यह विश्वास दिलाया कि यह दल जनता के जीवन स्तर और कार्य की स्थिति में सुधार हेतु जो संघर्ष कर रहा है वह औपनिवेशिक दासता से मुक्ति पाने के राजनीतिक संघर्ष का एक अंग मात्र है ।
9. कांग्रेस समाजवादी दल ने इस बात का भी निरन्तर रूप में प्रयास करने का उद्देश्य बनाया कि कांग्रेस उच्च कमान को यह नीति स्पष्ट करें कि आन्दोलन का आधार तभी सफल होगा जबकि कांग्रेस समाज में विद्यमान विषय सामाजिक व आर्थिक दोषों को दूर करके जनता की प्रगति में सहयोग करें ।
10. कांग्रेस समाजवादी दल कांग्रेस का प्रतिद्वंदी राजनैतिक संगठन नहीं था । इसका गठन कांग्रेस के भीतर, कार्य करने, उसे सुदृढ़ बनाने और इसकी नीतियों को आकार देने के लिए किया गया था ।

12.4 समाजवादी विचारधारा की श्रेणियाँ

भारत में ऐतिहासिक दृष्टि से समाजवादी आन्दोलन का श्रीगणेश मई 1934 ई. से हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुयी थी । इस दल की स्थापना भारत में समाजवाद के संगठनात्मक विकास में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं सामाजिक घटना का स्वरूप थी । इसकी स्थापना का ही परिणाम था कि भारत में सभी प्रान्तीय समाजवादी संगठनों और गुटों को अखिल भारतीय स्तर का आधार तथा मंच प्राप्त हुआ । समाजवादियों का प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन 17 मई 1934 ई. को पटना में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में हुआ था । इसके यद्यपि दस समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण, डी. लोहिया, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्धन, एम आर मसानी, कमला देवी चट्टोपाध्याय, पुरूषोतम विक्रमदास, युसुफ मेहर अली तथा गंगाशरण सिंह थे, जो कि समाजवादी आन्दोलन के स्तम्भ माने जाते थे तथा अत्यन्त ही योग्य, नवयुवक, उत्तर भारत के कांग्रेसी और मुख्यत: शहरी मध्यमवर्ग के राजनीतिज्ञ थे, जिनमें से अधिकांश ने अपनी राजनीतिक विचारधारा के कारण परिवार या विवाह तक का त्याग कर दिया था तथापि इन नेताओं को. तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है ।

1. प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत वे समाजवादी नेता सम्मिलित थे जो मार्क्सवादी विचार अर्थात प्रवृति के थे जिनमें जय प्रकाश नारायण एवं आचार्य नरेन्द्र देव प्रमुख एवं उल्लेखनीय नेता माने जाते है।
2. दूसरी श्रेणी में इस प्रकार की प्रवृति के समाजवादी नेता सम्मिलित थे जो अंग्रेजी मजदूर दल सरीखे सामाजिक लोकतंत्रवादी थे । इनमें एम आर. मसानी और अशोक मेहता के नाम प्रमुख रूप से माने जाते है ।
3. तृतीय श्रेणी के समाजवादी नेता वे विचारक हुए जो कि लोकतन्त्रात्मक समाजवादी प्रवृति के थे। इन नेताओं में – अच्युत पटवर्धन तथा राममनोहर लोहिया के नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय है । इन विचारकों पर गांधी जी कि विकेन्द्रीकरण सिद्धान्त तथा सविनय अवज्ञा के राष्ट्रवादी आन्दोलन और वर्ग संघर्ष का प्रभाव था ।

इस प्रकार भारत के कांग्रेस समाजवादी दल में उक्त श्रेणी के नेता पं विचारक सम्मिलित थे । इन श्रेणीगत नेताओं की स्पष्ट, परिभाषित विचारधारा नहीं थी । अधिकांश नेता अमार्क्सवादी थे। इनमें अधिक प्रभावशाली वे लोग थे जो मार्क्सवादी थे एवं उनके विचारों के नेताओं का बहुमत और सदस्यों का समूह अनुसरण करता था । इन नेताओं के अनेक परस्पर मतभेदों के होते हुए भी संगठन संबंधी समस्याओं में, सैद्धान्तिक भेदभाव को एकता के हित में सुलझा लिया गया था। इसी प्रकार राष्ट्रीयता के प्रति निष्ठा के विषय में सभी श्रेणी के समाजवादी नेताओं में एकरूपता एवं समानता विद्यमान थी । उनमें जो व्यक्तिगत मित्रता के संबंध में बने हुए थे उसके परिणाम स्वरूप वे विभिन्न मामलों में एक मत व विचारधारा के थे कांग्रेस समाजवादी विचारधारा को सक्रिय बनाने में सहयोगी रहे ।

12.5 कांग्रेस समाजवादियों का योगदान

भारत में कांग्रेस समाजवादी दल में जो समाजवादी नेता हुए उनका इस आन्दोलन को संगठित करने, उसे क्रियान्वित रूप प्रदान करने में सक्रिय योगदान रहा । उनकी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका रही ।

यद्यपि 1920 ई से भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में समाजवादियों की संगठित एवं सक्रिय भूमिका मानी जाती है तथापि इसके पूर्व ऐतिहासिक स्वरूप को देखें तो स्पष्ट होगा कि समाजवादियों का अति प्राचीनकाल से समाजवादी चिन्तन का स्वरूप रहा है! इस दृष्टि से 'ऋग्वेद, "धम्मपद" में मानवता, एकता, भ्रातृत्व और आध्यात्मिक समानता के सिद्धांतों के दर्शन होते है आधुनिक रूप में भारतीय समाजवादी चिन्तन बीसवीं शताब्दी की देन मानी जाती है । भारत में आधुनिक समाजवाद के उदयचिन्ह को यदि हम आधार बनाये तो यह स्पष्ट होता है कि समाजवादी तत्वों का प्रथम दर्शन हमें अरविन्द के उन सात लेखों से होता है, जिन्हें 1893 ई. में उन्होंने 'इन्द्रप्रकाश' नामक पत्र में "पुरानों के बदले नवीन दीप" शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित कराया था। इन लेखों में अरविन्द ने कांग्रेस की मध्यमवर्गीय मनोवृति की आलोचना करते हुए सर्वहारा वर्ग की स्थिति को सुधारने का आग्रह किया था। 1908 ई में तिलक ने भी केसरी नामक समाचार पत्रिका में लेख प्रकाशित कर रूस के सर्वखण्डनवादियों की चर्चा की थी ।

लाला लाजपतराय भी प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने समाजवाद और बोल्शेविकवाद के विषय में स्पष्ट रूप में लिखा । उनका इस विचार धारा के सम्बंध में कोई सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण नही था तथापि अपनी पुस्तकों में उन्होंने कांग्रेस पर पूंजीपति आधिपत्य की कटु आलोचना गई । 1920 ई. में इण्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन का सभापतित्व भी लाला लाजपतराय ने किया था । एम एन. राय ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बुर्जुवा वर्ग द्वारा संचालन की आलोचना की थी । चितरंजनदास 1917 ई. की रूसी क्रांति से प्रभावित अवश्य हुए थे तथापि क्रांति के प्रति उनमें कोई सहानुभूति पूर्ण आकर्षण नही था। उन्होंने भारत के ट्रेड यूनियन आन्दोलन के संबंधों में काफी सहायता पहुंचाई।

भारत में समाजवादी चिन्तन को प्रोत्साहन देने में पण्डित मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू का भी सक्रिय योगदान रहा । 1926 ई. में उन्होंने सोवियत संघ की यात्रा की थी । जवाहरलाल नेहरू जी ने "सोवियत एशिया" नामक अपनी एक लघु पुस्तिका में रूस की तत्कालीन उपलब्धियों का प्रशंसात्मक चित्र खींचा तथा विश्व इतिहास की झलक एवं "आत्मकथा" में कार्लमार्क्स की वैज्ञानिक एवं आर्थिक पद्धति की भारी प्रशंसा की । इन पुस्तकों के माध्यम से आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था की मार्क्सवादी व्याख्या पर जवाहरलाल नेहरू के विचारों के उल्लेख मिलता है ।

1934 ई. में जिस वास्तविक कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुयी उसके नेताओं का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता के विकास में अग्रणीय योगदान माना जाता है ।

इस दृष्टि से आचार्य नरेन्द्र देव ने राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रीयता को आवश्यक तत्व माना । उन्होंने कहा कि उग्र राष्ट्रवादी विनाशकारी युद्धों का जनक है जबकि समाजवादी राष्ट्रवाद मानवीय स्वाधीनता का पोषक है । उन्होंने सहकारिता लागू करने की प्रेरणा प्रदान की । भारत के आर्थिक नियोजन के संबंध में उन्होंने कहा कि भूमि की उत्पादन शक्ति को बढ़ाया जाना चाहिए और सहकारी आधार पर संगठित किया जाना चाहिए । उनका विचार था कि समस्त ऋणों को

समाप्त कर दिया जाना चाहिए और किसानों के लाभ के लिए कम ब्याज पर धन देने की व्यवस्था की जानी चाहिए । इससे स्पष्ट है कि नरेन्द्र देव ने कृषि प्रधान भारत की समस्याओं को रचनात्मक योजनाओं द्वारा कम करने की योजना प्रस्तुत की थी । उनका समाजवाद इस विचारधारा पर आधारित था कि जिसमें एक साथ समानता, स्वतंत्रता एवं भातृत्व के सिद्धान्तों को साकार किया जाना था। आचार्य नरेन्द्र देव देश के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर भी सहयोग, शान्ति और सुरक्षा के पोषक थे । उनके समाजवाद में निरपेक्ष राजनीति प्रमुख आधार थी ।

उन्होंने भारत में समाजवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच परस्पर संबंध स्थापित करने का सफल प्रयास भी किया था। उनका मत था कि समाजवादियों को राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में सम्मिलित होना चाहिए उनका यह विचार था कि यदि समाजवादियों ने अपने आप को देश में चल रहे, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में पृथक रक्खा तो उनका यह कार्य आत्महत्या के समान होगा।

आचार्य नरेन्द्र देव जार्ज सॉरल के "आमहड़ताल" के श्रमसंघवादी सिद्धांत से भी प्रभावित थे और आम हड़ताल को भावात्मक विचारधारात्मक तथा राजनीतिक दोनों ही दृष्टियों से फलदायक मानते थे । उनका इस संबंध में यह विचार था कि यदि आम हडताल की जाएगी उनके परिणामस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था ठप्प होगी जिस स्थिति में विदेशी शक्ति अंग्रेज भारत छोड़कर स्वदेश लौटने को मजबूर होंगे । दूसरे उनका मानना था कि जनता के असीम शक्ति का उदय होगा जो सामाजिक क्रांति की भूमिका का कार्य करेगी । नरेन्द्र देव ने यह विश्वास प्रकट किया था कि श्रमिक अपने राजनीतिक प्रभाव की उसी स्थिति में वृद्धिशील कर सकते है जबकि वे राष्ट्रीय संघर्ष में आम हड़ताल का सहारा लेकर निम्न मध्यम वर्ग को हड़ताल की क्रांतिकारी सम्भावना से अवगत करवाये ।

जयप्रकाश नारायण का कांग्रेस समाजवादी आन्दोलन के क्षेत्र में सक्रिय योगदान एवं भूमिका रही। उन्होंने जुलाई 1931 ई. में ही बिहार में समाजवादी दल की नींव रक्खी थी। जयप्रकाश नारायण को दल का मुख्य सचिव बनाया गया था। जयप्रकाश नारायण ने लोगों को इस बात की ओर जागृत किया कि भारत में गांधीवाद का अन्त हो चुका है, यह हमें आगे नहीं बढ़ने देगा अतः हमें आगे बढ़ने के लिए समाजवाद के सिद्धांतों से सहायता लेनी चाहिए । जयप्रकाश, गांधीजी के सिद्धांतों से सहमत नही थे । लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के समय सरकार का विरोध करने के लिए कांग्रेस के नेताओं के आपस के संबंध अच्छे बन गए थे। भारत छोड़ो आन्दोलन के समय दोनों दलों ने परस्पर रूप में अंग्रेजी सरकार का विरोध किया था। जय प्रकाश नारायण और उनके साथी रामनन्दन मिश्रा आदि साहस पूर्ण तरीकों से 8 नवम्बर 1942 ई में हजारी बाग जेल से भाग निकले थे। वे स्वतंत्रता सेनानियों के साथ मिलकर संघर्ष करने लगे । जयप्रकाश नारायण ने घोषणा की कि केवल शस्त्रों से ही युद्ध में सफलता मिल सकती है । उन्होंने बिहार के अतिरिक्त नेपाल में भी कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की । जयप्रकाश नारायण को ब्रिटिश सरकार के सैनिकों द्वारा बन्दी बना लिया गया था। 11 अप्रैल 1946 ई में वे जेल से रिहा हुए । महात्मा गांधी ने उनका नाम कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त करने हेतु प्रस्तावित किया था लेकिन कार्यसमिति को यह प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं था । जयप्रकाश नारायण ने केबिनेट मिशन योजना का विरोध किया । उन्होंने व उनके साथियों ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध क्रांति करने की नीति को प्रोत्साहित किया । उनका यह मत था कि यदि भारतीय संवैधानिक

सभा द्वारा जो संविधान की रूप रेखा तैयार की गयी है उसे अंग्रेजी सरकार स्वीकार नहीं करेगी तो देश में निरन्तर आन्दोलनात्मक गतिविधियां बनी रहेगी । परिणामस्वरूप स्वतंत्रता प्राप्ति तक जयप्रकाश नारायण की क्रांतिकारी पूर्ण गतिविधियां निरन्तर रूप में बनी रही ।

जय प्रकाश नारायण ने गांधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्तों का विरोध किया। जयप्रकाश जो कि भारतीय समाजवाद के प्रमुख नेता, प्रचारक व प्रवक्ता रहे उन्होंने भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना, उसके कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने में अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया था । समाजवादी होने के कारण जयप्रकाश नारायण ने इस बात को स्पष्ट किया कि सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में व्याप्त असमानता का मुख्य कारण यह है कि कुछ लोगों का उत्पादन के साधनों पर बहुत अधिक नियंत्रण है और बहुसंख्यक लोग उनसे वंचित है। इस हेतु उनका यह मानना था कि समाज ऐसी व्यवस्था करे, जिससे मनुष्य की शक्ति और क्षमताओं को निकल करने वाली आर्थिक कठिनाईयों दूर हो सके। वे सामाजिक व आर्थिक समानता के समर्थक थे । उनका मानना था कि समाजवाद व्यापक नियोजन का सिद्धांत तथा कार्य प्रणाली है, उनमें समाज के सभी पहलुओं के प्राविधिक पुनर्निर्माण की धारणा निहित है। उनका मानना था कि समाजवाद की स्थापना उत्पादन के साधनों का समाजीकरण करके ही की जा सकती है । समाजवाद ही विशाल जनसमुदाय के आर्थिक शोषण की क्रूर प्रक्रिया का अन्त कर सकता है । वे भूमिकर को घटाने, व्यय को कम करने तथा उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में थे । उनका मानना था कि जनता के शोषण का अन्त करने हेतु यह आवश्यक है कि राजनीतिक और आर्थिक जीमन पर नियंत्रण स्थापित किया जाए । उनका यह मानना था कि समाज ही भारत की स्वाधीनता का आधार बन सकता है । 1940 ई में उन्होंने रामगढ़ कांग्रेस में एक प्रस्ताव रखा, जिसका अर्थ यह था कि वृहत उत्पादन संस्थानों पर सामूहिक स्वामित्व तथा नियंत्रण स्थापित किया जाय । उनका यह मानना था कि भारी परिवहन, जहाजरानी, खनन तथा भारी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाए।

जय प्रकाश नारायण ग्राम जीवन के पुनर्संगठन के पक्ष में थे । वे चाहते थे कि गांवों को स्वायत्त तथा स्वालम्बी इकाईयां बनाया जाय। इसके लिए भूमि संबंधी कानूनों में सुधार करने की आवश्यकता थी । भूमि पर वास्तविक किसान का स्वामित्व होना चाहिए । उन्होंने सहकारी खेती का समर्थन किया । इस प्रकार जय प्रकाश नारायण ने समाजवादी आन्दोलन को कांग्रेस के झंडे के नीचे चल रहे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ सम्बद्ध कर दिया था।

इसी प्रकार राम मनोहर लोहिया भी समाजवादी विचारों के उग्र तथा कट्टर प्रचारक थे । भारत के समाजवादी आन्दोलन की प्रगति में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा । लोहिया जी की वास्तविक गतिविधियां 1952 ई. के पश्चात् से प्रमुख रूप में रही जबकि उन्होंने 1952 ई. में कांग्रेस समाजवादी दल के अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि समाजवादी चिन्तन में गांधीवादी विचारों को और अधिक अंश में सम्मिलित किया जाए । वे कुटीर उद्योगों पर आधारित विकेन्द्रीकृत अर्थतंत्र के पक्ष में थे ।

लोहिया ने भारत की पर राष्ट्र नीति की खुलकर आलोचना की थी । उन्हें नेहरू की गुट निरपेक्षता नीति में विश्वास नहीं था । लोहिया विकेन्द्रीकृत समाजवाद के समर्थक थे। उनका मानना था कि देश में छोटी मशीनें, सहकारी श्रम तथा ग्राम शासन होना चाहिए । उन्होंने समाजवादी चिन्तन की समस्याओं को एशियायी दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया था । वे चाहते थे कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन तथा स्वभाव की अभिव्यक्ति होनी चाहिए ।

इसी भांति अच्युत पटवर्धन, अरूणा आसफअली, सुचेता कृपलानी आदि नेता कांग्रेस कमेटी के अन्तर्गत लोकप्रिय विद्रोह को फैलाते रहे। अशोक मेहता ने इस विचार धारा को प्रतिपादित किया कि कांग्रेस की विचारधारा समाजवादियों के सिद्धांतों के समीप आ रही है । उन्होंने भारत में समाजवादी व्यवस्था को क्रियान्वित स्वरूप प्रदान करने में अपनी भूमिका अदा की । परिणाम स्वरूप भारत में कांग्रेस समाजवादी दल की भूमिका एवं योगदान निरन्तर रूप में वृद्धिशील हुआ जो कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी सक्रिय बना रहा।

12.6 कांग्रेस समाजवादियों का विकास

भारत में कांग्रेस समाजवादी दल एंव समाजवादियों के सक्रिय योगदान एवं प्रभावशाली गतिविधियों के फलस्वरूप उनका विकास भी प्रगतिशील आधार पर हुआ।

श्री पी एल. लखनपाल नामक विद्वान ने यह लिखा था कि कांग्रेस समाजवादी दल ने वास्तव में कांग्रेस के अन्दर और बाहर दोनों क्षेत्रों में सराहनीय कार्य किया। कांग्रेस के अन्दर अतिवादी विचारों के लोग इनसे सहायता प्राप्त करते थे। कांग्रेस के बाहर उन्होंने किसानों के आन्दोलन का संगठन किया। उनके व्यापार संघों और फैडरेशनों को एक सूत्र में बांधा। उन्होंने अन्य अतिवादी संस्थाओं की सहानुभूति और सहायता प्राप्त की । समाजवाद जो अब तक केवल बुद्धिजीवियों की बहस का विषय था, उसके महत्व में वृद्धि कर उसे सुदृढ़ बनाया।

भारत में समाजवादी चिन्तन का विकास जिस दृष्टि से हुआ वह यूरोपीय समाजवाद के संदर्भ में दो बातों में भिन्न था । भारत में समाजवाद का विकास सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण की एक योजना के रूप में ही नहीं हुआ तथापि वह क्रूर विदेशी साम्राज्य के बन्धनों से राजनीतिक मुक्ति की एक विचारधारा के रूप में विकसित हुआ । ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि 1900 ई. से 1947 ई. के काल में भारत की बुनियादी समस्या देश की स्वतंत्रता थी क्योंकि भारत विदेशी दासता, शोषण, अत्याचार से दबा हुआ था । इस स्थिति से प्रत्येक भारतवासी मुक्ति चाहता था । इस क्षेत्र में यद्यपि राष्ट्रिय आन्दोलन व स्वतंत्रता आन्दोलन की भूमिका रही तथापि समाजवादी आन्दोलन ने सक्रिय योगदान प्रदान कर उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सहयोग प्रदान किया । भारत में स्वतंत्रता प्राण करने हेतु सभी दल पक्ष में थे लेकिन कांग्रेस समाजवादी दल का विशेष आग्रह था ।

भारत में सामंतवाद 20वी शताब्दी के मध्य तक फलता–फूलता रहा। इस सामंतवाद पर प्रहार भारत में समाजवादी विचारकों ने किया । उन्हे पूंजीपतियों के भारी लाभ और ब्याज भूमिपतियों के लगान तथा भूमि से बिना परिश्रम के होने वाली आमदनी का भी विरोध किया ।

मार्च 1948 ई में नासिक की सभा में समाजवादियों ने कांग्रेस से अलग होने का निर्णय किया था। परिणाम स्वरूप समाजवादियों ने एक नई संस्था भारत का समाजवादी दल का निर्माण किया । इसी प्रकार कांग्रेस समाजवादी दल की विचारधारा में भी' उल्लेखनीय परिवर्तन हो गया। 1949 ई. की पटना सम्मेलन में समाजवादी दल ने लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद के बोल्शेविक सिद्धान्त के प्रति भक्ति का परित्याग कर दिया । इसके स्थान किसी समाजवादी दल ने इस बात पर जोर दिया कि सार्वभौम जन आधार प्राप्त करने के लिए वामपंथी विरोध दलों के साथ जो राष्ट्रवाद, समाजवाद, और लोकतंत्र में विश्वास थे, चुनाव समझौते, मेल मिलाप आदि करना तथा कभी–कभी उनके साथ विलीन होना आवश्यक था । समाजवादी दल द्वारा किसानों में रचनात्मक कार्य तथा संसदीय कार्य पर! जोर दिया जाने लगा ।

1949 ई. के बाद समाजवादी दल ने सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है और लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली का अनुसरण करने का प्रयास किया है ।

1952 ई. के आम चुनावों के पश्चात् समाजवादी दल और जे बी । कृपलानी की किसान मजदूर प्रजा पार्टी एक हो गए थे । प्रजा समाजवादी दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने 17 अक्टूबर 1959 ई. को 12 सूत्रीय कार्यक्रम बनाया । इस कार्यक्रम के अनुसार कारखानों और कृषि के उत्पादन को बढ़ाना, बराबर वितरण करना तथा प्रजातंत्र ' अधिकारों का विकेन्द्रीकरण करना था । 1977 ई. में समाजवादी दल जनता पार्टी में सम्मिलित हो गया । उन्होंने सरकार में भी भाग लिया । 1979 ई. में जनता दल के पतन के उनके कुछ सदस्य लोकदल में मिल गए ।

12.7 समाजवादी आन्दोलन का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता आन्दोलन के क्षेत्र में प्रभाव:

भारत में कांग्रेस समाजवादी दल की 1934 ई. में वास्तविक आधार स्थापना के पश्चात् समाजवादियों की जो सक्रिय व उल्लेखनीय गतिविधियां रही उनके विभिन्न राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक संगठनों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला। इस क्षेत्र में अखिल भारतीय किसान सभा, श्रमसंघीय आन्दोलन, युवक संघ तथा भारतीय स्वतंत्रता संघ आदि संगठनों को समाजवादी विचारधारा ने उत्प्रेरित किया । इस स्थिति में भारत में जो अंग्रेजी सरकार की नीतियाँ, शोषण, अत्याचार, परतंत्रता के विरूद्ध विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे थे, जिनका प्रमुख लक्ष्य भारत के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करना था, उसमें समाजवादियों ने अपना सक्रिय योगदान दिया ।

कांग्रेस समाजवादी दल ने 1935 ई. के अधिनियम को जन विरोधी माना और साम्राज्यवादी तथा राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी शक्तियों का संगठन कहा । परिणामस्वरूप इस अधिनियम के विरुद्ध देश में जनता का जो, असन्तोष व विद्रोह राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध बढ़ रहा था, उस आन्दोलन को उग्र बनाने एवं सरकार पर दबाव डालने में इस दल की गतिविधियां एवं प्रतिक्रिया का प्रभाव पड़ा ।

इसी प्रकार 1937 ई. में कांग्रेस के मंत्रिमण्डलों को बनाने की योजना बनाई जा रही थी उसका भी कांग्रेस समाजवादी दल ने विरोध किया । परिणामस्वरूप संवैधानिक विकास एवं स्वतंत्रता के क्षेत्र में नवीन मार्ग को बल मिला । 1936 ई. में समाजवादियों के दबाव व प्रभाव के कारण राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपनी चुनाव घोषणा में जनता की सामाजिक और आर्थिक कठिनाईयों को दूर करने का निश्चय किया था ।

कांग्रेस समाजवादी दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की इस नीति एवं विचार से भी सहमत नहीं था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के समय ब्रिटिश सरकार को सशर्त सहायता प्रदान की जाए। क्योंकि समाजवादियों का यह मानना था कि यह युद्ध जो कि विपिन विदेशी शक्तियों के मध्य लड़ा जा रहा है उसका उद्देश्य विश्व का पुन: विभाजित करना है। इसी का परिणाम था कि भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार को सहायता प्रदान करते समय कूटनीतिक नीति का पालन किया । समाजवादी दल की गतिविधियों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय कांग्रेस ने क्रांतिकारी सार्वजनिक संघर्ष प्रारम्भ किया । इसी प्रकार भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ किया, जिसमें समाजवादियों ने सक्रिय

समर्थन व सहयोग प्रदान किया । इसी प्रकार 1942 के इस भारत छोड़ो आन्दोलन में समाजवादियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

समाजवादियों के योगदान के परिणामस्वरूप भारत में क्रांतिकारी आन्दोलनों को विशेष रूप में बल मिला क्योंकि वे शक्ति हस्तांतरण के लिए पक्ष में नही थे । वे चाहते थे कि साम्राज्यवादी, सामन्तवादी और साम्प्रदायिकतावाद की जड़ों को समूल नष्ट किया जाए। समाजवादियों की गतिविधियों के परिणामस्वरूप मुस्लिम लीग के प्रति भारतीय राष्ट्रवादियों व कांग्रेस के समर्थकों को सचेत करने में सहायता प्राप्त हुयी । क्योंकि मुस्लिम लीग को अंग्रेजों की सहायक, जिन्ना को देशद्रोही तथा साम्राज्यवाद का हथियार मानते थे । उनकी नीतियों के कारण भारत में आर्थिक घटकों के विकास को बल मिला । भारत में पूर्णस्वायतत्ता स्वतंत्रता से संबंधित आन्दोलनों का समाजवादियों ने समर्थन किया जिसके परिणाम स्वरूप स्वतंत्रता आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला ।

12.8 सारांश

इस प्रकार भारत में कांग्रेस समाजवादियों का उत्थान एवं विकास स्वतंत्रता आन्दोलन एवं ब्रिटिश कालीन भारतीय इतिहास के संदर्भ में उल्लेखनीय ऐतिहासिक विवेचना का विषय रहा है । समाजवादियों ने अपनी सक्रिय गतिविधियों के माध्यम से भारतीय समाज, राजनीति एवं आर्थिक व्यवस्था के क्षेत्र में महत्वपूर्ण देन प्रदान की थी । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को सक्रिय बनाने एवं ब्रिटिश शासन विरोधी गतिविधियां करने में कांग्रेस समाजवादियों की उल्लेखनीय भूमिका रही भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में भी उनका सक्रिय योगदान रहा ।

समाजवादी बुद्धिजीवी के रूप में राममनोहर लोहिया ने सूक्ष्म चिन्तन और मनन किया था। उन्होंने समाजवादी चिन्तन की समस्याओं को एशियायी दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया था। वे कोरे पंथवादी नहीं थे । उन्होंने कर्म और चिन्तन के द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास की समस्या को सदैव ध्यान में रखा। वे चाहते थे कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन और स्वभाव की अभिव्यक्ति हो।

इसी प्रकार आचार्य नरेन्द्र देव ने समाजवाद के मानववादी आधारों को अधिक महत्व दिया । जयप्रकाश नारायण ने भारत में समाजवादी आन्दोलन को कांग्रेस के झंडे के नीचे चल रहे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ सम्बन्धित कर दिया था। नरेन्द्र देव तथा जय प्रकाश ने समाजवादी विचारधारा को जनता को साम्राज्यवादी राजनीतिक आधिपत्य तथा देशी सामन्तवाद की दासता से मुक्त करवाने की दिशा में मोड़ दिया ।

कांग्रेस समाजवादी दल का महत्व इस बात में है कि उसने भारत के खेतिहर, जातिबद्ध, तथा अविकसित अर्थतंत्र और राजतंत्र के संदर्भ में मौलिक समाजवादी चिन्तन की आवश्यकता पर बल दिया था । संक्षेप में भारतीय समाजवादियों ने – अविकसित अर्थतंत्र में किसानों की भूमिका, वर्ग संघर्ष तथा नियोजन इन तीन प्रमुख समस्याओं पर गम्भीर चिन्तन किया था ।

कांग्रेस समाजवादी दल न तो कांग्रेस की सहानुभूति प्राप्त कर सका और न ही साम्यवादियों की । इसने हिन्दू और मुसलमानों में एकता के लिए आर्थिक हितों की समानता पर बल दिया। 1935 ई. के भारतीय अधिनियम का विरोध किया, मुस्लिम लीग से समझौता और भारत के विभाजन की नीति का विरोध किया तथा अन्य भी विभिन्न राष्ट्रीय हित के कार्य किए। लेकिन यह दल न तो लोकप्रिय हो सका और न ही भारत में समाजवादी विचारधारा के फैलाने में

अधिक सफल रहा। इसके नेता क्रान्तिकारी कम और आदर्शवादी अधिक रहे और वही उनकी असफलता का मूल कारण रहा । लेकिन इसके बावजूद समाजवादियों ने विभिन्न स्थानों पर मजदूरों तथा किसानों के समुदायों को संगठित करने और उनको नेतृत्व प्रदान करने में योगदान दिया ।

12.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न– 1;

1 कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना व संगठन का विवेचन कीजिए ।

2 कांग्रेस समाजवादी दल के कार्यक्रम व उद्देश्यों को बताईये ।

3 समाजवादी विचारधारा से संबंधित श्रेणियों का वर्णन कीजिए । ।

बोध प्रश्न– 2

निमांकित वाक्यों को पढ़कर उनके सम्मुख सही () या गलत () का निशान लगाइए ।

1. कांग्रेस समाजवादी दल भारतीय वामपंथी दल की प्रमुख धारा थी
2. भारत में 1934 ई. में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुयी।
3. कांग्रेस समाजवादी दल का मुख्य सचिव जयप्रकाश नारायण को बनाया गया था।
4. इस दल मे दादाभाई नौरोजी भी सदस्य थे।
5. कांग्रेस समाजवादी दल के अन्य प्रमुख नेता आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ. राममनोहर लोहिया सक्रिय कार्यकर्ता थे।
6. कांग्रेस समाजवादी दल का उद्देश्य कांग्रेस में नया जीवन और जोश उत्पन्न करना था।

बोध प्रश्न–3

निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर 100 शब्दों में दीजिए:

1 कांग्रेस समाजवादियों के उत्थान के कारणों का विवेचन कीजिए।

2 कांग्रेस समाजवादियों के योगदान एवं विकास का वर्णन कीजिए।

3 कांग्रेस समाजवादियों की गतिविधियों के परिणामों का वर्णन कीजिए।

12.10 संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. पी. एल. लखनपाल – "हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी"
2. वी पी वर्मा – "मार्डन पोलिटिकल थाट"
3. केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया खण्ड – VI
4. आर सी मजूमदार – "ब्रिटिश पेरामाउण्टसी एण्ड इण्डियन रेनेशां"
5. रामचन्द्र गुप्त का लेख "भारतीय समाजवादी दल के बदलते आयाम.।
6. प्रेम भसीन का लेख "प्रजा समाजवादी दल"
7. डॉ राधाकृष्णन – नेहरू
8. फ्रेंक मोरेस – "जवाहर लाल नेहरू"
9. माइंरन – "पार्टी पोलिटिक्स इन इण्डिया – दि डेवलेपमेंट ऑफ मल्टि पार्टी सिस्टम"
10. एल पी. सिन्हा – "लेफ्ट विंग इन इण्डिया"

11. एस आर चौधरी – 'लेफ्ट विंग मूवमेन्ट इन इण्डिया"
12. वी वी. बाला भूशेविच – 'ए कंटेम्परेरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया" (1918–1955 ई)
13. डॉ कृष्णकान्त मिश्र – "भारत की राजनीतिक प्रणाली"
14. प्रतापसिंह – "आधुनिक भारत की राजनीतिक प्रणाली"
15. ग्रोवर व यशपाल – " आधुनिक भारत का इतिहास"
16. एम. अरूमुगम – "सोशलिस्ट थाट इन इण्डिया"
17. कमला गडरे अजय घोष – "इण्डियन वे टू सोशलिम्प"
18. अजय घोष – "थ्योरीज एण्ड प्रेक्टिसेज ऑफ द सोशलिस्ट पार्टीऑफ इण्डिया"
19. मधुलिमए – "इवोलुशन ऑफ सोशलिस्ट पार्टी"
20. बी आर नन्दा – "सोशलिज़्म इन इण्डिया
21. प्रेम भसीन – "सोशलिज़्म इन इण्डिया"
22. हरि किशोर सिंह – "ए हिस्ट्री ऑफ दि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी"

इकाई – 13
संविधान और कांग्रेस (1935–1937 ई.)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 1935 ई. से पूर्व भारत की स्थिति
13.3 1885 ई. में कांग्रेस कीं स्थापना से 1935 ई. तक कांग्रेस की गतिविधियों का संक्षिप्त स्वरूप
13.4 संविधान एवं 1935 ई. के अधिनियम हेतु परिस्थितियाँ
13.5 1935 ई. में भारतीय अधिनियम के तहत् संविधान की स्थापना एवं प्रकृति
13.6 संविधान एवं अधिनियम की धाराएं
13.7 संविधान का आलोचनात्मक स्वरूप
13.8 कांग्रेस की 1935 ई. से 1937 ई. तक की गतिविधियां
13.9 कांग्रेस व संवैधानिक गतिविधियों का प्रभाव
13.10 सारांश
13.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
13.12 संदर्भ ग्रंथों की सूची

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे : –

- 1935 ई से पूर्व अंग्रेजी शासन का भारतीय जीवन एवं प्रशासन पर क्या प्रभाव रहा।
- 1935 ई से पूर्व कांग्रेस की स्थापना, उसकी गतिविधियां,
- भारत में संवैधानिक विकास के 1935 ई. से पूर्व के चरण,,
- 1935 ई. से संविधान के विकास का वास्तविक क्रम एवं प्रगति का स्वरूप
- अधिनियम की विशेषताएं एवं आलोचनात्मक प्रतिक्रियायें,
- संवैधानिक विकास के संदर्भ में कांग्रेस की प्रतिक्रियायें एवं गतिविधियां,
- 1935 ई. का अधिनियम, 1950 ई के संविधान हेतु प्रेरक व प्रमुख मार्ग दर्शक के रूप में

13.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारत के इतिहास एवं भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के विशेष संदर्भ में 20वी शताब्दी युगान्तकारी काल सिद्ध हुआ क्योंकि इस काल में प्रशासनिक एवं संवैधानिक विकास की दृष्टि मे कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही भारत में राजनीतिक परिस्थितियाँ बननी जा रही थी, जिनसे ब्रिटिश सरकार को यह महसूस होने लगा था कि भारतीयों के उग्र असंतोष और विद्रोह को नियंत्रित करने एवं उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए सरकार को

संवैधानिक सुधार करने पड़ेंगे । इस स्थिति के कारण अंग्रेजी सरकार को भारतीयों हेतु संविधान तथा प्रशासन देने के लिए समय–समय पर विभिन्न अधिनियमों को पारित करना पड़ा, जिनमें 1935 ई. का अधिनियम संवैधानिक विकास के क्रम में वास्तविक स्वरूप माना जाता है ।

भारतीय संविधान के विकास का इतिहास बीसवीं शताब्दी में संवैधानिक एंव राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप था । ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय संविधान के विकास का वास्तविक क्रम 1858 ई के भारत सरकार अधिनियम से प्रारम्भ माना जाता है । 1935 ई. के अधिनियम के पारित होने तक यह विकास का क्रम अपनी प्रगति की सीमा पर पहुंच गया था, जिसके परिणाम स्वरूप 1950 ई. के संविधान निर्माण में 1935 ई. के अधिनियम का अग्रणीय एवं प्रेरणा का स्वरूप रहा ।

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन और संवैधानिक विकास के इतिहास एक दूसरे के पूरक व परिपूरक है क्योंकि एक का अध्ययन दूसरे के बिना नहीं किया जा सकता है राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्देश्य एक संवैधानिक स्थिति की प्राप्ति थी । भारत में यह संवैधानिक स्थिति परिवर्तनीय बनी रही। यह कभी प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना कभी औपनिवेशक स्वराज्य और अन्त में पूर्व स्वराज्य बन गई थी । इन संवैधानिक स्थितियों की प्राप्ति के लिए भारतीयों ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया था । इससे भयभीत होकर अंग्रेजी सरकार समय–समय पर भारत के शासन में सुधार लाती रहती और संसदीय तथा प्रतिनिधि संस्थाओं का विकास करती रही लेकिन भारतीय संतुष्ट नहीं हुए परिणाम स्वरूप स्वतंत्रता, संवैधानिक विकास के लिए भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन निरन्तर रूप में चलता रहा ।

भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास को कई चरणों में विभाजित किया जा सकता है प्रथम चरण अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के 1858 ई. के भारत सरकार अधिनियम तक माना जा सकता है । दूसरा चरण भारतीय परिषद् अधिनियम 1861 ई. से प्रारम्भ होता है जिसमें अंग्रेजी सरकार ने 1861 ई., 1892 ई. और 1909 ई. में अधिनियम पारित किए । तीसरा चरण 1919 से प्रारम्भ होता है । जिसमें आशिक उत्तरदायित्व सिद्धान्त को अपनाया गया भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए 1935 ई. का भारत सरकार अधिनियम महत्वपूर्ण कदम था । इस अधिनियम द्वारा भारत को नया संविधान प्रदान किया गया । यह अवधि भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक बनी रही । अन्तिम चरण भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 ई. से 1950 ई. तक माना जाता है इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट है कि 1935 ई. का अधिनियम भारतीय संवैधानिक विकास एवं भारत के नवीन संविधान के लिए महत्वपूर्ण चरण था।

13.2 1935 ई. से पूर्व भारत की स्थिति

1935 ई से पूर्व भारत में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध भारतीयों में असन्तोष, विद्रोह, उग्र राष्ट्रवाद की भावना व्याप्त थी । भारतीय प्रशासन में सुधार भारतीयों के प्रतिनिधित्व, उत्तरदायी सरकार, स्वतंत्रता चाहते थे । अंग्रेजी शासन में विभिन्न प्रकार के दोष एवं कुशासन का वातावरण बना हुआ था । इस दृष्टि से भारतीयों को उनकी योग्यता के अनुसार पद व स्थान प्राप्त न होना, रंग व जाति भेद, अंग्रेजी कर्मचारियों व अधिकारियों की तुलना में भारतीयों के साथ भेदभाव, प्रशासन के प्रति उपेक्षा, भारतीयों को उच्च पद प्राप्त न होना, शोषण आदि की स्थिति बनी हुयी थी ।

1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से लेकर 1935 ई. तक भारत में अंग्रेजी शासन, राष्ट्रीय आन्दोलन और संवैधानिक विकास की स्थिति विद्यमान थी । भारत में एक ओर अंग्रेजी सरकार अपने वाइसराय के नेतृत्व में भारत की सीमावर्ती इलाकों को अपने अधिकार में करने हेतु प्रयत्नशील रहे । दूसरी ओर भारतीय प्रशासन में सुधार करने की नीति को अपनाया इस दृष्टि से लार्ड डफरिन के शासन काल में बर्मा को 1886 ई. में अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाया गया । लार्ड लैन्सडाउन के समय में विशेष रूप में 1891 ई. में एक आयोग की सिफारिश के अनुसार स्टेन्यूटरी सिविल सर्विस तोड दी गयी और अब नौकरियां तीन श्रेणियों में (भारतीय, प्रान्तीय तथा निम्न श्रेणी) में बांट दी गयी प्रथम श्रेणी में वे ही नियुक्त किये जा सकते थे जो इंग्लैंड में सिविल सर्विस की परीक्षा पास कर आते थे । शेष दो श्रेणियों की नौकरियों में यथा संभव भारतीय नियुक्त किये जाने की व्यवस्था की। 1893 ई. में इंग्लैंड की लोकसभा में यह विधेयक लाया गया कि सिविल सर्विस की परीक्षाएं इंग्लैंड व भारत में साथ–साथ करवायी जावें, परन्तु अंग्रेजों के विरोध के कारण यह विधेयक संसद में पारित नहीं हो सका। लैन्सडाउन के शासन काल में 1892 ई. का अधिनियम पारित किया गया था । लैन्सडाउन के पश्चात् 1894 में एलगिन भारत का वायसराय बन कर आया। उसने अपने शासन काल में सैनिक व आर्थिक क्षेत्र में सुधार किये लेकिन भारतीय सुधारो से सन्तुष्ट नहीं थे। 1899 ई. से 1905 ई. तक लार्ड कर्जन अंग्रेजों का भारत में वायसराय रहा। उसके शासनकाल में भारतीयों में अत्यधिक असन्तोष बढ़ा परिणाम स्वरूप आन्दोलन, कांग्रेस की गतिविधियों एवं संवैधानिक विकास को विशेष रूप से प्रोत्साहन मिला। कर्ज़न भारतीयों को तुच्छ व निम्न समझता था और वह भारतीयों को स्वायत्तता देने के पक्ष में नहीं था । उसके काल में कलकत्ता कारपोरेशन अधिनियम 1899 ई पारित हुआ, 1902 ई. में प्रशासकीय सिक्रेसी अधिनियम बनाकर नागरिक व प्रशासन से संबंधी कोई भी रहस्य खोलने पर अपराधी को दण्ड देने की व्यवस्था की । इससे भारतीय समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर अंकुश लग गया । कर्जन के इन प्रतिगामी कार्यो से भारतीयों में असंतोष का वातावरण बन गया। 1905 ई में बंगाल का विभाजन करके लार्ड कर्जन ने अपने को भारतवासियों का कट्टर शत्रु बना लिया था। इन परिस्थितियों में भारतीयों में अंग्रेजी सरकार के प्रति उग्र राष्ट्रवाद, विद्रोह एवं असन्तोष की भावना निरन्तर रूप से बढ़ती जा रही थी । इस समय भारतीयों एवं राष्ट्रीय कांग्रेस संगठन की यह विशेष मांग थी कि भारतीय प्रशासन में आवश्यक सुधार किए जाएं, भारतीयों को स्वायत्तता प्रदान की जाए, जिससे प्रेरित होकर अंग्रेजी सरकार ने 1909, 1910 व 1935 ई. के अधिनियमों को विशेष रूप में क्रियान्वित करने का प्रयास किया। इस दृष्टि से 1935 ई का सुधार अधिनियम प्रमुख रूप में संविधान निर्माण एवं स्त्रोत के रूप मे एक महत्वपूर्ण कदम था।

13.3 1885 ई. मे कांग्रेस की स्थापना से 1935 ई. तक कांग्रेस की गतिविधियों का संक्षिप्त स्वरूप

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना एलेन ओकटेवियन ह्यूम के द्वारा 1885 ईस्वी में की गई थी । कांग्रेस के जन्मदाता हल ने विभिन्न सरकारी प्रतिवेदनों का अवलोकन किया था । उनका यह विश्वास था कि भारत की साधारण जनता में बहुत अधिक असंतोष उत्पन्न हो गया है और यह संभव था कि कोई नवयुवक असंतोष को राष्ट्रीय विद्रोह मई परिवर्तित कर देता। ह्यूम

की जीवनी के लेखक श्री वेडरबर्न ने लिखा है "भारत के विभिन्न भागों से ब्रिटिश साम्राज्य में हितैषियों से ह्यूम को ब्रिटिश सरकार तथा भारत के भविष्य के लिए खतरे की चेतावनी मिल गयी थी क्योंकि जनता के कष्ट बढ़ गए थे और बुद्धिजीवी सरकार के विरुद्ध हो गये थे।" अत: श्री हयूम जो कि सरकार के अवकाश प्राप्त अधिकारी थे, को यह श्रेय मिला कि अखिल भारतीय स्वरूप की संस्था को एक निश्चित और प्रत्यक्ष रूप प्रदान करे । डन्ल्यू. सी. बनर्जी ने इस विचार को लोकप्रिय बनाया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विचार तात्कालिक वाइसराय डफरिन के मस्तिष्क की उपज था और उसी ने अप को यह संगठन बनाने को कहा था । डफरिन का विचार था कि एक ऐसी राजनैतिक संस्था हो जिसके द्वारा सरकार जनता की वास्तविक भावनाएँ जान सके ताकि प्रशासन को देश में किसी विस्फोट से बचाया जा सके । लाला लाजपतराय का यह मत था कि यह संस्था इसलिए बनी कि वह एक अंग्रेजी राज्य की रक्षा हेतु अभयकपाट (सेफ्टीवॉल्व) के रूप में कार्य कर सके । इसका उद्देश्य सामाज्य की रक्षा ही नहीं वरन् उसे सुदृढ़ करना था।

हयूम महोदय सच्चे उदारवादी थे, जोकि राजनैतिक संगठन की आवश्यकता तथा वांछनीयता अनुभव करते थे । उन्होंने भारतीय लोगों के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक पुनर्जन्म के लिए पचास स्वयंसेवकों की मांग की । श्री हयूम ने इण्डियन नेशनल कांग्रेस के लिए सरकारी तथा गैर सरकारी व्यक्तियों की सहानुभूति तथा सहायता प्राप्त कर ली । यह संस्था इंग्लैड तथा भारत के सम्मिलित मस्तिष्क की उपज थी।

कांग्रेस की 188 5 ई में स्थापना से लेकर 1947 ई. तक महत्वपूर्ण गतिविधियां रही । इस दृष्टि 1935 ई. में संविधान की स्थापना व सुधार अधिनियम के संदर्भ में कांग्रेस की क्रांतिकारी गतिविधियों का स्वरूप रहा । प्रारम्भिक रूप में 1885 ई. से 1905 ईस्वी तक का काल कांग्रेस का उदारवादी काल रहा । इस युग में दादा भाई नौरोती, फिरोजशाह मेहता, दीनशा वाचा, वोमेश बनर्जी और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे नेता हुये । वे लोग उदारवादी तथा पाराबत राजनीति में विश्वास करते थे, जिन्हें उदारवादी विचारक कहा गया । ये लोग अपनी राजनीति की व्याख्या उदारवाद और संयम के समन्वय से करते थे । ये लोग भारतीयों के लिए धर्म और जाति के पक्षपात का अभाव, मानव में समानता, कानून के सामने बराबरी, नागरिक स्वतंत्रताओं का प्रसार और प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की इच्छा करते थे । इस काल में कांग्रेस पर समृद्धिशाली मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों का अधिकार था । कांग्रेस के नेता अंग्रेजी इतिहास और संस्कृति से बहुत प्रभावित थे और अंग्रेजी सम्पर्क को ईश्वर की अनन्य कृपा मानते थे । उन्हें पूर्ण विश्वास था कि अंग्रेजी शासक भारत के हित 'में है, अतएव वे लोग अंग्रेजी सरकार को श्तु नहीं अपना मित्र समझते थे । वे यह आशा करते थे कि कालान्तर में अंग्रेज उन्हें अपनी परम्पराओं के अनुसार स्वतंत्र करने के योग्य बना देगे।

उदारवादी दल के समर्थक अंग्रेजी साम्राज्य के बने रहने, सुदृढ़ बनाने के पक्ष में थे । उनके अनुसार अंग्रेजों के भारत से चले जाने के पश्चात् अव्यवस्था फैल जाएगी । इस विचारधारा को व्यक्त करते हुए गोखले ने कहा था "अंग्रेज नौकरशाही कितनी ही बुरी क्यों न हो, परन्तु आज केवल अंग्रेज ही व्यवस्था बनाए रखने में सफल है. और व्यवस्था के बिना कोई उन्नति संभव ही नहीं ।" इसके कारण उदारवादी क्राउन के प्रति राजभक्त थे। उस समय के कांग्रेसी विश्वास करते थे कि अंग्रेज न्यायप्रिय लोग है और वे भारत से न्याय ही करेंगे । भारतीयों की शिकायतें अंग्रेज नौकरशाही के कारण अथवा अंग्रेजों बहो हमारी शिकायतों की पूरी जानकारी न

होने के कारण से है । अत: इन लोगों ने इंग्लैड में प्रचार की ओर विशेष ध्यान दिया । उन्होंने अपना पक्ष तैयार किया और उसे अंग्रेज जनता के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया । इण्डिया नेशनल कांग्रेस की एक ब्रिटिश समिति लंदन में बनाई गई और उसने भारतीय मामलों से अंग्रेजों को अवगत कराने के उद्देश्य से "इण्डिया" नामक् एक साप्ताहिक पत्रिका भी प्रकाशित करवायी ।

इस युग में कांग्रेस ने देश की स्वतंत्रता की मांग नहीं की, केवल भारतीयों के लिए बहुत रियायतें ही मांगी। उनकी माँगे कांग्रेस की मांगें, विधान परिषदों का विस्तार, उनकी अधिक शक्तियां, भारतीयों के लिए अधिक प्रतिनिधित्व, वाइसराय तथा गवर्नरों की कार्यकारिणी में भारतीयों को प्रतिनिधित्व, जल पद सेवा (सिविल सर्विस) में अधिक भर्ती, इसके लिएए भारत और इंग्लैण्ड में साथ–साथ परीक्षाएं इत्यादि तक सीमित थी । ये मांगें हीन से हीन शब्दों में याचना के रूप में प्रस्तुत की जाती थीं और कांग्रेस केवल संवैधानिक ढंगों का ही प्रयोग करती थी ।

उदारवादी कांग्रेसियों के नरम रूख और राजभक्ति के होते हुए भी उसे अंग्रेजी सरकार की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला । प्रारम्भ में यह सरकारी रूख तटस्थता का था। इस भावना से प्रेरित होकर लार्ड डफरिन ने 1886 ई. में कांग्रेस के कलकला अधिवेशन के प्रतिनिधियों को एक उद्यान भोज दिया था । 1887 ई. में मद्रास की अंग्रेजी गवर्नमेंट ने कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन के लिए सुविधाएं प्रदान की परन्तु 1887 ई. के पश्चात् सरकार का रूख कठोर होता चला गया । कांग्रेस ने एक पुस्तिका "एक तमिल कांग्रेस – प्रश्नोत्तर रूपी शिक्षा. प्रकाशित की । इसमें दो व्यक्तियों के बीच प्रश्नोत्तर के रूप में तानाशाही राजपद्धति और अन्यत्रवासी भूमिपतियों की आलोचना करने पर कांग्रेस का सरकार से खुला विरोध हो गया । अंग्रेजी वाइसराय डफरिन ने कांग्रेस के राष्ट्रीय चरित्र को चुनौती दी और कहा यह तो केवल एक "सूक्ष्मदर्शी अल्पसंख्या" का प्रतिनिधित्व करती है। 1890 ई में सरकारी सेवकों को कांग्रेस में सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं रही । लार्ड कर्जन ने यहां तक कह दिया था कि "कांग्रेस अपने पतन की ओर लड़खड़ाती हुई जा रही है ।"

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम और बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एक नए दल का उदय हुआ जो कि पुराने उदारवादी नेताओं के आदर्श एवं तरीको का कड़ा आलोचक था। ये उग्रवादी समर्थक चाहते थे कि कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य होना चाहिए जिसे वे आत्म–विश्वास और आत्मनिर्भरता से प्राप्त करें ।

कांग्रेस संगठन में परस्पर फूट की प्रक्रिया उस समय आरम्भ हुई जब लोकमान्य तिलक का समाज सुधार के प्रश्न पर विवाद हो गया । जुलाई 1895 ई. में तिलक और उसके सहयोगियों ने पूना सार्वजनिक सभा में रानाडे और गोखले के अधिकार को चुनौती देकर उसे समाप्त कर दिया और गोखले ने एक और पृथक राजनीतिक संगठन "दक्कन सभा" स्थापित कर ली । भारत में उग्र राष्ट्रवाद के समर्थकों में लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष और लाला लाजपतराय प्रमुख हुए। तिलक ने लोगों को यह नारा दिया कि "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मै इसे लेकर रहूंगा।" उनका यह मानना था कि स्वराज्य, स्वधर्म के लिए आवश्यक है । स्वराज्य के बिना कोई सामाजिक सुधार नहीं हो सकते, न कोई औद्योगिक प्रगति, न कोई उपयोगी शिक्षा और न ही राष्ट्रीय जीवन की परिपूर्णता । उग्रवादियों ने विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी माल को अपनाने को कहा। इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा और सत्याग्रह पर भी बल दिया गया । उग्रवादी दल की योजना थी कि विद्यार्थियों को देश सेवा में लगाया जाए । जब अंग्रेजी

सरकार ने विद्यार्थियों के विरुद्ध स्वशासनात्मक कार्यवाही करने की धमकी दी तो विद्यार्थियों को यह कहा गया कि वे इन विश्वविद्यालयों को छोड़ दें, इस क्षेत्र में सर गुरुदास बनर्जी ने बंगाल राष्ट्रीय शिक्षा परिषद बनाई । मद्रास में पछैपा राष्ट्रीय कॉलेज स्थापित किया गया । पंजाब में डी..ए वी. आन्दोलन ने जोर पकड़ा। उग्रवादियों ने सहकारी संगठन को भी प्रोत्साहित किया ।

यद्यपि प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ होने के समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उदारवादी दल के नेतृत्व में थी और कांग्रेस ने अंग्रेजों को युद्ध में समर्थन दिया परन्तु उग्रवादी विचारकों का यह मानना था कि भारतीयों को ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाले बिना किसी भी प्रकार की रियायत नहीं मिल पायेगी। इस स्थिति में कांग्रेस के उग्रवादी विचारकी के द्वारा "होमरूल आन्दोलन" की आवश्यकता अनुभव की गयी। 1916 ई. में तिलक ने पूना में "होमरूल लीग" की स्थापना की । इसका उद्देश्य सरकार पर दबाव डालकर भारत को स्वशासन दिलाना था। 1916 ई. में कांग्रेस और मुस्लिम लीग में यामझौता हो गया था ताकि संवैधानिक सुधारों की एक ही योजना अपनाई जा सके । इसके स्वरूप 19 स्मरण पत्र में समकालीन राजनैतिक विचातें को साकार रूप दिया गया । इस समय की तात्कालिक परिस्थितिया, युद्ध में अंग्रेजों की अच्छी स्थिति न होने, के कारण सचिव लार्ड मांटेग्यु ने अंग्रेजी संसद की लार्ड्स सभा में 20 अगस्त 1917 को एक विशेष महत्वपूर्ण घोषणा की और 1919 ई. में "भारतं सरकार अधिनियम 1919 ई" अंग्रेजी संसद में पारित कर दिया गया।

1920–21 ई. से महात्मा गषी के नेतृत्व में कांग्रेस की गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला। महात्मा गांधी ने अहिंसावाद से भारत को स्वतंत्र करवाने का बीड़ा उठाया । सर्वप्रथम उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध 1920–21 ई. में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया । इसके अन्तर्गत सरकारी उपाधियां छोड़ने, विधानसभाओं, न्यायालयों, शैक्षणिक संस्थाओं, विदेशी माल इत्यादि का त्याग करना था। इसके विपरीत अपने आपको अनुशासन में रखना, त्याग, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों को बचाना, आपसी झगडे पंच निर्णय द्वारा तय करना, हाथ से कते और बुने कपड़े का प्रयोग करना इत्यादि कार्य करने थे। लेकिन इस आन्दोलन के अन्तर्गत यू. पी. में एक स्थान चौरी चौरा में लोगों ने पुलिस चौकी को आग लगा दी । इस घटना के विरोध में महात्मा गांधी ने फरवरी 1922 ई. में अपना आन्दोलन वापिस ले लिया। महात्मा गांधी की नीतियों से असन्तुष्ट होकर श्री सी. आर. दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने एक "स्वराज्य दल" का गठन किया। 1927 ई. में लार्ड बरकीनहेड़ ने भारतीयों को साईमन कमीशन में सम्मिलित न करने का कारण बताते हुए कहा कि भिन्न–भिन्न राजनैतिक दलों में अत्यधिक भेद है अत: यदि सभी दल मिलकर एक संविधान प्रस्तुत करें तो ब्रिटिश संसद उस पर विचार कर सकती है। अत: सभी दलों ने पण्डित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में एक उपसमिति को एक संविधान का मसविदा तैयार करने को कहा। इस उपसमिति ने सुप्रसिद्ध नेहरू रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें अंग्रेजी सामाज्य में स्वशासित प्रदेशों की नई उत्तरदायी सरकार का सुझाव दिया गया था। इस श्वेत पत्र के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार की गई और उस रिपोर्ट के आधा पर ही 1935 ई. में सुधार अधिनियम पारित किया गया।

13.4 संविधान एवं 1935 ई. के अधिनियम हेतु परिस्थितियां

1935 ई. के अधिनियम एवं संविधान की स्थापना हेतु परिस्थितियो का स्वरूप 1920 ई से 1935 ई. के मध्य घटित महत्वपूर्ण घटनाओ पर आधारित था। इन परिस्थितियो का विवेचन निमांकित आधार पर किया जा सकता है –

1. 1919 ई. के माउण्ट फोर्ड सुधारों से उत्पन्न भारतीयों में असंतोष इसका प्रमुख कारण था। अधिनियम के द्वारा वास्तविक शक्ति गवर्नरों और गवर्नर जनरल के हाथों में रही जो भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी थे। सभी मामलों में अन्तिम निर्णय सरकार के हाथ में रहा और विधान परिषदें आलोचना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर सकती थी । इन दोषों के कारण प्रारम्भ से. ही भारतीयों ने इस अधिनियम का विरोध करना आरम्भ कर दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सुधारों को अपर्याप्त, असंतोषजनक और निराशाप्रद कहकर उनकी निन्दा की । परिणामस्वरूप समूर्ण देश में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।
2. भारत में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध जो असंतोष व क्षोभ विद्यमान था, उस वातावरण में बिटिश सरकार ने सहानुभूति तथा दूरदर्शिता से काम लेने के स्थान पर केन्द्रीय विधान परिषद् में दो बिल पेश किये, जिन्हें रोलेट दिल कहा जाता है। इनके द्वारा पुलिस व मजिस्ट्रेटों को इतनी अधिक शक्तियां देने की व्यवस्था की गई कि वे बिना मुक़दमा चलाये ही किसी भी व्यक्ति से बंदी–गृह में डाल सकते थे। इन बिलों की धारायें इस प्रकार की थी कि इनके द्वारा भारत रक्षा अधिनियम जैसे दमनकारी कदमो को भी तैध ठहराया जा सकता था और आत्म–निर्णय तथा स्वतंत्रता के सिद्धांतों को निर्दयतापूर्वक कुचला जा सकता था । भारतीय जनता को इन बिलों के पेश होने पर क्रोध त्वा। महात्मा गांधी ने वाइसराय से इन बिलों को स्वीकृति न देने की प्रार्थना की, परंतु समस्त प्रयत्नो और विरोधों के बावजूद भी इनमें से एक बिल पास कर दिया गया, जिसने रोलट एक्ट का नाम धारण किया। ब्रिटिश सरखर ने आन्दोलन को कुचलने के लिए सेना का आश्रय लिया। अशांति के इस वातावरण में 13 अप्रैल 1919 ई. को अमृतसर में जलियांवाला बाग हत्याकांड हुआ जहां जनरल डायर ने एक शांत सभा में एकत्रित 20 हजार व्यक्तियों पर निर्दयतापूर्वक गोलियां चलायी और अधिकांश लोगों को भून दिया । इस स्थिति में भारतीथों में असंतोष उत्पन्न हुआ।
3. भारतीयों में उक्त घटना के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन व विद्रोह की भावना प्रज्वलित हुई । टैगौर ने अपनी "नाइट" की उपाधि वापस कर दी और वायसराय को रोषपूर्ण पत्र लिखा। भारतीय मुसलमानों ने भी इंग्लैड की टर्की विरोधी नीति से रुष्ट होकर भारत सरकार के विरुद्ध खिलाफत आन्दोलन छेड़ दिया । महात्मा गांधी ने अवसर का लाभ उठाते हुए मुसलमानों के आन्दोलन का समर्थन करके राष्ट्रीय एकता स्थापित कर दी । गांधीजी के नेतृत्व में 1920 ई. में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिससे सम्पूर्ण देश में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई ।
4. गांधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन स्थगित किए जाने की स्थिति में सी. आर. दास और पं. मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराज्यवादी दल की स्थापना की गई । स्वराज्य दल ने 1923 ई. में चुनाव लड़े जिससे उसे असाधारण सफलता प्राप्त हुई। 1924 ईस्वी में पं मोतीलाल नेहरू ने एक संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। इन गतिविधियों का परिणाम यह हुआ कि सरकार ने सुधारों की जांच के लिए गृह सदस्य अलेक्ज़ेंडर मुडीमैन की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त जो भारतीय इतिहास में "मुडीमैन कमेटी" के नाम से विख्यात है ।

5. सन् 1925 ई. में सरकार ने जब मुडीमैन कमेटी की रिपोर्ट को केन्द्रीय विधान परिषद् के सामने रखा तो पं. मोतीलाल नेहरू ने इस रिपोर्ट की कटु आलोचना की और स्वशासन को अमल करने के अयोग्य सिद्ध किया। ब्रिटिश सरकार को विवश होकर यह घोषणा करनी पड़ी कि शीघ ही एक आयोग भारत में भेजा जायेगा जो इस बात की जांच करेगा कि 1919 ई. के सुधार किस सीमा तक सफल या असफल हुए और यह आयोग भारत के भावी संवैधानिक विकास के संबंध में भी अपने सुझाव देगा ।
6. अंग्रेजी सरकार की उपरोक्त घोषणा के शीघ्र पश्चात् फरवरी 1928 ई. में साइमन कमीशन बम्बई पहुंचा। इस कमीशन में एक भी भारतीय सम्मिलित यही किया गया था। अत: कांग्रेस, मुस्लिम लीग एवं अन्य सभी राजनीतिक दलों ने उस्का बहिष्कार करने का निश्चय किया तथा सर्वत्र कमीशन का काले झण्डों और साइमन वापिस जाओ के नारों से स्वागत किया। परन्तु प्रबल विरोध के बावजूद भी कमीशन ने कुछ नौकरशाही समर्थकों की सहायता से भारत का प्रमण करके मई 1930 ई. में अपनी रिपोर्ट पेश की, कमीशन की रिपोर्ट में औपनिवेशिक स्वराज्य का कहीं जिक्र तक नहीं किया गया। इसने जनता की अभिलाषाओं और आकांक्षाओं की उपेक्षा की। यह रिपोर्ट भारत राज्य के लेखों में सदैव एक महान लेख बना रहेगा, क्योंकि इस लेख में कुछ गुण भी विद्यमान थे । इस रिपोर्ट का सबसे बड़ा गुण यह था कि इसने भारतीय राजनीति की कठिनाइयों और समस्याओं पर विस्तार से प्रकाश डाला। इस रिपोर्ट द्वारा की गई कई सिफारिशों को 1935 ई. के अधिनियम में भी स्थान दिया गया । इस रिपोर्ट द्वारा ब्रिटिश सरकार को यह भी स्पष्ट हो गया कि 1919 ई. के अधिनियम के अनुसार प्रान्तों में चलाया हुआ द्वैधशासान पूर्णत: असफल हो गया है और भारतीयों को स्वशासन के मार्ग पर आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।
7. भारतवासी जब साइमन कमीशन का बहिष्कार कर रहे थे, तभी भारत सचिव लार्ड बर्किनहैड ने भारतीयों को ऐसा संविधान बनाने की चुनौती दी जिससे सब भारतीय सहमत ही कांग्रेस ने इस चुनौती को स्वीकार करके फरवरी 1928 ई. में दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया और 10 मई 1928 ई. को बम्बई में दूसरी बैठक में भारतीय संविधान का मसविदा तैयार करने के लिए पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की । इस कमेटी ने अपनी संविधान संबंधी रिपोर्ट शीध पेश की । इसकी मुख्य बातें इस प्रकार थीं कि –
    1) ब्रिटिश साम्राज्य में भारत को वही संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो जो आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैड, आयरलैड आदि को प्राप्त है ।
    2) भारत को एक धर्म निरपेक्ष राज्य बनाया जाए और उसका कोई भी राज्य धर्म नहीं हो ।
    3) भारत में द्विसदनात्मक संसद की स्थापना की जाए ।
    4) संसद के निम्म सदन में और उन प्रान्तों में जहां मुसलमानों की अल्प संख्या हो, उनके लिए स्थान सुरक्षित रखे जाएं । उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त में जहां हिन्दुओं की अल्पसंख्यक है वहां उन्हें भी इसी प्रकार की सुविधायें दी जाएं ।

5) संयुक्त निर्वाचन पद्धति अपनायी जाए ।
6) केन्द्रीय सरकार को देशी रियासतों पर वे ही अधिकार प्राप्त ही जो अभी केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है।
7) वैधानिक शक्तियों का प्रान्तों व केन्द्र में विभाजन किया जाए ।
8) भारत में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना की जाए।

डॉ0 जकारिया के अनुसार "नेहरू रिपोर्ट एक उच्चकोटि की रिपोर्ट शी जिससे राजनीतिक बुद्धिमता का आभास मिलता है । इस रिपोर्ट में भारत के भावी संविधान की रूपरेखा निश्चित की गई थी। यह रिपोर्ट वर्तमान संविधान का प्रारम्भिक क्रम था।"

8. यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया तथापि अनुभव कर लिया कि भारतीयों की संविधान संबंधी मांग की अधिक समय तक उपेक्षा नहीं की जा सकती अत: लार्ड इर्विन ने लन्दन सरकार से परामर्श के 31 अक्तूबर 1929 ई. को यह घोषित किया कि भारत को अधिराज्य की स्थिति का कम दर्जा दिया जाए । श्री इर्विन ने यह भी कहा कि भारतीय संविधान पर सोच–विचार के लिए शीघ्र ही एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया जायेगा जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार से मिलेंगे। अत: 12 नवम्बर 1931 ई में लंदन 'में गोलमेज सम्मेलन हुआ जिसमें कांग्रेस का कोई भी प्रतिनिधि नहीं था ।
9. ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के महत्वपूर्ण नेताओं को बिना शर्त बसी गृह से मुक्त करके कांग्रेस से बातचीत छेड़ने का वातावरण उत्पन्न किया। जेल से बाहर आने के बाद ही गांधी इर्विन समझौता हुआ जिसमें निर्णय लिया गया कि:
   1) कांग्रेस सविनय अविज्ञा आन्दोलन को समाप्त कर देगी ।
   2) भारत सरकार समस्त राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर देगी ।
   3) कांग्रेस के प्रतिनिधि द्वितीय गोल मेज सम्मेलन में भाग लेंगे ।
   4) सरकार नमक कर के नियम में संशोधन करेगी ।
10. गांधी इर्विन समझौता होने के 6 माह पश्चात् लन्दन में दूसरा गोलमेज सम्मेलन हुआ, जिसमें कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी व मुस्लिम लीग की ओर से जिन्नाह सम्मिलित हुआ। जिनाह द्वारा अलग मुस्लिम प्रतिनिधित्व मांग व दूसरी ओर हिन्दू जाति के प्रतिनिधियों की मांगों के कारण साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति बढ़ी । अत: सम्मेलन असफल हुआ । इधर बंगाल, उत्तर प्रदेश, उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त में अंग्रेजी सरकार द्वारा अत्याचारपूर्ण नीति को अपनाया गया। इस संबंध में गांधीजी को जब विदित हुआ तो उन्होंने पुन: सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस परिस्थिति में भी अंग्रेजी सरकार द्वारा 1935 ई. में भारतीय सुधार अधिनियम हेतु प्रेरित होना पड़ा ।
11. इसी प्रकार भारतीयों में जब अंग्रेजी सरकार के प्रति विरोध व असंतोष बढ़ता जा रहा था उस स्थिति में 1932 ई में साम्प्रदायिक पंचाट का निर्णय अंग्रेजी सरकार को लेना पड़ा । लेकिन गांधीजी ने इसका विरोध किया व आमरण अनशन कर दिया, परिणामस्वरूप पंचाट में आवश्यक संशोधन किया गया । इससे भारत में राजनीतिक अशांति अवश्य कम हुई लेकिन भारतीयों की मांग भारतीय प्रशासन में सुधार व स्वायत्तता के संबंध में निरन्तर बढ़ रही थी।

जिसके परिणामस्वरूप 1 मार्च 1933 ई. में सरकार द्वारा श्वेत पत्र प्रकाशित किया गया । इस पत्र में वर्णित पुस्तकों पर विचार करने के लिए लार्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में एक संयुक्त समिति नियुक्त की गई जिसकी रिपोर्ट 11 नवम्बर को प्रकाशित हुई । इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर एक बिल तैयार करके सर 1935 ई में ब्रिटिश लोकसभा में पेश किया गया जो अगस्त 1935 ई. में ब्रिटिश समाट की आज्ञा प्राप्त करके "भारत सरकार का 1935 ई. का अधिनियम" कहलाया। इसी अधिनियम के तहत् संविधान का निर्माण हुआ और यही संविधान सर 1947 ई. तक भारत का संविधान बना रहा जिसने 1950 ई. के संविधान निर्माण में भी आवश्यक भूमिका निभायी ।

13.5 1935 ई. मे भारतीय अधिनियम के तहत् संविधान की स्थापना एवं प्रकृति

भारत में संवैधानिक विकास एवं संविधान की स्थापना के संदर्भ में 1935 ई. का भारतीय सुधार अधिनियम महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। इस अधिनियम का 1935 ई. से लागू किया जाना संविधान विकास के क्रम में प्रमुख चरण था, जिसने कालान्तर में 1950 ई. के स्वतंत्र भारतीय संविधान की स्थापना में प्रभावशाली रूप में योगदान दिया । इस अधिनियम की अधिकांश व्यवस्थाओं एवं धाराओं को भारतीय संविधान में सम्मिलित किया गया। क्योंकि वर्तमान संविधान का लगभग दो तिहाई भाग 1935 ई के अधिनियम से लिया गया। विभिन स्थानों पर अधिनियम के उपबन्धों को वाक्यश: उतार दिया गया और कहीं–कही आवश्यक संशोधन कर दिया गया। प्रोफेसर श्री निवासन ने तो यह तक कहा है कि "भारतीय संविधान 1935 ई के अधिनियम की लगभग नकल है । उस अधिनियम के प्रसंग में इसकी उस हस्तलिपि से तुलना करना गलत न होगा जिस पर पुरानी लिखावट को मिटाकर नई लिखावट के लिए स्थान बनाया गया है ।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि 1933 ई. में ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया था जिसमें उन सिद्धांतों का संकेत किया गया, जिस पर भारत की भावी शासन पद्धीत आधारित होनी थी । इस श्वेत पत्र में वर्णित सरकारी निर्णयों और प्रस्तावों पर विचार करने के लिए लार्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में एक संयुक्त संसदीय समिति नियुक्त की गई जिसकी रिपोर्ट 1 नवम्बर को प्रकाशित हुई । इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर एक बिल तैयार करके सर 1935 ई में ब्रिटिश लोकसभा में पेश किया गया जो अगस्त 1935 ई में ब्रिटिश सम्राट की आज्ञा प्राप्त करके भारत सरकार का 1935 ई का अधिनियम कहलाया। यही अधिनियम संविधान के रूप मे स्थापित हुआ जिसकी प्रकृति एवं रवरूप इस प्रकार रहा:

1. 1935 ई का सविधान अथवा भारतीय सुधार अधिनियम काफी लम्बा प्रलेख था। इसमे 321 धाराएं तथा 10 परिशिष्ट थे। इसमें मूल सिद्धांतों के अलावा शासन रांवंधा सभी बानो को भी उल्लेखित किया गया है ।
2. इस अधिनियम अथवा संविधान में कोई नवीन प्रस्तावना नहीं जोड़ी गई और 1919 के अधिनियम की प्रस्तावना को ही जोड़ दिर्या गया ।
3. इस अधिनियम के अंतर्गत ब्रिटिश संसद का सर्वोच्चता पूर्ववत् बनी रही । उसे ही संविधान में सशोधन करने, सुधार करने तथा रद्द करने का अधिकार था ।

4. अधिनियम के तहत प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना की गई । इन प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई ।
5. 1935 ई. के अधिनियम कें द्वारा प्रस्तावित संघीय योजना में कार्यपालिका का अध्यक्ष गवर्नर जनरल होता था । उसके अधीन केन्द्रीय विषयों के प्रशासन के लिए कार्यपालिका परिषद और मन्त्रियों की व्यवस्था को गई थी। केन्द्रीय विषयों को दो भागों में बांटा गया था । संरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर जनरल को स्वविवेक से करने का अधिकार था, जिसके लिए वह कार्यपालिका परिषद् के सदस्यों को नियुक्त करता था । हस्तांतरित विषयों के प्रशासन के लिए गवर्नर जनरल को सहायता एवं परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् की स्थापना की व्यवस्था की गयी । ये सभी विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी थे ।
6. अधिनियम के तहत् एक अखिल भारतीय संघ की स्थापना का प्रावधान रखा गया । इस संघ में ब्रिटिश प्रातों के साथ देशी रियासतों को भी सम्मिलित होना था।
7. संविधान के अनुसार भारत में मताधिकार का क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया ।
8. संविधान में यh व्यवस्था की गयी कि साम्प्रदायिक निर्वाचन को नहीं किया जाएगा बल्कि इसके क्षेत्र को विस्तृत किया जायेगा ।
9. अधिनियम अथवा संविधान के अनुसार भारत की राजधानी दिल्ली एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई । इसमें मुख्य न्यायाधीश तथा दो सहायक न्यायाधीश रखनें का प्रावधान रखा गया ।
10. 1935 ई. के अधिनियम में संरक्षण और आरक्षण दोनों ही रखे गए। अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नर और गवर्नर जनरल को कुछ विशेष अधिकार दिये गये थे । उन विशेष अधिकारों के अंतर्गत उन्हें अल्पमतों, सार्वजनिक सेवाओं, रियासतों के शासकों तथा अंग्रेजों के आर्थिक हितों की खुश को बनाये था । भारत मे सुरक्षा व शांति बनाये रखने का उत्तरदायित्व भी उन्हें सौपा गया।
11. अधिनियम ने भारत को एक संघीय राज्य बनाने की योजना प्रस्तुत की थी, जिममें ब्रिटिश प्रान्त व देशी रियासतो का संयुक्त रूप से एक केन्द्र सरकार मे शामिल होना था।

13.6 संविधान (अधिनियम) की धाराएँ

1935 ई में ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित संविधान एक विस्तृत लेख है जिसमें विभिन्न धाराएं सम्मिलित की गयी हैं। इन धाराओ मे गृह सरकार, प्रस्तावित संघीय योजना, केंद्रीय कार्य पालिका, संघीय विधानमण्डल, संघीय न्यपालिका, प्रांतीय स्वराज – आदि के संबंध में व्यवस्थाएं की गई थी, जिसका स्वरूप इन प्रकार रहा:

(क) गृह सरकार के संबंध में व्यवस्था.

अधिनियम के अंतर्गत गृह सरकार के संबंध में महत्वपूर्ण व्यवस्थाओं को लागू किया गया था। इसके अन्तर्गत निम्नांकित व्यवस्थाए की गयी थी कि:

1. **क्राउन के अधिकार एवं कार्य**: 1935 ई. के संविधान का कानूनी आधार यह रहा कि क्राउन ने ब्रिटिश भारत से संबंधित शक्तियों और अधिकारों की अपने हाथों मे ले लिया, देशी रियासतों से संबंधित सभी शक्तियां पूरी तरह से **क्राउन** के हाथो में आ गयी। ब्रिटिश भारत

से संबंधित क्राउन की शक्तियों के दो स्त्रोत थे – विशेषाधिकार और कानूनी। विशेषाधिकार पर आधारित शक्तियां निमलिखित थी:

(क) ब्रिटिश भारत का सम्पूर्ण भूमि व खानो पर अन्तिम स्वामित्व

(ख) उपाधियां प्रदान करना

(ग) क्षमा दान देना

(घ) प्राथमिकता का क्रम निर्धारित करना ।

(ङ) वैदेशिक मामलों नियंत्रण

(य) युद्ध व शांति की घोषणा करना।

कानूनी आधार पर क्राउन के निम्नलिखित अधिकार व कर्तव्य थे :

(क) उच्च पदाधिकारि:यों गवर्नर जनरल, सेनापति, संघीय न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्तियां,

(ख) देशी रियासतों के भारतीय संघ में सम्मिलित होने से संबंधित प्रवेश पत्रों की स्वीकृति।

(ग) गवर्नर जनरल व गवर्नरों के नाम आदेश पत्र जारी करना।

(घ) सपरिषद् आदेश जारी करना ।

(ङ) संघीय और प्रान्तीय कानूनों को अस्वीकार करने की शक्ति तथा क्राउन के लिए रोके गए विधेयकों पर स्वीकृति देना अथवा न देना ।

(य) भारतीय शासन में उच्च पदों पर आसीन अनेक अधिकारियों तथा भारतीय सिविल सर्विस के सभी सदस्यों को अपने पदों पर नियुक्त करना।

2. **भारत सचिव की शक्तियों में परिवर्तन : –** 1935 ई. के अधिनियम के अन्तर्गत भारत सचिव की अधीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण संबंधी शक्तियां पूर्ववत बनी रहीं । परन्तु हस्तांतरित मामलों के सबंध में उसके नियंत्रण में ढिलाई कर दी गई । अधिनियम के अनुसार भारतीय प्राप्तों को स्वा यत्तता प्रदान की गयी तथा केन्द्र में द्वैधशासन की व्यवस्ता की गशो । इस हानि से यह अनिवार्य हो गया कि कुछ मामलों का शासन उत्तरदायी मंत्रियो के हाथ में कर दिया जाये। परन्तु गवर्नर जनरल व गवर्नरों की स्वेच्छा शक्तियों तथा व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों पर भारत सचिव का नियंत्रण ज्यों का त्यों बना रहा । आरक्षित मामलों में भारत सचिव के नियंत्रण में कोई अन्तर नहीं आया, यह पूर्तवत् बना रहा । भारत सचिव को निमाकित शक्तियां प्राप्त थीं.

1. गवर्नर जनरल व गवर्नरों के ऊपर भारत सचिव के अधीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण 'के अधिकार
2. सपरिषत् आदेश जारी करना,
3. क्राउन की देशी रियासतों के सम्बंध में शक्तियां,
4. ब्रिटेन में संघ अथवा प्रान्तीय सरकारों की ओर से ऋण लेना तथा पेंशन देना
5. भारत के आडिटर जनरल और गृह विभाग के हिसाब की जांच संबंधी वार्षिक रिपोर्ट, भारत सचिव को पेश करना,
6. भारतीय मामलों की सारी सूचनाएं ब्रिटिश संसद को देना, संसद वो सदस्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना,

7. गवर्नर जनरल और गवर्नरों को दिये जाने वाले आदेशों को ब्रिटिश संसट के सामने रखना
8. भारत सचिव भारतीय मामलों में क्राउन का संवेधानिक परामर्शदाता था,

3. **भारत सचिव के परामर्शदाता :** 1935 ई के अधिनियम द्वारा भारतीय परिषद को समाप्त कर दिया गया । उसके स्थान पर भारत सचिव को सलाह देने के लिए कुछ परामर्शदाताओं की नियुक्ति की गयी । इनकी संख्या 3 से 6 तक हो सकती थी इन परामर्शदाताओं में से कम से कम आधे व्यक्ति ऐसे होने चाहिए थे जो भारत में किसी न किसी पद पर कम से कम दस वर्ष रहे ही और जिनको भारत छोड़े हुए दो वर्ष से अधिक समय न गुजरा हो । इनका कार्यकाल पांच वर्ष हुआ करता था । परामर्शदाताओं को इंग्लैण्ड के कोष से वेतन मिलता था ।

   भारत सचिव को विवेक पर निर्णय करने का अधिकार दिया गया और उसे यह भी अधिकार था कि वह परामर्शदाताओं से परामर्श ले या ना ले, उनसे परामर्श समूहिक रूप में ले या व्यक्तिगत रूप से और उनके परामर्श को माने या न माने ।

4. **हाई कमिश्नर :**1935 ई. के अधिनियम के द्वारा 1919 ई. में स्थापित हाई कमिश्नर के पद और शक्तियों के संबंध में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन यही किया गया था । केवल यह परिवर्तन लाया गया कि अब उनकी नियुक्ति सपरिषद गवर्नर जनरल के द्वारा न होकर गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार देगी । उसका कार्यकाल 5 वर्ष का था । उसके निमाकित कार्य थे –

   (क) इंग्लैड में भारतीय हितों की देखभाल करना;
   (ख) इंग्लैड में भारत सरकार के लिए आवश्यक वस्तुओं को खरीदना
   (ग) भारत की तरफ से ब्रिटिश सरकार से इंग्लैड में अनुबंध,
   (घ) इंग्लैड में भारतीय विद्यार्थियों को हर तरह की सुविधाएं दिलाना ।

(ख) प्रस्ताविक संघीय योजना :

1935 ई. के अधिनियम एवं संविधान द्वारा भारत के लिए एक संघीय व्यवस्था का प्रावधान किया गया था। इसमें 11 गवर्नर, 6 चीफ कमिश्नर सम्मिलित होने थे । ब्रिटिश भारत के प्रान्तों को शामिल होना अनिवार्य था जबकि देशी रियासतों को होना ऐच्छिक जो रियासत संघ में शामिल होना चाहती थी उसे एक प्रवेश पत्र पर इकरारनामा करना पड़ता था । केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया था। केन्द्र और राज्यों के बीच तथा राज्यों के पारस्परिक झगड़ों का निपटारा करने के लिए संघीय न्यायालय की स्थापना की गयी थी। संविधान को संशोधित करने की प्रक्रिया जटिल थी । संशोधन का अधिकार केन्द्रीय विधान मण्डलों को नहीं दिया गया था, बल्कि यह अधिकार ब्रिटिश संसद ने अपने पास रखा ।

संघीय सरकार के दो मुख्य अंग – संघीय कार्यपालिका और संघीय विधान मण्डल थे । ब्रिटेन का समाट संघीय कार्यपालिका का प्रधान होता था तथा 1 गवर्नर जनरल उसके बदले में उसकी शक्तियों का प्रयोग करता था । गवर्नर शनरल का अधिकार उन विषयों तक फैला हुआ था जो संघीय सूची में थे और जिन पर संघोय विधान मण्डल कानून बना सकता था । संघीय विधानमण्डल के राज्यसभा और संघीय सभा दो सदन हुआ करते थे । रियासतें संघीय सभाओं में 125 सदस्य और राज्य सभा मे 104 सदस्य भेज सकती। ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के प्रतिनिधियों की संख्या संघीय लग में 250 व राज्य सभा में 156 थी । प्रान्तों के प्रतिनिधियों का चुनाव

पृथक निर्वाचन प्रणाली के अनुसार होता था । और भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों का नामांकन देशी नरेशों द्वारा होता था ।

(ग) संघीय कार्यपालिका :

1935 ई. के संविधान के द्वारा संघीय कार्यपालिका में गवर्नर जनरल, पार्षद तथा मंत्रिपरिषद् शामिल किए गए थे । इस व्यवस्था का स्वरूप इस प्रकार था कि:

(अ) **गवर्नर जनरल :–** भारत के गवर्नर जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश सप्राट द्वारा इंग्लैड के प्रधानमंत्री की सिफारिश पर होती थी। उसका कार्यकाल 5 वर्ष था । उसे भारतीय राजकोष से वेतन दिया जाता था । कुल मिलाकर प्रतिवर्ष 18 लाख रुपये उस पर खर्च होता था ।

शक्तियां एवं कार्य : गवर्नर जनरल समस्त शासन की धुरी था उसे निम्नांकित क्षेत्रों में शक्तियां व कार्य प्रदान किए गए थे –

1. स्वेच्छाचारी शक्तियां : अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को स्वेच्छाचारी शक्तियां प्रदान की गयी थी । इस दृष्टि से गवर्नर जनरल को प्रतिरक्षा विभाग, गिरजाघर संबंधी मामले, अधिराज्यों के अतिरिक्त भारत के अन्य देशों से संबंध और कबायली क्षेत्र के विभाग, अधिनियम द्वारा सुरक्षित विभाग के संचालन में अपनी स्वेच्छा के अनुसार कार्य करता था । उसकी इच्छा पर निर्भर करना था कि वह मंत्रियों से परामर्श ले या न ले और उनकी सलाह को माने या न माने ।
2. कार्यकारिणी शक्तियां : गवर्नर जनरल को कार्यकारिणी संबंधी भी अधिकार विग्जुन रूप में प्राप्त थे :
   1. मंत्रियों को नियुक्त करना तथा अपदस्थ करना,
   2. मंत्रिपरिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करना,
   3. कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों, वित्तीय परामर्शदाता तथा रिजर्व बैक के गवर्नर और डिप्टी गवर्नर की नियुक्ति करना,
   4. चीफ कमिश्नरों, संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों और फैडरल रेलवे प्राधिकारी के सदस्यों की नियुक्ति करना
   5. मंत्रियों के बीच कार्य बांटने, सरकारी कामकाज को आसानी से चलाने और शासन संबंधी समस्त सूचना की शीघ जानकारी के लिए नियम बनाना ।
3. विधायी शक्तियां : गवर्नर जनरल को विधायी क्षेत्र में भी क्षेत्राधिकार प्राप्त थे । इस क्षेत्र में वह संघीय सभा के अधिवेशन को बुलाना, स्थगित करता तथा उसे भंग करता था । विधेयकों के संबंध में गवर्नर जनरल कौ केन्द्रीय विधानमण्डल को संदेश भेजने, अनुचिन विधेयकों को रोकने, विधेयकों को अस्वीकार करने या सम्राट की स्वीकृति के लिए सुरक्षित करने का अधिकार प्राप्त था । गवर्नर जनरल को कानून बनाने (गवर्नर जनरल एक्ट) का अधिकार प्राप्त था । वह किसी विधेयक की रूपरेखा तैयार कर विधान मण्डल के भेज सकता था । उसे अध्यादेश भी जारी करने का अधिकार था । अध्यादेश दो प्रकार के थे – प्रथम केन्द्रीय विधानमण्डल

का अधिवेशन न होते रहने पर या कोई संकटकालीन अवस्था उत्पन्न हो जाने पर गवर्नर जनरल मंत्रिपरिषद की सलाह या व्यतिगत निर्णय से अध्यादेश जारी कर सकता था। इसे विधानमण्डल द्वारा अधिवेशन प्रारम्भ होने के 6 सप्ताह के अन्दर पास किया जाना आवश्ययक था। दूसरे अध्यादेश के अन्तर्गत स्वेच्छाचारी शक्तियां या व्यक्तिगत निर्णयों के अन्तर्गत गवर्नर जनरल अध्यादेश जारी कर सकता था जो 6 महीने तक जारी रह सकता था । संविधान की धारा 45 के अनुसार अधिनियम को एक घोषणा द्वारा स्थग करने का गवर्नर जनरल को अधिकार था, यदि वह यह महसूस करे कि संघीय सरकार इसके अनुसार नहीं चलायी जा सकती है, इस घोषणा की स्वीकृति भारत सचिव के माध्यम से ब्रिटिश संसद द्वारा आवश्यक थी ।

4. विशेष उत्तरदायित्व तथा व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ : गवर्नर जनरत्न पर कुछ विशेष जिम्मेदारिया सौपी गई थी (1935 ई के अधिनियम द्वारा), जिनका निर्वाह करने के लिए वह व्यक्तिगत से कार्य करता था । अधिनियम में निमाकित विशेष उत्तरदायित्व का उल्लेख किया गया था –

   1. भारत या उसके किसी भाग में शान्ति और के भंग होने को सम्भावना को रोकना,
   2. संघ सरकार की आर्थिक स्थिरता और साख रक्षा करना,
   3. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करना,
   4. सरकारी कर्मचारियों और उनके आश्रितों के समुचित अधिकारों की रक्षा करना,।
   5. भारत में निवास करने वाले अंग्रेज व्यापारियों के विरुद्ध किसी प्रकार का विभेद नही होने देना,
   6. ग्रेट ब्रिटेन और बर्मा से आने वाले माल को भारत में न आने देने के लिए किसी भी पक्षपातपूर्ण कार्य और नीति को रोकना।

कार्यकारिणी परिषद गवर्नर जनरल की सहायता के लिए कार्यकारिणी परिषद् की व्यवस्था की गयी थी । इस परिषद् में अधिक से अधिक तीन सदस्य होते थे । इनकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी । ये सदस्य सुरक्षित विभागों के विषय में गवर्नर जनरल को सहायता पहुंचाते थे। सदस्य गवर्नर जनरल प्रति उत्तरदायी थे। वे केन्द्रीय विधानमण्डल के दोनों सदनों के सदस्य थे और उनकी बैठकों में भाग लेते थे लेकिन उनके प्रति उत्तरदायी नहीं थे ।

मंत्रिपरिषद हस्तांतरित विषयों के समुचित शासन संचालन के लिए मंत्रिपरिषद् की व्यवस्था की गयी थी । इसकी संख्या अधिक से अधिक 10 होती थी । जिनकी नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जाती थी । मंत्रियों का विधानमण्डल के किसी एक सदन का सदस्य होना आवश्यक था । गवर्नर जनरल मंत्रिपरिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता था । जो कि मंत्रियों में सामूहिक उत्तरदायित्व को प्रोत्साहित करता था ।

(घ) संघीय विधानमण्डल :

संघीय विधानमण्डल में दो सदनों की व्यवस्था की गयी थी । ऊपरी सदन राज्य सभा और निम्न सदन संघीय सभा हुआ करता था । इन सदनों का स्वरूप इस प्रकार था :

(क) राज्यसभा – यह ऊपरी सदन हुआ करता था, जिसमें 260 सदस्य थे । इसमें से 104 देशी रियासतों के सदस्य थे । इन्हे देशी नरेश नामांकित करते थे । इनमें से 150 सदस्य साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली के अनुसार चुने जाते थे और 6 सदस्यों को गवर्नर जनरल अपनी इच्छानुसार महिलाओं, अल्पमतों और दलित वर्गों को प्रतिनिधित्व देने के लिए नामांकित करता था । सामान्य स्थानों, मुसलमानों और सिक्खों के लिए सुरक्षित स्थानों पर प्रत्यक्ष चुनाव होता था जबकि यूरोपियनों, आग्ल भारतीयों और ईसाईयों के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था की गयी थी । राज्यसभा के सदस्यों का कार्यकाल 9 वर्ष का था, एक तिहाई सदस्य प्रत्येक तीन वर्ष पर अवकाश प्राप्त करते और उनकी जगह पर नए सदस्य चुने जाते थे । यह एक स्थायी सदन था, जिसे भंग नहीं किया जा सकता था ।

(ख) संघीय सभा :– यह निम्न सदन होता था । इसमें कुल 375 सदस्य होते थे इनमें 125 स्थान देशी रियासतों को और 250 स्थान ब्रिटिश प्रान्तों को दिये गये थे। 250 स्थानों में – सामान्य स्थान – 105, हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थान – 19, सिक्ख – 6, मुसलमान – 82, आग्ल भारतीय - 4, यूरोपीयन – 8, भारतीय ईसाई – 8, व्यापार वाणिज्य – 11, जमींदार – 7, मजदूर – 10, नारियां – 9, इनके सदस्य प्रान्तीय विधानसभाओं द्वारा चुने जाते थे ।

संघीय विधानमण्डल को विधायी, कार्यकारिणी और वित्तीय शक्तियां प्राप्त होती थी। विधायी शक्तियों के अन्तर्गत समवर्ती सूची पर कानून और प्रान्तीय विषयों पर कानून् बनाने का अधिकार शामिल था गवर्नर जनरल को किसी विधेयक पर वीटों का अधिकार प्राप्त था । विधानमण्डल को संवैधानिक संशोधन का अधिकार नहीं दिया गया था ।

दोनों सदनों की कार्यकारिणी शक्तियों में प्रश्न पूछने, पूरक प्रश्न पूछने, काम रोको प्रस्ताव लाने आदि उल्लेखनीय थे । दोनों सदन कोई भी प्रस्ताव पास कर सकते थे, जिसे मानना या न मानना गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर करता था।

बजट के बिल संघीय सभा में ही पेश किया जा सक्ता था । इसके पश्चात् ही वह राज्यसभा में भेजा जाता था ।

(ङ) संघीय न्यायालय :

1935 ई. के संविधान एवं भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत भारत के लिए संघीय न्यायालय की स्थापना की गयी थी ।

संघीय न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा अधिक से अधिक 6 अन्य न्यायाधीश नियुक्त किए जा सकते थे । इनकी नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट द्वारा उच्च योग्यताओं के आधार पर की जाती थी । न्यायाधीशों को भारतीय राजस्व कोष से वेतन दिया जाता था। वे 65 वर्ष की आयु तक अपने पा पर बने रह सकते थे।

संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए निमांकित योग्यताए निर्धारित की गयी:

1. वह ब्रिटिश भारत या संघ में शामिल होने वाली किसी देशी रियासत के उच्च न्यायालय में कम से कम पांच वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो,
2. वह इंग्लैण्ड और उत्तरी आयरलैण्ड में दस वर्ष तक बैरिस्टर रहा हो,
3. स्कॉटलैण्ड के एडवोकेट संघ का दस वर्ष तक सदस्य रहा हो,
4. ब्रिटिश भारत या संघ में शामिल होने वाली देशी रियासत के उच्च न्यायालय का दस वर्ष तक एडवोकेट रहा हो ।

संघीय न्यायालय के निन्मलिखित क्षेत्राधिकार थे

1. संघीय न्यायालय को अधिनियम की व्याख्या का प्रारम्भिक अधिकार प्राप्त था । भारतीय संघ और प्रान्त अथवा संघ में शामिल होने वाली देशी रियासतों के बीच विवाद अथवा किसी प्रान्त या देशी रियासत के आपसी झगड़े, अथवा दो या अधिक प्रान्तों या रियासतों के ब्रीच झगड़ों के निपटारे के संबंध में भी इसे प्रारम्भिक अधिकार दिया गया था ।
2. संघीय न्यायालयों को प्रान्तों और संघों में शामिल होने वाली देशी रियासतों के उच्च न्यायालयों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार था ।
3. गर्वनर जनरल के अनुरोध पर किसी कानूनी मामले के संबंध में संघीय न्यायालय पतमर्श दे सकता था।
4. न्यायालय को अपनी कार्यवाहियों तथा निर्णयों का रिकार्ड रखने का अधिकार प्राप्त था।

(च) प्रान्तीय स्वायत्तता :

प्रान्तीय स्वायत्तता 1935 ई. के संविधान अथवा अधिनियम की प्रमुख विशेषता थी। प्रान्तों में नवीन संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत स्वराज्य अथवा स्वायत्तता को स्थापित किया गया था । इसके अनुसार प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की गयी थी । इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रान्तीय क्षेत्र में जनता द्वारा निर्वाचित मंत्रियों का नियंत्रण एवं प्रत्येक प्रान्त को अपने क्षेत्र में बाहरी नियंत्रण से स्वतंत्रता प्रदान की गयी थी । इसके अन्तर्गत :

1. प्रान्त की कार्य पालिका शक्ति सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर में निहित थी । गवर्नर को सहायता एवं परामर्श कार्यों में स्वविवेक की शक्तियां भी प्राप्त थी ।
2. गवर्नर को जिन विषयों में स्वविवेक एवं व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियां प्राप्त नहीं थी उनमें मंत्रियों को शासन भार सौपा गया था। मंत्री अपने कार्यों के लिए विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी थे ।
3. प्रान्तों में व्यापक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित विधान सभा की स्थापना की गयी थी।
4. प्रान्तों में स्वतंत्र कार्यपालिका; उच्च न्यायालय और प्रान्तीय सेवा में स्थापित किए गए थे।

गवर्नर :– प्रान्तीय कार्यपालिका का प्रधान तथा ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधि गवर्नर होता था । बम्बई, मद्रास और बंगाल के गवर्नरों को ब्रिटिश सम्राट भारत सचिव की सिफारिशों

के अनुसार नियुक्त करता था । शेष प्रान्तों के गवर्नरों को गवर्नर जनरल की सिफारिश पर, नियुक्त किया जाता था । उनका कार्यकाल 5 वर्ष का था। उन्हें वेतन और भत्ता– भारतीय राजस्व से दिये जाते थे । प्रान्तीय गवर्नर को निमाकित अधिकार एवं शक्तियां प्रदान की गयी थी

अधिकार एवं कार्य :

(अ) कार्यपालिका शक्तियां :

1935 ई. के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय गवर्नर को तीन प्रकार की कार्यपालिका शक्तियां प्रदान की गयी थी :–

1. स्वेच्छाचारी शक्तियां,
2. व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियां,
3. मंत्रियों की सलाह से प्रयोग में लायी जाने वाली शक्तियां।

गवर्नर को स्वेच्छाचारी शक्तियों के अन्तर्गत निमांकित शक्तियां प्राप्त थी :

1. इस बात का निर्णय. करना कि किसी मामले में उसे अपनी स्वविवेक शक्तियों का प्रयोग करना है या नहीं,
2. मंत्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करना,
3. प्रान्तीय सरकार को सुचारू रूप से चलाने के लिए नियम बनाना,
4. मंत्रियों को चुनना और हटाना
5. प्रान्तीय विधान मण्डल को बुलाना, स्थगित करना, तथा निचले सदन को भंग करना,
6. किसी विधेयक पर मतभेद की स्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाना,
7. एक्ट बनाना, अध्यादेश जारी करना ।

इसी प्रकार व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों में

1. प्रान्त या उसके किसी भाग में शन्ति और सुव्यवस्था को भंग करने वाले खतरों को दूर करना,
2. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करना,
3. सरकारी नौकरी और उनके आश्रितों के उन अधिकारों की रक्षा करना जो उन्हें अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त थे,
4. देशी राज्यो के अधिकारों और शासकों की मर्यादा की रक्षा करना,
5. गवर्नर जनरल के आदेशों व निर्देशों का पालन ।

इसके अतिरिक्त मंत्रियों की सलाह से प्रयोग में लायी जाने वाली शक्तियों के अंतर्गत गवर्नर व्यवहार में अपनी स्वविवेक व व्यक्तिगत निर्णयों के अनुसार कार्य करता था। क्योंकि वह वास्तविक प्रधान था ।

(ब) विधायी शक्तियां :

प्रान्त के गवर्नर को विधायी क्षेत्र में निमाक्ति शक्तियां प्रदान की। गयी थी कि –

1. प्रान्तीय विधानसभा के सदस्यों की बैठक बुलाना, स्थगित करना तथा विधानसभा को भंग करना
2. प्रान्तीय विधानमण्डल के सदनों की संयुक्त बैठक बुलाना, भाषण देना,
3. किसी विधेयक पर मतभेद की स्थिति में दोनों की संयुक्त बैठक बुलाना,
4. दोनों सदनों को संदेश भेजना
5. किसी विधयेक को पुनर्विचार के लिए विधानमण्डल के पास वापस भेजना,
6. विधानमण्डल के सदनों के कार्य संचालन के लिए नियम बनाना,
7. अध्यादेश जारी करना
8. घोषणा द्वारा संविधान को स्थगित कर सकता था तथा सभी प्रांतीय शक्तियों क्रो हस्तगत कर सकता था।

(स) वित्तीय शक्तियां

प्रान्तीय गवर्नर को वित्त के क्षेत्र में भी शक्तियां प्राप्त थी । प्रान्तीय बजट प्रान्तीय गवर्नर द्वारा तैयार एवं पेश किया जा सकता था । प्रांतीय राजस्व पर व्यय के मुद्दों का निर्णय गवर्नर करता था । प्रान्तीय विधान मण्डल को वह पुन: मंजूर कर सकता था।

मंत्री परिषद्: प्रान्तीय गवर्नर को प्रशासन के क्षेत्र में सहायता एवं परामर्श देने के लिए एक मंत्रीपरिषद् की व्यवस्था की गयी थी । इनकी नियुक्ति गवर्नर द्वारा होती थी । बहुमत दल का नेता मुख्य मंत्री होता था तथा उसकी सलाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति होती थी । मंत्री स्वयं पद त्याग कर सकता था या विधान सभा द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पास करने पर हट सकता था। मंत्रियों का कार्यकाल साधारणत: 5 वर्ष होता था । मंत्री को विधानसभा के किसी एक सदन का सदस्य होना आवश्यक था । मंत्रियों कि संख्या निश्चित नहीं की गयी थी । यह संख्या आवश्यकतानुसार घटायी व बढ़ायी जा सकती थी ।

गवर्नरों को निर्देश पत्र द्वारा यह आदेश दिया गया था कि वे महत्वपूर्ण अल्पसंख्यकों को मंत्रीपरिषद में प्रतिनिधित्व प्रदान करें । इसी प्रकार उन्हें सामूहिक उत्तरदायित्व को भी प्रोत्साहित करना था । प्रत्येक मंत्री के उत्तरदायित्व में एक या दो विभाग रहते थे । सामान्य एवं दैनिक कार्यो का निर्णय मंत्री स्वयं करता था । सिद्धान्त और नीति संबंधी प्रश्नों को मंत्रिमंडल के सामने विचार क्षेत्र में रखा जाता था । मंत्रियों के अधिकार बहुत सीमित थे । गवर्नर की स्वेच्छाचारी या स्वविवेक शक्तियों और व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों ने प्रान्तीय स्वराज्य को काफी सीमित तथा अवास्तविक बना दिया था ।

प्रान्तीय विधान मण्डल 1935 ई. के अधिनियम द्वारा 6 प्रान्तों में द्विसदनात्मक व्यवस्था तथा 5 प्रान्तों में एक सदनात्मक व्यवस्था लागू की गयी थी । इनमें निचले सदन को विधानसभा और ऊपरी सदन के विधान परिषद कहा जाता था। विधान सभा और विधान परिषद के सदस्या की संख्या पिन–पिन प्रान्तों में भिन्न–पिन हुआ करती थी । दोनों प्रकार के सदस्यों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव की पद्धति को अपनाया गया था। विधान मण्डल में प्रतिनिधित्व का आधार साम्प्रदायिक था । हरिजनों, दलित वर्गों,

कबिलों तथा नारियों को भी अलग प्रतिनिधित्व दिया गया । विभिन्न सम्प्रदायों, हितों, वर्गो को प्रतिनिधित्व देने के लिए मतदाताओं को 17 भागों में बांट दिया गया था। जनता में 14 प्रतिशत को मत देने का अधिकार दिया गया। जो मतदाता शिक्षित, आयकर या भूराजस्व अथवा गृह कर देते थे अथवा सम्पत्तिशाली व्यक्ति आदि योग्यता रखने वाले व्यक्ति ही मतदाता हुआ करते थे इसी प्रकार विधान मण्डल के भूतपूर्व सदस्य, कार्यकारिणी के सदस्यों, मंत्रीजन, नगरपालिका और स्थानीय बोर्डों के प्रधानों को भी मतदान करने का अधिकार दिया गया था ।

विधान सभा का कार्यकाल 5 वर्ष का था । गवर्नर इससे पूर्व भी इसे भंग कर सकता था । विधान परिषद की अवधि 9 वर्ष स्पा करती थी । इसके 13 सदस्य प्रत्येक तीन वर्ष पर अवकाश प्राप्त करते थे उनके स्थान पर नए सदस्यों का निर्वाचन होता था यह एक स्थायी सदन था ।

विधान परिषद का अध्यक्ष सभापति और विधान सभा का स्पीकर कहलाता था। दोनों सदन अपने अध्यक्षों को चुनते थे। सदन चौदह दिन का नोटिस देकर अविश्वास प्रस्ताव द्वारा अध्यक्ष को हटा सकते थे। सदन के अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार प्राप्त था।

प्रान्तीय विधानमण्डल को भी विधायी, कार्यकारिणी और वितीय शक्तियां प्राप्त थी । विधायी क्षेत्र में प्रान्तीय विधानमण्डल, प्रान्तीय सूची तथा समवर्ती सूची पर कानून बना सकता था । समवर्ती सूची के विषय में केन्द्रीय कानून– से विरोध होने पर केन्द्रीय कानून को ही मान्यता मिलती थी । विधेयक को कानून बनाने के लिए गवर्नर की स्वीकृति आवश्यक थी । कई विधेयक को गवर्नर जनरल की पूर्वानुमति के बिना प्रान्तीय विधानमण्डल में पेश नहीं किया जा सकता था। उदाहरणार्थ – संसदीय कानून का विरोध करने वाला विधेयक, गवर्नर जनरल के किसी एक्ट या अध्यादेश को संशोधित या रद्द करने वाला विधेयक आदि ।

प्रान्तीय मंत्रिपरिषद विधानसभा के प्रति उत्तरदायी था । विधानसभा अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मंत्री परिषद को हटा सकती थी विधान मण्डल के दोनों सदन मंत्रियों से प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछ सकते थे। काम रोको प्रस्ताव ला श्कते थे । बजट की मांगों में कटौती कर सकते थे।

धन विधेयक केवल विधानसभा में ही पेश हो सकता था । बजट के दो भाग होते थे, पहले भाग में प्रान्तीय राजस्व पर भारित व्यय थे, जो बजट का 30 प्रतिशत भाग होते थे । इन पर विधानसभा बहस कर सकती थी लेकिन कोई कटौती नहीं कर सकती थी । बजट का शेष भाग जो लगभग 70 प्रतिशत होता था। विधानसभा के समय अनुसार के लिए मांगों के रूप मे पेश किया जा सकता था । गवर्नर अपनी विशेष शक्ति द्वारा कटौती की गई धन राशि अथवा अस्वीकृत मांग को पुन: स्वीकृति प्रदान कर सकता था ।

इस प्रकार 1935 ई. के अधिनियम के तहत भारतीय संविधान की उक्त मुख्य धाराओं एवं व्यवस्थाओं को व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया था ।

13.7 संविधान का आलोचनात्मक स्वरूप

यद्यपि 1935 ई. का भारत सरकार अधिनियम अथवा संविधान ब्रिटिश शासन काल के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं अन्तिम संवैधानिक कदम था। 1861 ई से प्रारम्भ हुए संवैधानिक विकास की यह चरम सीमा थी । इसी भांति वर्तमान संविधान का लगभग दों–तिहाई भाग इस संविधान से लिया गया है ।

यह अधिनियम भारतीयों को उत्तरदायी शासन प्रदान करने के संदर्भ में एक ठोस कदम था । इसने इण्डिया काउन्सिल को समाप्त कर भारत सचिव को तथा उसके परिषद के सदस्यों को परामर्श दाताओं के रूप में परिणित कर दिया था । इण्डिया आफिस का व्यय भी ब्रिटिश कोष पर लाद दिया था । प्रान्तों में वैध शासन के स्थान पर स्वायत्तता पूर्ण शासक स्थापित किया तथापि इस अधिनियम एवं संविधान की आलोचना की गई है ।

ऐटली जैसे निष्पक्ष ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ने इस बात को स्वीकार किया कि इसमें अधिराज्य स्थिति या औपनिवेशक स्वराज्य की चर्चा नहीं थी । इस प्रकार मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिनाह ने इसकी पूर्ण रूप से रद्दी, बुनियादी रूप से बुरा और स्वीकार करने के लिए पूर्णतया अयोग्य बताया । पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस अधिनियम को दासता का चार्टर बताया। इस अधिनियम की निम्नांकित आधार पर आलोचना की गई है :

1. इस संविधान का यह प्रमुख दोष था कि गवर्नर तथा गवर्नर जनरल को अनेक मनमानी शक्तियां प्रदान की गयी थी। परिणामस्वरूप प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना या स्वराज्य निरर्थक हो गया। बजट पर भी गवर्नर व गवर्नर जनरल का नियंत्रण बना रहा। प्रान्त में शान्ति का भय रखने की विशेष जिम्मेदारी गवर्नर की थी जिससे वे क्रांतिकारी व कांग्रेसी आदोलनों को दबा सकते थे । वे नागरिक स्वतंत्रता को कुचल सकते थे ।
2. अधिनियम के अनुसार केन्द्र में जिस संघ की स्थापना के लिए सुझाव दिया गया था वह अत्यन्त दोषपूर्ण था । इस संघ में ब्रिटिश प्रान्तों को मिलाना अनिवार्य था किन्तु देशी रियासतों को इच्छा पर छोड़ दिया गया था कि वे इसमें शामिल ही अथवा न हों । ब्रिटिश प्रान्त व देशी रियासतों में क्षेत्रफल, जनसंख्या, दर्जा आदि दृष्टि से असमानता थी । ऐसी असमान स्थिति में इन्हें संघ में मिलाना अनुचित था। इसी प्रकार देशी रियासतों की जनता को संघ में कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था । संघ के अधिकार व शक्तियां सीमित थे । गवर्नर जनरल को तानाशाह जैसी शक्तियां प्राप्त थी।
3. इस अधिनियम द्वारा सांप्रदायिक चुनाव प्रणाली का विस्तार किया गया। इसे हरिजनों, भारतीय ईसाईयों, आग्ल भारतीय सम्प्रदाय पर भी लागू कर दिया गया । इस पद्धति द्वारा हरिजनों को हिन्दुओं से अलग करने की कोशिश की गयी और भारतीय राजनीतिक वातावरण को विषैला बना दिया गया जिससे भारतीय एकता नष्ट हो जाये और अंग्रेजों का राज्य भारत मै स्थायी रूप से जमा रहे ।
4. इस अधिनियम द्वारा अल्पमतों की रक्षा के लिए अनेक रक्षा कवच तथा आरक्षण रखे गए थे। उसके लिए गवर्नरों और गवर्नर जनरलों को विशेष शक्तियां प्रदान की गयी थी ।
5. अधिनियमों में भारतीयों को आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं दिया गया । भारतीयों को अपने लिए एक स्वतंत्र संविधान बनाने का अधिकार नहीं था।

6. 1935 ई. के संविधान में प्रान्तों, वैध शासन के कटु अनुभवों के उपरान्त भी इसे केन्द्र में स्थापित करने का प्रावधान रखा गया । गवर्नर जनरल को इतने विशेषाधिकार स्वीकृत कर दिये गये कि केन्द्रीय मंत्री सर्वथा पंगु हो गये थे।
7. इस संविधान ने भारतवासियों को संशोधन करने व परिवर्धन करने का कोई अधिकार नहीं दिया।

13.8 कांग्रेस की 1935 ई. से 1937 ई. तक की गतिविधियां

1935 ई. में भारतीय सुधार अधिनियम के तहत सविधान की स्थापना की गई एवं व्यवस्थाओं को लागू किया गया । इस परिस्थिति एवं वातावरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जो गतिविधियां 1937 ई तक के समय में बनी रही वह आधुनिक भारतीय इतिहास एवं संवैधानिक तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के संदर्भ में महत्वपूर्ण चरण माना जाता है ।

यद्यपि जिन्नाह के चौदह सूत्रीय कार्यक्रम एवं मुसलमान के लिए पृथक राज्य की मांग के कारण मुस्लिम लीग एव कांग्रेस में मतभेद उतम हो गये थे । तथापि 1937 ई तक संवैधानिक प्रश्नों पर दोनों दल एक दूसरे के साथ सहयोग करते रहे। 1935 ई क़े अधिनियम की संघीय व्यवस्था की जिनाह ने आलोचना की और कांग्रेस ने भी उसका समर्थन किया । केन्द्रीय विधानमण्डल में लीग और कांग्रेस का सहयोग बना रहा था। 1936 ई. में जो बजट प्रस्तुत हुआ था वह कांग्रेस व लीग के गठबंधन के परिणाम स्वरूप अस्वीकृत हो गया । गवर्नर जनरल को अपनी विशेष शक्तियों के आधार पर बजट पारित करना पड़ा ।

1935 ई के संविधान के अनुसार 1937 ई के आम चुनावों में कांग्रेस और लीग ने भाग लिया इन चुनावों के समय भी लीग और कांग्रेस के आपसी संबंध मैत्री पूर्ण बने रहे । उत्तरप्रदेश में चुनाव में एक दूसरे को सहयोग देने के संबंध में दोनों के मध्य समझौता हुआ । कांग्रेस और लीग की एकता संयुक्त प्रान्त में भी उभरी, लेकिन दुर्भाग्यवश यह संयुक्त मोर्चा क्षणिक ही रहा और थोड़े ही समय में लीग व कांग्रेस का आपसी मतभेद इतना अधिक बढ़ गया कि इसके परिणाम भारतवर्ष के लिए घातक सिद्ध हुए ।

फरवरी 1937 ई के चुनाव परिणाम कांग्रेस और लीग के संबंधों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुए। चुनाव से पूर्व नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने जनसम्पर्क आन्दोलन शुरू किया । कांग्रेस ने यह प्रचार किया कि भारत की मुख्य समस्या साम्प्रदायिक न होकर आर्थिक है और मुस्लिम जनता का भाग्य भी कांग्रेस से जुड़ा हुआ है । जिनाह का इस संबंध में यह मानना था कि कांग्रेस द्वारा चलाये जा रहे इस आन्दोलन का उद्देश्य मुसलमानों में फूट डालना व उन्हें दुर्बल करना है परिणामस्वरूप लीग ने मुस्लिम जनता में कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार शुरू कर दिया।

उक्त स्थिति में 1937 ई. में जो आम चुनाव हुए उसमें अनेक दलों ने भाग लिया जिनमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग प्रमुख थी। मद्रास, बिहार, बम्बई, उत्तर प्रदेश और उड़ीसा में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। आसाम और उत्तर प्रदेश की सीमा प्रान्त में कांग्रेस सबसे शक्तिशाली दल रहा । मुस्लिम लीग को 51 स्थान प्राप्त हुए। चुनाव में विजय प्राप्त करने के पश्चात् कांग्रेस ने पद ग्रहण करने के पूर्व सरकार से यह आश्वासन मांगा कि गवर्नर दैनिक प्रशासन में मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे । प्रारम्भ में गवर्नरों ने आश्वासन' देने से मना कर दिया और उन्होंने अन्तरिम रूप मंत्रिमण्डल बनाया । उनमें परिस्थितिवश वायसराय लार्ड लिनालिथगों ने 21

जून 1937 ई. को यह आश्वासन दिया कि गवर्नर की विशेष जिम्मेदारियां उसकी प्रान्तीय प्रशासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं देती और गवर्नर साधारणत: मंत्रियों के परामर्श के अनुसार उन सब मामलों में काम करेंगे, जिन मामलों में मंत्रियों को अधिकार दिए गए है । इस घोषणा के बाद कांग्रेस ने 7 जुलाई, 1937 ई. के प्रस्ताव से अपने सदस्यों को पद ग्रहण करने के लिए आज्ञा दे दी। परिणामस्वरूप कांग्रेस ने 6 प्रान्तों उत्तर प्रदेश, बिहार, मद्रास, उड़ीसा, मध्य प्रान्त में अपना मंत्रीमण्डल वनाया। उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त और आसाम में उसने दूसरे दलों से मिलकर संयुक्त मंत्रिमंडल बनाया। कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के साथ अनेक कारणों से गठजोड़ करना उचित नहीं समझा और उसके सदस्यों को मंत्रिमण्डल में लेने से इन्कार कर दिया ।

मार्च 1937 ई. में कांग्रेस ने एक संसदीय उप समिति का निर्माण किया जिसे कांग्रेस हाई कमान कहा जाने लगा । इसके डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना आजाद और सरदार वल्लभभाई पटेल सदस्य थे। कांग्रेस हाई कमान का कांग्रेसी मंत्रियों और विधायकों पर पूर्ण नियंत्रण था। मध्य प्रान्त में कांग्रेसी हाई कमान ने डाक्टर खरे के स्थान पर पं. रविशंकर शुक्ल की जो मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त किए गए । वह कांग्रेस हाई कमान के प्रभाव को रूष्ट दिखाती है ।

कांग्रेसी मंत्रियों ने विशेषत: जनता के लिए कल्याणकारी कार्य किए । उन्होंने किसानों को ऋण से मुक्ति दिलाई और साहूकारों के शिकंजे से मुक्त कराया। किसानों को अपनी वस्तुओं को बेचने की अधिकारिक सुविधाएं प्रदान की एवं उनसे संबंधित कानून व नियम बनाऐ। जमींदारी प्रथा को खत्म करने, प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार, ग्राम सुधार, नशाबन्दी की ओर ध्यान दिया राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण जिनकी सम्पत्ति जज कर ली गई थी, वापस कर दी गई ।

13.9 कांग्रेस व संवैधानिक गतिविधियों का प्रभाव

1935 ई. से 1937 ई. तक कांग्रेस की जो निरन्तर गतिविधियां बनी रही उसका स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण में सक्रिय योगदान एवं प्रभावपूर्ण गतिविधियों का स्वरूप रहा । इन गतिविधियों के परिणाम स्वरूप भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप अत्याधिक रूप में सक्रिय हुआ। इनके परिणाम स्वरूप अंग्रेजी सरकार ने अगस्त 1940 में प्रस्ताव पारित किया जिसमें यह महत्वपूर्ण घोषणा की गयी थी कि भारत का संविधान बनाना भारतीयों का अपना अधिकार है इसमें स्पष्ट प्रादेशिक स्वशासन की प्रतिज्ञा की गई थी लेकिन कांग्रेस ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था । जिस समय द्वितीय विश्व युद्ध का वातावरण था कांग्रेस व अंग्रेजी सरकार के मध्य मतभेद की स्थिति बनी हुई थी । 1942 ई. में स्टेर्ल्ड क्रिप्स के नेतृत्व में एक मिशन भारत आया जिसमें यह कहा गया कि युद्ध समाप्त होते ही भारतीयों का एक निर्वाचित निकाय बनाया जाएगा जोकि भारत के लिये नया संविधान बनाएगा । संविधान में भारतीय रियासतों को भी सम्मिलित किये जाने का प्रावधान आदि सुझाव रखे परन्तु कांग्रेस को इससे संतोष नहीं था । इस स्थिति में 14 जुलाई 1942 ई. को कांग्रेस कार्यकारिणी ने अंग्रेजों को भारत से चले जाने (भारत छोड़ो आन्दोलन) का प्रस्ताव पारित किया। 8 अगस्त, 1942 को बम्बई में हुयी अखिल भारतीय कांग्रेस क्येटी की बैठक में इस प्रस्ताव का समर्थन हुआ ।

1945 ई. में लार्ड वैवल ने एक योजना प्रस्तुत की और जब तक नया संविधान न बने वायसराय की कार्यकारिणी के पुनर्गठन का प्रस्ताव किया। लेकिन कांग्रेस व लीग ने इसे स्वीकार नहीं किया। 25 जून, 1945 ई. के शिमला सम्मेलन में 10 जुलाई 1945 ई. में जो आम चुनाव

हुए उनमें श्रमिक दल के लार्ड पथिक लारेंस जो भारत के मित्र थे भारत राज्य सचिव बने। इस समय यह कहा गया कि भारत में चुनाव करवाये जायेंगे, चुनावों के तुरन्त पश्चात् भारत का संविधान बनाने हेतु भिन–भिन राजनैतिक दलों की सहायता से एक सभा गठित मे जायेगी।

1945–46 ई. में केन्द्रीय व प्रान्तीय चुनाव हुए । कांग्रेस ने लगभग सभी प्रान्तों में सफलता प्राप्त से। इसके पश्चात् 16 गई 1946 ई. में मंत्री मण्डल की रिपोर्ट तैयार की गयी । इसमें कहा गया कि भारत में अंग्रेजी भारत व रियासतों का मिला जुला एक सद होना चाहिये जो विदेशी मामले, रक्षा, संचार साधनों की देखभाल करे और इनके लिए कर लगा सके, इसका मुख्य कार्य भारतीयों द्वारा अपना संविधान बनाने के कार्य को आरम्भ करना था 1 कांग्रेस व लीग ने अनिच्छा के साथ मंत्रिमण्डल, शिष्ट मण्डल की योजना स्वीकार कर ली और संविधान समय के अनुसार चुनाव व राष्ट्रीय सरकार का गठन हुआ । लेकिन यह व्यवस्था कुछ ही समय बनी रही । कांग्रेस की स्वतंत्रता की मांग निरन्तर बनी रही और परिणाम स्वरूप 20 फरवरी 1947 ई. को ब्रिटिश प्रधान मंत्री श्री ऐटली द्वारा घोषणा की गई कि समाट की सरकार जून, 1947 ई. तक प्रमुख सत्ता भारतीयों के हाथ में दे देगी । इसके पश्चात् 3 जून, 1947 में भारत के वाइसराय माऊंटबैटन ने भारत को स्वतंत्रता प्रदान किए जाने व संविधान सभा का निर्माण करने की घोषणा की । इस योजना को सभी दलों ने स्वीकार कर लिया । ब्रिटिश सरकार ने 4 जुलाई, 1947 ई. को संसद में विधेयक रखा। 18 जुलाई तक यह पारित हो गया । इस प्रकार 1947 ई का भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम बन गया । इसके पश्चात् भारत में संवैधानिक गतिविधियों के अन्तर्गत भारत के लिए 30 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान की स्थापना को प्रोत्साहन मिला जो कि 1935 ई. के पश्चात् कांग्रेस व संवैधानिक गतिनिधियो का स्पष्ट परिणाम था ।

13.10 सारांश

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह माना जाता है कि, 1935 ई. का भारत सरकार अधिनियम, उसके अन्तर्गत स्थापित संविधान ब्रिटिश शासनकाल के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एंव संवैधानिक कदम था । संवैधानिक विकास की यह सीमा थी । भारत में उत्तरदायी और प्रतिनिधित्व शासन का वास्तविक स्वरूप 1935 ई. संविधान द्वारा ही प्राप्त हुआ था।

सन 1950 ई. के वर्तमान संविधान पर भी 1935 के संविधान का अधिक प्रभाव पड़ा। वर्तमान संविधान का 273 भाग इस संविधान एवं अधिनियम से लिया गया। विभिन्न स्थानों पर तो संविधान के उपबन्धों को वाक्यश उनार दिया गया और कहीं–कहीं आवश्यक संशोधन कर दिया गया। प्रो. श्री निवासन ने तो यहां तक कहा कि "भारतीय कांग्रेस की सक्रिय गतिविधियों के परिणाम स्वरूप इन संवैधानिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिल सका।"

13.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 1935 ई के अधिनियम व संविधान की स्थापना से पूर्व संवैधानिक विकास का स्वरूप बताइये।
2. 1885 ई. से 1935 ई. तक कांग्रेस की गतिविधियों का उल्लेख, कीजिए ।
3. 1935 ई में संविधान निर्माण की परिस्थितियों का वर्णन कीजिए ।
4. 1935 ई. के संविधान की मुख धाराओं का वर्णन कीजिए।
5. कांग्रेस की 1935 ई से 1937 ई के मध्य गतिविधियों का विवेचन कीजिए।

6. कांग्रेस व संवैधानिक गतिविधियों (1935 ई. से 1937 ई.) के भारतीय स्वतंत्रता व संविधान पर प्रभावों का वर्णन कीजिए ।
7. निमाकित वाक्यों को पढ़कर उनके समुख सही या गलत का निशान लगाइये।

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेंस की स्थापना ए.ओ. हयूम द्वारा की गयी थी।()
2. तिलक उदारवादी विचार के राजनीतिज्ञ थे। ()
3. 1935 ई. के संविधान के अनुसार प्रान्तों को स्वायत्तता प्रदान की गयी थी। ()
4. 1935 ई. के आम चुनाव में कांग्रेस को असफलता प्राप्त हुई थी। ()
5. 1950 ई. में स्थापित वर्तमान संविधान 1935 ई. के संविधान की लगभग नकल है। ()

13.12 संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. कीथ – "कांस्टिटयुशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया"
2. ए सी. बनर्जी – "इण्डियन कांस्टिटयुशनल डोक्यूमेचस" (1961 संस्करण खण्ड 4)
3. चिन्तामणि व मसानी – "इण्डियन कांस्टिटत्यूशन एट वर्क"
4. आर. कुपलैड – "इण्डियन पोलिटिक्स" (1936–42) "
5. जी एन. जोशी – "दि न्यू कांस्टिटत्यूशन ऑफ इण्डिया"
6. जी एन. सिंह – "लैडमार्क इन इण्डियन कांस्टिटयूशनल एण्ड नेशनल डेवलपमेण्ट"
7. के वी. पुनिका – "दि कांस्टिटत्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया"
8. कूपलैड – "दि कांस्टिटपुशनल प्रोबलम ऑफ इण्डिया"
9. आर. सी. अग्रवाल – "भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन"
10. डॉ. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह – 'भारत का संवैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास"
11. बी एल. ग्रोवर यशपाल – "आधुनिक भारत का इतिहास"
12. जवाहर लाल नेहरू – "दि डिस्कवरी ऑफ इण्डिया"
13. विपिन चन्द्र – 'फ्रिडम स्ट्रगल"
14. आर सी. मजूमदार – हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल्स" (खण्ड 9, 10,11)
15. मैकलेन – इण्डियन नेशनलिज्य दि अर्ली कांग्रेस"
16. एस आर. मेहरोत्रा – "दि इमरजेन्स ऑफ दि इण्डियन नेशनल काग्रेस"
17. एम. पिल्लै – "कास्टिटयूशनल गवर्नमेर इन इण्डिया"

इकाई – 14

भारत छोड़ो आन्दोलन 1942

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 क्रिप्स प्रस्ताव, मार्च 1942

14.3 अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का प्रस्ताव–गांधी जी की सविनय अवज्ञा की तैयारी

14.4 कांग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी – ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति तथा जन आन्दोलन को कुचलने का संकल्प

14.5 स्वचालित जन आन्दोलन तथा समानान्तर सरकारें

14.6 आन्दोलन के प्रति अन्य राजनैतिक दलों का दृष्टिकोण

14.7 आन्दोलन की असफलता और महत्व

14.8 सारांश

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.10 संदर्भ ग्रंथों की सूची

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे –

- ब्रिटेन का द्वितीय महायुद्ध के उद्देश्यों के प्रति आश्वासन स्पष्ट नहीं । कांग्रेस मंत्रिमण्डल का आठ प्रान्तों से त्यागपत्र ।
- क्रिप्स प्रस्ताव – दिखावटी एवं चमकीले परन्तु वस्तुत : खोखले और भ्रमपूर्ण ।
- क्रिप्स मिशन की विफलता तथा गान्धी जी का पुन : सविनय अवज्ञा आन्दोलन ।
- ब्रिटिश सरकार का कांग्रेस के साथ टकराव का मानस और कांग्रेस अंतिम संघर्ष के लिये तैयार।
- भारत छोड़ो आन्दोलन शीघ्र ही जन आन्दोलन में परिवर्तित और विभिन्न प्रान्तों तथा देशी रियासतों में इस जन आन्दोलन का स्वरूप।
- मिदनापुर, बलिया तथा सतारा में समानान्तर सरकारें । '।
- भारत छोड़ो आन्दोलन की विफलता और सफलता तथा भारती। स्वतंत्रता का प्रश्न विश्व की राजनीति से जुड़ा।

14.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध के उद्देश्यों के प्रति बिना कोई स्पष्टीकरण और आश्वासन दिये भारतीय सरकार ने भारत को ब्रिटेन की तरफ से द्वितीय महायुद्ध में पार्टी के रूप में सम्मिलित कर लिया । इस पर कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने अम्बर 1939 में आठ प्रान्तों से त्यागपत्र दे दिये । विन्सटन चर्चिल किसी भी प्रकार से भारत पर से ब्रिटेन के नियंत्रण को ढीला नद्दी करना चाहते थे। जब 7 मार्च 1942 को जापान ने रंगून पर अधिकार कर लिया और अमेरिका के राष्ट्रपति

रूजवेल्ट ने दबाव डाला तो चर्चिल ने क्रिप्स मिशन को भारतीय समस्या के समाधान के लिये नियुक्त किया।

क्रिप्स मिशन पूरी तरह से असफल तरह भारतीय सरकार भारत में अपनी सत्ता भारतीयों के हाथों में हस्तांतरण के लिये तैयार नहीं थी। कांग्रेस ने सत्ता को भारतीयों के हाथों में हस्तांतरण के लिये दबाव डाला। गांधीजी आगामी जन आन्दोलन के लिये निश्चित थे । जब सरकार और कांग्रेस में समझौतों का कोई आधार नही रहा तो 1942 में जन आन्दोलन की परिस्थितियां स्वत: ही उभर कर आ गई ।

14.2 क्रिप्स प्रस्ताव: मार्च 1942

15 फरवरी 1942 में सिंगापुर का पतन ब्रिटिश सुरक्षा व्यवस्था के लिये एक घातक प्रहार था। जापानी सेनायें बर्मा में प्रवेश कर चुकी थी और रंगून की तरफ मार्च कर रही थी। अमेरिका तथा चीन के दबाव के साथ–साथ ब्रिटेन का आन्तरिक दबाव भी बढ़ रहा था कि भारत के साथ समझौता किया जाये । वास्तव में संपूर्ण दक्षिणी पूर्वी एशिया, बर्मा सहित जापान के नियंत्रण में आ चुका था। इन परिस्थिति में 23 मार्च 1942 को क्रिप्स मिशन दिल्ली पहुंचा।

क्रिप्स ने वास्तव में अगस्त प्रस्तावों को दुहराया । उसने युद्ध के बाद भारत को डोमिनियन–स्टेटस तथा संविधान परिषद देने की बात कही । परन्तु इसमें तात्कालिक भारतीय सरकार में किसी परिवर्तन की आशा नहीं की । क्रिप्स प्रस्ताव के बारे में गांधीजी ने कहा था कि "अगर आप के प्रस्ताव यही थे तो आप भारत क्यों आये? अच्छा हो आप वापसी जहाज से वापस घर चले जायें 10 क्रिप्स प्रस्ताव वास्तव में 1940 के अगस्त प्रस्तावों को दुहराना मात्र थे। दूसरे इसमें कहीं संकेत नहीं था कि ब्रिटेन सत्ता को भारतीयों के हाथों में सौंपना चाहता था । सच बात तो यह है कि क्रिप्स अपने प्रस्ताव में "या तो प्रस्ताव मानलो या इसे छोड़ दो" के रंग को प्रधानता दे रहे थे । इसका परिणाम 1942 का जन आन्दोलन बन गया।

14.3 अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का प्रस्ताव - गांधी जी की सविनय अवज्ञा की तैयारी

क्रिप्स मिशन की विफलता के कारण कांग्रेस तथा सरकार में समझौते का कोई आधार नहीं रहा । सरकार अपनी सत्ता को छोड़ना नही चाहती थी जबकि कांग्रेस सरकार सत्ता हस्तांतरण पर जोर दे रही थी। इन परिस्थितियों में जुलाई में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति वर्धा में मिली और उसने मांग की कि भारत से ब्रिटिश तुरन्त कूच कर जायें। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने बम्बई अधिवेशन में 8 अगस्त, 194? को वर्धा–प्रस्ताव को पारित कर दिवा। गांधी जी ने 90 मिनिट के जोशीले भाषण में इस संघर्ष को अन्त तक लड़ने का निश्चय किया, चाहे वह सम्पूर्ण विश्व के खिलाफ अकेले ही पड जाये । कांग्रेस ने अंहिसात्मक रूप से वृहद स्तर पर जन आन्दोलन को स्वीकार किया । कांग्रेस ने इस आन्दोलन की बागडोर पूरी तरह से गांधी जी के हाथों में सौप दी और भारतीय जनता से अपील की कि वे उनके नेतृत्व में एक होकर उनके निर्देशों का पालन, अनुशासित स्वतंत्रता सैनिकों के रूप में करें । गांधीजी ने इस आन्दोलन को स्वतंत्रता संग्राम का अंतिम संघर्ष समझा । अखिल भारतीय समिति के सम्मुख भाषण में उन्होंने कहा कि यह निर्णय करो या मरो ' का है और यह संघर्ष उनका भारतीय

स्वतंत्रता के लिये आखरी संघर्ष होगा । कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में गांधी जी ने भारत छोड़ो आन्दोलन के लिये अपना तर्क तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत किया। उनका कहना था कि भारत जापान के आक्रमण का इसलिए शिकार बना क्योंकि वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अंग बन गया है। यदि ब्रिटेन भारत से बाहर हो जाता है तो वह जापान के विरुद्ध अंहिसात्मक असहयोग द्वारा युद्ध करेंगे और यदि आवश्यक हुआ तो वे सैनिक बल द्वारा भी अपने देश की रक्षा करेंगे ।

गांधी जी का तर्क था कि केवल यह बात भारत के हित में नहीं है बल्कि ब्रिटेन की सुरक्षा तथा विश्व शान्ति के लिये भी ब्रिटेन का भारत से हट जाना आवश्यक है ।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति का यह प्रस्ताव भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के नाम से प्रसिद्ध है । इस प्रस्ताव की मुख्य बातें निम्न थी।

1. भारत में ब्रिटिश शासन का तत्काल अन्त और भारत की स्वतंत्रता की तत्काल स्वीकृति ।
2. स्वतंत्रता की लालिमा ही भारत की ब्रिटिश विरोधी भावना को सदभावना में परिवर्तित कर सकती है। गुलाम भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद का चिन्ह रहेगा और साम्राज्यवाद का यह धब्बा संयुक्त राष्ट्रों की समृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा ।
3. भारत की स्वतंत्रता न केवल भारत के लिये अपितु संयुक्त राष्ट्रों की सफलता और विश्व सुरक्षा के लिये भी आवश्यक है । स्वतंत्र भारत ही नाजी, फांसी, और साम्राज्यवादी आक्रमण के विरुद्ध अपनी सारी शक्ति का प्रयोग सकता है ।
4. साम्प्रदायिक समस्या का समुचित समाधान केवल इसलिये नही निकल सका कि विदेशी सत्ता ने (ब्रिटिश शासकों ने) "विभाजन करो" की नीति को बड़ी निष्ठुरता से लागू किया है।
5. भारत की स्वतंत्रता की घोषणा होने पर एक अस्थाई सरकार निर्माण किया जायेगा और स्वतंत्र भारत मित्र राष्ट्रों का साथी बन जायेगा। जो स्वतंत्रता और प्रजातंत्र की रक्षा में उनके सभी परिरक्षणों और आपत्तियों में सांझेदार रहेगा।
6. देश के सभी प्रमुख दलों और समूहों के सहयोग से अस्थाई सरकार की स्थापना की जायेगी।
7. एक संवैधानिक सभा की स्थापना की जायेगी जो सबको स्वीकृत संविधान का निर्माण करेगी। कांग्रेस के दृष्टिकोण में यह संविधान संघात्मक होगा जिसमें सबको अधिकतम स्वायत्तता दी जायेगी और अवशिष्ट शक्तियां एकको के पास रहेंगी।
8. भारत में ब्रिटिश शासन के अन्त की मांग करके कांग्रेस ब्रिटिश मा मित्र राष्ट्रों के युद्ध प्रयासों में बाधा नही डालना चाहती और न ही किसी आक्रमण को बढ़ावा देना चाहती है। जापानी या अन्य किसी आक्रमण का प्रतिरोध और चीन की सहायता या सुरक्षा के लिये यदि इच्छा प्रकट की जाये तो कांग्रेस मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को भारत में रखने के लिये तैयार है ।
9. यदि ब्रिटिश शासन ने स्वतंत्रता की मांग को स्वीकार नहीं किया तो कांग्रेस स्वतंत्रता के अविच्छेद अधिकार को प्राप्त करने की लिये अपनी 22 वर्ष की अहिंसक शक्ति के गठन के आधार पर गांधी जी के नेतृत्व में विशाल पैमाने पर अंहिसात्मक आन्दोलन शुरू करेगी ।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के उपयुक्त प्रस्ताव से स्पष्ट है कि इसमें "भारत छोड़ो" शब्द का प्रयोग नहीं किया था। गांधी जी ने जिस शब्द का प्रयोग किया था वह 'भारत से ब्रिटिश की क्रमबद्ध और यथासंभव वापसी" भारत छोड़ो शब्द का प्रयोग अमेरिकी पत्रकार ने गांधी जी के

साथ एक भेंट में किया था जिसका प्रयोग बाद में सरकार, प्रेस लोगों ने किया । दूसरे, इसमें भारत में तत्काल स्वतंत्रता की बात कही गई थी । इसमें युद्ध प्रयासों के लिये कांग्रेस ने ब्रिटिश और संयुक्त राष्ट्रों की सेनाओं को भारत में रखने सहमति प्रकट की थी। तीसरे इसमें "भारत छोड़ो" आन्दोलन की कोई विस्तृत कार्यक्रम प्रस्तुत नही किया गया था। चौथे, इसमें आन्दोलन के शुरू करने की कोई तिथि निर्धारित नही की थी। केवल यह कहा गया था कि आन्दोलन गांधी जी के नेतृत्व में शुरू किया जायेगा। आन्दोलन शुरू नहीं किया था। परन्तु गांधी जी ने कई अवसरों पर इस आन्दोलन की प्रकृति तथा इसकी रूपरेखा का वर्णन किया था। गांधी जी ने यहां तक कहा था कि भारत से ब्रिटेन का जाने का अर्थ होगा भारत को ईश्वर के हाथों में छोड़ देना, जिसका अर्थ आधुनिक परिवेश में अराजकता समझा जा सकता है। गांधी जी के अनुसार इस आन्दोलन का स्वरूप विस्तृत होगा, यह किसी एक वस्तु तक सीमित नही होगा। यह आन्दोलन विस्तृत और सकारात्मक होगा । इस आन्दोलन का स्वरूप किसी एक कानून या आज्ञा को तोड़ कर नकारात्मक नहीं होगा। गांधी जी चाहते थे कि यह आन्दोलन सभी भारतीयों के लिये होगा, केवल कुछ अनुशासित कांग्रेस नेताओं तथा स्वतंत्रता सेनानियों के लिये नहीं। गांधी जी चाहते थे कि विद्यार्थी, शिक्षक तथा मजदूर इस आन्दोलन को मजबूत बनाये । यह आन्दोलन केवल जेल भरने के लिये नहीं होगा । परन्तु भारत की आजादी प्राप्त करने के लिये अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिये होगा। गांधी जी ने संपूर्ण राष्ट्र को बताया कि यह संघर्ष उनका सबसे बड़ा और अंतिम संघर्ष होगा। उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को कहा कि या तो हम भारत को स्वतंत्र करेंगे या इस प्रयास में मर जायेंगे। गांधी जी ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को "करो या मरो" का मंत्र दिया। अपनी गिरफ्तारी से पूर्व 9 अगस्त, 1942 को गांधी जी ने यह सन्देश अपने पीछे छोड़ा कि हर व्यक्ति इस बात के लिये पूर्ण स्वतंत्र है कि अंहिसा का साधन अपनाते हुए वह हड़ताल तथा संपूर्ण बन्द जैसे अंहिसात्मक साधन अपना सकता है । जब व्यक्ति मौत को गले लगाने निकलते है तभी देश बच पाता है। 'करेंगे या मरेंगे' । इस रूपरेखा के आधार पर जनता स्वतंत्रता के युद्ध में हिस्सा ले सकती है । यदि वह अंहिसा का प्रयोग करते है तो वह किसी हद तक जा सकते है । गांधी जी ने भूमिगत छिपे आन्दोलन को समर्थन नहीं दिया । परन्तु सरकार ने सभी कांग्रेस संस्थाओं तथा अन्य संस्थायें जो कांग्रेस का समर्थन करती थी उनको गैर कानूनी घोषित कर दिया, तो निश्चित था कि आन्दोलन कर्ताओं को भूमिगत आन्दोलन की शरण लेनी पड़ी ।

14.4 कांग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी–ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति तथा जन आन्दोलन को कुचलने का संकल्प

यद्यपि गांधी जी ने यह सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी थी कि आंदोलन शुरू करने से पूर्व वे वायसराय को पत्र लिखेंगे और उसके उत्तर का इन्तजार करेंगे परन्तु सरकार ने इस बार उन्हें बातचीत या समझौते का अवसर ही नहीं दिया और 9 अगस्त 1942 को प्रात: को गांधी जी, उनकी पत्नी, कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्यों और बम्बई के 40 प्रमुख नागरिकों को हिरासत में ले लिया । कांग्रेस को गैरकानूनी संस्था घोषित कर दिया गया । गांधी जी को कस्तूरबा तथा महादेव देसाई के साथ पूना के आगाखान पैलेस की जेल में भेज दिया गया कांग्रेस समिति के अन्य नेताओं को अहमद नगर जिलों की जेल में भेज दिया गया ।

14.5 स्वचालित जन आन्दोलन तथा समान्तर सरकारें

कांग्रेस नेताओं की अचानक गिरफ्तारी ने जनता में क्रोध की ज्वाला पैदा कर दी, उनमें बिजली जैसी उत्तेजना उत्पन्न हो गई । जो आन्दोलन गांधी जी के नेतृत्व में विधिवत शुरू किया जाना था वह स्वत: ही शुरू हो गया । नेतृत्वहीन जनता ने आन्दोलन को जन आन्दोलन का रूप दिया । सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति के विरुद्ध जनता में स्वत: ही जोश पैदा हो गया। सरकार ने यह पहले से निश्चित कर रखा था कि वह कांग्रेस पर पहले वार करेगी और उसने ऐसा ही किया । दूसरी ओर कांग्रेस इस अचानक परिस्थिति के लिये तैयार नहीं थी । कांग्रेस ने इस आन्दोलन के प्रति कोई निश्चित योजना नही बनाई थी और न ही कांग्रेस कार्यकर्ताओं को आन्दोलन के स्वरूप के बारे में कोई निर्देश दिये गये थे । भारत की जनता ने ऐसे समय में सरकार की आशा के प्रतिकूल और शायद कांग्रेस की उम्मीद से अलग जन आन्दोलन के स्वचालित रूप को प्रकट किया। इस समय बम्बई इस जन आन्दोलन का केन्द्र बन गया क्योंकि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति तथा कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक वहां चल रही थी और प्रसिद्ध कांग्रेस नेताओं का प्रभात भी उस पर पड़ रहा । समाचार पत्रों तथा प्रेस पर 1940 से कड़े प्रतिबंध लगे हुए थे । अखिल भारतीय काँग्रेस के बम्बई अधिवेशन के बाद समाचार पत्रों पर नये प्रतिबंध लगा दिये इसके विरोध में विभिन्न शहरों से समाचार पत्रों ने अपना प्रकाशन बंद कर दिया छिपी हुई शैलों अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने अपने 1–2 बिन्दुओं को लोगों तक पहुंचाया क्योंकि कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया था। जनता तक यह निर्देश पहुंचाने में कुछ दिन लगे परन्तु जनता ने इन निर्देशों पर काम करना शुरू कर दिया था। निर्देशों में कहा गया था कि जनता गांधी जी के हिरासत के विरोध में हड़ताल तथा सार्वजनिक सभाओं का प्रयोग सम्पूर्ण देश में करें इन सभाओं में भारत से ब्रिटिश शासन का निष्कासन तथा भारत छोड़ो सन्देश दिया जाये । भारतीय गांवों में यह सन्देश भेजा गया कि वे सरकार को कोई भी सहयोग न दें जिससे सरकार चल न सके। कांग्रेस के इन निर्देशों में विद्यार्थियों से यह कहा गया कि वे स्वतंत्रता संग्राम के लिये अपने आप को तैयार रखे, जब बड़े नेताओं को कैद कर लिया जाये । यह उम्मीद की गई कि इस जन आन्दोलन में विद्यार्थी अपनी भूमिका में खरे उतरेंगे ।

कांग्रेस के 12 निर्देशों को जो कि कांग्रेस नेताओं के बन्दी होने के बाद तथा कांग्रेस के गैरकानूनी घोषित होने के बाद, जनता तक पहुंचाया गया, का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है:

1. सरकार की आज्ञा का उल्लंघन करते हुए हड़ताल तथा सार्वजनिक सभाओं को संगठित करना।
2. नमक बनाना ।
3. हमारा संघर्ष अंहिसात्मक असहयोग का आन्दोलन है तथा भारत के 7 लाख गांवों में इसका प्रयोग करना है ।
4. इस आन्दोलन के पथ प्रदर्शक विद्यार्थी है, उन्हें अपनी कक्षाओ का बहिष्कार करना है ।
5. सरकारी कर्मचारियों को अभी त्याग पत्र नहीं देना है परन्तु कांग्रेस के प्रति अपनी वफादारी व्यक्त करनी है ।
6. सैनिकों को अपने आप को कांग्रेस कार्यकर्ता समझते हुए लाठी तथा गोली का प्रयोग जनता पर नहीं करना चाहिए ।

7. भारत की रियासतें भारत की अभिन्न अंग है। भले ही वहां के शासक हिस्सा ना ले परन्तु वहां की जनता को इस आन्दोलन में हिस्सा लेना चाहिए ।
8. गांधी जी को यह इच्छा है कि हर सत्याग्रही को अंहिसा का प्रयोग करना चाहिए।
9. हर भारतवासी के शरीर पर "करो या मरो" का बिल्ला लगा होना चाहिए ।
10. भारत की जनता के सभी वर्गो को इस आन्दोलन में भाग लेना चाहिए।
11. चरखा कातना गांधी जी को प्रिय था, को भूलना नहीं चाहिये ।

सरकार ने इस आन्दोलन के प्रति निश्चित नीति पहले से अपना ली थी । यह नीति थी कि इस आंदोलन को पूरी तरह से कुचल देना। सारे भारत मे प्रेस तथा समाचार पत्रो पर नियन्त्रण रखते हुए सरकार ने समाचारों के स्त्रोत पर एकाधिकार कर लिया था । सरकार ने शोषण और प्रतिक्रियावादी नीति इस हद तक अपनाना तय कर लिया था कि जिससे नेतृत्वहीन और जोशीली जनता हिसा का सहारा लेने के लिये मजबूर हो जाये।

अगस्त 9 के कुछ ही दिनों बाद कांग्रेस ने बम्बई में अपना कांग्रेस रेडियो शुरू कर दिया था। यह रेडियों सेवा गुप्त रूप से शुरू की गई । कुछ प्रान्तों में गुप्त डाक सेवा शुरू की गई । हर जगह कांग्रेस की तरफ से साईकलोस्टाईल खबरे और सन्देश छापे जाने लगे । सारे भारत में एक सा प्रोग्राम अपनाया गया। हड़ताल, शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार, सरकारी भवनों पर हमला तथा डाक तथा रेलवे व्यवस्था को ठप करना । प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी नेताओं के जेल में बंद होने के कारण अब जिम्मेदारी तृतीय व चतुर्थ श्रेणी नेताओं पर आन पड़ी थी । यह सर्वविदित था कि गांधी जी ने अपने आखरी सन्देश में कहा था कि हर व्यक्ति अंहिसा का पालन करते हुए अपने कार्यों में इस आन्दोलन के लिये स्वतंत्र है । रेल तथा डाक व्यवस्था को भंग करना तथा सरकारी सम्पत्ति को नष्ट करना इस समय हिसा की परिभाषा में सम्मिलित नहीं थे । इस आन्दोलन का सबसे बड़ा आर्कषण था विद्यार्थियों की तरफ से अपूर्व उत्साह सम्पूर्ण भारत से विद्यार्थियों ने कक्षाओं का बहिष्कार करते हुए, पुलिस की लाठी, गोलियों तथा व्यक्तिगत बेइज्जती को अंगीकार किया। शहरों में विद्यार्थी ही इस आन्दोलन के अग्रणी दूत थे । इसीलिये सरकार का क्रोध और ध्यान इनकी तरफ ज्यादा रहा। हड़ताल तथा प्रदर्शन के अतिरिक्त कुछ कारखानों में भी हड़ताल रखी गई। सरकारी दफ्तर भी इस आन्दोलन से प्रभावित हुए बगैर नहीं रहे। इस आन्दोलन का प्रदेशानुसार वर्णन इस प्रकार दिया जा सकता है।

बम्बई –

बम्बई में भारत छोड़ो आन्दोलन ने निश्चित और संगठित रूप लिया जबकि कुछ कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने अंडरग्राउंड कार्य समिति की स्थापना की । कांग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में 9 अगस्त को जनता ने एक जुलूस निकाला । विद्यार्थियों ने इसमें अग्रणीय हिस्सा लिया । यह तय किया गया कि यह जुलूस गावलिया टेंक पार्क तथा शिवाजी पार्क में राष्ट्रीय झंडा लगायेगा। परन्तु पुलिस ने हस्तक्षेप किया और जुलूस को आगे बढ़ने से रोका। लेकिन अरूणा आसिफ अली ने पुलिस को झांसा देते हुए जुलूस से निकल कर पार्क में झंडा लगा दिया । 10,000 लोगों की एक आम सभा हुई । पुलिस ने लाठी, आसूं गैस और गोलीबारी का सहारा लिया । जिससे पांच आदमी मर गये और बीस जख्मी हुये। बम्बई में जनता का यह पहले दिन का बलिदान था। 10 अगस्त को 10,000 विद्यार्थियों का एक बड़ा जुलूस निकाला गया। वे कॉलेज परिसर की तरफ बढ़ना चाहते थे । परिसर बंद कर दिया गया अत: विद्यार्थी सड़क पर

बैठ गये । धीरे–धीरे दूसरे लोग भी विद्यार्थियों के साथ शामिल हो गये। सड़क पर बैठी जनता की तरफ से कोई भी अंहिसात्मक कार्यवाही नहीं की गई । लेकिन अचानक पुलिस तथा सेना ने जनता पर गोली बरसाई जो लगातार 15 मिनिट तक चलती रही जिससे 16 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और काफी संख्या में लोग जख्मी हुये। सरकार की हिंसा ने जनता स्फे उकसा दिया । जिससे रेल यातायात ठप्प कर दिया गया और रेलवे स्टेशन पर धावा बोला गया । शहर की ट्राम तथा बिजली व्यवस्था पर बुरा असर पड़ा । निश्चित रूप से यह क्रांति थी और क्रांति केवल इकट्ठे हुये लोगों के दिमाग में नहीं थी. बल्कि उनके होठों पर भी थी। उन्होंने नारे लगाये "इन्कलाब जिन्दाबाद", "स्वतंत्र भारत जिन्दाबाद" हम कुछ करेंगे और मरेंगे', 'महात्मा गांधी जिन्दाबाद' तथा 'भारत माता की जय' । काफी संख्या में लोग अस्पताल में मर गये। कोड़े मारने के एक्ट को पुनजार्घत किया गया और जनता की भावना की परवाह न करते हुए निर्दयता पूर्ण कोड़े जनता पर बरसाये गये । शहर मै कर्भ लगा दिया गया । हताश जनता ने हिसा का सहारा लिया और पत्थर बरसाये । सितम्बर के अंत तक बम भी प्रयोग किये जाने लगे । अम्बर में जन आन्दोलन और उग्र हो गया । मेवे गांव का पुलिस कोर्ट पूरी तरह से जला दिया गया।

पूना -

पूना में भी जनता ने पुलिस शोषण का विरोध किया। 10 अगस्त से 18 अगस्त तक जन आन्दोलन चलता रहा । पूना की सभी सड़कों पर सेना टैक और मशीशान से लैस सेना नियुक्त की गई । जनता की तरफ से बिना किसी उकसाने वाली वारदात के ववजूद सेना ने कई मौकों पर गोली बरसाई । पैदल चलने वाले बेकसूर नागरिक या तो मारे गर्म या जख्यी हुये । उस समय के रिकार्ड से पता चलता है कि पूना की सड़कें खून से रंग गई थी । और भारतीय क्रांति में जनता ने खुल कर खून बहाया ।

सरकार की तरफ से आतंक का राज्य स्थापित किया गया जिससे जनता कुछ समय के लिये विचलित हुई । परन्तु शीघ्र ही समूर्ण महाराष्ट्र में अंडरग्राउंड आन्दोलन का संगठन किया गया। अन्दरग्राउन्ह कार्यकर्ताओं ने, जिनमें विद्यार्थी सम्मिलित थे गोरिल्ला पद्धति वाली संस्थायें बना ली। सभी जिलों में स्कूल और महाविद्यालय कुछ समय के लिये बंद हो गये । शोलापुर, नासिक, खानदेश, अहमदनगर तथा रत्नागिरी जैसे सभी स्थानों पर एक साथ आन्दोलन शुरू किया गया। अहमद नगर तथा पूना के कपड़ा मिलों के मजबूरों ने काफी समय के लिए हड़ताल कर दी ।

कर्नाटक –

कर्नाटक प्रदेश में भारत छोड़ो आन्दोलन ने जोशीला रूप धारण कर लिया, जिससे जिलों की शासन व्यवस्था प्रभावित हुई। बँगलर में लगातार मजदूर चलता रहा। मैसूर राज्य में भी आन्दोलन काफी उग्र था ।

गुजरात –

महात्मा गांधी और वल्लभभाई पटेल का प्रदेश होने के कारण 1942 के आन्दोलन में भी गुजरात ने अपनी परम्परा को बनाये रखा । अहमदाबाद में तीन दिनों तक सरकार जैसी संस्था का नामोंनिशान नही रहा। जनता राज के द्वारा अहमदाबाद की नगरीथ व्यवस्था चलाई गयी । सरकार की तरफ से निषेध आज्ञा लागू कर दी गई । इस पर भी हजारों की संख्या में लोग सड़कों पर इकट्ठे हुए और बड़े जुलूस का रूप धारण कर लिया । कपड़ा मिलों के मजदूरों की हड़ताल के

कारण मिलें बंद हो गई । यह हड़ताल 100 दिन तक चलती रही । इस समय मजदूरों ने अपनी तनख्वाह की भी परवाह नहीं की । सबसे सफल हड़ताल अहमदाबाद की मिलों में हुई जहां मिले तीन महीने के लिये बंद रही । बाजार और दुकानें भी बंद कर दी गई परन्तु जनता की सुविधा के लिये बाद में उन्हें खोल दिया गया ।

जन आन्दोलन को दबाने के लिये पुलिस शोषण जिसमें लाठी, सामूहिक आर्थिक दण्ड शामिल था, का प्रयोग किया गया। सेना क्रो बुलाया गया । करीबन अभी विद्यार्थियों ने क्याओं का बहिष्कार किया। सेना ने होस्टल में घुसकर विद्यार्थियों को बिना पूर्व सूचना के अहमदाबाद सैनिक शासन से नियंत्रित किया जाने लगा।

बड़ौदा में भी हड़ताल तथा विद्यार्थियों के प्रदर्शन के माध्यम से 1942 के आन्दोलन को सक्रिय बनाया गया। सूरत में कपड़ा मिलों में मजदूर हड़ताल पर चले गये जो अहमदाबाद की मिलों की तरह बंद कर दी गई ।

बंगाल -

कलकत्ता में आन्दोलन 14 अगस्त से शुरू हुआ। जनता ने कलकत्ता के सामान्य जीवन को अस्त व्यस्त कर दिया। बाजार, दुकानें तथा व्यापारिक संस्थान बंद कर दिये गये। ट्राम सेवा बंद कर दी गई। तार, टेलीफोन तथा बिजली व्यवस्था में बिघ्न डाला गया। सड्कों और गलियों में पुलिस तथा सेना के आने में अवरोध पैदा किये गये। बंगाल केमीकल जैसी बड़ी कम्पनी के मजदूरों ने उन दवाईयों को बनाना और वितरण बंद कर दिया जो युद्ध में सेना के प्रयोग में आ रही थी । बहुत से औद्योगिक संस्थानों में हड़ताल रखी गई। लगातार हड़ताल के कारण बूट उद्योग बुरी तरह से प्रभावित हुआ ।

कलकत्ता तथा बंगाल के सभी जिलों के विद्यार्थियों ने आन्दोलन में उत्साह पूर्ण हिस्सा लिया। 2 अक्टूबर को गांधी जयन्ती मनाने के लिये गांधी जी के चित्र तथा राष्ट्रीय झंडे के साथ जुलूस निकाला गया। दिसम्बर 16 को कलकत्ता के सभी विद्यार्थियों ने सामान्य जुलूस निकाला जहां पर उन्होंने चर्चिल, लिनलिथगो के चित्रों तथा यूनियन जैक के झंडे को जलाया । बंगाल में ढाका कपड़ा उद्योग का सबसे बड़ा केन्द्र था । मजदूर हड़ताल पर चले गये और कारखाने काफी समय तक बंद रहे । ढाका में सभी शिक्षा संस्थायें बंद रही ।

मद्रास –

कुछ कांग्रेस कार्यकर्ता अडर ग्राउन्ह चले गये और उन्होंने अन्टर ग्राउड रेडियों स्टेशन की स्थापना की । हड़ताल और जुलूस आम बात बन गई । डाकघर, रेल पटरी तथा थाने जनता के क्रोध के केन्द्र बन गये । मद्रास शहर में दो प्रसिद्ध कपड़ा मिलें बकिंघम तथा कर्नाटक तथा कुछ दूसरी मिलों ने काम करना बंद कर दिया । मद्रास में साम्यवादी पार्टी तथा राजगोपालाचार्य के विरोध के बावजूद विद्यार्थियों ने आन्दोलन में भाग लिया ।

आध्र प्रदेश –

आध्र प्रदेश में एम एस एम. रेलवे लाइन को क्षति पहुंचाई गई। कर न देना जैसा आन्दोलन लोकप्रिय हो गया । टेलीफोन और तार व्यवस्था रेलवे लाइन तथा डाकघर और पुलिस थानों को बड़े स्तर पर नुकसान पहुंचाया गया । इस आन्दोलन में गुन्टूर तथा पश्चिमी गोदावरी जिलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

मध्य प्रांत –

एक हफ्ते से भी अधिक जबलपुर, धमो, बिलासपुर, दुर्ग तथा बहुत से नगरों तथा स्थानों पर पूर्ण हड़ताल रखी गई । नागपुर में मुख्य डाकघर जला दिया गया । सरकारी राशन गोदाम तथा कोषालय को लूटा गया । सरकार ने नागपुर तथा दूसरे शहरों में कर्क्यू लगा दिया ।

बिहार –

बिहार और उत्तर प्रदेश में आन्दोलन ने संचार व्यवस्था को अस्तव्यस्त करने का रूप धारण कर लिया । सरकारी सम्पत्ति जैसे डाकघर, रेलवे लाईन और स्टेशन को नष्ट कर दिया गया ।

राजेन्द्र प्रसाद की गिरफ्तारी के कारण बिहार की जनता आवेग में आ गई । सभी विद्यार्थी अपनी शिक्षा संस्थाओं से बाहर आ गये और 9 अगस्त को हत्पूस निकाला। 11 अगस्त को जनता का जुलूस सचिवालय तथा एसेम्बली पर कांग्रेम का झंडा फहराना चाहते थे। गोरखा पुलिस की गोलाबारी के कारण कई युवा जख्मी हुये और मारे गये ।

पटना में जनता ने पुलिस को धक्का देते हुए तथा लाठी और गोली की परवाह न करते हुए, सचिवालय के भवन पर राष्ट्रीय झंडा फहराने में सफलता प्राप्त की । पटना से मुगलसराय तक सभी रेलवे स्टेशन जला दिये गये । बिहार में आन्दोज़न अधिकतर रेलवे लाइन, रेलवे पुल तथा रेलवे मार्ग को नष्ट करने से सम्बन्धित रहा । बिहार। की विशेषता थी कि जेलों पर भी आक्रमण किया गया । बहुत सी जेलें तोड़ी गईं और कैदियों को स्वनंत्र कर दिया गया । इस सदर्भ में बिहार सभी प्रान्तों में अग्रणी था । बिहार आन्दोलन के यह विशेषता रही कि मुसलमानों ने काफी संख्या में भाग लिया।

उत्तर प्रदेश –

उत्तर प्रदेश में पूर्वी भाग में आन्दोलन अधिक तीव था। 12 अगस्त को जनता ने सफलतापूर्वक मुगलसराय रेलवे यार्ड के कार्य को ठप्प कर दिया । मुगलसराय उत्तरी भारत तथा बिहार, बंगाल और आसाम को रेलवे द्वारा जोड़ने वाला महत्वपूर्ण जंक्शन था । यह प्रदेश इस समय सेना के लिये, सामरिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण था। रेलवे यातायात को इलाहाबाद, बनारस, जौनपुर, बलिया तथा दूसरी जगहों पर नुकसान पहुंचाया गया। बनारस से इलाहाबाद, लखनऊ, गया तथा पटना रेल यातायात को बंद कर दिया गया । कुछ। स्थानों रार पटरियां उखाड़ दी गई । बनारम विश्वविद्यालय के विद्यार्थी इतने संगठित और उत्साही थे कि सरकार को विश्वविद्यालय बन्द करके उस पर अधिकार करना पड़ा। इलाहाबाद और बनारस के लोगों ने संगठित होकर थानों, रेलवे स्टेशन तथा डाकघरों को नष्ट कर दिया तथा जला दिया । इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने 11 अगस्त को भवन में एक मीटिग बुलाई और विजयलक्ष्मी पंडित की तीन पुत्रियों, न्यायाधीश और एक पुलिस अफसर के नेतृत्व में एक जुलूस निकाला। जुलूस शान्त तथा संयत था पुलिस ने गोली चलाकर तीनों लड़कियों को जस्की कर दिया। गोरखपुर में शिब्बन लाल सक्सैना इस आन्दोलन का उग्र नेता था। वह जिले का अन्डरग्राउन्ह नेता था जिस पर सरकार ने 5000/– रुपये का इनाम रखा था ।

आसाम –

आसाम के आन्दोलन की विशेषता थी व्यक्तिगत शौर्य । बहुत ले शहीदों ने हंसते हुए गांधीवादी अंहिसा पर चल कर देश की आजादी के लिये बलिदान दिया। कुशलचन्द्र कंवर इसी प्रकार का एक शहीद था । वह पक्का गांधीवादी था और प्रवृत्ति का व्यक्ति था । उसने

न्यायालय में घोषित किया कि मुझे उस कसूर के लिये दी जा रही है जो मैने नहीं किया। मै महात्मा गांधी और उनके अहिंसा के सिद्धान्त में विश्वास करता हूँ । इस पर भी उसे मौत की सजा दी गई। उस पर अभियोग लगाया गया कि उसने रेल की पटरी उखाड़ी है जो शायद उसने नही किया था। वह फांसी पर खुशी से चढ़ गया, उस समय उसके मुंह से धर्म के उच्चारण तथा मंत्र ही निकल रहे थे।

आसाम में मुसलमानों की संख्या काफी थी । बिना मुसलमानों के सहयोग के कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। मुसलमानों ने आन्दोलन का विरोध ही नहीं किया बल्कि कुछ स्थानों पर इसमें हिस्सा भी लिया ।

सिन्ध –

हैदराबाद तथा करांची सिन्ध के दो महत्वपूर्ण शहर थे । उन दोनों शहरों में पुलिस और सेना के शोषण तथा जुल्म के विरोध में कई महीनों तक जनता आन्दोलन करती रही । यहां की महिलाओं ने जुलूस निकाला । कई महीनों तक प्रभात फेरी निकाली गई । सरकार की फूट डालों नीति के बावजूद हिन्दु और मुसलमानों में कोई झगड़े नहीं हुए ।

उड़ीसा –

उड़ीसा में आन्दोलन विस्तृत तथा गहरा था । वास्तव में यह जन आन्दोलन था जिसमें आदिवासी तथा किसानों ने हिस्सा लिया और जिसका निर्देशन मध्यम वर्ग ने किया । हरकिशन महताब जैसे नेताओं को जेल में पहले से ही बंद कर दिया गया था। इससे आन्दोलन ने जन आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। कटक में रोबिनशाह कॉलेज का एक हिस्सा जला दिया गया। कई स्थानों पर रेलवे लाइन नष्ट कर दी गई । जिससे कलकत्ता और मद्रास के साथ सम्पर्क में दिक्कत आई । सम्पत्ति को भी काफी नुकसान पहुंचाया गया ।

उत्तरी पश्चिमी सीमा प्राप्त –

पठान, भारतीय सेना में भर्ती के मुख्य स्त्रोत थे । इसलिये युद्धकाल में सरकार उन्हें नाराज नहीं करना चाहती थी । लाल कुर्ता संस्था को कांग्रेस की तरह गैर कानूनी घोषित नहीं किया गया। डी. खान साहब, जो अब्दुल गफ्फार खान के भाई थे, के नेतृत्व में इस प्रान्त में मंत्रिमण्डल बनाया गया था। 1939 के अंत में कांग्रेस के साथ इस मंत्रिमण्डल ने भी त्याग पत्र दे दिया । भारत छोड़ो प्रस्ताव के बाद भी बादशाह खान तथा उनके भाई खान साहब को बंदी नहीं बनाया गया ।

हड़ताल, सार्वजनिक सभा और प्रदर्शन इस प्रान्त में भी चलते रहे लेकिन कोई भी हिंसात्मक कार्य नही किया गया । बादशाह खां तथा लाल कुर्ता कार्यकर्ताओं द्वारा जनता को अपने आपको स्वतंत्र समझने के लिये कहा गया। इस पर भी सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया । खुदाई खिदमतगारों ने सरकारी दफ्तरों, अफसरों के बंगलों तथा सचिवालय तथा पुलिस थानों पर हमला बोल दिया । खुदाई खिदमतगारों ने सरकारी इमारतों पर राष्ट्रीय झंडा फहराना शुरू कर दिया । पुलिस ने बंद दुकानों पर आक्रमण करके उन्हें लूटा। खुदाई खिदमतगारों ने सरकारी इमारतों पर घावे बोल दिये। पुलिस ने विरोध में लाठी चार्ज किया। अंत में गफ्फार खान को कैद कर लिया गया।

पंजाब –

पंजाब में भी सरकार का व्यवहार नरम था क्योंकि पंजाब भी सेना भर्ती का मुख्य केन्द्र था । इस पर भी लाहौर में 9 अगस्त को एक सार्वजनिक सभा बुलाई गई। इस सभा को तीन नेता फजलुद्दीन, दूनीचंद तथा भीमसेन सच्चर सम्बोधित करने वाले थे । परन्तु इससे पहले ही उन्हें कैद कर लिया गया । इस सार्वजनिक सभा पर बेरहमी से लाठी चार्ज किया गया। सरकार की तरफ से सभाओं और प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा दिये गये । कांग्रेस कार्यकर्ताओं को पकड़ लिया गया । नेताओं के पकड़े जाने के कारण आन्दोलन, हो गया। जयप्रकाश नारायण जो महत्वपूर्ण अन्डरग्राउन्ड नेता थे, पंजाब आये और में कैद कर लिये गये। उन्हें लाहौर के किले में बंद कर दिया गया। कुल मिलाकर पंजाब मे भी आन्दोलन ने तीव्र रूप धारण कर लिया ।

देशी रियासतें -

देशी रियासतें भारत में ब्रिटिश सत्ता का गढ थी । यहां के शासक सरकार की मदद कर रहे थे । फिर भी इन राज्यों में आन्दोलन ने जोर पकड़ा । विशेषत: मध्य भारत के राज्यों मैसूर और राजस्थान में। काठियावाड़ में आन्दोलन काफी सफल रहा । बड़ौदा में कारखानों में हड़ताल की गई जिससे कुछ मिलें कुछ दिनों के लिये बंद कर दी गई ।

समानान्तर सरकारें –

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण राष्ट्र ने घृणित विदेशी के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। सम्पूर्ण राष्ट्र जिसमें गांव और शहर, अशिक्षित और, स्त्री और पुरुष सभी शामिल थे, विद्रोह में सम्मिलित हो गये थे । कई स्थानों पर ने आन्दोलन का नेतृत्व किया और लाठी तथा गोली का सामना किया । इस पर भी देश के ऐसे स्थान थे जहां पर समानान्तर सरकारें चलती रही और कम से कम दो स्थानों पर यह सरकारें 1944 तक चली ।

मिदनापुर (तामूल) –

मिदनापुर में करीबन अकाल को स्थिति को साईक्लोंन ने और भी कर दिया । वहां की जनता और भी निराश हो गई । मिदनापुर पूर्व के कांग्रेस आन्दोलनों में क्रांतिकारी आन्दोलनों में शानदार भूमिका निभा चुका था। सरकार को यह डर था कि जापानियों को युद्ध में आधार बनाने में सहयोग करेगा । इसलिये सरकार ने या तो यहाँ की नाव, बैलगाड़ियों, साईकिल तथा अन्य यातायात के साधनों को हटा दिया या कर दिया । सरकार ने गांव से चावल इकट्ठा करना शुरू किया । इस प्रदेश में हवाई अडडे के लिये यहां की जनता की जमीन हड़प ली गई और उनसे जबरदस्ती काम लिया गया। जिसका कोई भी मुआवजा नहीं दिया गया। सरकार की इस शोषण नीति के विरोध 9 अगस्त, 1942 से आन्दोलन शुरू हो गया । हड़ताल, शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार तथा डाकघर और पुलिस थानों पर धावे बोले गये । सरकार की नीति के कारण अकाल की स्थिति के बावजूद इस जिले से चावल बाहर भेजा जाता रहा । जनता ने इसका विरोध किया। गांव पर पुलिस ने गोली चलाई जबकि उन्होंने चावल के निर्यात को रोकने का प्रयास किया। जैसे सरकार आन्दोलन को कुचलने का प्रयास करती रही, जनता और भी प्रबल रूप से सरकार का विरोध करती रही ।

मिदनापुर की राष्ट्रीय सरकार ने अगस्त 1944 तक कार्य किया। मिदनापुर की समानान्तर सरकार बन गई जिसकी अपनी सेना और पुलिस तथा गुप्तचर था । इसकी अपनी जेल थी जहां पर लोगों को बंदी बनाया गया। जनता ने वास्तव में को पूर्णत: निष्क्रिय बना दिया

था। मिदनापुर के आन्दोलन ने गांधी जी का ध्यान भी किया और उन्होंने यहां की जनता के शौर्य की प्रशंसा की।

बलिया (उत्तर प्रदेश)

बलिया, बिहार के नजदीक है । इसलिये बिहार के विद्रोह ने इस जिले को भी प्रभावित किया। पूर्वी उत्तर प्रदेश में आन्दोलन पश्चिम की तुलना में अधिक विस्तृत और जोशीला था। 11 अगस्त को 15000 लोगों का जुलूस न्यायालय भवन की ओर बढ़ने लगा । शहर के बीचोबीच पुलिस ने जुलूस को रोक दिया । जनता में कुछ जोशीले नौजवानों ने पुलिस पर पत्थर फैके। पुलिस ने अचानक लाठी चार्ज किया । जिससे 100 विद्यार्थी जख्मी हो गये और एक की मृत्यु हो गई । तीन दिन तक लगातार जनता ने न्यायालय भवन की ओर जुलूस में बढ़ना जारी रखा । और अहिसात्मक रूप बनाये रखा। इस पर भी बेकसूर विद्यार्थियों को होस्टल तथा घरों से जबरदस्ती निकाल कर उन्हें सार्वजनिक चौराहों पर पीटा गया । यह कम तीन टिन तक चलता रहा । इस पर विद्यार्थियों ने रेलवे स्टेशन को जला दिया तथा न्यायालय भवन में कुछ शरारत की ।

पुलिस जुल्म के विरोध में भीड़ ने थानों पर हमले किये । बलिया के थाने पर राष्ट्रीय झंडा फहराने का प्रयास किया गया। जनता को घेर कर उन पर गोलियां बरसाई गई । कुछ ही दिनों में जिलों में सरकारी मशीनरी चरमरा गई। राजनीतिक बन्दियों को जेलों से छुड़ा दिया गया। बाजार बंद कर दिये गये । और इस तरह से पूरा शहर जनता के अधिकार में आ गया ।

चीतू पाण्डेय के नेतृत्व में 19 अगस्त को राष्ट्रीय सरकार का निर्माण किया गया । इस राष्ट्रीय सरकार ने 15 दिन तक कार्य किया और संतुलित शासन से नाम कमाया । सरकार ने सेना भेज कर जनता पर जलिया वाले बाग के डायर से भी अधिक जुल्म ढाये । बलिया की क्रांति ने गाजीपुर को भी प्रभावित किया । 19 से 21 अगस्त तक गाजीपुर में ब्रिटिश शासन का कोई निशान नहीं था।

सतारा –

सतारा में राष्ट्रीय सरकार का निर्माण हुआ जो चार साल तक चली । सतारा में कांग्रेस मूलत किसानों की संस्था थी । कई गांवों में एक साथ रात को सभायें की गई । किर्लोस्कर लोहे के कारखाने में एक महीने तक हड़ताल रखी गई । सरकारी दफ्तरों की तरह शान्त जुलूस निकाल गये ।

सतारा में दूसरे प्रदेशों की तरह पुलिस जुल्म का सहारा लिया गया। सतारा ने निश्चित किया कि राष्ट्रीय सरकार बनाने का मौका आ गया है । वे जानते थे कि गांधी जी ने कहा है कि अब हमें स्वतंत्र लोगों की तरह रहना चाहिये। सरकारी दफ्तरों, डाक बंगलों, रेलवे स्टेशनों, थानों तथा कचहरियों पर आक्रमण किये गये और उन्हें नष्ट कर दिया गया ।

1942 के अंत में गांव में गणतंत्रों की स्थापना की गई । सतारा जिले को बम्बई और पुणे से यातायात के साधन काट कर अलग कर दिया गया। अब राष्ट्रीय सरकार का निर्माण किया गया। सतारा की पुलिस को तूफान सेवा का नामकरण किया गया । इस आन्दोलन में सबसे लोकप्रिय नाम नाना पाटिल का उभरकर आया।

मिदनापुर और सतारा दो शानदार उदाहरण है जहां की जनता ने बिना किसी पुलिस और सेना के समानान्तर सरकारों का निर्माण किया ।

14.6 आन्दोलन के प्रति अन्य राजनीतिक दलों का दृष्टिकोण

अगस्त 1942 में मुस्लिम लीग ने मुसलमानों से यह अपील की कि वे कांग्रेस के द्वारा शुरू किए आन्दोलन में किसी भी प्रकार का हिस्सा न लें यद्यपि मुस्लिम लीग कांग्रेस तथा भारत छोड़ो आन्दोलन के विरुद्ध थी । परन्तु इसने सरकार की भी आलोचना की क्योंकि उसने तुरन्त स्वतंत्रता प्रदान नहीं की। मोमिन कांग्रेस के समर्थक थे । भारतीय क्रिश्चियनों ने कलकत्ता अधिवेशन में सरकार से कहा कि भारत को शीघ स्वतंत्र करें । हिदू महासभा ने भी तुरन्त स्वतंत्रता की मांग की और राष्ट्रीय सरकार के निर्माण के लिये कहा ।

सिखों ने लायलपुर के अधिवेशन में तुरन्त पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की और पाकिस्तान के प्रस्ताव का विरोध किया । भारतीय साम्यवादी पार्टी अधिक होती जा रही थी । इसने सितम्बर 1942 में ब्रिटेन की उदार जनता से अपील की कि वे ब्रिटेन सरकार पर दबाव डालकर भारतीय जनता की न्यायोचित मांग को पूरा करें । साम्यवादी पार्टी ने कांग्रेस आन्दोलन और गतिविधियों की भी आलोचना की जो यातायात के साधनों को नष्ट कर रही थी और सार्वजनिक भवनों और सम्पत्ति को नष्ट कर रही थी।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने भारत के प्रश्न में लगातार दिलचस्पी बनाये रखी । इसका प्रमाण यह था कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने भारत में कोई न कोई अपना प्रतिनिधि किया। बिडिल बिलके ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बनवर्ल्ड' में कहा था कि जब उम्मीदों को किसी दूसरी आगामी तिथि के लिये टाल दिया गया तो जनमत के लिहाज से नुकसान ब्रिटेन को नहीं बल्कि अमेरिका को हुआ। चीन के च्यांग काई शेख ने भारत प्रश्न के बारे में कहा था कि ब्रिटेन के लिये सबसे समझदार नीति यह होगी कि भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करें ।

14.7 आन्दोलन की असफलता और महत्व

जहां तक भारतीय स्वतंत्रता का प्रश्न है भारत छोड़ो आन्दोलन 1942 में भी अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सका । तीन महीनों के क्रूर और नृशंस दमन के बाद सरकार पशु शक्ति के आधार पर आन्दोलन का दमन करने में सफल हुई । आन्दोलन त्री अपने मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा । यह ब्रिटिश शासन का तत्काल अंत नहीं कर सका और न ही भिन्न–भिन्न राजनीतिक दलों व वर्गों में एकता या सहयोग की भावना उत्पन्न कर सका।

परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि राष्ट्र ने सबसे शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध अपार हिम्मत और बहादुरी का प्रदर्शन किया । कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने इस आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जयप्रकाश नारायण हजारी बाग जेल से निकल आये और उन्होंने अन्डरग्राउड आन्दोलन का संचालन किया। उनके अन्य साथियों अशोक मेहता, अच्युत, पटवर्धन तथा राममनोहर लोहिया ने भी अंडरग्राउंड आन्दोलन में अहम भूमिका निभाई। लाहौर किले में जयप्रकाश नारायण को यातनायें दी गई । तीन महिलाओं – सुचेता कृपलानी, अरूणा आसिफ अली और ऊषा मेहता ने इस आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

14.8 सारांश

भारत छोड़ो आन्दोलन 1942 ने स्पष्ट रूप से राष्ट्र की आन्तरिक भावना को प्रकट कर दिया और यह तथ्य उभर कर आया कि अब भारत की स्वतंत्रता वास्तविक बन चुकी है और

भारत के सभी भागों में इसे व्यावहारिक माना जा रहा है । यह आन्दोलन इस हद तक जन आन्दोलन बन चुका था कि सरकार की मशीनरी कार्य करने में रुकावट महसूस करने लगी ।

कांग्रेस ने भारतीय जनता तक अपना प्रचार करने के लिये साईक्लोस्टाइल साहित्य का सहारा लिया। इस मशीनरी का प्रयोग छोटे तथा बड़े दुकानदारों ने किया । जो कि छिपे तौर पर परचें तथा विज्ञापन जनता तक पहुंचाते थे । बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, लाहौर, पटना, इलाहाबाद जैसे शहरों में इस का प्रचार प्रबल था। परचे, इश्तहार तथा विज्ञापन का प्रयोग गांव–गांव तक फैला। जवाहर लाल नेहरू ने इस संदर्भ में कहा था कि यह आश्चर्यजनक बात थी, कई स्थानों पर ब्रिटिश सत्ता ने कार्य करना बंद कर दिया। ऐसा विशेषत: बिहार, बंगाल के मिदनापुर और उत्तर प्रदेश के दक्षिणी पूर्वी हिस्सों में हुआ ।

भारत छोड़ो आन्दोलन 1942 अपने से पूर्व के गांधी के आन्दोलनों से भिन्न था । यह आन्दोलन सम्पूर्ण जनता के लिये खोल दिया गया । इसमें भाग लेने वालों पर न तो सदस्यता और न ही किसी शर्त की बन्दिश लगाई गई थी । इस तरह से यह सच्चे मायनों में जन आन्दोलन था। स्वतंत्रता के लिये गांधी जी की हताश भावना तथा अंतिम युद्ध के रूप को भी यह प्रकट करता है क्योंकि अब वह जनता की गुलामी को अधिक बर्दाशत नहीं कर सकते

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत छोड़ो आन्दोलन के कारण, कार्यक्रम तथा उसकी सफलता और असफलता को स्पष्ट कीजिए ।
2. भारत छोड़ो आन्दोलन पर एक टिप्पणी लिखिये ।
3. भारत छोड़ा आन्दोलन की असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन से भिन्नता स्पष्ट करते हुये इसमें महात्मा गांधी की भूमिका की समीक्षा कीजिये ।

14.10 संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. Majumdar R.C. (Ed.) - Struggle for Freedom
2. Chandra, Bipin - Modern India
3. Prasad, Bisheshwar - Bondage and Freedom Vol. I and II
4. India's Struggle Quarter of a Century 1921–1941 Part–II by A.C. Guha, Publication Divison.
5. History of Freedom Movement in India, Volume IV by Tara Chand, Publication Division.
6. Advanced History of Modern India, Volume Vth 1929 & 1947 ed. S.R. Bakshi, Anmol Publication, New Delhi.

इकाई – 15

मुस्लिम अलगाववाद का विकास (1930–46)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 कम्यूनल अवार्ड
15.3 संवैधानिक प्रश्नो पर कांग्रेस लीग सहयोग
15.4 1937 का चुनाव व मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विकास
15.4.1 1937 के चुनाव परिणाम
15.4.2 मंत्रिमण्डल–निर्माण के प्रश्न पर कांग्रेस व लीग के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण
15.4.3 जन सम्पर्क आन्दोलन
15.4.4 कांग्रेस मंत्रिमंडलों के खिलाफ लीग का दुष्प्रचार
15.4.5 कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा इस्तीफा व लीग द्वारा मुक्ति दिवस
15.5 पाकिस्तान आन्दोलन
15.5.1 पाकिस्तान की धारणा का उद्भव
15.5.2 पाकिस्तान प्रस्ताव (लीग का लाहौर अधिवेशन)
15.5.3 द्विराष्ट्र सिद्धांत – धारणा के आधार के रूप में
15.6 विभिन्न संवैधानिक प्रस्ताव व साम्प्रदायिक समस्या
15.6.1 क्रिप्स मिशन
15.6.2 सी आर. फार्मूला
15.6.3 वैवेल योजना व शिमला कांग्रेस
15.6.4 कैबिनेट मिशन योजना
15.7 लीग द्वारा सीधी कार्यवाही व साम्प्रदायिक दंगे
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.11 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य 1930 व 40 के दशक के मध्य भारत में साम्प्रदायिक समस्या के विकास का निरूपण करना है। इसे पढ़कर आप समझ सकेंगे कि किस प्रकार : –

- अपने समुदाय–विशेष के काल्पनिक या वास्तविक हितों के संवर्धन ने साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया ।
- संवैधानिक राजनीति मुस्लिम लीग व कांग्रेस के बीच मनमुटाव का कारण बनी ।
- साम्प्रदायिक प्रचार ने सामाजिक वातावरण को विषाक्त किया ।

- मुस्लिम लीग ने किन उपायों से मुस्लिम जनमानस पर अपनी पकड़ मजबूत की ।
- किन परिस्थितियों में भारत का विभाजन हुआ व पाकिस्तान का निर्माण हुआ ।

15.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आप पढ़ चुके है कि 1930 तक भारत में साम्प्रदायिक धुव्रीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो चुकी थी । भारत में धर्म के आधार पर साम्प्रदायिक संगठनों की स्थापना हो चुकी थी जो अपने–अपने सम्प्रदाय के हितों की रक्षा का दावा कर रहे थे व स्वतन्त्रता आन्दोलन में बाधा पहुंचा रहे थे । मुस्लिम लीग मुस्लिम सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करने वाली एक मात्र संस्था होने का दावा करने लगी थी । इस बीच, मुस्लिम अलगाववाद के विकास के लिये एक अन्य महत्वपूर्ण कारक बना - जिन्नाह का साम्प्रदायिक राजनीति के शीर्षस्थ नेता के रूप में उभरना ।

जैसा कि आप आगे पढ़ेंगे, 1930 के दशक से जिन्नाह का रवैया उत्तरोत्तर कड़ा व अड़ियल होता गया। 1937 के चुनाव के मुस्लिम लीग के लिये निराशाजनक परिणामों ने जिन्नाह का ध्यान मुस्लिम जनमानस के ऊपर अपना सीधा प्रभाव बढ़ाने की आवश्यकता पर केन्द्रित किया । इसके लिये कांग्रेस विरोधी साम्प्रदायिक दुष्प्रचार का आश्रय लिया गया । कांग्रेस को एक ऐसी "हिन्दू संस्था" के रूप में प्रचारित किया गया, जिसके अन्तर्गत मुस्लिम हित सुरक्षित नहीं रह सकते। साम्प्रदायिक शक्तियों ने अब भारत में दो राष्ट्रों के सिद्धांत का प्रतिपादन किया व इस आधार पर 1940 में मुस्लिम लीग ने एक पृथक राज्य पाकिस्तान की मांग की । ब्रिटिश सरकार के परोक्ष समर्थन के कारण भारत को सत्ता हस्तांतरण संबंधी सभी योजनाओं में मुस्लिम लीग ने अड़ंगा डालने की जी तोड़ कोशिश की। लीग के द्वारा साम्प्रदायिक दंगों को बढ़ावा दिया गया । इन परिस्थितियों में 1947 में भारत–विभाजन के अतिरिक्त संभवत: अन्य कोई विकल्प शेष न रहा। मुस्लिम अलगाववाद की परिणिति पाकिस्तान के स्वतन्त्र राज्य के निर्माण के रूप में हुई ।

15.2 कम्यूनल अवार्ड

साम्प्रदायिक नेताओं को 1930 के आरंभ में हुए गोलमेज सम्मेलनों में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का अवसर मिला । द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में मुस्लिम अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि के रूप में सर आगा खां ने पृथक निर्वाचन के प्रश्न पर कड़ा रूख अपनाया । उनके नेतृत्व में मुस्लिम प्रतिनिधियों का कहना था कि किसी भी योजना की स्वीकृति से पूर्व लीग के साम्प्रदायिक निर्वाचन संबंधी दावों को मान्यता दी जानी चाहिए। इस प्रकार प्रथम व द्वितीय गोलमेज सम्मेलनों के द्वारा साम्प्रदायिकता की समस्या का हल नहीं निकाला जा सका। तत्पश्चात् ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने 16 अगस्त 1932 को अपनी "फूट डालो व राज करो" की नीति पर चलने हुए कम्यूनल अवार्ड की घोषणा की।

अवार्ड में न केवल मुसलमानों को उन प्रान्तों में भारात्मक प्रतिनिधित्व दिया गया जहां वह अल्पमत में थे, बल्कि दलित वर्गों व भारतीय ईसाइयों के लिये भी पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कम्यूनल अवार्ड के द्वारा मुस्लिम लीग की लगभग अब सभी उन साम्प्रदायिक मांगों को स्वीकार कर लिया गया था, जिनका जिक्र 1927 के दिल्ली प्रस्ताव और 1929 के जिन्नाह के 14 सूत्रों में किया गया था।

15.3 संवैधानिक प्रश्नों पर कांग्रेस–लीग सहयोग

1932 के कम्यूनल अवार्ड के अलावा 1930–37 तक का काल स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में कांग्रेस–लीग सहयोग का काल था। 1930–34 के बीच सविनय अवज्ञा आन्दोलन में एक बार फिर राष्ट्रवादी शक्तियां सक्रिय हुई और पृष्ठभूमि में चली गई। कांग्रेस, जमाइते–उलेमा–ए–हिन्द व खुदाई खिदमतगार जैसे संगठनों के नेतृत्व में हजारों मुसलमान जेल में गये। उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त व काश्मीर जैसे दो नये मुस्लिम बहुल प्रान्त राष्ट्रीय आन्दोलन में उभरे। विशेष तौर से उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में खुदाई खिदमतगार संगठन ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के इतिहास में एक शानदार अध्याय जोड़ा।

संवैधानिक प्रश्नों पर कांग्रेस व लीग में भी एकता बनी रहे। 1935 में के द्वारा 1935 के एक्ट की संघीय व्यवस्था की आलोचना को कांग्रेस ने भी स्वीकारा। इसी दोनों संगठनों ने 1935 व 1936 में बजट को अस्वीकृत करवाने में एक दूसरे की मदद की। 1937 के आम चुनाव में भी दोनों के बीच कई स्थानों पर समझौता हुआ। संयुक्त में कांग्रेसी नेताओं ने लीग के सहयोग के बदले में उसे मिली जुली सरकार में कुछ स्थान देने का वचन दिया।

प्रसिद्ध इतिहासकार विपिन चन्द्र ने 1937 तक के काल को के विकास का उदार युग व 1937 के बाद के काल को "उग्र साम्प्रदायिकता" का युग है। वास्तव में 1937 के बाद से साम्प्रदायिक अलगाववाद ने एक नया मोड़ लेना आरंभ दिया।

15.4 1937 का चुनाव व मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विकास

पहले भी आप पढ़ चुके है कि चुनावी राजनीति का साम्प्रदायिकता के में काफी योगदान रहा है। इस दिशा में अगला दौर 1937 के चुनाव के दौरान आरंभ हुआ।

1935 के एक्ट के अनुसार मताधिकार का विस्तार किया गया था। मताधिकार के विस्तार के साथ जनसंपर्क का महत्व बढ़ा व मुस्लिम जनमानस को अपनी ओर आकृष्ट करने की होड़ ने साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया। 1937 के चुनाव के निराशाजनक से हताश होकर मुस्लिम लीग ने अपेक्षाकृत उदार व अर्द्ध–राष्ट्रीय कार्यक्रम को छोड़कर उसके स्थान पर घृणा व भय पर आधारित राजनीतिक प्रचार का आश्रय लेना व "इस्लाम खतरे में है" का नारा बुलन्द करना आरंभ कर दिया।

इस भाग में आप पढ़ेंगे कि किस प्रकार 1937 के चुनाव व उसके बाद के राजनीतिक घटनाक्रम ने जिन्नाह व मुस्लिम लीग के रवैये को प्रभावित किया । इसके बाद मुस्लिम अलगावाद ने एक नया मोड़ लिया ।

15.4.1 1937 के चुनाव परिणाम

1935 के एक्ट के अनुसार प्रान्तीय विधान मंडलों का चुनाव 1937 में हुआ । साम्प्रदायिकता के विकास की दृष्टि से इसके बड़े महत्वपूर्ण व दूरगामी परिणाम निकले जो कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है ।

तालिका

	मुसलमानों के लिए आरक्षित सीटें	प्राप्त स्थान
मुस्लिम लीग	485	110

11 प्रान्तों में से कांग्रेस को बम्बई, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, बिहार, उड़ीसा व केन्द्रीय प्रान्त में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ व उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में वह सबसे बड़े दल के रूप में उभरी । दूसरी ओर, मुस्लिम लीग को बस बंगाल व पंजाब में आशिक सफलता मिली । इसे मुस्लिम मतों का केवल 4.8% मत ही प्राप्त हो सके ।

जैसा कि पहले भी बताया गया है, इन परिणामों का मुस्लिम लीग विशेष तौर से मुहम्मद अली जिन्नाह की विचारधारा पर काफी प्रभाव पड़ा । इसके और इसके बाद मंत्रिमंडल निर्माण के संबंध में कांग्रेस से मतभेद ने जिन्नाह को राष्ट्रवादी राजनीति से उत्कृष्ट साम्प्रदायिक राजनीति की ओर संक्रमण की प्रक्रिया को पूरा कर दिया ।

15.4.2 मंत्रिमंडल–निर्माण के प्रश्न पर कांग्रेस व लीग के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण

अभी हमने विस्तार में इस बात की चर्चा की थी कि 1937 के चुनाव परिणाम मुस्लिम लीग के लिये विशेष लाभकारी सिद्ध नहीं हुए । इसके बाद जिन्नाह ने कांग्रेस के साथ मिलकर संयुक्त मंत्रिमंडल बनाने की इच्छा प्रकट की । लीग चाहती थी कि बंगाल, आसान व पंजाब में मिश्रित सरकारें स्थापित की जायें और संयुक्त प्राप्त और बिहार में भी उसके सदस्य कांग्रेस मंत्रिमंडल में सम्मिलित किये जाये। अत: जब संयुक्त प्रान्त में कांग्रेस द्वारा मंत्रिमंडल–निर्माण का प्रश्न उठा तो मुस्लिम लीग ने भी पूर्व समझौते के आधार पर दो मुस्लिम प्रतिनिधि शामिल किये जाने की मांग की । कांग्रेस राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता रफी अहमद किदवई को पहले ही मंत्रिमंडल में सम्मिलित कर चुकी थी । इस आधार पर वह मुस्लिम लीग को बस एक सीट देने को तैयार हुई। यही नहीं, उसने संयुक्त मंत्रिमंडल के निर्माण के लिये निम्नलिखित पूर्व शर्तें भी लीग के सम्मुख रखी।

1. मुस्लिम लीग विधान मंडल में एक पृथक गुट के रूप में काम करना बंद कर दे ।
2. संयुक्त प्रान्त की विधान सभा मे मुस्लिम लीग के वर्तमान सदस्य कांग्रेस दल के भाग के रूप में काम करें व कांग्रेस के अनुशासन को स्वीकार करें ।
3. संयुक्त प्रान्त की मुस्लिम लीग की संसद निकाय भंग की जाये व भविष्य में इसके द्वारा किसी भी उप चुनाव में सदस्य खड़े न किए जाए ।

जिनाह ने इन सुझावों को मुस्लिम लीग के विरुद्ध कांग्रेस की चाल बताया व इन्हें अस्वीकार कर दिया ।

आलोचकों की टिप्पणियां :

संयुक्त मंत्रिमंडल के प्रश्न पर कांग्रेस द्वारा लिये गये निर्णय की बहुत से इतिहासकारों ने आलोचना की है । उनका मानना है कि कांग्रेस का यह निर्णय दुर्भाग्यपूर्ण था । सायमंड्स ने तो यहां तक लिखा है कि "पाकिस्तान के निर्माण में इससे अधिक और किसी एक घटना ने सहायता नही की ।"

किन्तु वास्तव में कांग्रेस की कार्यवाही को सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुचित नहीं ठहराया जा सकता । कांग्रेस धर्म निरपेक्षता के प्रति वचनबद्ध थी और वह लीग के समस्त मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था होने के दावे को स्वीकार नही कर सकती थी । यह अपने को मात्र एक

हिन्दू संस्था स्वीकार करने के बराबर होता और जैसा कि राजेन्द्र प्रसाद ने क़हा "यह अपने अतीत का खंडन करने, अपने इतिहास को झूठा ठहराने व अपने भविष्य को धोखा देने के बराबर होता"। इतिहासकार एस. गोपाल ने भी इसी ओर इशारा करते हुए कहा है कि "लीग के साथ किसी प्रकार के गठबंधन का अर्थ होता कि कांग्रेस एक हिन्दू रूप अख़्तियार कर रही है और सभी भारतीयों की ओर सै आवाज उठाने के अपने अधिकार को ताग रही है ।"

सैद्धान्तिक रूप में कांग्रेस की यह कार्यवाई भले ही उचित हो, पर इससे कई व्यावहारिक समस्याएं सामने आईं और हिन्दू मुस्लिम संबंधों के लिये स्थायी कटुता उत्पन्न हुई । जवाहर लाल नेहरू ने भी इसके परिणामों की गंभीरता का अपनी पुस्तक "भारत की खोज में आकलन करते हुए कहा है, "साम्प्रदायिक प्रश्न पर इस घटना के प्रभाव दुर्भाग्यपूर्ण थे और इसने काफी बड़ी संख्या में मुसलमानों में असंतोष और पृथकता की भावना उत्पन्न की ।"

15.4.3 जनसंपर्क आन्दोलन

1937 के चुनाव के एक अन्य दृष्टि से भी महत्वपूर्ण परिणाम निकले । कांग्रेस व मुस्लिम लीग दोनों ने ही मुस्लिम जनमानस के साथ सीधा संपर्क करने की! आवश्यकता को अनुभव किया । पंडित नेहरू के नेतृत्व में चलाये गये कांग्रेस के जनसंपर्क आन्दोलन में मुस्लिम जनता को यह समझाने का प्रयास किया गया कि मुख्य समस्या साम्प्रदायिक नहीं वरन् आर्थिक है । इसके पूर्व कांग्रेस 1936 के अपने फैजपुर अधिवेशन में कृषि सुधारों के कार्यक्रम का प्रस्ताव पारित कर चुकी थी।

कांग्रेस के इस कार्यक्रम से लीग जो बड़े मुस्लिम जमींदारों का प्रतिनिधित्व करती थी बहुत आशंकित हुई । इसी समय पश्चिमी उत्तर प्रदेश के रईस जमींदार लियाकत अली खां जिन्नाह के पक्के समर्थक बन गये । मुस्लिम जमींदारों को डर था किं कांग्रेस के कृषि कार्यक्रमों से उनके अर्द्ध–सामंतीय हितों को नुकसान पहुंच सकता है । मध्यम श्रेणी के मुसलमान पहले ही भयभीत थे कि वे उद्योग, शिक्षा व सिविल सर्विसेज में हिन्दुओं के साथ प्रतियोगिता में पीछे रह जायेंगे।

मुस्लिम लीग ने इस भय की भावना का पूरा–पूरा लाभ उठाया व कांग्रेस के जनसंपर्क आन्दोलन के प्रत्युत्तर में अपना जनसंपर्क आन्दोलन तीव्र कर दिया । लीग की वार्षिक सदस्यता राशि घटाकर दो आना कर दी गई । "इस्लाम खतरे में है" का नारा बुलन्द किया गया व उसके द्वारा छोटे कस्बों व गांवों में रहने वाले मुस्लिम कृषकों व दस्तकारों को लीग में सम्मिलित करने का हर संभव प्रयास किया गया। 1938 तक लीग की 170 नयी शाखाएं स्थापित हो चुकी थी । जिनमें से 90 संयुक्त प्रान्त व 40 पंजाब में थी । केवल संयुक्त प्रान्त में ही एक लाख लोग मुस्लिम लीग के सदस्य बन चुके थे ।

15.4.4 लीग का दुष्प्रचार

जब कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने अपना कार्यभार संभाला, तब लीग ने कांग्रेस के खिलाफ अपना दुष्प्रचार आरंभ कर दिया। लीग के द्वारा यह आरोप लगाया गया कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है जिससे मुसलमानों के लिये न्याय व सद्भावना की आशा नहीं की जा सकती। 1937 में मुस्लिम लीग द्वारा पीरपुर के राजा की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी । इसने अपनी रिपोर्ट

15 नवम्बर 1938 में पेश की । इस पीरपुर रिपोर्ट में मुसलमानों पर कांग्रेस द्वारा किये अत्याचारों की कहानी दाढ़ी गई । इसमें कई स्थानों पर निराधार विवरण प्रस्तुत किये गये । वन्देमातरम को इस्लाम विरोधी और मूर्तिपूजा से संबंद्ध दर्शाया गया । रिपोर्ट में यह कहा गया "कांग्रेस सरकारों के कार्यों से यह स्पष्ट है कि कांग्रेस तथा हिन्दू महासभा के उद्देश्यों में तारतम्यता है – हम मुसलमान यह अनुभव करते है कि कांग्रेस के अपने आपको असाम्प्रदायिक कहने पर भी और कुछ कांग्रेसियों के वस्तुत राष्ट्रवादी नीतियों का अनुसरण करने पर भी कांग्रेस के अधिकांश सदस्य हिन्दू ही है और वे बहुत सी शताब्दियों के अंग्रेजी और मुस्लिम राज्य के उपरान्त विशुद्ध हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहते है ।"

वस्तुत: इन आरोपों में कोई भी सच्चाई नहीं थी । अंग्रेज अधिकारियों ने (जिन्हें किसी भी प्रकार कांग्रेस समर्थक नहीं कहा जा सकता है) यह स्वीकार किया है कि कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने साप्रदायिक अन्याय अथवा उत्पीड़न की नीति का बिल्कुल भी आश्रय नहीं लिया । इस संबंध में संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर हैरी हेरी की टिप्पणी महत्वपूर्ण है – "साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा करते समय 'मेरी राय में मंत्रियों ने साधारणतय : निष्पक्षता व औचित्य की भावना से काम किया है।"

यद्यपि लीग के आरोपों में सच्चाई नहीं थी फिर भी अपने झूठे प्रचार के माध्यम से लीग मुस्लिम जनमानस में अपना स्थान बनाने में सफल हुई । जिन्नाह की मुस्लिम जगत में प्रतिष्ठा बढ़ी और वह मुस्लिम लीग व मुसलमानों के शीर्षस्थ नेता बन गये ।

15.4.5 कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा इस्तीफा व मुस्लिम लीग का मुक्ति दिवस

आप अन्यत्र पढ़ चुके है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ होने पर कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने वाइसराय की घोषणा के विरोध में इस्तीफा दे दिया । यह कांग्रेस की महान भूल थी क्योंकि इससे जिन्नाह व मुस्लिम लीग के लिये मैदान साफ हो गया । जिन्नाह ने इस घटना का लाभ उठाते हुए कांग्रेस मंत्रिमंडलों के त्याग पत्र दिये जाने के दिन को कांग्रेस के अत्याचार से मुसलमानों की "मुक्ति दिवस" के रूप में मनाने का आह्वान किया । गांधी जी की अपील पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। 22 दिसम्बर, 1939 को मुस्लिम लीग द्वारा सारे भारत में "मुक्ति दिवस" मनाया गया व विषाक्त साम्प्रदायिक प्रचार–अभियान तीव्र कर दिया गया । कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने इस्तीफे के बाद से मुस्लिम लीग के रवैये में और कड़ापन आया और उसने स्पष्ट रूप से पृथकतावादी रूख अपनाना आरंभ कर दिया । इसी समय द्विराष्ट्र सिद्धांत को विकसित किया गया व मुसलमानों के लिये एक पृथक देश–पाकिस्तान की मांग की गई ।

15.5 पाकिस्तान आन्दोलन

इस भाग में आप पाकिस्तान आन्दोलन के उद्भव व विकास के बारे में पढ़ेंगे । इसे पढ़कर आप समझ सकेंगे कि किस प्रकार पाकिस्तान जो आरंभ में एक "दार्शनिक का स्वप्न–मात्र" था। लीग की राजनीति का अन्तिम लक्ष्य बन गया ।

15.5.1 पाकिस्तान की धारणा का उद्भव

साधारणत: पाकिस्तान की अवधारणा के उदय को मुस्लिम राष्ट्रवादी कवि मोहम्मद इकबाल से संबद्ध किया जाता है। 1930 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के इलाहाबाद अधिवेशन

के सभापति के रूप में दिये अपने भाषण में उन्होंने कहा थी, "मेरी इच्छा है कि पंजाब, उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्धु व बलूचिस्तान को मिलाकर एक राज्य बना दिया जाये । ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर या बाहर, एक उत्तर–पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य का गठन मुझे उत्तर–पश्चिमी भारत के मुसलमानों की तो कम से कम अंतिम परिणिति लगती है।"

इकबाल के इस विचार को उस समय गंभीरता से नहीं लिया गया और इसे एक दार्शनिक का स्वप्न मात्र समझा गया । किन्तु शनै–शनै इस विचार की ओर लंदन के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के कुछ विद्यार्थी आकर्षित हुए । वहां के एक मुस्लिम विद्यार्थी रहमत अली ने इस धारणा को विकसित किया और पंजाब, अफगान प्रान्त (उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त), काश्मीर, सिन्ध के पहले अक्षरों व बलूचिस्तान के "तान" को लेकर "पाकिस्तान" की संज्ञा दी । उनका कथन था कि इन प्रान्तों को मिलाकर पाकिस्तान का एक स्वतंत्र, मुस्लिम राज्य स्थापित किया जाना चाहिए ।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन के दौरान रहमत अली ने "अभी या कभी नही" शीर्षक से एक संक्षिप्त पर्चा लंदन में प्रतिनिधियों को वितरित किया जिसमें पाकिस्तान की इस अवधारणा का जिक्र किया गया था। लेकिन सम्मेलन के मुस्लिम प्रतिनिधियों ने इसे स्वीकार नहीं किया। मुस्लिम प्रतिनिधि सर जफरूल्ला खां ने इसे "काल्पनिक व अव्यावहारिक" और युसुफ अली ने इसे 'विद्यार्थियों की योजना' की संज्ञा दी । यहां तक कि जिन्नाह ने भी इस विचार को नही अपनाया। 19 जनवरी 1940 के एक लेख में जिन्नाह ने लिखा, भारत में दो राष्ट्र है और दोनों को अपनी मातृभूमि के शासन में समान भाग मिलना चाहिए ।" लेकिन कुछ ही समय बाद जिन्नाह का स्वर बदल गया और मार्च 1940 में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में उन्होंने "पाकिस्तान प्रस्ताव" पारित किया ।

15.5.2 पाकिस्तान प्रस्ताव (लीग का लाहौर अधिवेशन)

हिन्दू तथा मुसलमान दो पृथक राष्ट्र है, इसकी लीग द्वारा सर्वप्रथम स्पष्ट घोषणा लीग के मार्च 1940 के लाहौर अधिवेशन में की गयी । जिन्नाह ने स्थापित के रूप में जो प्रस्ताव सामने रखा, उसे थोड़े विस्तार में जानना आवश्यक है –

"भारत में समस्या दो सम्प्रदायों के बीच की नहीं बल्कि स्पष्ट रूप से अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप की है ये (हिन्दुत्व और इस्लाम) मात्र दो धर्म नहीं है, बल्कि दो स्पष्ट पृथक सामाजिक व्यवस्थाएं है..... हिन्दू व मुस्लिम, दोनों के दो अलग धार्मिक दर्शन, सामाजिक रीति–रिवाज व साहित्य है । ये आपस में खान–पान, शादी–ब्याह नहीं करते और ये दो परस्पर विरोधी विचार वाली भिन्न सभ्यताओं का प्रतिनिधित्व करते है..... ऐसे दोनों जातियों को एक राज्य में इकट्ठा बांधने से, जिसमें एक अल्पसंख्यक हो और दूसरा बहुसंख्यक, असंतोष बढ़ेगा और उस राज्य के तंत्र के लिये ही अन्ततः घातक सिद्ध होगा..... मुसलमान, जैसा कि सामान्यता कहा व समझा जाता है, अल्पसंख्यक नहीं है, बल्कि राष्ट्र की हर परिभाषा के अनुसार एक राष्ट्र है, और उनका अपना एक क्षेत्र, अपना एक घर, एक राज्य होना ही चाहिए ।"

अपने 1937 के चुनाव घोषणा पत्र में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का जिक्र तक नहीं किया था मगर अब वही इसका सबसे बड़ा राजनीतिक लक्ष्य बन गया । यह प्रस्ताव बहुत से

बिन्दुओं पर अस्पष्ट था किन्तु इसमें एक पृथक राष्ट्र की मांग स्पष्ट व असंदिग्ध रूप से की गयी थी ।

लाहौर प्रस्ताव के पारित होने के बाद "पाकिस्तान" के पक्ष में जोरदार प्रचार आरंभ कर दिया गया। देशभर के मुसलमानों को यह समझाने की चेष्टा की गई कि एक समृद्ध मुस्लिम राज्य होगा जिसमें मुसलमान हर दृष्टि से सर्वप्रमुख होंगे । महत्वाकांक्षी राजनेता, सरकारी कर्मचारी तथा अन्य व्यवसायी वर्गो को लगने लगा कि हिन्दू प्रतियोगिता के अभाव में वह सत्ता व समृद्धि की ऊँचाई तक पहुंच सकेंगे । इस सम्बन्ध में बंगलादेश के इतिहासकार प्रो ए एफ सलाहुद्दीन अली अहमद की टिप्पणी बहुत सटीक है । (अप्रैल 1972 में बंगलादेश पर यू. जी. सी. सेमीनार में,) "पाकिस्तान के निर्माण की दिशा में होने वाला आन्दोलन धार्मिक नहीं था ।.. हिन्दुओं के राजनीतिक प्रभुत्व का भय जिससे मुस्लिम समुदाय के राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता, इसके पीछे सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण थे ।.... यही कारण है कि कुछ मुस्लिम धार्मिक उलेमाओं के विरोध के बावजूद मुस्लिम लीग को मुस्लिम मध्यमवर्ग व इसके द्वारा मुस्लिम जनता का समर्थन मिला। उनके लिये पाकिस्तान बिना किसी प्रतियोगिता व भय के सर्वागीण विकास का एक अवसर था।

" इस प्रकार, द्विराष्ट्र सिद्धांत, अलगाववाद को अमल में लाने का सैद्धान्तिक आधार बन गया ।

15.5.3 द्विराष्ट्र सिद्धांत – धारणा के आधार के रूप में

अब हम देखेंगे कि "द्विराष्ट्र सिद्धांत" जिसके आधार पर जिन्नाह व मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग की, वह कहां तक उचित या अनुचित था ।

मूलरूप से द्विराष्ट्र सिद्धांत जीन स्टुअर्ट मिल के इस विचार पर आधारित है कि "राज्य का क्षेत्र" साधारणतया राष्ट्रीयता के क्षेत्र के अनुरूप होना चाहिये। प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त वह विचार यूरोप भर में बहुत लोकप्रिय हुआ व इसके आधार पर कई पुराने राज्यों को तोड़कर राष्ट्रीयता के आधार पर नये राज्यों का गठन हुआ । इसके पीछे तर्क यह था कि एक स्वतन्त्र राज्य ही एक पृथक राष्ट्रीयता की अपनी भाषा, धर्म व संस्कृति के विकास का आधार, बन सकता है क्योंकि स्वतन्त्र राज्य में परस्पर ईर्ष्या, द्रेष व अल्पसंख्यकों के ऊपर बहुसख्यकों के अत्याचार नहीं होंगे।

जिन्नाह का द्विराष्ट्र सिद्धान्त सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोणों से नितांत त्रुटिपूर्ण था । हरेक जाति के लिये अलग राज्य की धारणा को यदि स्वीकार कर लिया जाये तो समूचा विश्व अनेक छोटे–छोटे टुकड़ों में बंटकर रह जायेगा अनेकानेक समस्याएं उठ खड़ी होंगी । वास्तव में एक संघीय राज्य और समन्वित संस्कृति के द्वारा ही विभिन्न राष्ट्रीयता शांतिपूर्वक अपने सांस्कृतिक जीवन को सुरक्षित रखते हुए रह सकती है । अल्प–संख्यकों की समस्या के समाधान की दृष्टि से भी पाकिस्तान का निर्माण लाभप्रद सिद्ध नहीं हुआ । इसके बाद भी अल्पसंख्यकों की समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। वास्तव में, अलगाववाद नही, बल्कि एक समन्वित संस्कृति ही सभी समस्याओं का बन सकती है ।

इसमें संदेह नहीं कि द्विराष्ट्र सिद्धांत त्रुटिपूर्ण था लेकिन दुर्भाग्यवश भारत में यही सफल हुआ । मुस्लिम लीग पाकिस्तान की अपनी मांग को दृढ़तापूर्वक अपनाये रही और जब भी कभी

संवैधानिक समस्या का हल निकालने का प्रयास किया गया, पाकिस्तान की मांग ने उसे असफल कर दिया ।

15.6 विभिन्न संवैधानिक प्रस्ताव व साम्प्रदायिक समस्या

अब हम यह पढ़ेंगे कि लीग किस प्रकार अपनी "पाकिस्तान मांग" पर अडिग रही व उसने संवैधानिक गतिरोध को दूर नही होने दिया। क्रिप्स मिशन राजगोपालाचारी फार्मूला व कैबिनेट मिशन द्वारा जो प्रयास इस दिशा में किये गये उन्हें मुस्लिम लीग के द्वारा असफल कर दिया गया ।

15.6.1 क्रिप्स प्रस्ताव

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान युद्ध की बिगड़ती हुई स्थिति व मँडराते हुए जापानी संकट के कारण ब्रिटिश सरकार को भारत के संवैधानिक गतिरोध को दूर करने, आवश्यकता अनुभव हुई। इसके लिये सर स्टेफर्ड क्रिप्स को नये प्रस्तावों के साथ भारत भेजा गया। क्रिप्स मिशन 22 मार्च, 1942 को भारत पहुंचा । क्रिप्स ने कांग्रेस, मुस्लिम लीग विभिन्न संगठनों से मुलाकात की। तत्पश्चात् कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये जो क्रिप्स प्रस्ताव कहलाते है। क्रिप्स प्रस्ताव में युद्ध की समाप्ति के बाद एक संविधान सभा बनाये जाने की बात की गयी जिसे भारत का नवीन संविधान बनाने का कार्य सौपा जायेगा। नये भारतीय संघ में भारतीय प्रान्त व देशी रियासतों के शामिल होने की बात की गयी लेकिन साथ ही मुस्लिम लीग को प्रसन्न करने के लिये यह भी जोड़ा गया कि जो प्रान्त या देशी रियासतें नये संघ में सम्मिलित न होना चाहें वह पृथक रहकर अपने लिये अलग संविधान बना सकते है। प्रान्तों को संघ में सम्मिलित न होने का अधिकार प्रदान करना अप्रत्यक्ष रूप मे मुस्लिम लीग के की मांग को प्रोत्साहित करना था । मुस्लिम लीग ने प्रस्ताव में निहित पाकिस्तान की मान्यता का तो स्वागत किया लेकिन इसे प्राप्त करने की प्रक्रिया को अस्पष्ट व जटिल बताया इस प्रकार, उसने क्रिप्स प्रस्तावों को नामंजूर कर दिया । कांग्रेस कार्य समिति का दृष्टिकोण कि इसकी स्वीकृति भारत के अनेक खंडों में विभाजन के द्वार खोल देगा । इस प्रकार कांग्रेस भी क्रिप्स मिशन को स्वीकार नहीं किया ।

15.6.2 सी. राजगोपालाचारी फार्मूला

साम्प्रदायिक समस्या का हल निकालने के लिये अगला प्रयास सी. राजगोपालाचारी द्वारा किया गया। इसे सी. आर. फार्मूला कहते है । इसकी प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थी –

1. मुस्लिम लीग पूर्ण स्वतंत्रता की मांग का अनुमोदन करेगी व कांग्रेस के साथ अन्तिम सरकार बनाने में सहयोग करेगी ।
2. युद्ध की समाप्ति के बाद एक कमीशन बनाया जायेगा जो उत्तर पश्चिम व उत्तर पूर्व के मुस्लिम बहुल इलाकों को सुनिश्चित करेगा । इन क्षेत्रों में भारत से विभाजन के विषय पर वयस्क मताधिकार के आधार पर जनमत कराया जायेगा 1
3. विभाजन की स्थिति में सुरक्षा, वाणिज्य, संचार साधनों व अन्य आवश्यक विषयों पर परस्पर सहयोग किया जायेगा ।

इन प्रस्तावों के साथ गांधी जी सितम्बर, 1944 में जिन्नाह से मिले । लेकिन वह स्वतन्त्र व संप्रभु पाकिस्तान के अतिरिक्त कुछ स्वीकार करने को तैयार न थे। उन्होंने सी. आर.

फार्मूला को "अंग कटे, सडे व दीमक लगे पाकिस्तान की योजना" कहकर अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार, वार्ता भंग हो गयी ।

राष्ट्रवादी नेता मौलाना आजाद ने गांधी जी के जिन्नाह के पास जाने को "एक भारी राजनीति भूल" कहकर आलोचना की है । उनका कहना है कि इससे जिन्नाह का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया जिसका उसने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये पूरा लाभ उठाया ।

15.6.3 वैवेल योजना व शिमला कांग्रेस

राजगोपालाचार्य योजना के बाद 1945 में भारत के गवर्नर–जनरल लार्ड वैवल द्वारा भारत की राजनीतिक समस्या का हल निकालने का प्रयास किया। इसमें वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद को पुर्नगठित करके उसे एक प्रकार की अन्तिम राष्ट्रीय सरकार का रूप देने की बात उठायी गयी। यह कार्यकारिणी परिषद वाइसराय व प्रधान सेनापति को छोड़कर सर्वभारतीय होगी व इसमें सवर्ण हिन्दुओं व मुसलमानों की संख्या बराबर रखते हुए भारत के सभी प्रमुख सम्प्रदायों को संतुलित प्रतिनिधित्व का प्रावधान रखा गया ।

इन प्रस्तावों पर विचार करने के लिये 25 जून, 1945 को शिमला में एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया । इसमें मौलाना आजाद, गांधी, जिन्नाह समेत 22 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। सम्मेलन आरंभ होने के शीघ्र बाद ही साम्प्रदायिक मतभेद उभरने लगे व जिन्नाह की हठधर्मिता ने संतोषजनक समाधान निकाले जाने के प्रयत्नों को असफल कर दिया। जिन्नाह का कहना था कि मुस्लिम लीग ही मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था है, अत: कार्यकारिणी परिषद के पाँचों मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग के ही प्रतिनिधि होने चाहिएं। दूसरी ओर मौलाना आजाद कार्यकारिणी परिषद की सूची में दो राष्ट्रीय मुसलमानों को सम्मिलित करना चाहते थे। जिन्नाह के दावे को स्वीकार करने का अर्थ होता कि कांग्रेस मात्र एक हिन्दू संस्था है जो कि सत्य के विपरीत था। यूं भी मुस्लिम लीग का समस्त भारतीय मुसलमानों का प्रतिनिधि होने का दावा गलत व बेबुनियाद था । चार मुस्लिम बहुल प्रान्तों में उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त कांग्रेस के प्रभाव में, पंजाब यूनियन वादी पार्टी के प्रभाव में व सिंध भी स्थिर व स्थायी सरकार के लिए काफी हद तक कांग्रेस पर निर्भर था । इस प्रकार जिन्नाह का दावा पूर्ण रूप से असत्य पर आधारित था । कांग्रेस व मुस्लिम लीग के इस प्रश्न पर मतभेद के कारण शिमला कांफ्रेस असफल हो गयी ।

मौलाना आजाद ने शिमला सम्मेलन की असफलता को एक "दुर्घटना" कहा है जिसके लिये जिन्नाह की हठधर्मिता के साथ–साथ वाइसराय वैवल की नीति भी थी । लार्ड वैवल ने मुस्लिम लीग के दावे को अनुचित समझते हुए भी स्वयं कोई व ठोस निर्णय नहीं लिया । इस प्रकार जिन्नाह को राष्ट्र के संवैधानिक विकास में रोड़ा अटकाने का पूरा अधिकार दे दिया गया । वास्तव में, जिन्नाह को वाइसराय के रूख से बहुत शह मिली ।

15.6.4 कैबिनट मिशन योजना

मार्च 1946 में कैबिनट मिशन को भारत की संवैधानिक समस्या पर विमर्श करने के लिये भारत भेजा गया । इसके पहले ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली का वक्तव्य प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा कि "हम अल्पसंख्यकों के अधिकारों के बारे में है । परन्तु हम अल्पसंख्यकों

को बहुसंख्यकों पर निषेधाधिकार नहीं दे सकते।" इस वक्तव्य कांग्रेस की आशाएं बंधी कि सत्ता हस्तांतरण से जुड़ी समस्याओं की समाप्ति के दिन निकट ही है । इस बीच मुस्लिम लीग की स्थिति में काफी परिवर्तन हो चुका था । 1945–46 के आम चुनाव में मुस्लिम लीग को मुसलमानों के 75% मत प्राप्त हुए थे और बंगाल, पंजाब व सिंध में उसको पर्याप्त सफलता मिली थी । इस प्रकार मुस्लिम लीग सुदृढ़ राजनीतिक दल के में उभर चुका था।

कैबिनट मिशन योजना 16 मई, 1946 को प्रकाशित हुई। इसमें एक केन्द्रीय सरकार का प्रावधान रखा गया जिसके अधीन विदेशी मामले, रक्षा तथा संचार साधन हों। सम्प्रभु पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार किया गया लेकिन लीग की" के हितों की रक्षा की मांग को ध्यान में रखते हुए सभी प्रान्तों को "अ", "ब", एवं "स" भागों में बांटा गया । इनमें हिन्दू बहुसंख्यक प्रान्त मद्रास, बम्बई, मध्य प्रान्त, यू. पी., व उड़ीसा को समूह "अ" में पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा सिन्ध के मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों को समूह "ब" में तथा बंगाल व आसाम के मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों को समूह "स" में गठित किया जाना था । इस प्रकार, पाकिस्तान के सार को बिना भारत के विभाजन के, करने का प्रयत्न किया गया ।

अनेक दोषों व अस्पष्टताओं के होते हुए भी कैबिनट मिशन योजना में एक बड़ा गुण यह था कि इसमें एक स्वतन्त्र व सम्प्रभु पाकिस्तान की मांग को नामंजूर कर दिया गया । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क दिये गये –

1. पाकिस्तान का निर्माण अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान नहीं है शेष भारत में मुसलमान फिर भी बचे रह जायेंगे ।
2. पंजाब, बंगाल व आसाम के उन इलाकों को जहां जनसंख्या अधिकांशतः गैर मुस्लिम है, पाकिस्तान में सम्मिलित करना अनौचित्यपूर्ण है । ।
3. इससे यातायात व संचार व्यवस्था भंग होगी ।
4. पाकिस्तान के पूर्वी व पश्चिमी भागों में सैकड़ों मील का अंतर होगा जो के लिये असुविधाजनक होगा ।

कैबिनट मिशन योजना को सिद्धांत रूप से कांग्रेस व मुस्लिम लीग समेत सभी प्रमुख राजनीतिक दलों ने स्वीकार कर लिया। कैबिनट मिशन योजना की के बाद जुलाई 1946 में संविधान सभा का चुनाव हुआ। इसमें 210 सामान्य सीटों में से 199 कांग्रेस विजयी रही। 78 मुस्लिम सीटों में से 73 मुस्लिम लीग को व शेष 5 कांग्रेस समेत अन्य दलों को प्राप्त हुई । कांग्रेस की इस प्रमुखता से जिन्नाह सशंकित हुए और उन्होंने एक पृथक संविधान सभा की मांग करनी आरम्भ कर दी और अंत में 29 जुलाई 1946 को लीग ने कैबिनट मिशन से अपनी स्वीकृति वापस ले ली ।

इस प्रकार संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिये 1942 से 1945 तक जितने भी प्रयास किये गये, जिन्नाह की हठधर्मिता के कारण असफल सिद्ध हुए ।

15.7 लीग द्वारा सीधी कार्यवाही व साम्प्रदायिक दंगे

कैबिनट मिशन को अस्वीकार करने के साथ ही जिन्नाह द्वारा "सीधी कार्यवाई" के लिये 16 अगस्त का दिन निश्चित किया गया । बंगाल में जहां लीग की सरकार थी, 16 अगस्त को सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित किया गया । इस दिन लीग द्वारा साम्प्रदायिक दंगे भड़काये

गये। एक ही दिन में हजारों लोग मार डाले गये । डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "इस तरह का कत्ले आम कलकत्ते में कभी नहीं हुआ था । "मौलाना आजाद ने भी 16 अगस्त को 'भारत के इतिहास में काले अक्षरों से लिखा जाने वाला दिन" की संज्ञा दी है ।

लीग की प्रत्यक्ष कार्यवाई के नाम पर इस कत्ले आम से सारे देश में साम्प्रदायिक उपद्रव भड़क उठे । थोड़े ही दिनों में नोआखली, गढ़मुक्तेश्वर, अहमदाबाद, बिहार, पंजाब व उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि फैल गई ।

इस बीच अड़ंगा लगाने के उद्देश्य से मुस्लिम लीग अन्तिम सरकार में सम्मिलित हुई । लीग के नामित सदस्य गजनफार अली ने स्पष्ट कहा, "हम अपने पाकिस्तान के प्रिय लक्ष्य को पूरा करने के उद्देश्य से अन्तरित सरकार में शामिल हो रहे है । अन्तिम सरकार हमारी सीधी कार्यवाही के मुहीम का एक अंग है ।"

अन्तरिम सरकार में लीग की इस नीति के चलते सरकार का सामान्य कामकाज चलाना भी दूभर हो गया। यह उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जा रहा था कि कांग्रेस व लीग में परस्पर सहयोग कर पाना अत्यन्त कठिन है ।

15.8 सारांश

इस प्रकार 1947 के अंत तक साम्प्रदायिकता का जहर सारे देश में इस प्रकार फैल चुका था कि 1947 में भारत के दो टुकड़ों में विभाजन के अतिरिक्त संभवत: कोई अन्य विकल्प ही नहीं बचा था। सारांश के रूप में यह कहा जा सकता है कि 1930 व 1946 के मध्य में मुस्लिम अलगाववाद का व्यापक विकास अपनी अंतिम परिणिति तक पहुंच गया । इसका अंदाजा निम्नलिखित तथ्यों से लगाया जा सकता है –

1. 1930 में मुस्लिम लीग का जनाधार बहुत सीमित था किन्तु 1946 तक मुस्लिम लीग का जनाधार अत्यन्त व्यापक हो चुका था । यदि आप 1939 के व 1946 के आम चुनाव के नतीजे की तुलना करें तो पायेंगे कि बाद के वर्षों में लीग की मुस्लिम मतदाताओं पर पकड़ पर्याप्त प्रबल हो गयी थी ।
2. दूसरी प्रमुख बात थी जिन्नाह का स्पष्ट रूप से मुस्लिम जनमानस के शीर्षस्थ नेता के रूप में उभरा। 1929 तक जिन्नाह का कांग्रेस के प्रति रूख सकारात्मक था किन्तु 1930 से 1946 तक उनका रवैया अड़ियल व समझौता विरोधी गया। साथ ही उनकी लोकप्रियता भी उत्तरोत्तर बढती चली गई और 1946–47 वह "कायदे–आजम" कहलाने लगे ।
3. इसी काल की तीसरी प्रमुख विशेषता थी, पाकिस्तान आन्दोलन का उद्भव व विकास। 1930 के आरम्भ के वर्षो में "पाकिस्तान" के विचार को "एक विद्यार्थी की योजना" व "अव्यावहारिक योजना" कहकर नजरअंदाज किया गया था वही 1946 के बाद एक मूर्त वास्तविकता बन गयी ।

15.9 शब्दावली

1. भारात्मक प्रतिनिधित्व – समुदाय विशेष को उनके महत्व के आधार पर उनकी संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना ।
2. अलगाववाद – राष्ट्रीय मुख्यधारा से अलग होने की प्रक्रिया ।

3. पृथक निर्वाचन व्यवस्था – मुसलमानों द्वारा अपने मुस्लिम प्रतिनिधियों को अलग से चुनने की व्यवस्था ।
4. संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था–हिन्दुओं व मुसलमानों द्वारा मिलकर अपने प्रतिनिधित्व चुनने की व्यवस्था ।
5. द्विराष्ट्र सिद्धांत – भाषा, धर्म व संस्कृति को राष्ट्र की अवधारणा का आधार मानते हुए हिन्दुओं व मुसलमानों का पृथक राष्ट्र बनाने का सिद्धांत ।

15.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. साम्प्रदायिकता के विकास की दृष्टि से 1937 के चुनाव के क्या परिणाम निकले?
2. पाकिस्तान की मांग की उत्पत्ति का उल्लेख करिये और: इसके संबंध में ब्रिटिश रूख का परीक्षण करिये ।
3. द्विराष्ट्र सिद्धांत क्या था? उसने किस प्रकार पाकिस्तान के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया?
4. ब्रिटिश सरकार कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के मध्य हुई 1945 की शिमला कान्फ्रेंस की असफलता का उत्तरदायित्व आप किस पर रखेंगे?
5. भारतीय मुसलमानों पर मुस्लिम लीग अपना प्रभाव स्थापित करने में किस प्रकार सफल हुई? इस संदर्भ में जिन्नाह की भारत के प्रति नीति के प्रभाव का मूल्यांकन करिये ।

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. अयोध्या सिंह – 'भारत का मुक्ति संग्राम".
2. जे॰पी. मिश्र – 'भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास"
3. नेहरू – "भारत एक खोज"
4. सुमित सरकार – "आधुनिक भारत 1885–1947.

अंग्रेजी:

1. Bipan Chandra – “India’s struggle for Independence 1857–1947
2. …….. – Communalism in Modern India
3. Azad, Maulana – “India Wins Freedom”
4. C.H. Philips MD Wainright(ed.). – “The partition of India”
5. F.R.N. Pannikar(ed) – “Communalism in India History, Politics and Culture”
6. Stanley Wolpert – “Jinnah of Pakistan”

इकाई – 16

देशी रियासतों में स्वतंत्रता आदोलन का सर्वेक्षण

इकाई संरचना

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 राजस्थान में जन आन्दोलन

16.2.1 किसान आन्दोलन

16.2.2 आदिवासी आन्दोलन

16.2.3 नयी राजनैतिक चेतना

16.3 प्रजामण्डल आन्दोलन

16.3.1 प्रजामण्डल आन्दोलन की प्रारम्भिक स्थिति

16.3.2 कांग्रेस की नीति में परिवर्तन व प्रजामण्डल

16.3.3 देशी रियासतों में 1942 के आन्दोलन के पश्चात् के घटनाक्रम भारत की स्वतंत्रता व राजस्थान के राज्यों का विलय

16.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.5 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

16.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य 1920 से 1947 के मध्य भारत की देशी रियासतों में स्वतंत्रता आन्दोलन के स्वरूप की विशद् जानकारी प्रस्तुत करना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे–

- अंग्रेजी भारत व देशी रियासतों में राजनैतिक चेतना के स्तरों में अन्तर
- अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व देशी रियासतों के जन संघर्षों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध
- देशी रियासतों के स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति कांग्रेस की नीति
- कुछ प्रमुख रियायतों के स्वतंत्रता आंदोलन व जन आंदोलनों का स्वरूप
- 1920 के पश्चात् भारतीय राजनीति के उभार के प्रभाव में देशी रियासतों में उपजी राजनैतिक चेतना ।

16.1 प्रस्तावना

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में देशी रियासतों की भूमिका कुछ भिन्नता लिए हुए है। जैसा कि विदित है कि भारत मे अंग्रेजी राज के दौरान भारतीय भू–भाग प्रशासनिक दृष्टि से दो भागों में विभाजित था । इसे क्रमश: अंग्रेजी भारत व देशी रियासतों के नाम से जाना जाता था। देशी रियासतों का स्वाधीनता संग्राम ब्रिटिश भारत के भू–भागों से भिन्न था । जहाँ ब्रिटिश भारत के क्षेत्रों का सीधा संघर्ष ब्रिटिश सत्ता से था, वही उनकी लड़ाई भी स्पष्ट थी। जबकि देशी–रियासतों की जनता का संघर्ष सीधे अंग्रेजी सला के साथ न होकर सामन्ती शासकों एवं जागीरदारों के साथ था। अत: इन रियासतों की लड़ाई का निशाना धुंधला होते हुए भी जन

संघर्षों के माध्यम से स्पष्ट होता चला गया । रियासतों की जनता पर प्रशासन का तिहरा भार क्रमश: अंग्रेजी सत्ता, राजा एवं जागीरदार था । अत: ब्रिटिश भू–भागों की तुलना में रियासती जनता का गाढ़ा शोषण प्रचलित था । वैसे तो सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजी सत्ता का वर्चस्व था किन्तु देशी रियासतों के शासकों को आन्तरिक मामलों में नाममात्र की स्वायतता प्राप्त थी। इस स्वायला का लाभ देशी रियासतों के शासकों ने जनहित में न लेकर अपने संकीर्ण स्वार्थो तक ही सीमित रखा या अपने गौरांग प्रभुओं को प्रसन्न रखने के लिए इसका दुरुपयोग किया । जिसका दुष्परिणाम था, रियासती जनता का दमन व शोषण ।

राजस्थान के अजमेर – मेरवाड़ा क्षेत्र के अतिरिक्त, सम्पूर्ण राजस्थान देशी रियासतों के अन्तर्गत था । यहां की जनता के शोषण के स्वरूप का एक लेख से विश्लेषण किया जा सकता है। अन्य देशी रियासतों की तरह राजस्थान में भी बेगार प्रथा प्रचलित थी । इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली "चाँद" नामक मासिक पत्रिका ने नवम्बर 1931 में इस प्रकार लिखा – "आजकल राजाओं और राज कर्मचारियों के दौरे के समय मोटरों एवं घोड़े–गाड़ियों के लिए रास्तों को ठीक कराना, डेरों, छोलदारी लगवाना, हाथी–घोड़े आदि जानवरों के लिए घास कटवाना, डेरों पर पानी मंगवाना, चौका लगवाना, धोतियाँ धुलवाना, जंगल से लकड़ी कटवाना दूध के लिए लोग की गायों और भैसों को कैम्पों पर बंधवा देना आदि सारे कार्य आज राजपूताना में बिना कुछ उजरत या मजदूरी दिये प्रजा से बलपूर्वक कराये जाते है । जब तक दौरा करने वाले राजा या उनके कर्मचारी उस गांव में अपना कैम्प लगाए रहते है, तब तक उस गाँव में खासा आतंक छाया रहता है । पचासों आदमियों का घरु धंधा रोक दिया जाता है । बेगार पर जाने के लिए इंकार करने वालों को छोटे कर्मचारी लोग जूतों और डण्डों से पीटते है, बैतों से चमड़ा फाड़ देगें है, और स्त्रियो के गुप्त स्थानों तक में डण्डे मुसेड घूसेड़ देते सुने गए है। जिस वक्त अपने दरबार के लिए शिकार का हांका लगता है, उस वक्त कई गावों के लोग इकट्ठे कर लिए जाते है । जब कभी राजा का कोई सामान एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया जाता है, तो वह बेगार ही से पहुंचाया जाता है। दौरे में कैम्प पर महाजनों की दुकानें लगती है, जिनसे बाजार भाव की अपेक्षा बहुत सस्ते भाव पर राजा के मुलाजिम आटा, दाल, घी, मसाला बगैरा खरीदते है । बेचारे दुकानदार लोग, जो कीमत उन्हें दी जाती है, बिना किसी चूं–चपड़ के चुपचाप ले लेते है। सरकारी मकानों की लिपाई–पुताई और सराई करना, तहसील के पटवारियों व कानूनगोयान के कागज और बिस्तरे एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाना, अफसरों की सरबराही के लिए घास, लकड़ी, पत्तल, दौना, मिट्टी के बर्तन, चूल्हा, सिगडी, खाट, पाटा, माचडा, टिकटी, मेंरव वगैरह सामान देना आदि सारा काम प्रजा से बेगार मे लिया जाता है। राज कर्मचारी अपने घर मालियों या कुमारी से पानी भरवाते है, चमारों से गारा, गोबर, लिपाई, पुताई, सराई, घास खुदाई आदि काम करवाते है, नाईयों से चौका बर्तन करवाते है, हजामत बनवाते है और रात के वक्त पगचम्पी करवाते है । काश्तकारों से अपने जानवरों के लिए पानी मंगवाते है । लोगों से पीसना पिसवाते है और हरी घास के भारे, छाने, कण्डे, लकड़ी आदि मंगवाते है ।"

उपरोक्त विवरण से रियासती जनता के शोषण व उत्पीड़न की तस्वीर स्पष्ट हो जाती है। इसलिए रियासतों के स्वतंत्रता आन्दोलन को पृथक रूप में देखना अनिवार्य है । इसी स्थिति को समझने के लिए रियासतों के शासकों के कारनामों की संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है । असल में भारतीय रियासतों पर अप्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि यह शासक

अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करके आन्तरिक व बाहरी खतरों से निश्चिन्त हो गए थे । अत: प्रजा के प्रति उत्तरदायी न होकर अंग्रेजों के प्रति उत्तरदायी हो गए थे। अधिकांश रियासतें निरंकुश थी । यह शासक जनता पर मनमाने कर थोपते थे एवं इन रियासतों में अनेक मध्यकालीन बर्बतापूर्ण परम्परायें एवं व्यवस्थाऐं प्रचलित थी । ये शासक समय–समय पर यूरोपीय देशों की यात्रा करते थे और काफी लम्बा समय वही व्यतीत करते थे। भारत में अपने विदेशी मेहमानों के मनोरंजन के लिए उन्हें शिकार पर ले जाते थे । इनके हरम में औरतों की संख्या निरंतर बढ़ती रहती थी। इस तमाम फिजूल खर्ची का बोझ असहाय जनता पर था । इतने कठोर शासन के अन्तर्गत जनता की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। इन रियासतों के शासक अंग्रेजी साम्राज्य के पक्के समर्थक थे। इन क्षेत्रों में नाममात्र की भी राजनीतिक आजादी नहीं थी। 1885 में जब कांग्रेस की स्थापना हुई तो इसका कार्यक्षेत्र ब्रिटिश भारत के भू–भागों तक ही सीमित रहा। देशी रियासतों में 1920 के उपरान्त ही राजनीतिक चेतना का उदय होता है । देशी रियासतों के जन आन्दोलनों को प्रारम्भ में कांग्रेस का समर्थन नहीं मिला किन्तु इन आन्दोलनों के परिपक्व हो जाने की स्थिति में 1938 कांग्रेस ने हरिपुरा सम्मेलन में देशी रियासतों के स्वतंत्रता आन्दोलनों को खुला समर्थन देने का निर्णय लिया गया । तत्पश्चात् देशी रियासतों में उष्ट्रवाद की नवीन धारा का संचार हुआ।

16.2 राजस्थान में जन आन्दोलन

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है कि केवल अजमेर–मेरवाड़ा के अतिरिक्त राजस्थान का सम्पूर्ण भू–भाग 20 विभिन्न रियासतों के अन्तर्गत था। अत: देशी रियासतों के स्वतंत्रता संघर्ष को राजस्थान के संदर्भ में आसानी से समझा जा सकता है। किसान आन्दोलनों को राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम का मुख्य आधार कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है । राजस्थान के संदर्भ में अनेक बार यह प्रश्न भी उठता है कि राजस्थान के किसान आन्दोलनों को स्वतंत्रता संग्राम का अंग भी माना जाये अथवा नहीं? इस प्रश्न का उत्तर खोजने के पूर्व यह जानना आवश्यक होगा कि स्वतंत्रता संघर्ष किसे कहते है । तार्किक दृष्टि से देखे तो पाते है कि किसी भी प्रकार की निरंकुशता के खिलाफ संघर्ष को स्वतंत्रता संघर्ष की श्रेणी में रखा जा सकता है। अत यहां यह स्पष्ट है कि राजस्थान के किसान आन्दोलन स्वतंत्रता आन्दोलन के अभिन्न अंग थे ।

जिस प्रकार राजस्थान के किसान आन्दोलनों को स्वतंत्रता आन्दोलन का अभिन्न अंग माना जाता है, वैसे ही आदिवासी आन्दोलन भी स्वतंत्रता आन्दोलन के अंग रहे है । राजस्थान में आदिवासी विद्रोहों का इतिहास काफी शानदार रहा है। देखा जाये तो अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध सर्वप्रथम संघर्ष आदिवासियों ने ही प्रारम्भ किया था। राजस्थान की रियासतों ने 1818 में अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार की थी, जिसका प्रतिरोध आदिवासी समुदायों ने किया था। इन आदिवासी समुदायों में प्रमुख तौर पर मेर, भील व मीणा थे । इन्होंने 1818 से लेकर 1900 तक निरन्तर विद्रोह के प्रयास किये । सीधे तौर पर तो आदिवासी विद्रोह साम्राज्यवाद विरोधी नहीं थे, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से सभी विद्रोह साम्राज्यवाद विरोधी अवश्य थे। 19वी सदी में अधिकांश आदिवासी विद्रोह स्वस्फुर्त थे तथा आधुनिक स्वरूप के संगठन का नितांत अभाव इनमें देखने को मिलता है। किन्तु 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में राजस्थान के आदिवासी आन्दोलन संगठित थे तथा राष्ट्रवादी

विचार धारा से ओत–प्रोत थे । अत राजस्थान में स्वतंत्रता आन्दोलन के अध्ययन में इन आदिवासी विद्रोही व आन्दोलनों का विश्लेषण अपरिहार्य है ।

16.2.1 किसान आन्दोलन

राजस्थान में प्रथम किसान आन्दोलन मेवाड़ (उदयपुर) राज्य की प्रथम श्रेणी की जागीर बिजौलिया में हुआ। इस आन्दोलन को प्रमुख तौर पर तीन सोपानों में क्रमश: 1897, 1915 – 1923 व 1923 – 1941 विभक्त किया जा सकता है । यहाँ किसानों पर 86 प्रकार की विभिन्न लाग–बागें लगती थी। इनके विरोध का स्वर 1897 में गोकुलपुरा नामक गांव से आरम्भ हुआ। प्रारम्भ में ये आन्दोलन स्वस्फुर्त था, किन्तु 1905 में साधु सीताराम दास ने इस किसान आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथ मे ले लिया। 1913 में साधु सीताराम दास के नेतृत्व में बिजौलिया के किसानों ने खेती करने व भू–राजस्व अदा करने से इन्कार कर दिया । इसका परिणाम था 24 जून 1914 को जागीरदार द्वारा लाग–बागों में छूट की घोषणा । यह घोषणा कुछ समय पश्चात् ही झूठी सिद्ध हुई जब 1915 में पुन: सभी लोगों को किसानों पर थोप दिया गया था। 1916 में विजय सिंह पथिक ने बिजौलिया के किसान आन्दोलन का नेतृत्व साधु सीताराम दास के आग्रह पर अपने हाथों में ले लिया। विजय सिंह पथिक ने इस आन्दोलन को संगठित स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से बिजौलिया किसान पंचायत नामक संगठन की स्थापना की । इस पंचायत के माध्यम से बिजौलिया के किसानों ने वर्ष 1917 में हजारों हस्ताक्षरों से युक्त ज्ञापन बिजौलिया के जागीरदार व महाराणा मेवाड़ के समक्ष भेजे । इस समय तक किसानों व जागीरदार के मध्य संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। 1917 में रूस की क्रांति से भी यहां के किसान संघर्ष के लिए और अधिक उत्साहित हुए थे। असल में विश्व में पहली बार किसान मजदूरों की सका स्थापित हुई थी । जिसने भारतीय किसानो में उत्साह एवं आत्मविश्वास उत्पन्न किया । इस समय तक विजय सिंह पथिक के प्रमुख सहयोगी माणिक्य लाल वर्मा राजनैतिक रूप से सक्रिय हो चुके थे । श्री वर्मा मूल रूप से बिजौलिया जागीर के कर्मचारी थे, जिन्होंने जागीर की नौकरी छोड़कर किसानों के हित में संघर्ष की शपथ ली ।

1920 में बिजौलिया का किसान आन्दोलन अत्यधिक तीव्र हो गया था । इसके पीछे अनेक कारण थे, जिनमें प्रमुख तौर पर कांग्रेस द्वारा आरम्भ असहयोग आंदोलन भी एक महत्वपूर्ण कारण था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पथिक ने संयुक्त प्रान (उत्तरप्रदेश) के नेता व पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी से निकट संबंध स्थापित कर लिये हुई, तथा उनके कानपुर से प्रकाशित होने वाले समाचार–पत्र "प्रताप" के माध्यम से बिजौकि के किसान आन्दोलन को अखिल भारतीय स्तर पर प्रचारित किया । इतना ही नहीं पथिके ने बिजौलिया आन्दोलन के पक्ष में कांग्रेस का समर्थन जुटाने का प्रयास भी किया था। 1919 के कांग्रेस के अमृतसर सम्मेलन में पथिक ने बिजौलिया के किसानों की दुर्दशा को व्यस्त करने वाली प्रदर्शनी लगाई। इसके अतिरिक्त पथिक ने गणेश शंकर विद्यार्थी व बाल गंगाधर तिलक के समर्थन से महाराणा मेवाड का भर्त्सना प्रस्ताव भी कांग्रेस के अमृतसर सम्मेलन में रखवा दिया। किन्तु मदन मोहन मालवीय व गांधी जी के विरोध के कारण यह प्रस्ताव कांग्रेस की प्रस्ताव सूची में निकाल दिया गया। 1920 के पश्चात् जागीरदार व किसानों के मध्य समझौते के आसार समाप्त हो चुके थे । अत: बिजौलिया किसान पंचायत ने आन्दोलन को और अधिक तीव्र कर दिया। किसान पंचायत अपने नेताओं व

कार्यकर्ताओं के माध्यम से समानान्तर सरकार चलाने लगी थी । पंचायत ने निर्णय किया कि कोई भी किसान सीधे जागीर के साथ किसी भी प्रकार का संबंध न रखकर पंचायत की मध्यस्थता के अन्तर्गत ही जागीर से संबंध रखेंगे । किसानों ने जागीर के सभी आदेशों की अवज्ञा करना आरम्भ कर दिया । उन्होंने भू–राजस्व, लाग–बाग एवं बेगार देने से भी इंकार कर दिया तथा जागीर की कचहरी व पुलिस का भी बहिष्कार कर दिया था । कुल मिलाकर किसान पंचायत ने जागीर प्रशासन को पंगु बना दिया था। जनवरी 1921 में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था जिससे बिजौलिया के किसान आन्दोलन में और अधिक उत्साह का संचार हुआ था। दिसम्बर 1921 की मेवाड़ एजेन्सी रिपोर्ट में बिजौलिया के किसान आन्दोलन के तीखेपन का पता चलता है। "दरबार" (मेवाड़) के प्रबन्ध के अन्तर्गत जागीर भिंड में असंतोष फैल रहा है, जहाँ किसानों ने राजस्व अदा करने से इन्कार कर दिया है । बिजौलिया एवं इसके पड़ौसी ठिकानों पारसोली, बेगू एवं बसी में स्थिति और अधिक गम्भीर है वहाँ सभी जगह भू–राजस्व की अदायगी में इंकारी है । यदि वहां भू–राजस्व की अदायगी करने अथवा सरकारी आदेशों को लागू करने का प्रयास किया गया तो हिंसा की संभावना है । प्रत्येक गांव में पंचायतें गठित कर दी गई है, एवं इनके ऊपर एक बड़ी पंचायत है जो दीवानी, फौजदारी व राजस्व मामलों में निर्णय लेती है। वे निर्धारित दिनों में मिलते है तथा जागीरदार की सला को अस्वीकार करते है। उन्होंने बहिष्कार व जाति–बाहर की एक पूर्ण व्यवस्था कायम कर ली है तथा उन किसानों को जो पंचायत के आदेशों की अवहेलना करते है उन पर जुर्माना थोप दिया जाता है प्रत्येक ठिकाने में लाठियों से लैस किसानो की साप्ताहिक सभायें होती है । पिछले तीन माह से प्रत्येक गांव में वर्दीधारी स्वयंसेवक नियुक्त किये गये है । वे सभाओं की सूचना के पर्चे बाँटते है तथा गांवों में सरकारी कर्मचारियों को प्रवेश नही करने देते है । एक असंतोष का वातावरण पैदा किया जा रहा है तथा आन्दोलन फैल रहा है ।" इसी क्रम में एक अन्य स्थान पर उल्लेख किया गया है कि "मेवाड़ अराजकता का गर्म आधार बन रहा है । राजद्रोही दूत जनता को बता रहे है कि सभी आदमी बराबर है । भूमि किसानों की है न कि राज्य अथवा जागीरदार की । यह विशेष तौर पर उल्लेखनीय है कि लोगों को सामान्य शिष्टाचार की परपरा से सम्बोधन के स्थान पर "कामरेड" शब्द का उपयोग किया जा रहा है । किसानों ने महाराणा की दशा जार जैसी कर देने की धमकी दी है । आन्दोलन प्रमुख तौर पर महाराणा के खिलाफ है किन्तु यह शीघ ब्रिटिश विरोधी होकर पड़ौस के ब्रिटिश क्षेत्रों में फैल सकता है ।" इस विवरण से बिजौलिया के किसान आन्दोलन की बढ़ती हुई शक्ति का आभास होता है, जिसके दबाव में बिजौलिया के जागीरदार ने 1922 में बिजौलिया के किसानों के साथ समझौता कर लिया था । यह पहला अवसर था जब किसानों के प्रतिनिधियों ने भरी सभा में बिजौलिया के जागीरदार के साथ रुबरू बात की। 1922 का समझौता स्थायी नही हो सका एवं ऐसी स्थिति में 1928 में पुन: किसान आन्दोलन आरंभ हो गया था। यह आन्दोलन 1941 तक निरन्तर रूप से चलता रहा।

राजस्थान का दूसरा महत्वपूर्ण किसान आन्दोलन शेखावाटी के ठिकानों में आरम्भ हुआ । इस आन्दोलन का सीधा सम्बन्ध तो बिजौलिया से नहीं था किन्तु बिजौलिया आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाने वाले विजय सिंह पथिक के सहयोगी रामनारायण चौधरी की भूमिका शेखावाटी के किसान आन्दोलन में प्रमुख रही । उन्होंने अपने साप्ताहिक समाचार–पत्र "तरुण राजस्थान" के माध्यम से शेखावाटी के कृषकों की कठिनाईयों एवं कार्य स्थितियों को उजागर एवं प्रचारित किया।

इतना ही नहीं चौधरी ने इसमें इंग्लैड से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र "डेली हैराल्ड" के माध्यम से शेखावाटी के किसानों की दशा को इंग्लैड के लोगों के समक्ष भी प्रचारित किया । मई 1925 में इंग्लैड की संसद में (हाउस ऑफ कॉमन्स) भी शेखावाटी के किसानों की समस्याओं के सन्दर्भ में प्रश्न उठवाया।

1925 का वर्ष शेखावाटी के किसान आन्दोलन के आरम्भ का वर्ष था। अक्तूबर 1925 में "बगड़" नामक स्थान पर जाट सभा का आयोजन समाज सुधार के उद्देश्य से किया गया था । इस सम्मेलन में जाट किसानों ने अपनी सामाजिक बदहाली का कारण सामन्ती शोषण व व्यवस्था को माना । इसी सम्मेलन में जाट सभा ने सामाजिक एवं आर्थिक शोषण के विरुद्ध लड़ने का कार्यक्रम तैयार किया। जाट नेताओं ने गांव–गांव जाकर किसानों को राज एवं जागीरदारों की अवज्ञा तथा कर बन्दी के लिए तैयार किया। 1 दिसम्बर 1925 में किसानों का ठिकाना सीकर, खेतड़ी, मण्डावा, डूडलोद, बिसऊ एवं नवलगढ़ आदि में आन्दोलन आरम्भ हो गया । किसानों की मुख्य माँगे भू–राजस्व की दर निर्धारण, लाग–बाग, जकात एवं बेगार की समाप्ति, शिक्षा एवं स्वास्थ्य व्यवस्था, जागीरदारों के अधिकारों में कमी, ग्राम पंचायतों के गठन एवं उसकी शक्तियों में वृद्धि एवं उत्पीड़न को रोकने इत्यादि से सम्बन्धित थी । धीरे–धीरे यह आन्दोलन सम्पूर्ण शेखावाटी में फैल गया । इस जन उभार को रोकने के अनेक तरीके ठिकानों ने अपनाये किन्तु दमन के बाद यह आन्दोलन और अधिक तीव्र होता चला गया ।

सन् 1932 में बसंत पंचमी के अवसर पर झुंझुनू में जाट महासभा का समारोह आयोजित हुआ जिसमें लगभग 60000 हजार स्त्री एवं पुरुषों ने भाग लिया । किसानों मे एकता की भावना जागृत करने के लिए सीकर में जनवरी 1934 में एक महायज्ञ का आयोजन हुआ जिसमें लगभग एक लाख लोगों ने भाग लिया इस महयज्ञ एवं इसके सहायक समारोहों में समाज सुधार की ओट में उपदेश एवं प्रवचनों के माध्यम से वर्ग विद्वेष उत्पन्न कर किसान आंदोलन को अत्यद्धिक तीखा बनाने का प्रयास किया गया इससे प्रेरणा लेकर किसानों ने फरवरी 1934 में जयपुर दरबार के सपक्ष अपना मांग - पत्र प्रस्तुत किया जिसमें सैकड़ों लोग सम्मिलित थे अगस्त 1934 में सीकर के राव राजा ने कुछ सुधारों की घोषणा की जिसे शेखावटी के किसानों की विजय कहा जा सकता हैं वास्तव में यह किसानों की सांकेतिक विजय थी क्योंकि तात्कालिक व्यवस्था में सुधारों का कोई स्थान नहीं था अर्थात सत्ता परिवर्तन के बगैर किसानों को न्याय मिलना सभव नहीं था सीकर के कूदण, खूरी एवं पलसाना में किसानों ने 1935 के वर्ष में राजकीय पुलिस एवं जागीरदारों का खुला मुक़ाबला किया जिसमें अनेक किसानों की जाने जाने भी गई। अधिकारियों ने इस आंदोलन को कुचलने के सभी दमनकारी कदम उठाये।स्थानीय जात किसान पंचायत को गैर कानूनी करार दे दिया गया शेखावटी शिक्षा मण्डल अथवा जाटों द्वारा संचालित विद्यालयों को अनिवार्य रूप से बन्द कर दिया गया। तथा उनके प्रभारी अध्यापकों को बन्दी बना लिया गया था इन दमानात्मक कदमों के उपरांत भी किसान आंदोलन दबने स्थान पर उग्र होते चले गये1936 तक पहुचतेपहुचते शेखावटी के सभी जागीरदारों ने सुधार करना आरंभ कर दिया था यह आन्दोलन समाप्त नहीं हुआ, लेकिन 1938 के पश्चात उसकी दिशा बादल चुकी थी 1938में प्रजमंडल के संगठन की स्थापना के उपरांत कृषक वर्ग इस बात से सहमत हो गया था की उसकी बाधली का कारण तत्कालीन राज्य एवं प्रशासनिक व्यवस्था है।अतः इसमें परिवर्तन के बाद ही

किसानों को अधिकार प्रपट को सकते हैं।जयपुर राज्य प्रजा मण्डल ने अपने प्रस्तावों में शेखावटी के किसानों की समस्याओं को सम्मिलित kar लिया था

1925 मे जय नारायण व्यास ने विभिन्न संगठनों के माध्यम से मारवाड़ (जोधपुर) में इसी प्रकार के किसान आन्दोलन का संचालन किया इस समय की सबसे प्रमुख घटना 1925 में अलवर राज्य नीमूचाड़ा नमक गांव के किसानों ने भू-राजस्व में वृद्धि के खिलाफ खुली बगावत कर दी थी राज्य की पुलिस ने उस गांव पर आक्रमण कर गोलियां बरसाई जिसमें 156 व्यक्ति मारे गे तथा 600 व्यक्ति घायल हुए। कुल मिलकर 1920 से 1938 के मध्य राजस्थान के किसान आंदोलनो जे जन जागृति उत्पन्न कर राजनैतिक चेतना को विकसित किया।

1920 से 1938 के मध्य राजस्थान के सामन्त विरोधी किसान आन्दोलन का महत्व कम करके नहीं आंका जा सकता।इस दौरान राजस्थान सामन्त व उपनिवेश विरोधी आन्दोलन का केन्द्र रहा जब 1932 से 1938 के मध्य ब्रिटिश भारत में पूर्ण शान्ति थी तब राजस्थान के किसान आन्दोलन जनता में स्वतन्त्रता प्राप्ति की चिंगारी प्रज्वलित करने का कार्य कर रहे थे।एक ओर इन आन्दोलनों ने राष्ट्रीय जन उभार के साथ कदम से कदम मिलाया वहीं दूसरी ओर राजस्थान में स्वतन्त्रता आन्दोलन का आधार तैयार किया। किसानों ने आन्दोलन के माध्यम से राजनैतिक आजादी की मांग नहीं की किन्तु आर्थिक,सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के भरपूर प्रयास किये। धीरे-धीरे राजनैतिक चेतना बढ़ी जिसका आभास 1938 में स्पष्ट रूप से होता है। प्रसिद्ध इतिहासकर सुमित सरकार ने 1920 से 1938 के मध्य राजस्थान के किसान आन्दोलन का महत्व इस प्रकार स्थापित किया है की राजस्थान की घोर सामंती रियासतों में किसान आन्दोलन को भिन्न पद्धति का एक रोचक तथ्य सामने आता हैं,जो सीधे तौर पर शहरी राष्ट्रवाद के उदय में भरी सहायक रहा"

16.2.2 आदिवासी आन्दोलन

राजस्थान में 1818 में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के साथ ही आदिवासी विद्रोह आरंभ होते है। इनमें सर्वप्रथम मेंरों ने विद्रोह किया। इस विद्रोह का कारण मुख्य तौर पर यह था की मेर कभी भी किसी भी राजनैतिक सत्ता के मातहत नहीं थे जबकि अंग्रेजों ने इनके क्षेत्रो में अपनी सत्ता स्थापित करने के प्रयास किये।1818 से 1921 के बीच मेरों के विद्रोह अंग्रेजों की सेना द्वारा दबा दिये गए थे। तथा इनके ऊपर स्थायी सैनिक नियंत्रण स्थापित कर दिया गया था। इनको भविष्य में भी दबाये रखने के उद्देश्य से 1822 में "मेरवाड़ा बटालियन" नामक सेना की स्थापना की जिसमें मेरों को अधिक संख्या में सम्मिलित किया गया मेरों के पश्चात मेवाड़ के भील आदिवशियों ने अंग्रेजों द्वारा 1818 में खुला विद्रोह छेड़ दिया। इनके विद्रोह का कारण था इनके ऊपर अंग्रेजों द्वारा राजनैतिक सत्ता स्थापित करने का प्रयास 1823 में सैनिक शक्ति के बल पर ही भीलों को शान्त किया जा सका किन्तु इसके पश्चात डुंगरपुर व बांसवाड़ा के भील अशांत हो उठे थे। जिन्हे भी सैनिक शक्ति के बल से दबा दिया गया था। भील क्षेत्रों में स्थायी सैनिक दबाव बनाये रखने के उद्देश्य से "मेवाड़ भील कॉरप्स" की 1841 में स्थापना की, जिसका मुख्यालय खेरवाड़ा रखा गया तथा दूसरी छावनी कोटड़ा में डाली गई इसमें भी अधिकतर भील आदिवासियों को ही शामिल किया गया। भीलों के बाद 1851 में उदयपुर राज्य के जहाजपुर परगने के मीणों ने अंग्रेज़ के खिलाफ विद्रोह किया । इस विद्रोह को अंग्रेजों तथा बूंदी , उदयपुर

व जयपुर राज्यों की संयुक्त सेना के द्वारा 1854 में दबा दिया गया तथा मीणों पर भी सैनिको दबाव बनाये रखने के उद्देश्य से 1955 में देवली में सैनिक छवानी की स्थापना की गई जो"42 देवली रेजीमेंट" अथवा "मीणा बटालियन" का मुख्यालय बनाया गया । इस प्रकार 19 वी सदी के पूर्वार्द्ध तक अधिकांश आदिवासी समुदायों को दबा दिया गया था। फिर भी 19 वी सदी के, अंतिम दो दशको में पुनः आदिवासी विद्रोह सक्रिय हो गये थे। इस सदी का सबसे भयानक व हिंसक विद्रोह 1881-82 में उदयपुर राज्य के भीलों ने किया, जो मुख्यतः अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध था।

19 वी सदी के राजस्थान के आदिवासी विद्रोह की घटनाये कोई अलग-अलग घटनाये नहीं थी बल्कि भारत के अन्य भूभाग के आदिवासी विद्रोहों से मेल खाती है। इस काल में गुजरात एवं मध्य भारत के भील,बिहार के संथाल एवं मुंडा, महाराष्ट्र के कोली, अंधप्रदेश व मध्य भारत के गौण आदिवासियों के विद्रोह अंग्रेजी राज की स्थापना की प्रतिकृया स्वरूप अपने अप उत्पन्न हुए थे। अंग्रेजों ने इन विद्रोह अंग्रेजों ने इन विदढ़ों को बड़ी गंभीरता से लेते हुए भविष्य में होने वाली भील गतिविधियों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से सैनिक व नागरिक प्रशासन का एक मजबूत जाल बुन दिया था।

20 वी सदी के राजस्थान के आदिवासी आन्दोलन अत्यधिक संगठित थे। इस क्रम में पहला आन्दोलन साधू गोविंदगीरी के नेतृत्व में डुंगरपुर व बांसवाड़ा राज्यों में हुआ जिसका प्रभाव गुजरात में ईदार, सौंठ-रामपुर राज्यों तथा महि कंथा जिले आदिवासियों पर भी था। गोविन्दगिरी ने 1905 में आदिवासी पीला का समाज एवं धर्म सुधार आन्दोलन आरम्भ किया जो 1913 में राजनैतिक व आर्थिक विद्रोह में परिवर्तित हो गया था । उसका यह आन्दोलन आदिवासियों को सदियों पुरानी दासता से मुक्त करने में सफल रहा । उनके प्रमुख शिक्षाऐं उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार थी । "उस समय मै गरीब दलित तथा वनवासी भीलों के मध्य रहता था, जिन्हें सृष्टिकर्ता के सम्बन्ध मे कोई जानमरी नहीं थी। जो मेरी कुटिया पर आते थे उन्हें मै सरकारों (उन जाति के लोगों या स्वर्ण) की तरह आचरण करने की सलाह देता था। मैने उन्हें सत्य व धर्म का मार्ग दिखलाया एवं उन्हें ईश्वर की पूजा करने, चोरी, पर स्त्रीगमन, धोखा आदि न करने, दूसरों के साथ मन में शत्रुता न रखने बल्कि समान पिता (सृष्टिकर्ता) की सन्तान मानकर सबका आटर करने तथा अन्यों के साथ शांतिपूर्वक रहने, अपने जीवन यापन हेतु कृषि करने, तीर, वतरा, भोपा इत्यादि (भूत, डाकिन, मायावी तथा अन्य अन्धविश्वासी सला) में विश्वास म करने, बल्कि इनसे परित्राण हेतु धुनी व ध्वज स्थापित करने एवं इनकी पूजा करने का उपदेश देता था।" इसके अतिरिक्त गोविन्द गिरी ने भीलों को माँस भक्षण न करने तथा मदिरा न पीने की शिक्षा दी थी । उसने उन्हें भोजन के पूर्व ईश्वर की उपासना करना, हत्या न करने, कोई व्याभिचार न करने, धन लोलुप न बनने, माता–पिता की आज्ञा मानने, झूठी गवाही न देने, एक ईश्वर में आस्था रखने तथा हजारों देवताओं की पूजा न करने की सलाह दी थी ।

गोविन्द गिरी की शिक्षाओं ने भीलों में नई चेतनाओं का शुभारम्भ किया । उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने के लिए गोविन्द गिरी ने उनमें व्याप्त हीनभावना को दूर करने का पूरा प्रयास किया। एक स्थान पर गोविन्द गिरी ने अपने उद्गार इस प्रकार व्यक्त किये थे "राजपूत इतने निर्दयी है कि वे अपनी पुत्रियों की हत्या कर देते है । जिससे वे विवाह द्वारा दूसरों को न दी जाये। राजपूत अपनी युवा विधवाओं को पुनः विवाह की अनुमति नहीं देते, तथा यदि ये लड़कियाँ युवा अवस्था में विधवा हो जाती है तो इनके बाल वैधव्य का पाप उनके

(राजपूतों) सिर पर है क्योंकि वे उस जीवन में दुखी रहती है तथा अभागी है । कोई सच्चा ब्राह्मण नहीं दिखता । जनेऊ ही ब्राह्मण का चिन्ह है एवं जो इसे पहनता है वह ब्राह्मण है । वे इतने ही पापी है जितने राजपूत एवं उनकी विधवाएँ भी अवैध गर्भपात की अपराधी है" इस तरह के विचारों से वह भीलों में आत्मविश्वास जागृत कर रहा था। यह एक सत्य है कि अशिक्षित व अज्ञानियों पर शासन करना आसान होता है, जबकि जागरुक एवं शिक्षित जनता पर शासन करना कठिन होता है । गोविन्द गिरि के आन्दोलन से प्रभावित क्षेत्रों के आदिवासियों में नव चेतना बढ़ रही थी । जिससे वहां के राजाओं व जागीरदारों में बेचैनी बढ़ने लगी थी । गोविन्दगिरी के सुधार आन्दोलन के प्रभाव में भील आदिवासी शराब पीना छोड़ने लगे थे। बांसवाड़ा, हुंगरपुर, कुशालगढ़ सूंथ–रामपुर, ईडर राज्यों के राजस्व का एक तिहाई से छठा भाग शराब से प्राप्त होता था । अत: अधिसंख्यक आदिवासियों द्वारा शराब छोड़ने से राज्य एवं शराब के ठेकेदार चिंतित होने लगे थे। राजाओं व जागीरदारों ने गोविन्दगिरी के प्रभाव से भयभीत होकर इस पंथ के प्रचारकी को अपने राज्य एवं जागीर से बाहर खदेड़ना आरश्र कर दिया। गोविन्द गिरी व उसके अनुयायियों को बागड़ू के राज्यों व जागौरों में काफी अपमान व उत्पीड़न का मुकाबला करना पड़ा। इस प्रक्रिया के दौरान वह स्वथं राजस्थान छोड़कर गुजरात के पड़ौसी राज्यों में अपने पंथ को फैलाने में सफल रहा। 1911 में उसने अपने पंथ को नये रूप में संगठित किया तथा धार्मिक शिक्षाओं के साथ–साथ भीलों को सामन्ती व औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति की युक्ति भी समझाने लगा । उसने प्रत्येक भील गांव में अपने धूनियाँ स्थापित की तथा इनकी रक्षा हेतु कोतवाल नियुक्त किये गये थे । गोविन्द गिरी के द्वारा नियुक्त कोतवाल केवल धार्मिक मुखिया ही नही थे बल्कि अपने क्षेत्र के सभी मामलों के प्रभारी थे । वे भीलों के गधा विवादों का निपटारा भी करते थे ।

अक्तूबर 1913 में गोविन्दगिरि ने अपने शिष्यों के साथ गुजरात व राजस्थान की सीमा पर स्थित मानगढ की पहाड़ी पर दशहरा व दीपावली के उपलक्ष्य में डेढ़ माह के मेले का आयोजन किया। राजा व जागीरदारों की शिकायतों पर इसे अंग्रेजों ने एक गम्भीर मामला मानते हुए बहुत बड़ा अपराध बता कर भीलों पर सैनिक कार्यवाही की । अंग्रेजी दस्तावेजों के अनुसार लगभग 4000 भील एक साथ पहाड़ी पर एकत्रित थे । ऐसा दुष्प्रचार किया गया था कि गोविन्दगिरी ने भील राज्य की स्थापना की घोषणा की है । असल में उपरोक्त मेले में सम्मिलित होने के लिए हजारों की संख्या में भील इस पहाड़ी पर झुंड के झुंड में पहुंच रहे थे । राजाओं में व सांमतों में बेचैनी बढ़ने लगी थी । अत: इन्होंने भीलों को कुचलने के लिए अपने अंग्रेज हुक्मरानों से विनती की। 6 से 10 नवम्बर 1913 के मध्य मानगढ़ की पहाड़ियों के समीप हजारों अंग्रेजी सैनिक एकत्रित हो चुके थे। 10 नवम्बर 1913 को अंग्रेज अधिकारियों व गोविन्द गिरी के मध्य समझौता हेतु संवाद आरंभ हुआ। गोविन्द गिरी ने समझोने के लिए 33 सूत्रीय मांगपत्र प्रस्तुत किया किन्तु एक मुद्दे पर दोनों पक्ष सहमत नहीं हो पा रहे थे गोविन्द गिरी का कहना था कि पहले उनकी मांगे मानी जाएं, जबकि अंग्रेज अधिकारियों का कहना था कि पहाड़ी से आदिवासियों के जमावड़े को तितर–बितर करने के उपरान्त ही मांग पत्र पर विचार किया जाएगा । ऐसी स्थिति में 17 नवम्बर 1913 को अंग्रेजी फौजों ने मानगढ़ की पहाड़ियों पर आक्रमण कर दिया । अंग्रेजी दस्तावेजों के अनुसार 100 भील मारे गये थे तथा 900 भीलों को बंदी बना लिया गया था जबकि अन्य श्रोतों का कहना है कि 1000 भील शहीद हुए थे । बाबा गोविन्द गिरी को गिरफ्तार कर लिया गया था तथा उन्हें मृत्युदंड की सजा सुनाई किन्तु इनकी लोप्रियता के कारण इस सजा

को आजीवन कारावास में बदल दिया । कुछ समय पश्चात् आजीवन कारावास को दस वर्ष में बदल दिया तथा 7 वर्ष की सजा के बाद इस शर्त पर रिहा किया गया कि वह हुंगरपुर, बासवाड़ा, कुशालगढ़, सूंथ तथा ईडर राज्यों की सीमा में प्रवेश नहीं करेंगे । वे अहमदाबाद सम्भाग के पंचमहल जिले में झालोद गांव में रहने लगे तथा सभी क्षेत्रों के भक्त भील प्रवचन सुनने वहां पहुंचते थे । आश्चर्य की बात तो यह थी कि इतना बड़ा हत्याकांड जो कि जलियावाला बाग से भी वीभत्स था, की उपेक्षा राष्ट्रीय स्तर पर हुई न तो इस हत्याकांड की कोई आलोचना की और न ही इस शहादत को सराहा गया। बागड़ू के भील आदिवासियों की शहादत बेकार नहीं गई । बल्कि इस घटना के बाद गोविन्दगिरी द्वारा पूर्व में रखी गई अधिकांश मांगों को आशिक तौर पर मान कर लागू कर दिया था। इतना ही नहीं सबसे बड़ी बात तो यहं थी कि सदियों पुराने अंधकार से निकल कर भील आदिवासियों ने नये सवेरे की रोशनी में आखें खोली । इस विद्रोह ने भीलों को इतना जागृत किया था कि उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । भील जो लम्बे समय से अलग–थलग पड़े थे, राष्ट्र की मुख्य धारा में आकर राष्ट्र निर्माण में सब भारतवासियों के समान भागीदार बन सके ।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध का दूसरा महत्वपूर्ण आदिवासी आन्दोलन मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में मेवाड़ (उदयपुर) एव सिरोही राज्यों में हुआ। 1920 में असहयोग आन्दोलन के प्रभाव में वर्ष 1921 के आरंभ में ही मोतीलाल तेजावत ने आदिवासी आन्दोलन आरंभ किया इन्होने भी प्रारम्भ में समाजसुधारक गतिविधिया ही आरंभ की थी मोतीलाल तेजवात विजय सिंह पथिक से भी सीधे तौर पर प्रभावित था अतः उसने आदिवासियों के सामाजिक उत्थान के साथ-साथ उनके आर्थिक उत्थान हेतु सक्रिय आन्दोलन छेड़ दिया उन्होने उदयपुर राज्य के विभिन्न भागों में अपना आन्दोलन आरंभ किया था इनके बारे में तत्कालीन कोटरा स्थित अंग्रेज अधिकारी मेजर शटन ने तेजवात के आन्दोलन के संदर्भ में टिप्पणी करते हुए लिखा की "मोतीलाल, महात्मा गांधी का अनुयायी है एवं वह लोगो से कहता है की जब गांधी सर्वोच्च सत्ता बन जाएंगे तो उन्हे केवल एक रूपये में एक आना राजस्व देना होगा।" तेजवत ने निश्चित तौर पर गांधी के प्रभाव में आन्दोलन आरंभ किया था सर्वप्रथम झाडोल ठिकाने में आदिवासियों ने भू-राजस्व, लग-बाग, अन्य कर व बेगार अदा करने से इन्कार किया था। इसके बाद वर्ष 1921 के अन्त तक पहाड़ी, झाडोल, मादरी ठिकानों व मगरा जिले के क्षेत्रों में फैल गया था इस प्रकार उदयपुर राज्य के भीलों ने असहयोग व कारबंदी आन्दोलन छेड़ दिया। इनके बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर भीलों को अनेक रियायते व जागीर खालसा क्षेत्रों में प्रदान कर दी गई थी। किन्तु ये रियायते आंदोलित भीलों की आकाक्षाओं में बहुत परे थी । अतः भीलों का असहयोग व कर बन्दी आन्दोलन निरंतर रूप से जारी रहा। तेजवात की लोकप्रियता आदिवासी समुदायों में काफी बढ़ गई थी।

जनवरी 1922 में मोतीलाल तेजावत ने सिरोही राज्य में प्रवेश किया तथा सिरोही के गार्सिया आदिवासियों ने उदयपुर के भीलों जैसा आन्दोलन आरंभ कर दिया। सिरोही के दीवाने रमाकान्त मालवीय ने गांधी जी को पत्र लिखकर शिकायत की कि मोतीलाल तेजावत नाम का व्यक्ति आपके नाम पर धोखा कर रहा है वह आदिवासियों को भड़का रहा है। गांधी जी इस मामले कि जाँच करने हेतु अपने शिष्य मणीलाल कोठारी को सिरोही भेजा। मणीलाल कोठारी ने अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट तौर पर बताया कि तेजावत के नेतृत्व में चल रहा आन्दोलन सही है। यह आन्दोलन कर बन्दी व असहयोग तक ही सीमित ना था बल्कि तेजावत ने आदिवासियों को

शराब पीना व मांस खाना छोड़ने के लिये तैयार किया था। जैसा कि 11 फरवरी 1922 कि चौरी-चोरी कि घटना के बाद कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया था किन्तु मोतीलाल तेजावंत के नेतृत्व में आदिवासी आन्दोलन जारी रहा असहयोग आन्दोलन की वापसी के बाद अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत में जन अन्दोलनों को निर्दयता के साथ कुचल दिया था सिरोही क्षेत्र में फौज के बल पर राजस्व वसुली का प्रयास किया गया था,जिसका आदिवासियों ने जमकर मुकाबला किया। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप फौजों ने "सियावा"नामक गाँव पर 12 अप्रैल 1922 को आक्रमण कर दिया तथा गाँव को जलाकर राख कर दिया जिससे काफी जन व धन की हानि हुई इसी क्रम में 5 मई को क्लोरिया गाँव व 6 मई को "मूला" व "नवावास" पर भी सैनिक कार्यवाही हुई। इस प्रकार मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में चल रहे आदिवासी असहयोग व करबन्दी आन्दोलन का दमन कर दिया गया। सिरोही महराव यह बात भली-भाँति जानता था कि आदिवासियो को केवल शक्ति के बल पर नहीं दबाया जा सकता अतः 23 मई 1922 को महराव ने सभी बन्दी आदिवासियों को रिहा कर दिया तथा विभिन्न रियायते भीलों के पक्ष में घोषित की।

16.2.3 नई राजनैतिक चेतना

1885 में अखिल भारतीय कांग्रेस कि स्थापना से भारत में नई राजनैतिक चेतना इत्यादि संगठनों के नेतृत्व में चलाया गया था । सभी देशी " के इन सगठनो के मध्य समन्वय स्थापित करने हेतु एक अखिल भारतीय संस्था अखिल भारतीय प्रजापरिषद" था । यहां यह समझना पर्याप्त होगा कि देशी रियासतों की स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु जो कांग्रेस का पूरक आन्दोलन चला उसे "प्रजा मण्डल आन्दोलन" नाम से जानते है।

16.3.1 प्रजामंडल आन्दोलन की प्रारम्भिक स्थिति

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ न केवल राजस्थान की बल्कि सम्पूर्ण भारत देशी रियासतों में इस संगठन का प्रसार नहीं हुआ था । कांग्रेस लम्बे समय तक देशी के शासकों को अपना मित्र तक समझने की भूल करती रही कांग्रेस के नेताओं की दृढ़ मान्यता थी कि देशी रियासतों के साथ टकराव की नीति भारत की स्वतंत्रता में न होकर बाधक ही हो सकती है । अत: राजस्थान की रियासतें भी कांग्रेस की उपेक्षा का शिकार बनी रही।

राजस्थान में 1897 से किसान आन्दोलन आरंभ हो चुके थे एवं 1920 के उपरान्त किसान आन्दोलन अपने उभार की चरम सीमा पर थे । अत: राजस्थान में जहां एक ओर किसान आन्दोलन तीव्र हो रहे थे, वही दूसरी ओर नवोदित शहरी मध्यम नवराष्ट्रवादी चेतना से युक्त होकर देशी रियासतों में कांग्रेस के समान राजनीतिक गतिविधियाँ आरम्भ करने के लिए आतुर था। इस दिशा में एक प्रयास 1918 में "राजपूताना मध्य भारत सभा" का गठन था । जिसका पहला अधिवेशन दिल्ली में जमनालाल की अध्यक्षता में हुआ। इसके प्रमुख नेता थे सेठ गोविन्द दास, चादकरण शारदा, गणेश शंकर विद्यार्थी, विजय सिंह पथिक, केसरी सिंह बारहठ इत्यादि । बाद में जेल से रिहा होने बाद अर्जुन लाल सेठी भी इसके नेता रहे । संगठन का मुख्यालय अजमेर निश्चित गया था । राजपूताना मध्य भारत सभा राजस्थान के सभी राज्यों में राजनैतिक चेतना करने में सफल रही ।

राजस्थान में कांग्रेस के समान राजनीतिक स्वरूप वाला एक अन्य 1919 में वर्धा में राजस्थान सेवा संघ स्थापित हुआ। 1920 में इसका कार्यालय स्थानान्तरित कर दिया गया । वैसे राजस्थान सेवा संघ का कार्यक्षेत्र तो सम्पूर्ण राजस्थान किन्तु उसकी खुली एवं सक्रिय गतिविधियां केवल अजमेर तक ही सीमित रही । फिर भी इसके प्रमुख नेता विजय सिंह पथिक व रामनारायण चौधरी सम्पूर्ण राजस्थान में जन–चेतना, उत्पन्न करने में सफल रहे । सम्पूर्ण भारत की देशी रियासतों में स्वतंत्रता आन्दोलन के संचालन के उद्देश्य से दिसम्बर 1927 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के दौरान ही देशी रियासतों के राजनैतिक कार्यकर्ताओं ने बम्बई में "इण्डियन स्टेट पीपुल्स कान्फ्रेंस" की कर । इस संगठन का मार्ग प्रशस्त किया। 1928 में जयनारायण व्यास ने जोधपुर में "लोक परिषद. नामक संगठन की स्थापना की । इसी समय कोटा व बूंदी में भी मण्डल संगठन बना था। इस तर्ज पर 1931 में जयपुर राज्य प्रजा मण्डल की कपूर चन्द पाटनी के नेतृत्व में हुई । इन संगठनों में केवल मारवाड़ लोक परिषद सबसे सक्रिय संगठन साबित हुआ।'

16.3.2 कांग्रेस की नीति मे परिवर्तन व प्रजामण्डल

न केवल राजस्थान बल्कि सम्पूर्ण भारत की देशी रियासतों में जन आन्दोलन अपनी चरम सीमा थे । इन जन आन्दोलन में प्रमुख तौर पर किसान व आदिवासी आन्दोलन ही सम्मिलित थे। 1931 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से राष्ट्रीय आन्दोलन में नये दौर का सुत्रपात हुआ जब कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति को अपना लक्ष्य निश्चित किया । 1931 का यह आन्दोलन सश्रर्ण भारत की जनता को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल रहा । जहां कांग्रेस का संगठन नहीं भी था वहां भी जनता ने नमक सत्याग्रह में खुलकर भाग लिया । अत: देशी रियासतों में परिपक्व राजनीतिक चेतना व आन्दोलन ने कांग्रेस को अपनी नीति में परिवर्तन के लिए मजबूर कर दिया था। अत: 1938 में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में देशी रियासतों के प्रति नीति में परिवर्तन आया तथा देशी राज्यों को भी अपने राजनीतिक दायरे में ले लिया। कांग्रेस का पूर्ण स्वराज्य का नारा सम्पूर्ण भारत के लिए था। अब कांग्रेस ने देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन और नागरिक स्वतंत्रता स्थापित करवाना अपना लक्ष्य बना लिया था। इस सम्मेलन में कांग्रेस ने देशी रियासतों के राजनैतिक कार्यकर्ताओं को अपने–अपने राज्य में प्रजामण्डल संगठनों की स्थापना कर उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु आन्दोलन चलाने की सलाह दी 1938 में ही "आज इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेंस" का भी अखिल भारतीय स्तर पर पुनर्गठन किया गया था। जवाहर लाल नेहरू इस संगठन के अध्यक्ष बने तथा जयनारायण व्यास को महामंत्री चुना गया था इस प्रकार देशी रियासतों में राजनैतिक आन्दोलन के नये युग का सूत्रपात हुआ।

1938 के पश्चात् राजस्थान में प्रजामण्डल आन्दोलन कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन के हिस्से के रूप में आरम्भ दुआ। 1938 में मारवाड़ लोक परिषद का जयनारायण व्यास के नेतृत्व में, जयपुर राज्य प्रजा मण्डल का हीरालाल शास्त्री के नेतृत्व व मेवाड़ प्रजामण्डल का माणिक्य लाल वर्मा के नेतृत्व में गठन व पुनर्गठन हुआ । तदोपरान्त राजस्थान की सभी देशी रियासतों में प्रजामण्डल संगठनों की स्थापना हुई । सभी राज्यों के प्रजामण्डल संगठनों का घोषित उद्देश्य अपने राज्यों में महाराजाओं की छत्र छाया में जिम्मेदार शासन की स्थापना करना था । यहां उत्तरदायी शासन से तात्पर्य यह था कि यहां राजा इंग्लैड के ताज की तरह संवैधानिक अध्यक्ष

रहे । किन्तु शासन संचालन जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा किया जाये। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में राजस्थान के सभी राज्यों (जयपुर को छोड़कर) के प्रजामण्डल नेता व कार्यकर्ताओं ने खुल कर भाग लिया। हजारों की संख्या में कार्यकर्ताओं को जेलों में ठूंस दिया गया था। जयपुर राज्य में भारत छोड़ो आन्दोलन का नेतृत्व आजाद मोर्चे द्वारा किया गया था ।

भारत छोड़ो आन्दोलन के पश्चात् प्रजामण्डल आन्दोलन और अधिक तीव्र और शक्तिशाली हो गया था । किसान आन्दोलन जो की प्रजामण्डल आन्दोलन के पहले से चल रहे थे वे प्रजामण्डल संगठनों मे मिल गये थे। इनके आने से प्रजामण्डल आन्दोलन का आधार विस्तृत हो गया एवं उनके देहातों में प्रवेश के साथ ही आन्दोलन में भारी प्रगति हुई । किसानों ने खुलकर प्रजामण्डलों में भाग लेना आरंभ किया। इस समय तक किसान अपने स्वंतत्र आन्दोलनों से उब चुके थे क्योंकि लम्बे संघर्ष के बाद भी वे सामाजिक आर्थिक अधिकार प्राप्त करने में असफल रहे। अत किसान भी शहरी मध्यम वर्ग एवं अन्य वर्गो का समर्थन प्राप्त करना चाहते थे। प्रजामण्डलों ने अपने प्रस्तावों में किसानों की समस्याओं को प्रमुखता से सम्मिलित किया।

16.3.3 देशी रियासतों में 1942 के आन्दोलन के पश्चात के घटनाक्रम: भारत की स्वतंत्रता व राजस्थान के राज्यों का विलय

1942 के आन्दोलन के पश्चात लगभग यह निश्चित हो गया था कि अंग्रेज अधिक समय तक भारत को अपने नियंत्रण में नहीं रख सकते। दूसरे विश्वयुद्ध कि समाप्ति पर सत्ता के ब्रिटिश नियंत्रण को भारतीय नियंत्रण में हस्तांतरित करने की बातचीत का दौर शुरू हो गया। राजस्थान के राज्यों में प्रजमंडल आन्दोलन उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु उत्साह से चल रहा था । बढ़ते हुए जन असंतोष को देखते हुए राजस्थान के राज्य जनता को अधिकार देने पर मजबूर होने लगे थे। 15 मार्च 1946 को ब्रिटिश संसद में भारत की आजादी का प्रस्ताव पास हो गया था एवं भारत की आजादी का स्वरूप तथा अंतिम सरकार के गठन सविधान निर्माण आदि के सम्बन्ध में जांच पड़ताल कर रूपरेखा तैयार करने के लिए तीन सदस्यीय आयोग का गठन किया गया जिसे "कैबिनेट मिशन" के नाम से जानते है। यह मिशन 24 मार्च 1946 को भारत पहुंचा एवं 16 मई 1946 को इस मिशन द्वारा निर्मित योजना की घोषणा कर दी गई। इस योजना के तहत केवल ब्रिटिश भारत की आजादी का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। देशी ऋयासतों को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया। देशी रियासतों के जनसंघर्षों की यह परीक्षा की घड़ी थी। अब इनकी लड़ाई का निशाना देशी रियासतों की व्यवस्था बन गई थी अतः राजतंत्र एवं सामंतवाद की समाप्ति कर प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना देशी रियासतों के स्वतन्त्रता आन्दोलन का लक्ष्य बन गया था ऐसी स्थिति में राजस्थान की देशी रियासतों में जनआन्दोलन तीव्र हो गये थे। कुछ बड़े राज्यों ने इन अन्दोलनों को नियंत्रित करने के ध्येय से जन प्रतिनिधियों को सरकार में स्थान देना आरम्भ कर दिया था इस दिशा में पहल जयपुर राज्य की ओर से हुई। जब जनवरी 1947 में जयपुर राज्य प्रजमंडल की ज़िम्मेदारी सरकार गठित हूई। इस नवगठित सरकार का मुख्यमंत्री हीरलाल शास्त्री एवं राजस्व मंत्री टीकराम पालीवाल को बनाया गया था। इसी प्रकार 3 मार्च 1948 को जोधपुर राज्य में उत्तरदायी सरकार का गठन जयनारायण व्यास के प्रधानमंत्रित्व में हुआ। उदयपुर में सैद्धान्तिक तौर पर 3 मार्च 1947 को महारणा भोपाल ने "धारा सभा" की स्थापना की घोषणा की जो जनता द्वारा चुनी जानी थी धारा सभा के चुनाव एक वर्ष बाद 4

अप्रैल 1948 को आरम्भ हुए। जिसके पहले दौर में ही मेवाड़ क्षेत्रीय परिषद व प्रजमंडल के बीच विवाद उत्पन्न हो गया,जिसमें प्रजमंडल के दो विद्यार्थी कार्यकर्ता शहीद हो गये।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया था। देशी रियासतों को केन्द्र सरकार में राज्य विभाग के अन्तर्गत रखकर, सरदार वल्लभ भाई पटेल को राज्य मामलो का मंत्री बनाया गया था। देशी राज्यों के विलय की योजना बनाई जा रही थी किन्तु राजस्थान में इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में प्रजमंडल आन्दोलन की निर्णायक भूमिका रही। राजस्थान में इस विलय का शुभारभ पूर्वी राजस्थान से हुआ। अगस्त1947 में देश के विभाजन के बाद अलवर व भरतपुर राज्यों में साम्प्रदायिक दंगे हुए। भारत सरकार को आरम्भ हुआ की अलवर का प्रशासन मुस्लिम विरोधी है तथा मुसलमानों को राज्य के बाहर निकालने पर आमादा है। अलवर राज्य का दीवाना एन।बी खरे कट्टर हिन्दू महासभाई था। 30 जनवरी 1948 को महात्मा गांधी की हत्या कर दी गई थी। अलवर महाराजा तेजसिंह एवं दीवान खरे पर गांधी के हत्यारे को शह एवं शरण देने का आरोप था। अतः भारत सरकार ने 7 फरवरी 1948 को अलवर का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया अलवर महाराजा व दीवान को दिल्ली में नजरबन्द कर दिया था। गांधी की हत्या की जांच की सुई भरतपुर राजघराने की तरफ भी थी। इस राज्य में सांप्रदायिक दंगों में सीधे तौर पर राजपरिवार का हाथ बताया जा रहा था। किन्तु अलवर राज्य की स्थिति को देखकर भरतपुर महाराजा ने स्वेच्छा से राज्य प्रशासन भारत सरकार को सौप दिया।

18 मार्च 1948 को अलवर, भरतपुर, धौलपुर एवं करौली राज्यों का एकीकरण कर दिया गया। जिसे "मत्स्य संघ" नाम दिया गया। इस स्वतंत्र प्रदेश "मत्स्य संघ" का पहला मुख्यमंत्री शोभाराम (अलवर) एवं अन्य मंत्रियों में गोपी लाल यादव एवं जुगल किशोर चतुर्वेदी (भरतपुर), चिरंजीलाल शर्मा (करौली), डॉ मंगल सिंह(धौलपुर) तथा मास्टर भोलानाथ(अलवर) थे।

एकीकरण का दूसरा चरण उस समय सम्पन्न हुआ जब कोटा, बून्दी, झलवाड़ा। टोंक। डूंगरपुर। बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, किशनगढ़ और शाहपुर को मिला कर 1 अप्रैल 1948 को "सयुक्त राजस्थान" का गठन हुआ। कुछ ही समय बाद उदयपुर रियासत भी इसमें सम्मिलित हो गयी। 18 अप्रैल 1948 को उदयपुर में जवाहर लाल नेहरू ने "राजस्थान संघ" नामक राज्य का उद्घाटन किया। जिसकी नयी सरकार मणिक्य लाल वर्मा के मुख्य मंत्रित्व में गठित हुई। पाकिस्तान के सीमावर्ती राज्य जोधपुर, जैसलमेर व बीकानेर के विलय के निर्णय में कुछ विलम्ब हुआ तथा 30 मार्च 1949 को "वृहद राजस्थान" का उद्घाटन सरदार पटेल ने किया। इसमे सयुक्त राजस्थान, जयपुर,जोधपुर, बीकानेर व जैसलमेर राज्यों को भी सम्मिलित कर लिया गया 15 मई 1949 को मत्स्य संघ का विलय वृहद राजस्थान में कर दिया गया 1नवम्बर 1956 को माउन्ट आबू सहित सिरोही राज्य तथा अजमेर का विलय भी राजस्थान में हो गया।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है की देशी राज्यों के राजनैतिक नेता व कार्यकर्ताओं ने लम्बे संघर्ष के बाद राजस्थान को तिहरी दासता(राजा, सामन्त व अंग्रेज) से मुक्त किया।

16.4 अभ्यासर्थ प्रश्न

1. राजस्थान के किसान अन्दोलनों की विवेचना कीजिए।
2. राजस्थान में संघर्ष की व्याख्या कीजिए।

3. राजस्थान में प्रजामण्डल आन्दोलन का विश्लेषण कीजिए।

16.5 संदर्भ ग्रन्थो की सूची

1. शर्मा, ब्रजकिशोर : आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास, पब्लिकेशन स्कीम,जयपुर।
2. व्यास, रामप्रसाद : आधुनिक राजस्थान का वृहद इतिहास,भाग-2,राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
3. जैन, एम. एस : आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पंचशील, प्रकाशन जयपुर ।
4. पानगडिया, बी.एल. : राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
5. ताराचंद : भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, जिल्द 3 व 4, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।
6. शर्मा, बृजकिशोर : ट्राईबल रिवोल्ट पाइंटर पब्लिकेशन जयपुर
7. शर्मा, बृजकिशोर : पीजेन्ट मूवमेंट इन राजस्थान, पाइन्टर पब्लिकेशन, जयपुर ।

इकाई – 17

सुभाषचन्द्र बोस और भारतीय राष्ट्रीय सेना (आई.एन.ए.)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 सुभास चंद्र बोस के जन्म से पूर्व भारत में विद्यमान परिस्थितियाँ
17.3 सुभाषचन्द्र बोस का जन्म, प्रारम्भिक जीवन
17.4 भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में सुभाषचन्द्र बोस की भूमिका एवं योगदान
17.5 "भारतीय राष्ट्रीय सेना. (आजाद हिन्द फौज) “आई.एन.ए.” की स्थापना
17.6 भारतीय राष्ट्रीय सेना का संगठन एवं उद्देश्य
17.7 भारतीय राष्ट्रीय सेना की उपलब्धि एवं राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान
17.8 सुभाषचन्द्र बोस के राजनीतिक विचार
17.9 सुभाषचन्द्र बोस और फासिस्टवादी मनोवृति
17.10 सुभाषचन्द्र बोस के व्यक्तित्व एवं चरित्र का मूल्यांकन
17.11 सारांश
17.12 अभ्यासार्थ प्रश्न
17.13 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे:-

- भारत में अंग्रेजी शासन का स्वरूप एवं प्रभाव,
- भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन एवं अंग्रेजी शासन विरोधी गतिविधिया
- सुभाषचंद्र बोस का जन्म, प्रारम्भिक जीवन, शिक्षा दीक्षा, तत्कालीन परिस्थितियां,
- भारत में क्रांतिकारी आन्दोलन एवं गतिविधियां
- सुभाषचंद्र बोस का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं क्रांतिकारी गतिविधियां में हिस्सा लेना,
- सुभाषचंद्र बोस द्वारा भारतीय राष्ट्रीय सेना (आजाद हिन्द फौज) की स्थापना, उद्देश्य, संगठन एवं गतिविधियाँ
- सुभाषचंद्र बोस के राजनैतिक विचार एवं उपलब्धियाँ
- सुभाषचंद्र बोस की गतिविधियों का भारतीय स्वतन्त्रताआन्दोलन पर प्रभाव।

17.1 प्रस्तावना

भारत में 19 वी शताब्दी का युग राजनैतिक दृष्टि से विभिन्न क्रांतिकारी गतिविधियों एवं आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन का स्वरूप रहा है। इस युग मुख्यत: अंग्रेजी शासन की दोषपूर्ण नीति,अत्याचार, शोषण, पराधीनता पूर्ण स्थिति के विरुद्ध भारतीयों के द्वारा समय-समय पर आन्दोलन एवं क्रांतिकारी गतिविधियां को गयी इस शताब्दी से विभिन्न राजनैतिक विचारक तथा राष्ट्रीय नेता- फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोखले, तिलक लाला लाजपतराय,

विपिन चन्द्रपाल, सावरकर, जिन्ना महात्मा गांधी, अरविन्द घोष, नेहरू और सुभाषचंद्र बोस आदि हुए। इनमें सुभाषचंद्र बोस का नाम विशेष रूप में भारत में आजाद हिन्द फौज की स्थापना तथा भारत की स्वतन्त्रता हेतु क्रांतिकारी गतिविधियों के संदर्भ में प्रमुख स्थान माना जाता हैं सुभाषचंद्र बोस का नाम भारत के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। उन्होने भारत की स्वतन्त्रता के लिए सब कुछ न्योछावर कर दिया था इसी का परिणाम था कि उनके महान त्याग और बलिदान के कारण जनता ने उन्हे नेताजी की उपाधि से सुशोभित किया था सुभाष बोस ने अपने दृढ़ निश्चय, साहस, त्याग, और शौर्य के माध्यम से अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता हेतु विदेश में बिना किसी साधना और सहायता के एक विशाल संगठन खड़ा करके विश्व में कर्मसाधना का आदर्श प्रस्तुत किया था

डॉ ताराचंद ने लिखा था की भारत में भारत छोड़ो आन्दोलन को कुचल दिये जाने के बाद से लेकर 1945 ई. में विश्वयुद्ध के अन्त तक देश में जब कोई विशेष राजनीतिक गतिविधि नहीं हुई, उस परिस्थिति में सुभाषचंद्र बोस की महत्वपूर्ण गतिविधियां हुई। इससे स्पष्ट होता है की इस समय सुभाष बोस ऐसे नेता थे, जो भारत के हित में द्वितीय विश्व युद्ध का लाभ उठाने का निश्चय कर चुके थे

डॉ.आर.सी मजूमदार ने भी यह लिखा था की " गाँधी जी के पश्चात भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति निस्संदेह सुभाष बोस ही थे

17.2 सुभाषचंद बोस के जन्म से पूर्व भारत में विद्यमान परिस्थितियाँ

सुभाषचंद्र बोस जिनका की जन्म 1897ई में हुआ था उससे पूर्व भारत में अंग्रेजी शासन के प्रति भारतीयों में असन्तोष तथा क्रांतिकारी विचार पूर्ण परिस्थितियाँ विद्यमान थी 1885 ई. में लार्ड ऐ.ओ.हयूम के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना को चुकी थी इस कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी साम्राज्यवाद को भारतीयों के असंतोष,उग्रता,विद्रोह से बचाना था इस समय कांग्रेस में उदरवादी दल की विद्यमानता थी जिनके प्रमुख नेता गोपाल कृष्ण गोखले थे इसके अतिरिक्त दादा भाई नौरोजी,सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एवं फिरोजशाह मेहता उदरवादी विचारक थे इन विचारको का यह मानना था की ब्रिटिश शासन एक वरदान है, उनका ब्रिटिश शासन की न्याय प्रियता में अडिग विश्वास, लक्ष्य प्राप्ति करना था। उनके सिद्धान्तों में अदर्शवाद तथा यथार्थवाद का सुन्दर समन्वय था इस स्थिति ने भारतीयों में दासता को अत्यधिक बढ़ा दिया था।

1892 ई. में जो भारतीय सुधार अधिनियम अंग्रेजी सरकार के द्वारा क्रियान्वित किया गया उससे भारतीयों में असन्तोष उत्पन्न हुआ और उग्रवादी विचारधार को प्रोत्साहन मिला। क्योकि इस अधिनियम में भारतीयों के हित में किसी भी प्रकार के सुधार का प्रस्ताव नहीं था। भारत में उस समय अकाल तथा प्लेग की स्थिति भयावह रूप धारण कर चुकी थी इस स्थिति की ओर अंग्रेजी सरकार के द्वारा किसी प्रकार की सुधार, राहत नीति को न अपनाना व उपेक्षा का दृष्टिकोण उग्रराष्ट्रवादी भावना को प्रोत्साहित करना था। परिणाम स्वरूप भारत में विभिन्न क्रांतिकारी आंदोलनो का प्रादुर्भाव हुआ। इन परिस्थितियों में सुभाषचंद्र बोस का जन्म एवं प्रादुर्भाव हुआ जो की आधुनिक भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना मनी जाती है।

17.3 सुभाषचन्द्र बोस का जन्म एवं प्रारम्भिक जीवन

सुभाषचन्द्र बोस का जन्म 23 जनवरी सन् 1897 ई. को कटक में हुआ था। इनके पिता का नाम जानकी दास बोस और माता का नाम प्रभावती था। सुभाष के पिता कटक में वकालत करते थे। सुभाषचंद्र बोस की माँ प्रभावती धर्म पारायण महिला थी, जिन पर राम कृष्ण परमहस का अत्यधिक प्रभाव था। इसी सुसम्पन्न बंगाली परिवार में सुभाषचन्द्र बोस का जन्म हुआ था सुभाष के पिता के परिवार में सुभाषबोस के सात भाई और छः बहिने थी। सुभाष अपनी माता के सातवे पुत्र थे।

सुभाष बोस का प्रारम्भिक जीवन शान्त और चिंतनशील था वे स्वभाव से गम्भीर होने के कारण एकांतप्रिय थे। उनके प्रारम्भिक जीवन का स्पष्ट वर्णन करते हुए प्राणनाथ वान प्रस्थी ने सुभाष बोस को सादे जीवन का अभ्यासी थे बताया था उन्होने लिखा है कि बचपन से ही सुभाष सादा जीवन के अभ्यासी थे। और जमीन पर सोते थे। एजी बरसाने वाली गर्मियों के दिन हो, चाहे बरसात के कीड़ो-मकोड़ो भरी राते हो शरीर को कंपकपा देने वाली सर्दियों कि ऋतु हो पर बालक सुभाष सदैव फर्श पर ही सोते थे।

सुभाष बोस तीक्ष्ण बुद्धि के विचारक थे।15 वर्ष कि आयु में उन्होने मैट्रिक कि परीक्षा उतीर्ण कि। इसके पश्चात उन्होने प्रेसीडेन्सी कॉलेज में प्रवेश लिया । कल्कत्ते में सुभाष के पिता ने सुभाष बोस के लिए बहुत सुन्दर कोठी किराये पर ली थी। लेकिन वे भौतिक सुखों को वास्तविक सुख नहीं मानते थे इसलिए कलकत्ता का विलासिता पूर्ण जीवन उन्हें गरीब देश पर एक बोझ अनुभव होने लगा। 1913 ई में डॉ सुरेश बैनर्जी ने राष्ट्र सेवा के उद्देश्य से एक संस्था का निर्माण किया । इस संस्था में केवल वही नवयुवक सदस्य बन सकते थे, जो मातृभूमि की सेवा के उद्देश्य से आजीवन अविवाहित रहने का संकल्प करें । सुभाष इस संस्था के आजीवन सदस्य बन गए थे । परिणाम स्वरूप सुभाष क़े लिए राष्ट्र सेवा का लक्ष्य प्रमुख हो गया था और पढ़ाई गौण हो गयी । जब भी राष्ट्र सेवा का कोई अवसर आता वह पढ़ाई की तरफ ध्यान नहीं दे पाते थे । इस स्थिति में कॉलेज जीवन के इन प्रारम्भिक दिनों में उनकी रूचि अध्ययन से हटकर आध्यात्मिक विषयों केन्द्रित हो गई थी। सर 1914 ई में रामकृष्ण मिशन का वार्षिकोत्सव प्रारम्भ हो गया था । वे विवेकानन्द से काफी प्रभावित थे। अत: अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में वे 1914 ई. में कॉलेज छोड़कर सत्य की खोज में वाराणसी होते हुए हरिद्वार पहुंचे । यहां साधु महात्माओं की संगति में अटकने के बाद भी आध्यात्मिक शांति प्राप्त नहीं हुई वे पुन: लौट आए और 1915 ई में उन्होंने एफ.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की । उन्होंने बी.ए आनर्स दर्शनशास्त्र में प्रवेश लिया । कॉलेज में सुभाष प्रतिभाशाली और देशभक्त के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे । कॉलेज के एक अंग्रेज प्राध्यापक सी एफ ओटन ने सुभाष बोस को "रास्कल", ब्लैडी और उनके सहपाठी को ब्लेक नहीं कह दिया था, तब वे क्रोधित हो गण और प्रोफेसर का गला दबा दिया लेकिन इस घटना के पश्चात् उन्होंने एंकाटिश चर्च कॉलेज से बी.ए. आनर्स दर्शन शास्त्र की परीक्षा 1919 ई. में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की ।

31 अगस्त, 1919 ई में वे इंग्लैण्ड चले गए । यहां उन्होंने आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने गई, 1921 ई. में आई सी एस से त्यागपत्र दे दिया और इसके तत्पश्चात् सक्रिय राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़े ।

17.4 भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में सुभाषचन्द्र बोस की भूमिका एवं योगदान

सुभाष चन्द्र बोस 16 जुलाई सर 1921 ई. को इंग्लैण्ड से भारत लौटे, उस समय भारत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन का स्वरूप बना हुआ था। बंगाल के नेता सी आर. दास ने सुभाष बोस को इस आन्दोलन में सक्रिय और रचनात्मक कार्यों को सम्पन करने का कार्य सौपा था। इस समय उन्होंने प्रिस ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर कलकत्ता में बहिष्कार आन्दोलन का नेतृत्व किया । इस कारण उन्हें बन्दी बना लिया गया तथा 6 माह की सजा प्रदान की गयी। फरवरी 1922 ई में चौरी चोरा काण्ड के कारण गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया तो इस स्थिति में सुभाष बोस को काफी आघात पहुंचा। उन्होंने गांधीजी के इस कार्य की आलोचना करते हुए कहा था कि भारतीय जनता का उत्साह एवं जोश अंग्रेजी सरकार के 'विरुद्ध अपनी चरमसीमा पर पहुंच गया था, उस स्थिति में इस आन्दोलन को स्थगित किया जाना राष्ट्रीय हित में नहीं था।

सुभाष बोस जब जेल से रिहा होकर कलकत्ता लौटे तो उन्हें "नेशनल कॉलेज ऑफ कलकत्ता" के प्रधानाचार्य के रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ । इस कॉलेज में वे विद्यार्थी प्रवेश लेते थे जिन्हें उन राजकीय शिक्षा संस्थाओं से निकाल दिया जाता था जो कि राष्ट्रीय आन्दोलन में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध भाग लेते थें । परिणाम स्वरूप सुभाष बोस ने इन विद्यार्थियों को बौद्धिक, मानसिक तथा शारीरिक दृष्टि से प्रशिक्षित किया।

भारत में जो स्वराज्य दल की गतिविधि सक्रिय रूप में संचालित हो रही थी, उस दृष्टि से भी सुभाष बोस ने स्वराज्य दल के कौंसिल प्रवेश कार्यक्रम का समर्थन किया, जिसके परिणामस्वरूप विधान मण्डलों में भी अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध संघर्ष जारी रक्खा जा सके । स्वराज्य दल ने इस समय जो चुनाव हुए उसमें भाग लिया एवं संतोषजनक सफलता प्राप्त की । परिणाम स्वरूप 1923 ई. में जब चितरंजन दास द्वारा स्वराज्य दल की स्थापना की तो सुभाष बोस भी स्वराज्य दल में सम्मिलित हो गये ।

1923 ई में सी आर. दास कलकत्ता निगम के सदस्य बने, उस स्थिति में उन्होंने सुभाष बोस को निगम का मुख्य कार्यपालिका अधिकारी नियुक्त किया । इस पद पर सुभाष बोस को 3,000/– (तीन हजार रु) मासिक वेतन मिलता था । वे आधा वेतन लेते थे – और उसमें से निर्धन छात्रों व पीड़ितों की सहायता करते थे। 1924 ई. में अंग्रेजी सरकार के द्वारा जब बंगाल आर्डिनेंस एक्ट पारित हुआ था, उस एक्ट का सुभाष बोस एवं सी आर दास के द्वारा प्रमुख रूप में विरोध किया गया । परिणामस्वरूप सुभाष बोस को बंदी बना लिया गया और उन्हें माण्डले जेल भेज दिया गया । जेल में जनता द्वारा उनको बंगाल विधान परिषद् का सदस्य चुन लिया गया। 16 मई, 1927 ई में उनका स्वास्थय बिगड़ जाने के कारण अंग्रेजी सरकार को बिना शर्त के उन्हें जेल से छोड़ना पड़ा ।

1927 ई में जेल से छूटने के पश्चात् सुभाष बोस सक्रिय एवं रचनात्मक कार्यो में लग गए । इस समय बंगाल कांग्रेस ने उन्हें अपना प्रधान तथा अखिल भारतीय कांग्रेस ने उन्हें अपना प्रधानमंत्री चुन लिया । सुभाष बोस ने इस समय खादी का प्रचार, स्टूडेन्टस यूथ लीग का संगठन तथा राष्ट्रीय स्कूल, कॉलेजों की स्थापना का कार्य किया ।

1928 ई में जब साइमन कमीशन भारत पहुंचा, उस स्थिति में सभी जगह उसका काले झण्डे दिखाकर विरोध किया गया । बंगाल में सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में सहस्त्रों लोगों ने इस कमीशन का विरोध किया । उग्रवादी विचारधारा के सुभाष बोस का यह मानना था कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्देश्य अधिराज्य स्थिति नहीं बल्कि पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए । सुभाष बोस की इस धारणा पर 31 दिसम्बर 1929 ई. को पं. नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति का प्रस्ताव रक्खा । इस समय सुभाष बोस ने यह आव्हान किया कि ब्रिटिश सरकार से पूर्ण रूप में संबंध तोड़ लिए जायें तथा भारत में एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की जाय ।

1930 ई. में गांधीजी के द्वारा अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया गया था । उसमें भी सुभाष बोस की सक्रिय भूमिका रही । अंग्रेजी सरकार ने अपनी दमनकारी नीति के अन्तर्गत अन्य नेताओं के साथ सुभाष बोस को भी बंदी बना लिया था । बंगाल ने अपने प्रिय नेता को बन्दीगृह में रहते हुए भी मेयर पद से सम्मानित किया था। सुभाष बोस को अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का सभापति चुना गया, जिस पद पर वे सर 1932 ई तक बने रहे । सितम्बर सर 1931 ई को वे जेल से मुक्त हुए परन्तु मालदा से बहरामपुर जाते हुए दफा 144 के अन्तर्गत बन्दी बना दिया गया, जिससे उन्हें एक सप्ताह पश्चात् मुक्त कर दिया गया ।

1931 ई. में जब गांधी–इरविन समझौता हुआ, उस समय सुभाष बोस ने इस समझौते का विरोध किया था। करांची अधिवेशन में उन्होंने महात्मा गांधी की नीति की तीव्र आलोचना की थी । द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में असफलता के पश्चात् महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुन आरम्भ किया परिणाम स्वरूप सुभाष बोस भी इस आन्दोलन में सम्मिलित हुए और गिरफ्तार कर लिए गए । सुभाष बोस इस समय स्टेट प्रिजनर्स थे । उनका स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उन्हें यूरोप भेज दिया गया । उन्होंने अपने विदेश प्रवास के समय पौलेण्ड, फ्रांस, चेकोस्तेविया, आस्ट्रेलिया, रोम आदि देशों का भ्रमण किया । इस भ्रमण के दौरान उनकी भेंट सिनोर मुसोलिनी से हुई।

1934 ई में गांधी जी ने जब सविनय अवज्ञा आन्दोलन पूर्णतया समाप्त कर दिया, उस स्थिति का सुभाष बोस ने विरोध किया एवं उन्हें आघात पहुंचा। 1938 ई में जब हरिपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, उस अधिवेशन में सुभाष बोस को अध्यक्ष चुना गया । इस समय उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए कड़े संघर्ष करने का आव्हान किया । उन्होंने अपने उग्र क्रांतिकारी विचारों के परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन को मुश्किलों में डाल दिया था।

मार्च 1939 ई. में त्रिपुरा में जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उसकी अध्यक्षता हेतु सुभाष बोस का मुकाबला महात्मा गांधी के समर्थक प्रतिनिधि डाक्टर पट्टाभि सीतारम्मैया से हुआ। क्योंकि महात्मा गांधी सीतारम्मैया को इस कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना चाहते थे । इस हेतु जो चुनाव हुए उसमें सुभाष बोस को सफलता मिली और वे इस कांग्रेस के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। सुभाष बोस की यह विजय गांधीजी की अप्रत्यक्ष रूप से हार थी । इस समय गांधी व सुभाष के बीच मतभेद अपनी चरमसीमा पर पहुंच गए । भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के साथ उनके मौलिक मतभेद थे । महात्मा गांधी अपने लक्ष्य को प्राप्ति के लिए केवल श्रेष्ठ साधनों का ही प्रयोग करने के पक्ष में थे लेकिन सुभाष बोस सभी प्रकार के साधनों को प्रयोग करने के पक्षधर

थे । इस समय गोविंद बल्लभ पंत ने जब यह प्रस्ताव रखा कि कार्य समिति चुनने का अधिकार अध्यक्ष को नहीं होना चाहिये, उस स्थिति को सुभाष बोस ने अविश्वास अनुभव किया तथा कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया।

मई, 1939 ई में सुभाष बोस ने एक नए दल "फारवर्ड ब्लॉक " की स्थापना की थी । इस समय उन्होंने अपने आपको कांग्रेस से पृथक कर लिया था । इस दल का प्रमुख लक्ष्य समस्त साम्राज्यवादी विरोधी शक्तियों को संगठित कर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ करना था। इसका पृथक सम्मेलन बम्बई में हुआ जिसमें पूर्ण स्वतन्त्रता तथा समाजवादी शासन तंत्र की स्थापना का उद्देश्य घोषित किया गया ।

सितम्बर 1939 ई. में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ और ब्रिटिश सरकार ने भारत को भी मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में शामिल करने की घोषणा कर दी । सुभाष बोस ने इसका तीव्र विरोध किया ।

मार्च 1940 ई में सुभाष बोस ने रामगढ़ में बिटिश साम्राज्य से समझौता विरोधी सभा का आयोजन किया। 3 जुलाई, 1940 ई. को उन्होंने 'हालवैल स्मारक" को हटाने के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया था । अंग्रेजी सरकार ने सुभाष बोस को इस आन्दोलन के लिए बन्दी बना लिया था। 26 नवम्बर सर 1940 ई को जब उन्होंने भूख हड़ताल की सूचना दी तब दिसम्बर सर 1940 ई. को उन्हें जेल से मुक्त करके उनके घर में नजरबन्द कर दिया। यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने "हालवैल स्मारक" को हटा लिया था तथापि घर की नजरबन्दी में सुभाष बोस पर कड़े प्रतिबन्ध रखे थे । 26 जनवरी सर 1941 को वह घर की नजरबन्दी से बच निकले । वे वर्दवान से पेशावर और पेशावर से काबुल के लिए किसी अन्य का पासपोर्ट लेकर रवाना हो गए थे। काबुल से इटली के राजदूत ने सुभाष बोस को अपने देश में पहुंचा दिया था । बर्लिन और हेमबर्ग में हिटलर ने सुभाष बोस का भव्य स्वागत किया ।

17.5 "भारतीय राष्ट्रीय सेना" (आजाद हिन्द फौज) "आई.एन.ए." की स्थापना

सुभाष चन्द्र बोस के जीवनकाल की महत्वपूर्ण सैनिक उपलब्धि भारतीय राष्ट्रीय सेना की स्थापना के रूप में मानी जाती है । इस सेना को "आजाद हिन्द फौज" की उपमा दी गयी थी जिसे अंग्रेजी में "आई एन .ए. " कहा गया। सुभाष बोस भारत में राष्ट्रवाद, स्वतन्त्रता और साम्राज्यवाद के पक्षधर रहे जिस उद्देश्य के फलस्वरूप वे यह चाहते थे कि भारत को सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली व संगठित बनाया जाना चाहिए । इस दृष्टिकोण स्वरूप सुभाष बोस को अनुकूल परिस्थितियां शात हुईं । भारत में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध निरन्तर रूप में राष्ट्रीय व स्वतंत्रता आन्दोलन चल रहा था, जिसमें सुभाष बोस ने सक्रिय रूप में हिस्सा लिया था। उन्होंने भारतीयों को अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध संगठित होने एवं आन्दोलन करने का आव्हान किया था । अंग्रेजों की इस समय दमनकारी नीति बनी हुयी थी, जिसमें भारतीय क्रांतिकारियों को बंदी बनाना एवं यातना देना प्रमुख था। इस परिस्थिति में सुभाष बोस को जब बंदी बनाया गया और वे नजरबंदी से बचकर इटली व जर्मनी चले गए । इस समय यरूशलम के मुफ्ती आजम से सुभाष बोस की भेंट हुयी । मुफ्ती आजम अंग्रेजों के विरुद्ध जर्मनी से सहायता लेने आये थे । इस स्थिति में सुभाष बोस और मुफ्ती आजम के मध्य मित्रता स्थापित हो गयी थी क्योंकि दोनों समान उद्देश्य

के लिए ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जर्मनी से सहायता लेने के लिए प्रयत्नशील थे । जर्मनी सरकार ने सुभाष बोस को एक हवाई जहाज और ट्रांसमीटर भेंट किया । सुभाष इसके पश्चात् 1941 ई में यूरोप के देशों से निकलकर पूर्वी एशिया में आ गए जहां जापान की सरकार ने उनका स्वागत किया । यहां उनकी भेंट भारत के क्रांतिकारी नेता रास बिहारी बोस से हुयी । उन्होंने टोकियो में 28 मार्च 1942 ई. को राजनीतिक मामलों पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन में "भारतीय स्वतन्त्रता लीग' तथा 'आजाद हिन्द फौज" बनाने की घोषणा की। इसके पश्चात् 23 जून, 1942 ई. को बैकाक में रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में एक और सम्मेलन आयोजित किया गया । इस सम्मेलन में बर्मा, मलाया, थाईलैण्ड, चीन, जापान, हिन्द चीन, जर्मनी, फिलीपाइन, इटली, मंचूरिया, आदि देशों के लगभग 100 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया गया कि "आजाद हिन्द फौज" का निर्माण किया जाये, परिणाम स्वरूप 5 बुलाई 1942 ई. में "आजाद हिन्द फौज" और 21 अम्बर 1942 ई. में "आजाद हिन्द फौज" सरकार की स्थापना हुई ।

17.6 भारतीय राष्ट्रीय सेना का संगठन एवं उद्देश्य

1942 ई. में भारतीय राष्ट्रीय सेना अर्थात् "आजाद हिन्द फौज" की स्थापना के समय लगभग 50 हजार भारतीय सैनिक सम्मिलित थे । यह संगठित एवं शक्तिशाली सैनिक संगठन था । इस संगठन को विदेशी राज्यों – जर्मनी, इटली, चीन, जापान, आदि देशों से मान्यता प्राप्त थी । सुभाष बोस ने इस संगठन को शक्तिशाली एवं कुशल नेतृत्व प्रदान किया था । इस संगठन के सभी सदस्य परस्पर रूप से "जयहिन्द. कहकर अभिवादन करते थे । इस सेना में प्रवेश से पूर्व व्यक्ति को एक प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे । वह यह घोषणा करता था कि मै स्वयं आजाद हिंद सेना में भर्ती होता ई । भारत की स्वतंत्रता के लिए तन, मन, धन न्यौछावर कर देने की प्रतिज्ञा करता हूं । भारत की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को भी तैयार हूं। मै स्वार्थ को छोड़कर अपने देश की सेवा करूंगा। देशवासियों से चाहे वह किसी जाति, समुदाय व प्रान्त के हों, किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखूंगा और सभी भारतीयों को अपना भाई समझूंगा ।

"आजाद हिन्द फौज" के निम्नांकित प्रमुख उद्देश्य थे।

1. भारतीय राष्ट्रीय सेना का प्रमुख उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता के सिए युद्ध करना था ।
2. राष्ट्रीय सेना का अन्य उद्देश्य भारत के अतिरिक्त भारत के बाहा भी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना था ।
3. इस संगठन का उद्देश्य भारतीयों में राष्ट्रीयता, देशभक्ति की भावना और उनमें सैनिक गुणों का विकास करना था ।
4. भारतीयों को अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा दिलाना और उनमें आत्म सम्मान, स्वतन्त्रता, निडरता, साहस व आत्म निर्भरता की भावना उत्पन्न करना था ।

17.7 भारतीय राष्ट्रीय सेना की उपलब्धि एवं राष्ट्रीय आन्दोलन मे योगदान

भारतीय राष्ट्रीय सेना ने अपने निर्माण एवं संगठन के पश्चात् भारत की स्वतंत्रता के उद्देश्य से सक्रिय योगदान दिया था । द्वितीय विश्व युद्ध के समय भारतीय राष्ट्रीय सेना की महत्वपूर्ण गतिविधि रही। 21 अम्बर 1943 ई में सुभाष बोस वे अपने आजाद हिन्द फौज के

सर्वोच्च सेनापति की हैसियत से स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार बनाई । इस अस्थायी सरकार को विभिन्न देशों – जापान, जर्मनी, कोरिया, चीन, इडली आदि ने मान्यता प्रदान कर दी थी । जापान ने अंडमान और निकोबार द्वीप इस अस्थायी सरकार को दे दिए थे । सुभाष बोस इन द्वीपों में आए और उन्होंने अण्डमान का नाम "शहीद द्वीप" तथा निकोबार का नाम "स्वराज्य द्वीप" रखा। 30 दिसम्बर 1943 ई में इन द्वीपों पर भारत का ध्वज फहरा दिया गया। 4 फरवरी 1943 ई को आजाद हिन्द फौज ने अंग्रेजों पर शक्तिशाली आक्रमण किया जिसका यह परिणाम हुआ कि कुछ भारतीय प्रदेश–रामू, कोहिमा, पलेल प्रमुख– थे, जो कि अंग्रेजों के अधीन थे, उन्हें स्वतंत्र करा लिया गया ।

इस प्रकार फरवरी 1944 ई में सुभाष के सेनापतित्व में आजाद हिन्द फौज ने भारत पर उत्तर–पूर्व की ओर से आक्रमण किया और आसाम पर अधिकार कर लिया था । सुभाष बोस ने 22 सितम्बर 1944 ई. में आजाद हिन्द फौज के साथ "शहीदी दिवस" मनाया और अपने सैनिकों से उत्साही रूप में आव्हान किया कि "हमारी मातृभूमि स्वतंत्रता की खोज में है । तुम मुझे अपना खून दो और मै तुम्हें स्वतंत्रता दूंगा ।" इससे भारतीय राष्ट्रीय सेना के सैनिकों में जोश, उत्साह का प्रादुर्भाव हुआ और भारतीय स्वतंत्रता हेतु वे अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध संघर्षरत हो गये । लेकिन 1944 ई. में इटली के द्वारा आत्मसमर्पण कर दिए जाने के फलस्वरूप आजाद हिंद आन्दोलन को भारी धक्का लगा । इस समय जापान ने भी भारत–बर्मा सीमा पर संघर्षरत आजाद हिन्द फौजों को सहयोग देना बंद कर दिया था, क्योंकि जापान को अपने देश की सुरक्षा के लिए इस समय अधिक ध्यान देना पड़ा । इसका कारण यह था कि अमेरिका की फौजों ने प्रशांत में आनी स्थिति मजबूत बना ली थी और कभी भी जापान पर उसका आक्रमण हो सकता था । इन सब परिस्थितियों का यह परिणाम हुआ कि आजाद हिद फौज के द्वारा संगठित रूप में युद्ध करने के बावजूद भी आजाद हिन्द फौज को इम्फाल तथा कोहिमा मोर्चों पर सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। ब्रिटेन ने मणिपुर की रक्षा करने के उद्देश्य से अपनी समस्त शक्ति लगा दी थी । परिणाम स्वरूप सीमान्त प्रदेशों में अंग्रेजी शक्ति काफी शक्तिशाली हो गयी थी। अगस्त 1945 ई. में जापान ने समर्पण कर दिया था । परिणाम स्वरूप आजाद हिन्द आन्दोलन समाप्त हो गया ।

प्रसिद्ध विद्वान एवं इतिहासकार अमर लाहड़ी ने यह लिखा था कि, "आजाद हिंद आंदोलन ताश के मकान की तरह गिर पड़ा । इस कारण नहीं कि सुभाष चन्द्र बोस की लोकप्रियता कम हो गयी थी, बल्कि इस कारण कि, 1945 ई. के शुरू में पूर्वी एशिया में अधिकतर भारतीय वर्ग आन्दोलन कें प्रति उदासीन हो गए । आजाद हिन्द आन्दोलन में मुख्य हिस्सा लेने वाले लोग व्यापारी, मजदूर और दफ्तरों में काम करने वाले लोग थे और उनमें न तो राष्ट्रवादियों की प्रबलता थी और न क्रान्तिकारियों का साहस, इसलिए यह बात जरा भी अप्रत्याशित नहीं थी कि, जिस समय जापान ने अपने समर्पण की घोषणा की उसी समय यह आन्दोलन खत्म हो गया । "

यद्यपि आजाद हिन्द फौज का आन्दोलन असफल रहा तथापि भारतीय जनता पर इसका प्रभाव परिल क्षित हुआ, जबकि आजाद हिंद फौज के कुछ अफसरों पर भारत में मुकद्दमा चलाया गया । भारत के लगभग सभी राजनैतिक दलों ने इस अभियोग की निन्दा व विरोध किया । उन्होंने उनका भारत की स्वतंत्रता के सैनिकों के रूप में अभिनन्दन किया और उनकी रिहाई के लिए सडाकत आन्दोलन प्रारम्भ किया । इस समय भारतीयों के हृदय में आजाद हिन्द फौज का

प्रमुख स्थान बन गया था । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक आई. एन .ए. रक्षा समिति बनायी जिसमें सर तेजबहादुर, भूलाभाई देसाई तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू जेंसे प्रतिभाशाली लोग थे । इन लोगों ने इन अफसरों की तरफ, से वकालत की । भारत में प्रदर्शन व आन्दोलन हुए । सैनिक न्यायालय ने आजाद हिन्द फौज के अफसरों को यद्यपि दोषी पाया तथापि अंग्रेजी सरकार को जनता की भावनाओं का सम्मान करना पड़ा तथा तीनों व्यक्तियों को छोड़ना पड़ा । इससे स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आई एन .ए. (भारतीय राष्ट्रीय सेना) के वीरों ने एक साहस का उदाहरण प्रस्तुत किया था जिससे कि भारत की स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त हो सका ।

17.8 सुभाषचन्द्र बोस के राजनीतिक विचार

भारतीय क्रान्तिकारी नेताओं में सुभाष बोस प्रमुख राजनीतिज्ञ थे । वे राजनीति से संबंधित सभी विचारों एवं सिद्धान्तों से ओतप्रोत थे । सुभाष बोस एक सच्चे देश भक्त और राष्ट्रवादी नेता थे । उनके विचारों में भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावना होनी चाहिए । उनका यह मानना था कि प्रत्येक भारतीय को देश की स्वतंत्रता एवं रक्षा के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए और अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने केलिए उद्धत रहना चाहिए । इसी संदर्भ में उन्होंने देशवासियों को स्वतंत्रता के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने का आव्हान करते हुए कहा था कि, "तुम मुझे खून दो, मै तुम्हें आजादी दूंगा" ।

सुभाष बोस साम्राज्यवाद के पक्ष में नहीं थे । वे साम्राज्यवाद को एक अभिशाप बताते थे। परिणामस्वरूप वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कट्टर विरोधी थे उनका देशवासियों के लिए यह उपदेश एक विचार था कि इस साम्राज्यवाद का डटकर विरोध किया जाना चाहिए । इस हेतु उन्होंने हिटलर, मुसोलिनी तथा जापान से भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद की समाप्त करने के उद्देश्य से सहयोग लेने का प्रयत्न किया था । ऐतिहासिक दृष्टि से यह सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है कि, सुभाष बोस का सम्पूर्ण जीवन साम्राज्यवाद के विक्त संघर्ष करने में व्यस्त रहा । सुभाष बोस का विचार था कि साम्राज्यवाद शोषण, हिंसा की अमानवीय प्रवृत्तियों को जन्म देता है ।

सुभाष बोस के लिए परतंत्र एक महानतम् अभिशाप था। वे अन्याय और अनैतिकता से समझौता करना पाप मानते थे । इस हेतु वे देशवासियों को अपने विचारों से अवगत कराते हुए कहते थे कि, असमानता को मिटाने के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहना चाहिए । इसके लिए कितनी भी महान कीमत देनी पड़े ।

सुभाष बोस राजनीतिक दृष्टि से उग्रवाद के समर्थक थे । देशवासियों के लिए, उनका इस सम्बन्ध में यह विचार था कि, भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु अंहिसात्मक साधन पर्याप्त नहीं है, जिसके लिए सभी प्रकार के साधनों को अपनाना आवश्यक है । उन्होंने अंग्रेजी सरकार की नीतियों, शासन का उग्ररूप में विरोध करने का आव्हान किया । वे गांधीजी के राजनीतिक विचारों अहिंसा की नीति एवं कार्य पद्धति को पसंद नहीं करते थे । सुभाष बोस का यह मानना था कि अंग्रेजी सरकार अथवा किसी भी साम्राज्यवादी शक्ति के अत्याचारों, शोषण, और परतंत्रता का सशक्त शब्दों एवं कार्यो के द्वारा विरोध किया जाना चाहिये ।

राजनीतिक क्षेत्र में सुभाष बोस समाजवाद के समर्थक थे । वे समाजवाद के सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था रखते थे। भारतीयों की निर्धनता, कठिनाईयों को दूर करने हेतु समाजवादी व्यवस्था को उपयोगी मानते थे । उदाहरणस्वरूप उनके, समाजवादी विचार इस रूप में परिलक्षित होते है कि सुभाष बोस ने हरिपुर कांग्रेस के अधिवेशन में कहा था कि, "इस संबंध में मेरे मस्तिष्क में

कोई सन्देह नही है कि हमारी गरीबी, अशिक्षा, बीमारी, वैज्ञानिक उत्पादन एवं वितरण की समस्यायें केवल समाजवादी मार्ग पर चलकर ही प्रभाव पूर्ण ढंग से सुलझाई जा सकती है । उन्होंने जमींदारी का उन्मूलन तथा किसानों की ऋणग्रस्तता का अन्त करने तथा देहाती क्षेत्रों में सस्ते ऋण की व्यवस्था करने का समर्थन। किया ।

इसी प्रकार सुभाष बोस भारत की राष्ट्रीय अखण्डता तथा सार्वभौम एकता के प्रबल समर्थक थे। वे भारत में साम्प्रदायिक एकता बनाए रखना चाहते थे । उनकी आजाद हिन्द फौज में हिन्दुओं के अतिरिक्त, मुस्लिम, सिक्ख आदि सभी जातियों के लोग सम्मिलित थे । इसके विपरीत भारत में वे साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी भी थे । भारत में अंग्रेजों की जो फुट डालो और शासन करो की नीति थी, उसका उन्होंने घोर विरोध किया ।

सुभाष बोस राजनीतिक यर्थाथवाद में पूर्ण विश्वास रखते थे । उन्होंने राजनीति तथा नैतिक प्रश्नों को मिलाना अथवा धार्मिक एवं राजनीतिक मामलों को मिश्रित करने का विरोध किया। उनका विश्वास राजनीतिक सौदेबाजी में था । उन्होंने बताया कि राजनीतिक सौदाकारों का रहस्य इस बात में है कि आप वास्तव में जितने शक्तिशाली है, उससे कही अधिक शक्तिशाली दिखाई दे । सुभाष का यह मानना था कि अपनी बात को शक्तिशाली शब्दों में रखा जाना चाहिए। आग्रह एवं विनम्रता की भाषा से उन्हें घृणा थी । 1931 ई में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में गांधी की स्पष्ट और विनम्र शब्दावली सुभाष। बोस को पसंद नहों आई । उनका यह विचार था कि महात्मा गांधीजी को जो अपने देश का राजनीतिक प्रतिनिधित्व कर रहे थे, राजनीतिक शक्ति के स्वर में बोलना चाहिए था।

सुभाष बोस यह मानते थे कि, देश की राजनीतिक स्वतंत्रता एक अनिवार्य तात्कालीन आवश्यकता है । वे इस बात को भी मानते थे कि सामाजिक स्वतंत्रता के लिए भी संघर्ष साथ–साथ संचालित करना चाहिए । वे राजनीतिक संघर्ष तथा सामाजिक संघर्ष को साथ चलाने के पक्षधर थे । उनका विचार था कि जो दल भारत के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करेगा वही दल देश की जनता को सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता भी दिलायेगा । श्रमिक वर्ग एवं किसानों की आकांक्षाओं 'राव हितों का सुभाष ने सदैव समर्थन किया ।

सुभाष बोरा ने भारत में एक नए दल के लिए कार्यक्रम तैयार किया था । इस कार्यक्रम को "दि इण्डियन स्ट्रगल", में डॉ. वर्मा ने प्रस्तुत किया है कि, दल जनता के हितों का समर्थन करेगा, न कि जमींदारों, पूंजीपतियों तथा साहूकार वर्गों के निहित स्वार्थों का ।

17.9 सुभाषचन्द्र बोस और फासिस्टवादी मनोवृति

सुभाष बोस राजनीतिक विचारक होने के साथ–साथ फासिस्टवादी विचार के भी व्यक्ति थे। उनके विचारो एवं नीतियों के आधार पर विद्वान यह मानते है कि वे फासिस्ट वादी विचारधारा में विश्वास रखते' थे । ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि सुभाष ब्रिटिश साम्राज्य को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं करते थे। उनका यह मानना था कि भारत से ब्रिटिश साम्राज्य जाए। उनकी यह धारणा थी कि जब तक हमारा देश स्वतंत्र नहीं होता तब तक उनके भविष्य की मधुर कल्पनाएं करना ठीक नही है । अत: वे किसी भी प्रकार की शक्ति अथवा संवैधानिक साधनों के माध्यम मे अग्रेंजी साम्राज्य का अन्त करना चाहते थे । इस उद्देश्य के वशीभूत होकर ही सुभाष बोस ने 1930 ई. से 1938 ई तक गांधीजी के अहिंसात्मक आन्दोलन को अपनी पूरी शक्ति के साथ समर्थन दिया था । लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के काल में जब

उन्हें नजरबंदी से भागना पड़ा, तब उन्होंने शक्ति के बल पर अंग्रेजी साम्राज्य को समाप्त करने के कार्य किए । इस समय उनका सम्पर्क प्रत्यक्ष रूप से फासिस्टवादी और नाजीवादी शक्तियों से था, क्योंकि मुसोलिनी व हिटलर के सम्पर्क में आए तथा उनसे सहायता प्राप्त की । इसी प्रकार 1939 ई. में त्रिपुरा कांग्रेस में सुभाष बोस गांधीजी की इच्छाओं की अवहेलना करने हुए, अध्यक्ष बन गए थे । परिणामस्वरूप भारत में सुभाष बोस गांधीजी के समर्थक लोगों की दृष्टि में फासिस्टवादी बन गये थे । सुभाष बोस. फासिज्य तथा साम्यवाद में कोई अन्तर नहीं मानते थे । ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्य पूर्ण है कि, उन्होंने भारत के लिए, ब्रिटिश सामाज्यवाद की समाप्ति के बाद एक तानाशाही व्यवस्था की मांग की थी । इन आधारों पर उन पर फासिस्टवादी होने का आरोप लगाया जाता है। इस संदर्भ में हीरालाल सेठ ने अपने विचार को माध्यम से इस विचार धारा का खण्डन किया और यह तर्कु पूर्ण विचार दिए कि सुभाष बोस मे राष्ट्रवाद था, जो कठोर साधना और अनुशासन की भावना को समर्पित था । उनमें नेतृत्व की अपार क्षमता थी ।

डॉ. बर्मा का यह तर्क था कि सुभाष बोस उग्रराष्ट्रवादी थे, उनके विचार में फासीवादी अधिनायकों के सबल तरीका के प्रति भावनात्मक झुकाव था और वे देश की स्वतंत्रता के लिए हिंसात्मक तरीकों में विश्वास करने थे । इसी उद्देश्य के अनुरूप उन्होंने महायुद्ध के समय देश की स्वतंत्रता हेतु आजाद हिंद फौज का निर्माण किया था । उन्होंने यूरोप तथा एशिया की फासीवादी शक्तियां से सशस्त्र सहायता प्राप्त की । लेकिन दूसरे पक्ष में यह माना जाता है कि वे: फासिस्टवादी नहीं थे। क्योंकि सुभाष बोस को फासीवाद दर्शन के कुछ आधारभूत दार्शनिक तथा राजनीतिक सिद्धान्तों में विश्वास नहीं था । सुभाष देश की स्वतंत्रता हेतु दीवाने थे परिणामस्वरूप उन्होंने ब्रिटिश शक्तियों से सहायता प्राप्त की ।

17.10 सुभाषचन्द्र बोस के व्यक्तित्व एवं चरित्र का मूल्यांकन

सुभाष बोस के राजनैतिक विचारों, उनकी राष्ट्रीय व स्वतंत्रता आन्दोलन में क्रांतिकारी गतिविधियों एवं उपलब्धियों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सुभाष बोस भारत के महान क्रांतिकारी नेता एवं प्रतिभा के व्यक्ति थे । वे पराक्रमी एवं योग्य भारतीय सपूत थे । सुभाष उच्च कोटि के देशभक्त भी थे । उन्हें भारत की भूमि से हार्दिक स्नेह था उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के लिए अपने जीवन को पूर्ण रूप से लगा दिया था ।

22 अगस्त, 1945 ई. के दिन जब सुभाष बोस हवाई जहाज के माध्यम से टोक्यो के लिए रवाना हुए, उस हवाई जहाज में फारमूसा द्वीप के निकट आग लग गई जिसमें सुभाष बोस मृत्यु को प्राप्त हुए । यह घटना उनके मातृभूमि के लिए बलिदान का प्रतीक है । वे कुशल राजनीतिज्ञ, उच्च कोटि के सेना नायक एवं महान देश भक्त थे ।

सुभाष बोस कांग्रेस के अन्दर एक वामपंथी नेता तथा उग्रविचार के निर्भिक़ और उत्साही देश भक्त थे । वे बुद्धिजीवी, मौलिक चिंतक, अनुशासनप्रिय और अत्यन्त लोकप्रिय नेता थे।

इस प्रकार आधुनिक भारतीय इतिहास एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के विशेष संदर्भ में उनका नाम सदैव सूर्य के समान दैदीप्यमान रहेगा ।

17.11 सारांश

इस प्रकार सुभाष बोस के प्रारम्भिक जीवन, उनकी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता के क्षेत्र में सक्रिय योगदान तथा राजनीतिक विचारधारा के स्पष्ट एवं विस्मृत ऐतिहासिक

विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुभाष बोस भारत के महान क्रांतिकारियों में प्रमुख थे । उन्होंने भारत में क्रांतिकारी आन्दोलन को संगठित व शक्तिशाली स्वरूप प्रदान किया। उनके नेतृत्व में भारतीय क्रांतिकारियों को प्रोत्साहन एवं बल मिला। भारतीय स्वतंत्रता का मार्ग उनके सक्रिय व क्रांतिकारी गतिविधियों का सफल परिणाम था।

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन को सैनिक एवं व्यवस्थित रूप प्रदान करने में उनका विशेष योगदान रहा । उन्होंने क्रांतिकारियों को भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु दृढ़ निश्चय, संकल्प, साहस, गतिशीलता और देश भक्ति की भावना से ओत–प्रोत कर उन्हें अपना लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रेरणा प्रदान की । उनकी उग्रविचार धारा के कारण सुभाष बोस और महात्मा गांधी के विचार एक दूसरे के विपरीत रहे । इस संबंध में डॉ. अग्रवाल द्वारा लिखित एवं हाल ही में प्रकाशित "नेताजी की जीवनी" से पता चलता है लेखक ने सुभाष बोस के मानवीय पक्षों के साथ–साथ उनके राजनीतिक विचारों में निरंतर परिवर्तन तथा मोह भंग रेखांकित किया है । इसी आधार पर महात्मा गांधी के साथ उनके मतभेदों को दो दृष्टिकोणों की टकराहट के रूप में प्रस्तुत किया है । नेताजी सुभाष बोस और महात्मा गांधी न केवल एक दूसरे के प्रति सम्मान और स्नेह का भाव भी रखते है और एक दूसरे की अहमियत को भी समझते है। अतः सुभाष बोस भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं क्रांतिकारी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में उग्रवादी विचारधारा एवं सफल स्वतंत्रता सेनानी के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते थे।

17.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न– 1

पाँच पंक्तियों में उत्तर दें :

1 सुभाष चन्द्र बोस के जन्म के समय भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप को बताइये ।

2 सुभाष चन्द्र बोस के जन्म एवं प्रारम्भिक जीवन का संक्षेप में उल्लेख कीजिए ।

3 सुभाष चन्द्र बोस के राजनीतिक जीवन में प्रवेश के ऐतिहासिक महत्व को बताइये ।

बोध प्रश्न– 2

निम्नांकित वाक्यों को पढ़कर उनके सम्मुख सही (√) या गलत (X) का निशान लगाऐ ।

1. सुभाष चन्द्र बोस भारत के प्रमुख क्रांतिकारी नेता थे ।
2. सुभाष चन्द्र बोस ने फारवर्ड ब्लॉक नामक दल का संगठन किया था ।
3. भारत को गुलामी से छुटकारा दिलाने के लिए जापान की सहायता से भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य से सुभाष बोस ने आजाद हिन्द फौज का संगठन किया था।
4. सुभाष बोस ने अंग्रेजों शासन को भारत के लिए उत्तम व श्रेष्ठ शासन बताया ।
5. सुभाष ने "जयहिन्द", "दिल्ली चलो", "लाल किला हमारा है" आदि नारे देशवासियों को दिए ।
6. 'दि इण्डियन स्ट्रगल' नामक पुस्तक सुभाष बोस द्वारा लिखी गयी।
7. भूतपूर्व राष्ट्रपति डी. शंकर दयाल शर्मा के सचिव विजय अग्रवाल ने सुभाष बोस की जीवनी पर पुस्तक लिखी है ।
8. सुभाष बोस पूर्ण स्वाधीनता व राजनीतिक यर्थाथवाद के उपासक थे।
9. सुभाष बोस गांधी जी के विरुद्ध थे ।

17.13 संदर्भ ग्रथो की सूची

1. डॉ0 पट्टाभि सीतारम्मैया : हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस
2. वानप्रस्थी प्राणनाथ : सुभाष चन्द्र बोस
3. सुभाष चन्द्र बोस : दि इण्डियन स्ट्रगल
4. दुरलभ सिंह : दि रिबेल प्रेसीडेण्ट
5. असफाक अहमद ; क्रांति का देवता–सुभाष चन्द्र बोस
6. एस. मथाई ; टार्च बियरर्स ऑफ इण्डिया फ्रीडम
7. जनरल मोहन सिंह ; कांग्रेस अनमास्कड
8. जवाहर लाल नेहरू ; हिन्दुस्तान की कहानी
9. सी वाई. चिन्तामणि : इण्डियन पोलिटिक्ससिंस दि म्यूटिनी
10. डॉ. रघुवंशी : इण्डियन नेशनलिस्ट मूवमेट एंड थौट
11. डी. वी पी एस. रघुवंशी : भारतीय संवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास
12. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा : मोडर्न पोलिटिकल थॉट
13. विद्याधर महाजन : भारत का संवैधानिक विकास
14. डॉ0विजय अग्रवाल : नेताजी की जीवनी
15. आर सी. मजूमदार : हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया
16. बालशास्त्री हरदास : आमर्ड स्ट्रगल फार फ्रीडम
17. आर सी. अग्रवाल : भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन
18. मन्मथनाथ गुप्ता : क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास
19. वी पी. मेनन : आमर्ड स्ट्रगल फार फ्रीडम
20. डॉ. तारा चन्द हीरालाल सेठ : पर्सनेलटी एंड पॉलिटिकल आइडिया आफ सुभाष
21. हीरा लाल सेठ : परसनेलटी एंड पॉलिटिकल आइडिया आफ सुभाष

इकाई – 18
1946 का नौसैनिक विद्रोह

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 आजाद हिन्द फौज व उस पर मुकदमा
18.3 रॉयल नौसेना विद्रोह
18.4 विद्रोह के कारण
18.4.1 भारतीय नौसेना से भेदभाव
18.4.2 अपमानजनक व्यवहार
18.4.3 आर्थिक असंतोष
18.4.4 आज़ाद हिन्द फौज से प्रेरणा
18.4.5 विदेश के अनुभवों का प्रभाव
18.4.6 गुप्त वार्ताएं व मंत्रणा
18.4.7 तात्कालिक परिस्थितियाँ
18.5 प्रमुख मांगे
18.6 घटनाक्रम
18.7 प्रतिक्रिया एवं दमन
18.8 राष्ट्रीय आंदोलन
18.9 अन्य परिणाम
18.10 सारांश
18.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
18.12 संदर्भ ग्रन्थ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि –

- रायल नौसेना विद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार करने वाली परिस्थितियाँ कौन–। सी थीं। आजाद हिन्द फौज के गठन और आजाद हिन्द के कैदियों पर किम प्रकार मुक्दमा चलाया गया था।
- नौसेना विद्रोह के सैनिकों ने आजाद हिन्द फौज के कैदियों की रिहाई व अन्य माँगों को लेकर किस प्रकार आन्दोलन चलाया था ।
- नौसेना विद्रोह का प्रमुख घटनाक्रम किस प्रकार का रहा था ।
- इस विद्रोह का ब्रिटिश सेना ने कैसे दमन किया।
- नौसेना विद्रोह की राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति क्या प्रतिक्रिया रही ।
- इस विद्रोह की प्रमुख विशेषताएँ और उसका क्या महत्व था ।

18.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आप राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर चुके है 1919 से राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर महात्मा गांधी के हाथ में आ गयी थी । इसी लिए 1919 से 1947 के राष्ट्रीय आन्दोलन काल को कुछ इतिहासकारों ने गांधी युग का नाम दिया है । गांधी जी के अंहिसात्मक आन्दोलन के अतिरिक्त इस काल में अमर शहीदों ने आजादी की बलिदेवी पर अपने प्राणों की आहुति दी । इसके साथ ही मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व मे बढ़ती हुयी पाकिस्तान की मांग और अंग्रेजों द्वारा उसे संरक्षण प्रदान करना भी एक अलग समस्या थी । 1942 के बाद परिस्थितियों ऐसी बनती जा रही थी कि ब्रिटिश के लिये भारत को और अधिक समय तक अधीन बनाये रखना सम्भव नहीं था। 1945 में युद्ध समाप्ति के उपरान्त तो अंग्रेजों के लिये भारत का प्रश्न और अधिक विकट गया था । ऐसे समय में कुछ घटनाएँ ऐसी घटित हुई जिससे अंग्रेजों को करारा धक्का लगा ।

1946 का बम्बई का रॉयल नौसेना विद्रोह भी इसी प्रकार की घटना थी। 1919–46 दो वर्ष में भारतीय असंतोष की स्थिति ज्वालामुखी की तरह हो गयी थी जिसमें कभी भी विस्फोट हो सकता था। 14 जुलाई, 1945 में शिमला सम्मेलन को लार्ड वेवल ने असफल घोषित कर दिया था इससे देश में निराशा छा गई परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा कांग्रेस कार्य समिति के सदस्यों को रिहा कर दिया जिससे जनता में पुन: उत्साह आ गया । इस समय आजाद हिन्द फौज के तीन प्रमुख अधिकारियों पर मुकदमें चले जिनका सम्पूर्ण भारत में विरोध हुआ। ब्रिटिश भारतीय सेना में भी अंग्रेजों के प्रति असंतोष बढ़ता जा रहा था । आजाद हिन्द के कैदियों की रिहाई व अपनी अन्य मांगों को लेकर 18 फरवरी, 1946 बम्बई की राजकीय जल सेना ने विद्रोह कर दिया था । जिस दिन यह विद्रोह हुआ उसके एक दिन उपरान्त ही ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने केबिनेट मिशन भारत. घोषणा की । इस इकाई में आपको इसी विद्रोह की विस्तृत रूप से जानकारी देंगे ।

18.2 आजाद हिन्द फौज व उस पर मुकदमा

सुभाष चन्द्र बोस ने राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान कांग्रेस को अपना सक्रिय दिया । 1938 के हरिपुरा अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष बने । परन्तु अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष के मामले में गांधी व सुभाष के विचारों में मतभेद हो गये । सुभाष को तंग आकर कांग्रेस छोड़नी पड़ी । सुभाष देश छोड़कर जर्मनी चले गये । जर्मनी में रह रहे भारतीय सैनिक कैदियों की मुक्ति सेना बनायी और 7 दिसम्बर, 1941 को अंग्रेजों के विरुद्ध जर्मनी, जापान का साथ देते हुये युद्ध में शामिल हो गये । इन्हीं दिनों जापान में रह रहे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस ने जापान में रह रहे भारतीय युद्ध बंदियों को संगठित किया। एक जापानी सैनिक अधिकारी मेजर "फूजीवारा" ने एक युद्ध बंदी कैप्टन मोहन सिंह को जापानियों के साथ मिलकर काम करने के लिये समझाया। 28 मार्च, 1942 को टोकियो में भारतीयों की एक कान्फ्रेंस बुलायी और "इण्डियन इण्डिपेडेन्स लीग" की स्थापना की गयी। इसके उपरान्त 14 जून से 23 जून, 1942 तक बैकाक में रास बिहारी बोस की अध्यक्षता में एक और सम्मेलन हुआ और आजाद हिन्द फौज के गठन का निर्णय लिया गया। कैप्टन मोहन सिंह को इस फौज का कमाण्डर बनाया । इस सम्मेलन में यह भी प्रस्ताव पारित किया गया कि आजाद हिन्द फौज भारत की स्वतंत्रता के अलावा और किसी उद्देश्य के लिये प्रयोग में न लायी जाये । इस सेना में लगभग 40,000 सिपाही भरती हो गये । इसी

सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि नवगठित सैन्य दल के नेतृत्व के लिये सुभाष चन्द्र बोस को आमंत्रित किया जाये । इसी आमन्त्रण पर सुभाष चन्द्र बोस जून, 1943 में जर्मनी आये और जुलाई, 1943 में आजाद हिन्द फौज में शामिल हो गये । जापानी फौजों के साथ लड़ते–लड़ते आजाद हिन्द फौज भी भारतीय भूमि पर पहुंच गयी और 18 मार्च, 1944 को भारतीय भूमि पर तिरंगा फहरा दिया । लेकिन भारत में सुभाष को पर्याप्त सहयोग नहीं मिला इससे जर्मनी, जापान के पतन के साथ ही आजाद हिन्द फौज अपने बल पर टिकी नहीं रह सकी । सुभाष लापता हो गये ।

1944–46 यह के समय को पेंडरेल मून ने वैवल का जर्नल सम्पादित करते हुये बड़े ही सटीक ढंग से "ज्वालामुखी का कगार" कहा है । अंग्रेजों ने आजाद हिन्द के 20,000 कैदियों पर मुकदमा चलाने का निर्णय लिया । इसके साथ ही कम से कम 7000 को नौकरी से निकालने एवं बिना मुकदमा चलाये हिरासत में रखने की कार्यवाही की । प्रथम मुकदमा लाल किले में नवम्बर, 1945 में पी के सहगल, गुरु बख्श सिंह दिल्ली एवं शाह नवाज खान पर चलाया गया । इसका व्यापक रूप से जनविरोध हुआ। 20 नवम्बर को गुप्तचर विभाग की एक टिप्पणी में स्वीकार किया गया था कि "शायद ही कोई ऐसा मामला रहा हो जिसमें भारतीय जनता ने इतनी अधिक रूचि या कहना चाहिये सहानुभूति दिखाई हो। "यह विशेष प्रकार की सहानुभूति साम्प्रदायिक सीमा को पार कर गयी थी ।" उसी दिन कैदियों से भेंट करने वाले एक पत्रकार वी शिवराव ने रिपोर्ट की उनमे हिन्दू या मुसलमान होने की भावना जरा भी नहीं है । कई स्थानों पर इसके विरुद्ध प्रदर्शन भी हुये । तीनों को मृत्यु दण्ड दिया गया परन्तु बढ़ते हुये जन दबाव के कारण वाइसराय ने इन्हें अपने विशेष अधिकार से क्षमा किया । इन मुकदमों से भारतीय सेना में भी असंतोष बढ़ा। जनवरी, 1946 का वायुसेना विद्रोह और फरवरी, 1946 का नौसेना विद्रोह इस असंतोष का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

18.3 रॉयल नौसेना विद्रोह

18 से 23 फरवरी, 1946 को होने वाला बम्बई का नौसेना विद्रोह ब्रिटिश सरकार के लिये सबसे बड़ा खतरा था। 1857 की क्रांति में सैनिकों द्वारा किए गये विद्रोह से भी अवगत थे। भले आज इस विद्रोह को भुला दिया हो परन्तु हमारे स्वाधीनता संग्राम की वास्तविक शौर्य पूर्ण घटनाओं में से एक है। जब युद्ध चल रहा था उस समय शाही सेना में भारतीयों को प्रचुर संख्या में सम्मिलित किया था । इस समय पुरानी सैन्य परम्परा दुर्बल पड़ गयी थी जिसके अन्तर्गत कुछ राजनैतिक रूप से अविकसित जातियों से ही सैनिकों की भर्ती की जाती थी । सिगनल्स प्रशिक्षण प्रतिष्ठान (जहाज) नाम "तलवार" था, के नाविकों द्वारा इस विद्रोह की शुरूआत की गयी थी । 18 फरवरी को यह विद्रोह हुआ और अगले दिन बम्बई बन्दरगाह के 22 जहाजों में इसका प्रसार हो गया । सरकार ने अपने प्रचार माध्यमों से इस विद्रोह को बेहतर खाने के लिये हड़ताल का नाम दिया है किन्तु वास्तव में यह हड़ताल नहीं थी सेना सहित में हड़ताल को भी माना जाता है । परन्तु यह हड़ताल नहीं थी जिसका अर्थ केवल यह होता कि अपनी मांगे मनवाने के लिये काम बंद करना । यह सच है कि नौसैनिकों ने शुरू में अपने अफसरो, और प्रशासन के विरुद्ध हिंसात्मक कार्यवाही नहीं की । इसके विपरीत उत्तेजना के दौरान भी उन्होंने अपने अफसरों के कुछ निर्देशों का पालन किया । चाहे हड़ताल कहें या पूरा विद्रोह इसे ब्रिटिश अधिकारियों को गहरा धक्का लगा । इसका प्रभाव सेना, वायु सेना पर भी पड़ा ।

18.4 विद्रोह के कारण

भारतीय नौसेना के सैनिक अपने अंग्रेज अधिकारियों के नस्लवादी से असंतुष्ट थे । इस विद्रोह के पीछे कई ऐसी परिस्थितियाँ थी जिन्होंने नौसैनिकों को अंग्रेज़ अधिकारियों के विरुद्ध अपनी आवाज व हथियार उठाने हेतु मजबूर कर दिया -

18.4.1 भारतीय नौसेना से भेदभाव

भारतीय नौसैनिकों की कई शिकायतें थी । सबसे प्रमुख शिकायत. नौसैनिकों (इण्डियन अदर रैक – आई ओ आर) व ब्रिटिश नौसैनिकों (ब्रिटिश अदर रैंक – बी ओ. आर) के बीच हर दृष्टि से भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता था। भोजन, निवास, चिकित्सा सुविधा, वेतन, यात्रा सुविधा यहां तक कि प्रशिक्षण व लड़ाई के मोर्चे में भी पक्षपात किया जाता था । कुछ भारतीय सैनिकों को ब्रिटिश नौसेना के साथ बर्मा ले जाया गया । बम्बई से चटगाँव की यात्रा में भी निवास भोजन और यात्रा सम्बन्धी सुविधाओं के सम्बन्ध मे भी काफी भेदभाव था। परिवहन ट्रकों में भी भेदभाव था। ब्रिटिश नौसैनिकों की व्यवस्था भारतीय नौसैनिकों की अपेक्षा अधिक अच्छी थी । उन्हें बम्बई से चटगाँव की यात्रा में उचित भोजन नही दिया गया ब्रिटिश सैनिकों को गर्म भोजन दिया गया जबकि भारतीय सैनिको को सूखा राशन दिया गया । जो कुत्तों को खिलाने वाले बिस्कुटों के समान था । यही भेदभाव मोर्चे पर भी था।

18.4.2 अपमानजनक व्यवहार

ये सभी नौसैनिक तलवार जहाज के थे जोकि सिगनल प्रशिक्षण का तटीय था । युद्ध के दौरान अधिक संख्या में भर्ती किये गये सैनिकों में कई युवक जो अधिक. लिखे थे वे भी नौसेना में भर्ती हो गये जिसे रॉयल इण्डियन नेवी कहा जाता था । अब भारतीय नौसैनिक प्रशिक्षण देने वालों और ऊँचे पद के अफसरों के गाली–गलौच सहन आये थे । ये समाज के नीचे वर्ग के होते थे और अशिक्षित होते थे । लेकिन नयी भर्ती वाले सैनिकों ने इस प्रकार के व्यवहार को भारतीयों के लिये अपमान जनक माना और इसका विरोध किया । उन्होंने यह भी महसूस किया कि मोर्चे पर भी यद्यपि उनका कार्य ब्रिटिश सैनिको की अपेक्षा अच्छा होता है परन्तु सभी सैनिक सम्मान ब्रिटिश सैनिकों के लिये दिये जाते है ।

18.4.3 आर्थिक असंतोष

भारतीय नौसैनिकों की शोचनीय दशा से सरकार भी अच्छी तरह परिचित थी लेकिन विशेष ध्यान नहीं दिया । ब्रिटिश सैनिकों की अपेक्षा उन्हें कम वेतन दिया जाता था । नाविक विद्रोह की जाँच करने के लिये एक जाँच आयोग बनाया गया था । उसके सामने गवाही देते हुए वाइस एडमिरल जे. हेनरी गाडफ्रे ने अपनी गवाही में स्वीकार किया कि नौ सैनिकों की गम्भीर आर्थिक शिकायतें थी । गाडफ्रे ने जो तुलनात्मक विवरण दिया है उससे उनकी आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारी मिलती है । भारतीय नौ सैनिकों को केवल 50 रुपये से 56 रुपये और चीफ अफसर को 101 से 111 रुपये मिलते थे जबकि भारत के व्यापारी बेड़े के नाविकों को 132 रुपये से 142 रुपये और अफसर को 289 रुपये मिलते थे । गाडफ्रे ने भारतीय नौसेना की सेवा शर्तों की तुलना श्रीलंका और बर्मा की सेना शर्तों से की है इन दोनों देशों की स्थिति बहुत अच्छी थी

यद्यपि क्षमता और कुशलता की दृष्टि से भारतीय नौसेना की स्थिति बेहतर थी, उनका लगभग वही स्तर था जो बर्मा के नौसैनिकों का था । तुलनात्मक अध्ययन से पता चलना है कि भारतीय और ब्रिटिश में बहुत अन्तर था । कार्य परिषद के सदस्य सर अजीजुल हक ने गवाहियों को देखकर कहा था "यदि कर्मचारी हड़ताल करें तो हमारे पास यह कहने का कोई नैतिक औचित्य नहीं होगा कि हड़ताल अनुचित है" ।

18.4.4 आजाद हिन्द फौज से प्रेरणा

1942 में जापान में भारतीय युद्ध बन्दियों के सहयोग से और जापानी मेजर फूजीवारा की प्रेरणा से आजाद हिन्द फौज का गठन हुआ। 1944 में बर्मा में लोगों ने आजाद हिन्द फौज एवं सुभाष चन्द्र बोस के बारे में सुना था । इससे भारतीय सेना में एक नयी प्रेरणा मिली और अंग्रेजों का भय उन पर कम हुआ । बी सी. दत्त जो स्वयं भारतीय नौसेना का एक सैनिक था ने लिखा है "उन्होंने यह सोचना शुरू कर दिया कि "हम किस उद्देश्य के लिये लड़ रहे है? यह निश्चित है कि अपने अथवा राष्ट्र के लिये नहीं । तब क्या वे केवल भाड़े के टट्टू थे? इससे उनको बहुत कष्ट हुआ ब्रिटिश नौसैनिक अपने साम्राज्य और राष्ट्र के लिये लड़ रहे थे । परन्तु भारतीय? क्या अपने देश में विदेशी शासन बनाये रखने के लिये" (म्यूटनी ऑफ दी इन्नोसेन्ट्स) आजाद हिन्द फौज के कैदियों पर नवम्बर 1945 में ब्रिटिश सरकार ने लाल किले में मुकदमें चलाये । भारतीय सैनिकों ने इसे स्वतंत्रता सैनानियों का सबसे बड़ा अपमान समझा और इससे भी उनमें असंतोष बढ़ा ।

18.4.5 विदेश के अनुभवों का प्रभाव

बर्मा नौसैनिकों ने सैनिकों को भारतीय मुक्ति संग्राम के लिये अपने प्राणों की आहुति देते हुये देखा था । नौसैनिकों ने देश से बाहर कार्य करते हुये बाहर की दुनिया देखी थी और तरीकों से परिचित हो गये थे । वहां के स्वतंत्र वातावरण से इनका साहस बढ़ा । अंग्रेजी अधिकारियों के नस्लवादी बर्ताव का इन्होंने विरोध किया । इनका विश्व के घटना कम से सम्पर्क हुआ । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत में जन आन्दोलन व ब्रिटिश विरोध की व्यापकता में वृद्धि होती जा रही थी । इस ब्रिटिश विरोधी वातावरण ने भी सैनिकों को अधिक प्रोत्साहित किया ।

18.4.6 गुप्त वार्ताएँ व मंत्रणा

बम्बई वापस आने पर कुछ नौसैनिकों ने (तलवार के नौसैनिकों में कुछ ही लोग) गुप्त वार्ता आरम्भ कर दी और गुप्त वर्ग बनने लगे । नौसैनिकों को किसी भी समय विमोचन के नोटिस के रूप में कठोर भविष्य सामने दिखाई दे रहा था परन्तु इसकी किसी ने परवाह की । सैनिक संस्थानों में सुरक्षा की दृष्टि व सामरिक दृष्टि से विशेष महत्व था । कुछ नौसैनिकों ने भूमिगत संस्था का काम चलाये रखा।

18.4.7 तात्कालिक परिस्थितियाँ

नौसेना दिवस 1 दिसम्बर, 1945 को आया जिसे अफसर धूमधाम से मनाना चाहते थे। तलवार को झण्डों से तथा झण्डियों से सजाया गया। कुछ लोगों ने मंत्रणा की कि इस उत्सव को खराब किया जाय । "सवेरे तक बम्बई की जनता के समक्ष प्रदर्शन के लिये तैयार" तलवार जहाज

विकृत कर दिया गया । परेड मैदान में लगी हुई झण्डियाँ व' झण्डे बिखरे थे। जहाज पर झाड़ू व बाल्टियाँ लटका दी गयी थी. (बी सी. दत्त) । पूरे जहाज पर आपत्तिजनक राजनैतिक नारे लिखे हुये थे । नारे थे – "भारत छोड़ो", "साम्राज्यवाद मुर्दाबाद", 'अभी विद्रोह करते, "ब्रिटिश लोगों को मार दो"।

1. सैनिक असंतोष के क्रम मे 21 जनवरी 1946 को कारांची मे वायु सेना ने अंग्रेजो के दुर्व्यवहार से तंग आकर हड़ताल शुरू कर दी । इसके बाद यह हड़ताल बम्बई, लाहौर व दिल्ली में भी फैल गई। 5,200 वायु सैनिकों ने इस हड़ताल में भाग लिया । जल सेना ने भी वायु सेना का अनुसरण किया ।
2. फरवरी, 1946 को कमाण्डर इन चीफ सर क्लाड अविनलैक को तलवार को दौरा करना था । नौसेना दिवस के अपराधियों का पता लगाने में अंग्रेज असफल रहे थे । इस समय वैसी घटना नही होने देना चाहते थे । सुरक्षा व्यवस्था अधिक कड़ी की' गयी, फ्लैश बत्तियों की विशेष व्यवस्था की गयी । विद्रोहियों ने सुरक्षा कर्मियों को अपनी' ओर मिलाने का प्रयास किया परन्तु सफलता नहीं मिली । फिर भी उन्होंने विद्रोह सूचक पर्चे बैरकों की दीवारों पर चिपका दिये जिन पर भारत छोड़ो और जयहिन्द के नारे लिखे हुये थे। सवेरे 5 बजे इन्हें देखा गया और मिटा दिया। नौसैनिक बी. सी. दत्त को गिरफ्तार कर लिया गया । उसे कोर्ट मार्शल द्वारा पदावनत कर नौसेना से निकाल दिया गया । पुन वह तलवार के सैनिकों से मिलने आया तो उसका वीरों जैसा स्वागत किया । यही से खुले विद्रोह का पनपना आरम्भ हो गया ।
3. एक नौसैनिक आर. के. सिंह के सेवा से त्याग पत्र ने भी विद्रोह की अग्नि में घी का काम किया। इस नौसैनिक की मान्यता थी कि नौसैनिकों को गोपनीय षड्यन्त्रों के स्थान पर खुला विद्रोह करना चाहिये । इसके लिये उसने स्वयं ने पहल की । उसने अपना सैनिक सेवा से त्याग पत्र दे दिया जिससे उसका कोर्ट मार्शल हुआ । मुकदमें में डसने अपना बचाव पक्ष प्रस्तुत करने से इन्कार कर दिया । अपनी टोपी उस निर्भीक सैनिक ने कमाडिंग आफिसर के सामने फेंक दी और उसे ठोकर मारी जिससे ब्रिटिश सम्राट और सेवाओं के प्रति घोर अपमान का संकेत मिलता है । श्री आर के. सिंह को तीन माह की कैद की सजा मिली । इससे अन्य सैनिकों में हलचल मच गयी । खराब भोजन का प्रश्न नौसैनिकों के लिये सबसे आसान था । इसी मुद्दे को लेकर हड़ताल की स्थिति बन गयी ।
4. 18 फरवरी, 1946 को सैनिकों ने भूख हड़ताल कर दी । अपने सीनो पर आजाद हिन्द फौज के बैज लगा लिये । सैनिकों में अधिकारियों की अवज्ञा की भावना शीघना से फैल रही थी । अधिकारी भी इसको महसूस कर रहे थे । पहले यह आन्दोलन "तलवार. के सैनिकों तक सीमित था परन्तु 19 फरवरी को 5000 जल सैनिकों (भारतीय नौसेना के स्थल, एकक व कैसल बैरक के नौसैनिक) ने भी हड़ताल कर दी । भारत छोड़ो आन्दोलन, आजाद हिन्द फौज, बर्मा, इण्डोचीन व इण्डोनेशिया में नई राष्ट्रीय जागृति आदि घटनाओं ने नौसैनिकों में राजनैतिक भावना को भी जागृत किया । भारतीय सैनिक इस बात के लिये भी नाराज थे कि जापान द्वारा हथियार डालने के बाद भा भारतीय सैनिकों का उपयोग इण्डोचीन व इण्डोनेशिया के राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने के लिये किया गया । तलवार के विद्रोह ने आग भड़काने के लिये चिनगारी का कार्य किया।

18.5 प्रमुख माँगें

नाविकों ने एक केन्द्रीय नौसेना हड़ताल समिति का गठन किया । इस समिति का प्रमुख एम. एस. खान को बनाया गया। हड़ताल समिति ने एक मांग पत्र तैयार किया जिसमें बेहतर भोजन के अतिरिक्त भी कई मुद्दों को सम्मिलित किया गया था । ये मांगें थीं : –

1. बेहतर सेवा शर्तें एवं अच्छे भोजन की व्यवस्था ।
2. आजाद हिन्द फौज के कैदियों की रिहाई ।
3. अन्य सभी राजनैतिक कैदियों की रिहाई ।
4. हिन्द चीन और जावा से सभी भारतीय सैनिकों की वापसी ।
5. अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ना।

18.6 घटना क्रम

सभी सैनिक 19 फरवरी, 1946 को प्रदर्शन करने हुये फ्लोरा फाउन्टेन के पास पहुंच गये। उनके हाथों में कुल्हाड़ियाँ थी । शाम तक नौसेना के 24 जहाजों पर कोई नही रहा । ये सब प्रदर्शन में शामिल होने के लिये अपने–अपने जहाजों से चले गये। अधिकतर जहाजों से यूनियन जैक का झण्डा उतार दिया गया व कई जहाजों पर कांग्रेस का झण्डा फहराया । प्रदर्शनकारियों ने बम्बई में भीड़ वाले क्षेत्रों में यातायात रोक दिया जैसे फ्लोरा फाउन्टेन, हार्नबी रोड और विक्टोरिया टर्मिनस ट्राम चलती बन्द हो गयी । इस आन्दोलन से प्रभावित होने वाले जहाज थे – एस एम आई एस. तलवार, अवध, लाहौर, फिरोज, नीलम, अकबर आदि प्रमुख थे।

20 फरवरी को हड़ताल और व्यापक हो गयी । तलवार के कमाडिंग आफीसर का स्थानान्तरण कर दिया । परन्तु नौसैनिक इससे सन्तुष्ट नहीं हुये, वे किसी भारतीय अफसर की नियुक्ति चाहते थे। बी सी. दत्त को सद्भावना स्वरूप 20 फरवरी को रिहा कर दिया गया । तलवार का भार मराठा रेजीमेंट को सौप दिया । अधिकारियों ने नौसैनिकों से अपने–अपने बैरकों में लौट जाने की बार–बार अपील की । कई नौसैनिक वापिस आ भी गये। नौसेना अधिकारियों ने एक सम्मेलन में फैसला किया कि "नौसैनिकों को उस भोजन सूची के अनुसार भारतीय खाना दिया जाय जौ उन्होंने प्रस्तुत की थी" (इण्डियन रजिस्टर–1946)। हड़ताल कलकत्ता, करांची, दिल्ली व मद्रास में फैल गई । विद्रोहियों के नियंत्रण में 20 जहाज थे। कोलावा स्थित नौसेना वायरलैस स्टेशन के नौसैनिक भी हड़ताल में सम्मिलित हो गये । इससे नौसेना का एक महत्वपूर्ण एकक भी इससे प्रभावित हो गया । वाइस एड्डमिरल गाडफ्रे ने रेडियो पर अपील की और आश्वासन दिया कि सभी समस्याओं पर यथोचित ढंग से विचार किया जायेगा । भाषण में धमकी भी दी थी कि अनुशासनहीनता के मामले में कठोर कदम उठाये जायेंगे । अपने भाषण के अन्त में कहा "मै एक बार फिर स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सरकार कभी भी हिंसात्मक कार्यवाहियों के आगे नहीं झुकेगी। तलवार और कैसल बैरक के प्रवेश द्वार पर सेना के लोगों को तैनात करना उसने उचित ठहराया । अनुशासनहीनता वाले बयान से सैनिकों में उत्तेजना फैली । जहाज से बाहर जाने का प्रयास वाले नौसैनिकों पर सेना के लोगों ने गोलियाँ चलायी । सभी नौसैनिकों को अपने–अपने में जाने के लिये कहा गया । नौसैनिक आदेश का पालन करते हुये अपने जहाजों में चले सुरक्षा कर्मियों ने उन्हें एक प्रकार से नजरबन्द कर दिया ।

अगले दिन 21 फरवरी को हड़ताल ने उग्र रूप धारण कर इससे पूर्व ऐसा लग रहा था कि सब मामला शान्त हो गया है । सरकार ने सुरक्षा की दृष्टि ब्रिटिश सैनिकों को तैनात कर रखा था । उन्होंने हड़तालियों पर गोलियां चलाई । अत : " ने भी अपने जहाजों के शस्त्रागार से शस्त्र उठाये तथा जवाबी वार शुरू कर दिये । एडमिरल गाडफ्रे ने बम वर्षा से नौसेना नष्ट करने की धमकी दी । विद्रोहियों ने जनता ' राजनैतिक दलो से अपील की कि वे उनके उद्देश्यों का समर्थन करें । उसी दिन तीसरे पहर बम्बई की जनता की सहानुभूति विद्रोहियों के लिये उमड़ पड़ी। लोगों की भीड़ गेट वे आफ इण्डिया पर नाविकों के लिये खाना लेकर आयी और दुकानदार भी कह रहे थे तुम्हें चाहिये दुकान से ले लो । खुले रूप से नौसैनिकों का विद्रोह शुरू हो गया।

18.7 प्रतिक्रिया एवं दमन

22 फरवरी को साम्यवादियों ने समाजवादियों के सहयोग से आम हड़ताल का आव्हान किया। कांग्रेस व लीग के विरोध के बावजूद इस दिन 3000 मजदूर फैक्ट्रियाँ छोड़कर सडकों पर आ गये। लोगों ने बम्बई में अपने औजारों के हाथ नहीं लगाया, लगभग सभी मिलें बंद हो गई सडकों पर हिंसक झड़पें हुयी। यह स्थिति दो दिन तक चलती रही । सरकारी आंकलन के अनुसार 228 नागरिक मारे गये और 1046 घायल हुये। 3 पुलिस वाले मारे गये व 91 जख्मी हुये (दि. आर आई' एन. स्ट्राइक, दिल्ली 1946, पृ. 93) सरदार बल्लभ भाई पटेल ने 21 फरवरी को एक अपील जारी की थी जिसमें उन्होंने और ब्रिटिश सैनिकों के मध्य झड़पों की निन्दा की उन्होंने नौसैनिकों को आश्वासन कि उनकी शिकायतों को दूर करने में पूरी सहायता दी जायेगी और विधान सभा में । सदस्य उनकी ओर से भाग दौड़ कर रहे है । वे धैर्य एवंशान्ति बनाये रखें। परन्तु सैनिकों व नौसेना के मध्य 6 घण्टे तक गोलियाँ चलती रही । 22 फरवरी को भी यही। स्थिति चलती रही ।

23 फरवरी को पटेल व अन्य नेताओं ने भी नौसैनिकों को उनकी दूर करने का आश्वासन दिया। इसमें जिन्ना की भई सहायता ली। पटेल ने नौसैनिकों से हथियार डालने को कहा। उन्होंने कहा कि कांग्रेस जोर लगायेगी कि उन्हें अनावश्यक रूप से तंग नहीं किया जाय और नौसैनिक की उचित माँगे यथाशीघ्र मानी जाय। उन्होंने इस. बात पर चिन्ता प्रकट की कि नगर में तनाव हो गया है कई जानें गई है और सम्पत्ति नष्ट हुई है । उन्होंने कहा "वर्तमान कठिनाइयों में पूरी सहानुभूति रखते हुए, वह और कांग्रेस उनको सलाह देती है कि मुकाबला करने की कार्यवाही बंद कर दें।" कमाण्डर इन चीफ ने भी उन्हें आश्वासन दिया कि उन्हें किसी प्रकार से तंग नही किया जायेगा और उचित शिकायतों को दूर किया जायेगा । पटेल की सलाह पर नौसैनिकों ने हड़ताल समाप्त कर दी, परन्तु उन्होंने माँग रखी कि गाडफ्रे का रेडियो भाषण एवं चेतावनी को वापिस लिया जाय। लियाकत अली और जिन्ना ने भी ऐसी ही अपीलें जारी की ।

केन्द्रीय विधान सभा में दिनांक 23 फरवरी, 1946 को कांग्रेस के आसफ अली ने इस मामले पर एक निन्दा प्रस्ताव रखा । लगभग सभी गैर सरकारी भारतीय सदस्यों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया । युद्ध सचिव फिलिप मेसन ने एक लम्बा वक्तव्य दिया जिसमें घटनाओं का विवरण दिया गया था परन्तु यह विवरण भी सरकारी दृष्टिकोण को ही प्रकट करता था । उसने घोषणा की कि सरकार सेना के तीनों अंगों के प्रभारी अधिकारी मेजर जनरल लाडहार्ट से पहले ही सूचित कर चुकी है कि सरकार की यह नीति है कि बदले की भावना से अथवा अनुचित तरीके से तंग करने की कार्यवाही न की जाय। आसफ अली ने कहा कि जो कुछ हुआ उसके लिये केवल

नौसैनिकों को दोषी ठहराना गलत होगा। उन्होंने कहा "हड़ताल पहले अमरीकी सेना ने शुरू की, उसके बाद ब्रिटिश वायु सेना ने की। ब्रिटिश वायु सेना से भारतीय वायु सेना को संकेत मिला और उसके बाद भारतीय नौसेना ने अनुसरण किया। अमरीकी सेना व ब्रिटिश वायुसेना में क्या हुआ इस मामले को गुप्त रखा गया। लियाकत अली ने सैनिक सेवाओं में जातीय भेदभाव की निन्दा की । उसने कहा सरकार के तौर तरीकों से इस बात की पुष्टि होती है कि जब तक कोई गड़बड़ न की जाय, सरकार सोती रहती है । सरकारी और यूरोपीय दलों ने प्रस्ताव का विरोध किया । प्रस्ताव के पक्ष में 74 व विरोध में 40 मत आये । यह विद्रोह कुछ स्थानों पर 25 फरवरी को और 28 फरवरी, 1946 को सभी स्थानों पर समाप्त हो गया । इस विद्रोह के दमन में सरकार ने अपनी सैनिक शक्ति का भरपूर उपयोग किया।

18.8 राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रभाव

इस सैनिक असंतोष ने अंग्रेजों को यह स्पष्ट कर दिया कि अब भारत छोड़ने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है । भारतीय स्वतंत्रता विधेयक जब ब्रिटिश संसद में लाया गया तो विरोधी दल के नेता चर्चिल ने ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली पर आक्षेप किया कि उसने उस अंग्रेजी साम्राज्य को नष्ट कर दिया जिसको अंग्रेजों ने अपने त्याग और बलिदान से पैदा किया था । इस पर एटली का उत्तर था "ब्रिटेन भारतीयों को स्वतंत्रता दे रहा है क्योंकि भारतीय सेना अब ब्रिटेन के प्रति वफादार नहीं रही है और ब्रिटेन भारत को अधीन रखने के लिये बहुत भारी सेना भारत में नही रख सकता है"।

इस विद्रोह ने भारत के राजनैतिक समूहों को दो विषम दृष्टिकोणों में विभाजित कर दिया।बम्बई की भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी ने हड़ताल का आव्हान किया, जिसका समर्थन समाजवादी अरुणा आसफ अली व अच्युत पटवर्द्धन ने किया । जबकि सरदार बल्लभ भाई पटेल ने लोगों को सामान्य रूप से कार्य करने की सलाह दी । लागत, भी इसी का समर्थन किया ।

आन्दोलन कारी सैनिकों को हड़ताल के समय बम्बई की जनता का खुलकर समर्थन मिला । आर सी. मजूमदार, दत्त व राय चौधरी ने लिखा है "18 फरवरी, 1946 को भारतीय नौसेना की नाविक श्रेणी ने खुला विद्रोह कर दिया। कुछ दिनों इक इसने गम्भीर रूप धारण कर रखा था" सरदार पटेल ने जब सैनिकों को आत्म समर्पण कराया तब भी वे अंग्रेजों के सामने नहीं झुके उन्होंने कहा "हम इंग्लैण्ड को नहीं भारत को आत्म समर्पण कर रहे है" । इससे साम्राज्य वादी शासकों को पता लग गया कि सैनिकों की मामी भक्ति जो अंग्रेजी साम्राज्य की नींव थी बहुत कुछ सीमा तक क्षीण हो चुकी है और अब अंग्रेजों का चले जाने का उचित समय आ गया है।

18.9 अन्य परिणाम

1. इस विद्रोह में सरकारी गणना के अनुसार इससे सैनिक और व्यक्तियों को मिलाकर 200 से अधिक व्यक्ति मारे गये और 1000 से घायल हुये । गैर सरकारी अनुमान इससे कहीं अधिक थे । सरकारी और निजी, की हानि का कोई अनुमान उपलब्ध नहीं था ।
2. इसके दूरगामी राजनैतिक परिणाम भी निकले । विद्रोहियों को न केवल राजनैतिक दलों की सहानुभूति मिली बल्कि सेना की दीं अन्य शाखाओं थल सेना व वायु सेना की भी सहानुभूति मिली । वाइसराय वेवल ने अपने जर्नल में उस टिप्पणी उद्धृत किया है जो उसने

22 जनवरी, 1945 को भारत सचिव को भेजी थी । जैसे जैसे समय बीतता जाता है भारतीय अधिकारियों की वफादारी को ध्यान में रखने हुए, थल सेना के लोगों को जहाजों और सेना बैरकों की रक्षा हेतु भेजा जा रहा है । राजनैतिक दलों के संगठित समर्थन के अलावा बम्बई में दुकानें जलाने (विशेषकर यूरोपीयलोगो की) मजदूरों की हडतालें, काम बंद करने, रेल और ट्राम का यातायात रोकने व्यक्तियों पर हमले आदि की घटनायें उस असंगठित भीड़ द्वारा की गयी थी जो नौसैनिक के आस–पास एकत्र हो गयी थी। कांग्रेस ने नौसैनिकों की माँगों का समर्थन तो किया परन्तु नौसैनिकों को शान्त करने का पूरा प्रयास किया । सहानुभूति तो थी परन्तु सेनाओं के स्वशासन को भंग नहीं करना चाहती थी । उसे पता था कि शीघ ही सत्ता कांग्रेस के हाथ में आयेगी तब अनुशासित सेना की आवश्यकता पड़ेगी ।

3. बम्बई एवं अन्य स्थानों पर सार्वजनिक विरोध हुआ । बम्बई में एक सप्ताह तक अराजकता फैली रही । कई कपड़ा मिलें बंद रही । कपड़े की तंगी आ गयी । "कई स्त्रियाँ अपने घर से इसलिये बाहर नहीं निकलती थी क्योंकि उनके पास तन ढकने के लिए कपड़ा नहीं था" (ए सी. गुहा) कांग्रेस ने 19 मिलों के मजदूरों के काम करने के लिये मनाया। 15 अन्य मिलों के मजदूरों ने 24 से काम शुरू किया।

18.10 सारांश

यद्यपि नौसेना विद्रोह सक्रिय रूप से पाँच दिन ही चला, लेकिन इन पाँच दिनों ने ही ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को हिला कर रख दिया । आजाद हिन्द सेना की कार्यवाही की याद अभी ताजा ही थी कि उन्हें अपने ही नौसैनिकों के विद्रोह का सामना करना पड़ा । इस विद्रोह ने अंग्रेजों को यह सोचने को मजबूर कर दिया कि अब भारत को अधिक समय तक अधीन नहीं रखा जा सकता। यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलन में इस घटना को उतना अधिक महत्व नहीं दिया गया है जितना देना चाहिए । लेकिन भारत की आजादी को नजदीक लाने में इस विद्रोह ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी ।

आजाद हिन्द फौज के जवानों की तरह शाही नौसेना के इन नाविकों को कभी राष्ट्रीय नायकों जैसा सम्मान नहीं मिला । यद्यपि इनके द्वारा किये गये कार्यो में आजाद हिन्द के फौजियों से कहीं अधिक खतरा था । इस राष्ट्रीय आन्दोलन की कमान कांग्रेस व लीग के हाथ में थी । इन्होंने विद्रोहियों को मात्र सहानुभूति दी, और अनुशासन के नाम पर उनसे समर्पण करवा दिया । उन्हें आश्वासन दिया कि राष्ट्रीय दल उन्हें अपमान का शिकार नहीं होने देंगे । लेकिन इस वादे को शीघ्र ही चुपचाप भुला दिया गया क्योंकि जैसा कि पटेल ने आम्र कांग्रेस के नेता विश्व नाथन को 1 मार्च, 1946 को लिखा था "सेना के अनुशासन को छोड़ा नहीं जा सकता क्योंकि स्वतंत्र भारत में भी हमें सेना की आवश्यकता होगी" (सरदार लेटर्स खण्ड 4 अहमदाबाद 1977, पृ. 165) ।

नौसेना केन्द्रीय हड़ताल समिति का यह अन्तिम सन्देश स्मरणीय है "हमारी हड़ताल हमारे राष्ट्र के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना है । पहली बार सेना के जवानों और आम आदमी का खून सडकों पर एक साथ लक्ष्य प्राप्ति के लिये बहा । हम फौजी इसे कभी नहीं भूलेंगे । हमारी महान जनता जिन्दाबाद, जयहिन्द । "

सेना के प्रति सामान्य जन समर्थन का यह पहला मौका था । इन विद्रोहियों के लिये बम्बई की जनता उमड़ पड़ी थी और सम्पूर्ण व्यवस्था को ठप्प कर दिया था । सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया इस विद्रोह से और अधिक तेज हो गयी और भारत को 15 अगस्त, 1947 को सत्ता प्राप्त हो गयी ।

18.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नौसेना विद्रोह के कारणों का विश्लेषण कीजिए ।
2. 1946 के नौसैनिक विद्रोहियों की प्रमुख माँगे क्या थी ।
3. नौसेना विद्रोह की तात्कालिक परिस्थितियों की व्याख्या कीजिए ।
4. रायल नौसेना विद्रोह के घटना क्रम को संक्षेप में बताइये ।
5. नौसेना विद्रोह – 1946 का महत्व बताइये । इसने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को किस प्रकार प्रभावित किया ।

18.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. पीड़ित नाविक समूह कृत : दि आर आई एन. स्ट्राइक
2. बी सी दत्त : म्यूटनी ऑफ दि इन्नोसेन्टस
3. ए सी गुहा : स्वनंत्रता संग्राम के पच्चीस वर्ष
4. बी एल. ग्रोवर एवं यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास
5. वेवल : दि वाइस राय जर्नल
6. दुर्गादास : सरदार पटेल्स कारेस्पंन्डिस
7. Mansergh Nicholas : “Transfer of Power”1942-47 Vol-8
8. Bal Shastri Hardas : Armed Struggle for Freedom

इकाई – 19

सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया

(Process of the transfer of Power)

इकाई रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 द्वितीय विश्वयुद्ध एवं भारतीय राष्ट्रवाद

19.3 सत्ता हस्तान्तरण के सहायक तत्व

19.4 सत्ता हस्तान्तरण से पूर्व के सौपान

19.4.1 क्रिप्स के प्रस्ताव एवं अस्वीकृति – 1942.

19.4.2 भारत छोड़ो प्रस्ताव एवं अगस्त क्रान्ति – 1942

19.4.3 वेवल योजना – 1945

19.4.4 शिमला सम्मेलन – 1945

19.4.5 आजाद हिन्द फौज की भूमिका एवं नौसेना विद्रोह 1945–46

19.4.6 इंग्लैण्ड में मजदूर दल की सत्ता – 1945

19.4.7 मंत्री मण्डलीय शिष्ट मंडल योजना – 1946

19.4.8 संविधान सभा के चुनाव व अन्तरिम सरकार

19.4.9 एटली की 20 फरवरी, 1947 की घोषणा

19.4.10 माउन्ट बेटन योजना व भारत का बटवारा – 1947

19.5 भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम एवं सत्ता का हस्तान्तरण – 1947

19.6 सत्ता प्राप्ति के बाद

19.7 सारांश

19.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.9 ग्रन्थ

19.0 उद्देश्य

यह इकाई आपको अंग्रेजों द्वारा भारतीयों को सत्ता सौपने की के बारे में महत्वपूर्ण बिन्दुओं को उजागर करेगी । इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे : –

- राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तिम दशक में भारत में किस प्रकार राजनैतिक परिवर्तन हुये । . द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारतीय राष्ट्रवाद को किस प्रकार प्रभावित किया।
- ऐसी कौन–सी स्थितियॉ बन गयी जिनके कारण अंग्रेजों को भारत को स्वतंत्रता देनी पड़ी । . कांग्रेस व लीग के मध्य मतभेद किस प्रकार बढ़े, उसका क्या प्रभाव पडा? और अंग्रेजों ने लीग को कैसे संरक्षण दिया ।

- 1942 से 1947 तक के घटना क्रम की जानकारी जिससे सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया को गति मिली ।
- सत्ता प्राप्ति के तुरन्त बाद भारत को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा ।

19.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आप ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में प्रसार, संवैधानिक प्रक्रियाओं एवं राजनैतिक गतिविधियों के विस्तार के बारे में अध्ययन कर चुके है अंग्रेजों के आर्थिक एवं राजनैतिक शोषण के विरुद्ध भारतीयों ने 1857 में व्यापक विद्रोह किया था । इसके बाद ब्रिटिश सम्राट ने भारत के शासन को कम्पनी से अपने हाथ में ले लिया था । अंग्रेजों ने भारतीय नरेशों के प्रति मित्रवत् नीति का अनुसरण कर उन पर अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर दी । धीरे–धीरे भारतीय विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से अपने अधिकारों की विनम्रता पूर्वक माँग करने लगे । दिसम्बर, 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये महत्वपूर्ण घटना थी । इससे भारतीयों को अपनी मांगे प्रस्तुत करने हेतु एक मंच मिल गया। भले ही इसकी शुरूआत अंग्रेजों के समक्ष नमता पूर्वक माँगे प्रस्तुत करने से ही हुयी हो, बाद में यही मंच राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुख आधार बना । लाल बाल पाल ने कांग्रेस के उग्र पक्ष को उजागर किया और अपनी माँगों को अधिकार पूर्वक प्रस्तुत किया। समाचार पत्रों. ने ब्रिटिश नीतियों की आलोचना की। मुस्लिम लीग की स्थापना 1906 में हुई और लीग के नेतृत्व में अलग पाकिस्तान की माँग के साथ स्वतन्त्रता प्राप्ति का आन्दोलन चला। 1917 में महात्मा गांधी ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रवेश किया और अहिंसात्मक तरीके से उन्होंने इसे असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा। सत्याग्रह व उपवास के जैसे कार्यक्रमों द्वारा जन आन्दोलन का रूप दिया।'

इसी बीच ब्रिटिश सरकार ने अनेक वार्ताएँ एवं समझौते भी किये लेकिन भारतीयों को सत्ता देने जैसा कोई प्रस्ताव नहीं दिया। 1939 में दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ, इसके बाद कुछ घटना क्रम ऐसा बना जिससे सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई । आगामी पृष्ठों में इस प्रक्रिया में 1942–47 तक क्या जटिलताएँ आयी, उनका क्या समाधान निकला तथा इसके विपिन आयामों के सम्बन्धों में चर्चा की जायेगी।

19.2 द्वितीय विश्वयुद्ध एवं भारतीय राष्ट्रवाद

1 सितम्बर 1939 को पौलेण्ड पर जर्मनी के आक्रमण के साथ ही द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया । इस युद्ध के साथ ही भारतीय राजनीति का घटना चक्र तेजी से आगे बढ़ा । आगामी सात आठ वर्षो में कई ऐसे अवसर आये जबकि अंग्रेज यदि चाहते तो भारतीय समस्या का हल ढूँढ सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया बल्कि भारतीय स्वतंत्रता के मार्ग में बाधा खड़ी की ताकि अधिक समय तक भारत पर नियन्त्रण बनाये रख सके।

3 सितम्बर, 1939 को वाइस राय ने प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों या किसी भारतीय नेता से परामर्श किये बिना ही एक तरफा निर्णय लेकर जर्मनी के विरूद्ध युद्ध में भारत को भी सम्मिलित कर लिया। कांग्रेस ने इस अलोकतांत्रिक तरीके का विरोध किया, प्रस्ताव पास किया और अंग्रेज सरकार से युद्ध के उद्देश्य घोषित करने व भारत की स्वतंत्रता की घोषणा की मांग की। 17 अक्टूबर, 1939 को वाइसराय लिथिनगो ने वक्तव्य में केवल 1935 के अधिनियम में संशोधन हुए विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधियों से विचार–विमर्श का वादा किया और भारतीय राजनीतिज्ञों

व रजवाड़ों की परामर्शदायी समिति के गठन की बात कही जिसे किसी प्रकार की कार्यकारी शक्तियाँ प्राप्त नहीं थी। इससे असन्तुष्ट होकर सभी कांग्रेसी मंत्री मण्डलों ने 22 दिसम्बर, 1939 को त्याग पत्र दे दिया। 22 दिसम्बर को लीग ने "मुक्ति दिवस" के रूप में मनाया । मंत्री मण्डल से त्याग पत्र देना कांग्रेस की भारी भूल थी । इससे मुसलमानों पर जिन्ना का नियन्त्रण बढ़ा । कांग्रेस ने अपना विरोध व्यक्तिगत सत्याग्रह के द्वारा जताया ।

अंग्रेजों को युद्ध आरम्भ होने ही हार का सामना करना पडा। जून, 1940 में अंग्रेजी सेना की फ्रांस में करारी हार हुयी और फ्रांस ने जर्मनी के आगे घुटने टेक दिये । अंग्रेजों को अगस्त प्रस्ताव की घोषणा करनी पड़ी जिसमें युद्ध परामर्शदात्री समिति के गठन व डोमिनियन स्टेट्स जैसे ऑफर दिये । द्वितीय महायुद्ध में भारतीयों के सहयोग को विदेशी शक्तियों ने भी आवश्यक माना और उन्होंने ब्रिटेन पर भारत को स्वतंत्रता दे देने के लिये दबाव डाला ।

19.3 सत्ता हस्तान्तरण के सहायक तत्व

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के हाथ में आने के बाद कई प्रयास हुये। 1929 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना आन्दोलन का लक्ष्य बनाया। परन्तु ब्रिटिश सरकार का मानस भारतीयों को सत्ता सोपने का नहीं रहा । साम्प्रदायिकता के आधार पर इसे क्षीण बनाने का प्रयास किया। 1935 के अधिनियम के बाद हुये आम चुनावों में कांग्रेस को भारी सफलता मिली और कांग्रेस के उत्साह में वृद्धि हुई। परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के मामले पर 22 दिसम्बर, 1939 को कांग्रेस मंत्रीमण्डलों ने त्याग पत्र दे दिया । दूसरे महायुद्ध के शुरू होने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर कई ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी जिन्होंने अंग्रेजों को सत्ता छोड़ने के लिये प्रेरित किया ।

1. यद्यपि कांग्रेस फासीवाद नाजीवाद के जापानी सैन्यवाद के विरुद्ध थी तथापि द्वितीय महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार को अपना सक्रिय सहयोग देने से इन्कार कर दिया था । महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह ब्रिटिश सरकार को सहयोग नहीं देने के लिये ही चलाया था । इसका भारत व अन्य देशों की जनता पर प्रभाव पड़ा । इंग्लैण्ड में यह भावना उत्पन्न हो गयी कि भारतीयों को कुछ अधिकार दिये बिना उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं किया जा सकता ।
2. 1940 के बाद विदेशी शक्तियों ने भी इंग्लैण्ड पर भारत को आजाद करने हेतु दबाव डाला। 1942 में चीन के राष्ट्रपति च्यांग काई शेक ने भारत यात्रा की और गांधी जी से मुलाकात की । उन्होंने अपने संदेश में कहा कि भारत के प्रतिनिधियों को वास्तविक राजनैतिक शक्ति दे देनी चाहिये । जब तक भारत अपनी इच्छा से युद्ध में भाग नहीं लेगा तब तक वह उतनी सहायता नहीं देगा जितनी दे सकता है। सितम्बर, 1941 में एटलांटिक चार्टर को भारत में लागू करने से मना कर दिया था । इस चार्टर अ मुख्य बिन्दु यह था कि युद्ध समाप्ति के उपरान्त प्रत्येक राष्ट्र को आत्म निर्णय का अधिकार होगा । भारत को युद्ध के बाद भी आत्म निर्णय का अधिकार नहीं दिया गया था इसीलिये युद्ध में सहायता नहीं कर रहा था । अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने चर्चिल पर अस्त से समझौते हेतु दबाव डाला । इसके साथ ही राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने यह घोषणा की कि एटलांटिक चार्टर सम्पूर्ण विश्व पर लागू होगा। आस्ट्रेलिया के विदेश मंत्री इवाट्ट ने भी अपनी संसद में कहा कि भारत को स्वराज्य दे दिया जाना चाहिये।

3. जापान ने सिंगापुर, मलाया, इण्डोनिशिया को जीतकर अण्डमान निकोबार तक अपना झण्डा फहरा दिया था । जापान के जहाज बंगाल की खाड़ी में घूम रहे थे। 8 मार्च, 1942 को रंगून पर कब्जा कर लिया। चर्चिल ने अपनी आत्म कथा में लिखा है "8 मार्च, को जापानी सेना रंगून में प्रविष्ट हो गयी मेरे सब मित्रों को यह महसूस हुआ कि यदि भारत की ठीक ढंग से रक्षा करनी है तो राजनैतिक गतिरोध को दूर करने के 'लिये हर सम्भव तरीके से प्रयत्न करना चाहिए. इसी दिन चर्चिल ने क्रिप्स योजना की भी घोषणा की । रूस ने भी ब्रिटिश उपनिवेशवाद का विरोध किया।
4. 1945 के आरम्भ में ही इंग्लैण्ड और उसके साथियों की जर्मनी पर जीत नजर आने लगी थी। जर्मनी का साथी इटली 1943 में ही हथियार डाल चुका था। 5 मई, 1945 को जर्मनी ने भी हार स्वीकार कर ली लेकिन जापान ने अभी तक अपनी हार स्वीकार नहीं की थी। मिचेल बेचर के अनुसार मित्र राष्ट्रों के सेनापतियों की उस समय इसविषय में सहमति थी कि जापान के विरुद्ध युद्ध एक या दो वर्ष टालेगा । क्योंकि जापान का मुकाबला करने के लिये भारत को युद्ध करना था, इसलिये भारत का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक था । तत्कालीन वाइसराय लार्ड वेवल जो स्वयं अच्छे सेनापति रह चुके थे इस बात के महत्व को बहुत अच्छी तरह समझते थे और उन्होंने ब्रिटिश सरकार को यह महसूस कराया कि भारत की समस्या को शीघ्रातिशीघ्र हल करना बहुत जरूरी है ।

   युद्ध समाप्ति के बाद ब्रिटिश राज पूर्णतया थक चुका था और अब उसे अपने भारतीय उपनिवेश को नये सिरे से सुव्यवस्थित करने में समय लगाने के बजाय विश्राम की आवश्यकता थी । यह भी स्पष्ट था कि युद्ध के बाद एक महानगरीय राष्ट्र के लिये किसी भी उपनिवेश पर प्रत्यक्ष शासन करते हुये सुव्यवस्थित तरीके से सभी प्रकार के आर्थिक लाभ प्राप्त करना सम्भव नहीं था।
5. इंग्लैण्ड में जुलाई, 1945 के आम चुनावों में भारी जीत के साथ लेबर पार्टी सत्ता में आयी । इससे भारतीय प्रश्न का शीघ्र ही समाधान होने की आशा जगी । भारत के राष्ट्रवादी उद्देश्यों के प्रति सहानुभूति रखने वाले दल के रूप में विख्यात लेबर पार्टी ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि यदि वे सत्ता में आने है नो भारत को मुक्ति दिलायेंगे। 24 जून, 1938 को ही लेबर दल के नेता (क्लेमेंट एटली, एनयुरिन बीवान, स्टेफर्ड क्रिप्स व हैरल्ड लास्की) लन्दन के निकट फिलमिन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू और वी के. कृष्ण मेनन से मिले और वादा किया कि यदि वे सरकार बनाने में ब्रिटेन में सफल हो जाते है तो भारत का भावी संविधान तैयार करने का अधिकार व्यापक मताधिकार के आधार पर संविधान सभा को होगा । साथ ही भारत को आजादी भी देंगे । यद्यपि लेबर पार्टी सरकार ने सत्ता में आते ही आजादी जैसा तोहफा नहीं दिया परन्तु इस और उदारवादी प्रयास आरंभ हो गये ।
6. भारत के पक्ष में वातावरण बनाने में 1945 ही में आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर मुकदमें चलाने और 1946 में रॉयल नौ सेना विद्रोह ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । अंग्रेजों द्वारा आजाद हिन्द फौज के सैनिकों और कमाण्डरों पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया। अंग्रेजों को यह आशा थी कि इस घटना से वे आजाद हिन्द फौज को अपमानित कर सकेंगे। लेकिन उनको धक्का उस समय लगा जब सम्पूर्ण भारत वर्ष में इस कार्य के लिये विरोध हुआ और उन सैनिकों की सराहना की गयी। इस भावना को राष्ट्रीयता का सफल प्रतीक कहा

जा सकता है । अंग्रेजों को यह स्पष्ट हो गया कि वे भारतीय सेना की भारत के विरुद्ध अंग्रेजों के प्रति भक्ति पर निर्भर नहीं रह सकते । आजाद हिन्द फौज सेना राष्ट्रीयता का प्रतीक थी । आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की रिहाई अन्य राष्ट्रीय मांगों को लेकर 18 फरवरी, 1946 को बम्बई में रॉयल नौसेना ने विद्रोह कर दिया एवं एम. एस. खान के नेतृत्व में केन्द्रीय नौसेना समिति गठित की । इस विद्रोह को दबाने के लिये भी अंग्रेजों को अपनी भरपूर सैन्य शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। सम्भवतया अंग्रेजों के भारत छोड़ने के निर्णय पर इन राष्ट्रीय विद्रोहों के अनुभव का प्रभाव पड़ा ।

7. कांग्रेस द्वारा विभाजन को स्वीकार कर लिये जाने के कारण अंग्रेजों ने भारत छोड़ने में विलम्ब नहीं किया । अंग्रेज भारत को संगठित राष्ट्र के रूप में आजाद नहीं करना चाहते थे। भारतीय जनमानस की भिन्नता को उन्होंने फूट का मुख्य आधार बनाया । एक समुदाय को दूसरे समुदाय के विरुद्ध इस्तेमाल किया । मुस्लिम लीग को मुसलमानों का एक मात्र प्रतिनिधि स्वीकार किया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को "हिन्दुओं की संस्था. के रूप में लांछित किया । कांग्रेस ने शीघ सत्ता ग्रहण करने के लिये देश के बंटवारे को स्वीकार कर लिया । यदि कांग्रेस बंटवारे को स्वीकार नहीं करती तो मुस्लिम लीग से इसका समझौता कदापि नहीं होता और अंग्रेजों से देश को आजाद –करने में देरी करने का आधार मिल जाता। आजादी का मूल्य भारत विभाजन के रूप में चुकाना पड़ा ।

19.4 सत्ता हस्तान्तरण से पूर्व के सौपान

19.4.1 क्रिप्स के प्रस्ताव एवं अस्वीकृति – 1942

द्वितीय महायुद्ध के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति गम्भीर होती जा रही थी। जब जर्मन बार–बार जीतते गये तब कांग्रेस ने अंग्रेजों को युद्ध में सशर्त सहयोग देने की इच्छा प्रकट की। सरकार की ओर से अधिकतम रियायतें वाइसराय लार्ड लिथिनगो के 8 अगस्त, 1940 के वक्तव्य में दी गयी जिसे "अगस्त ऑफर" के नाम से जाना जाता है । इसमें राष्ट्रीय सरकार की माँग अस्वीकार किये जाने के कारण कांग्रेस ने इसे असंतोष जनक माना और गांधी जी के नेतृत्व में अम्बर, 1940 में एक व्यक्तिगत भद्र अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया ।

समस्या बनी रही और युद्ध चलता रहा। 7 दिसम्बर, 1941 को जापान भी इंग्लैण्ड व उसके सहयोगी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में पूरी शक्तियों की ओर सम्मिलित हो गया। जापानी मलाया को रौंदने के बाद बर्मा की ओर बढ़ने लगे तो अंग्रेजों ने मैत्रीपूर्ण भाव दिखाये । मार्च 1942 में ब्रिटिश प्रधान मंत्री चर्चिल ने एक घोषणा की कि "युद्ध मंत्री मण्डल ने भारत के विषय में एक मत होकर कुछ निर्णय किये है और हाऊस ऑफ कामन्स के नेता सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारत जाकर स्वयं निजी विचार विमर्श से स्वयं को संतुष्ट कर इस निर्णय से लोगों को अवगत करायेंगे और निर्णय एक न्याय पूर्ण और अन्तिम निर्णय होगा और म मतव्य प्राप्त कर लेगा ।

क्रिप्स ने भारत पहुंचते ही अपना प्रस्तावित मसविदा दिनाँक 23 मार्च, 1942 को कार्यकारी परिषद के सम्मुख रखा और 29 मार्च को पत्रकार सम्मेलन में जनता के सम्मुख रखा। इसके बाद 15 दिन तक इस पर बातचीत चलती रही परन्तु सफलता नहीं । महात्मा गांधी ने इसे उत्तर तिथीय चैक (Post dated Cheqaue) की संज्ञा दी ।

क्रिप्स के सुझाव नियमानुसार थे ।

(अ) युद्ध समाप्ति के बाद के लिये प्रस्ताव

(ब) युद्ध कालीन प्रस्ताव

(अ) 1. निश्चित कदम उठाने का निश्चय किया है । ब्रिटिश सरकार एक भारतीय संघ! की उत्पत्ति करना चाहती है जो एक ऐसा अधिराज्य उपनिवेश (Dominion) होगा जो ब्रिटिश ताज की तरफ अपनी भक्ति रखने के कारण इंग्लैण्ड में व अन्य उपनिवेशों से अपना सम्बन्ध रखेगा। यह अधिराज्य हर दृष्टि से दूसरे उपनिवेशों के बिलकुल समान होगा और आन्तरिक व बाहरी मामलों में किसी के अधीन होगा।

2. युद्ध समाप्ति के तुरन्त बाद भारत में एक निर्वाचित परिषद बैठाने के लिये निश्चित कदम उठाये जायेंगे जिसका कार्य भारत के लिये एक नया संविधान तैयार करना होगा।

3. संविधान सभा में भारतीय रियासतों के भाग लेने के लिये भी प्रबन्ध किया जायेगा।

4. सम्राट की सरकार इस प्रकार के संविधान को स्वीकार करने एवं अमल में लाने की जिम्मेदारी लेती है परन्तु शर्त यह है कि ब्रिटिश भारत के जिन प्रान्तों को यह संविधान स्वीकार न होगा वे अपनी वर्तमान संवैधानिक स्थिति को कायम रह सकेंगे। यदि वे प्रान्त बाद में भारतीय संघ में शामिल होना चाहें तो हो सकेंगे। प्रान्त भारतीय संघ में शामिल नहीं होना चाहें उन्हें भी अपना स्वतंत्र संविधान बनाने का अधिकार होगा ।

5. सम्राट की सरकार और संविधान सभा में एक संधि होगी जिसमें उन सब मामलो का जिक्र होगा जो ब्रिटेन से भारत को शक्ति देने के कारण उत्पन्न होंगे। ब्रिटिश सरकार ने अन्य सरकारों की रक्षा के लिये जो वचन दिये है उनकी रक्षा के लिये भी प्रबन्ध किया जायेगा।

6. देशी रियासतें संविधान अपनाना चाहें या नहीं, परन्तु उनके साथ हुई पुरानी संधि को नये संविधान की आवश्यकतानुसार दोहराना पड़ेगा।

युद्ध समाप्त होते ही प्रान्तीय विधान मण्डलों के चुनाव होंगे। प्रान्तीय विधान मण्डलों के निचले सदन (विधान सभाएं) आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार संविधान सभा के चुनाव होंगे। संविधान सभा की संख्या चुनने वाली विधान सभाओं की संख्या का दसवाँ भाग होगी । भारतीय रियासतों और प्रान्तों को अपनी–अपनी आबादी के अनुसार प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा। प्रान्तों और देशी रियासतों की शक्तियाँ बराबर होंगी।

उपरोक्त प्रस्ताव युद्ध के बाद लागू किये जाने के दूसरे भाग में युद्धकाल में लागू होने वाले प्रस्ताव थे।

(ब) क्रिप्स के प्रारूप में कहा गया था – इस नाजुक समय में और नये संविधान के बनने तक भारत की रक्षा की जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार की रहेगी । भारत की जनता के सहयोग से भारत के सैनिक, नैतिक और भौतिक साधनों को संगठित करने की जिम्मेदारी भारत सरकार की होगी । ब्रिटिश सरकार भारतीय नेताओं का अपने देश राष्ट्रमण्डल तथा संयुक्त राष्ट्रों के परामर्श में पूरा सहयोग चाहती है । इस तरह से

भारतीय नेताओं को अपने इस कार्य में सहयोग देने का अवसर मिलेगा जो भारत के भविष्य के लिए बहुत आवश्यक है ।

क्रिप्स की घोषणा से किसी को भी सन्तुष्टी नहीं हुयी । प्रत्येक दल ने भिन्न–भिन्न कारणों से इसको अपर्याप्त माना।

- कांग्रेस को इसके अन्तरिम प्रबन्ध से असंतोष था । उसे इसके रक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं थे । कांग्रेस को इस बात का भी औपचारिक आश्वासन नहीं मिला कि इस बीच गवर्नर जनरल मन्त्रियों के कहने पर तथा संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करेगा। प्रान्तों को अलग रखने की बात भी अस्वीकार थी ।
- मुस्लिम लीग इसलिये असन्तुष्ट थी कि इसमें स्पष्ट रूप से पाकिस्तान बनाये जाने की बात नहीं कही गयी थी । एक संघ बनाये जाने, संविधान सभा की रचना व एक प्राप्त के पृथक होने के लिये उसकी इच्छा जानने सम्बन्धी व्यवस्था से अप्रसन्न न थी ।
- यद्यपि यह योजना असफल रही परन्तु अंग्रेजों ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि वे भारत के प्रश्न पर चिन्तित है और इसके समाधान का प्रयास किया है।
- एस. गोपाल ने इस घोषणा पत्र को मूलत: अनुरक्षण वादी प्रतिक्रिया शील एवं सीमित प्रस्ताव की संज्ञा दी है । पण्डित नेहरू जो क्रिप्स के मित्र थे ने भी लिखा है जब पहली बार मैने इन प्रंस्तावों को पढ़ा तो बुरी तरह मायूस हुआ' ।

19.4.2 भारत छोड़ो प्रस्ताव एवं अगस्त क्रान्ति – 1942

भारत छोड़ो आन्दोलन कांग्रेस का प्रथम एवं अन्तिम ऐसा आन्दोलन था जिससे ब्रिटिश सरकार को परेशानी हुयी । क्रिप्स प्रस्ताव असफलता से सभी को निराशा हुयी जब जापान देश के द्वार पर खड़ा था तब कांग्रेस चुप नहीं रह सकती थी। गांधीजी ने अब अप्रैल, 1942 में अंग्रेजों के "सुव्यवस्थित ढंग से भारत से चले जाने की बात कही । उनके अनुसार अब अंग्रेजों और भारतीयों की कुशलता इसी में है कि अंग्रेज भारत से चले जायँ अब भारत छोड़ो का नारा प्रसिद्ध हो गया। 10 मई, 1942 को गांधी जी ने "हरिजन" में लिखा कि "भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति जापानियों को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण है। उनके जाने से यह लोभ समाप्त हो जायेगा"। 14 जुलाई, 1942 को कांग्रेस कार्य समिति की बैठक वर्धा में हुई और चले जाने का प्रस्ताव पारित किया जिसका नाम रखा गया "भारत छोड़ो प्रस्ताव" (Quit India resolution) प्रस्ताव में स्पष्ट कहा था यदि यह अपील स्वीकृत नहीं होती तो हम लोग महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने के लिये बाध्य हो जायेंगे ।

8 अगस्त, 1942 को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में इस प्रस्ताव का समर्थन हुआ और यह कहा गया कि भारत में अंग्रेजी राज्य की समाप्ति, भारत और संयुक्त राष्ट्रों दोनों के हित में है । इस राज्य का बने रहना भारत के लिये अपमान जनक है और उसे दिन प्रतिदिन क्षीण कर रहा है और उसे अपनी रक्षा में असमर्थ बनाता जा रहा है । कांग्रेस ने भारत के लोगों से अपील की -

> "उन्हें याद रखना चाहिये कि अहिंसा इस आन्दोलन का आधार है एक समय ऐसा आ सकता है जब लोगों के लिये निर्देश जारी करना या निर्देशों के लिये जहां तक पहुँचना सम्भव न हो और जब कोई कांग्रेस कमेटी काम न कर सके । अगर ऐसा हो तो

प्रत्येक स्त्री पुरुष को जो इस आन्दोलन में भाग ले रहा है जारी किए गये सामान्य निर्देशों की परिसीमा में रहकर स्वविवेक से काम करना चाहिये" ।

गांधी जी ने अंग्रेजों से "भारत को भगवान भरोसे" छोड़ने के लिये कहा सभी वर्गों से आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिये जोर देकर कहा प्रत्येक भारतीय को जो आजादी चाहता है और इसके लिये प्रयत्न करना चाहता है, अपना अगुवा स्वयं बनना चाहिये, उनका संदेश था "करो या मरो"।

कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया वह धमकी नहीं थी । परन्तु 'ब्रिटिश सरकार ने जल्दबाजी की। 9 अगस्त रात्रि को ही बम्बई में गांधी जी और कार्य समिति के सदस्यों को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया । प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया । गांधी जी व अन्य नेताओं की गिरफ्तारी से लोगों को धक्का लगा । ब्रिटिश सरकार के इस अत्याचार पूर्ण तरीके का व्यापक विरोध हुआ । देश में विप्लव खड़ा हो गया । स्थान–स्थान पर सार्वजनिक माल व सम्पत्ति की हानि हुयी । भारत छोड़ो आन्दोलन चार अवस्थाओं से गुजरा –

- प्रथम अवस्था गांधी जी की 9 अगस्त, 1942 को गिरफ्तारी से तीन–चार दिन तक चली। इसमें हड़तालें, प्रदर्शन, जुलूस का आयोजन मुख्य था। मजदूर हड़ताल मान्य थी ।
- इस अवस्था में लोगों ने सार्वजनिक भवनों, सरकारी इमारतों, संपत्ति, रेलवे स्टेशन, डाकघरों पर आक्रमण किये । सरकार ने असहाय अत्याचार किए। डॉ. अम्बा प्रसाद के अनुसार "बिहार के एक गाँव में 21–22 अगस्त व 6 सितम्बर, 1942 से मशीनगनों द्वारा लोग मारे गये"।
- सितम्बर, 1942 में पुलिस अत्याचारों से क्षुब्ध होकर मद्रास व बंगाल में जनता ने हथियारों सहित आक्रमण किये। फरवरी, 1943 तक यह स्थिति रही।
- अन्तिम अवस्था में आन्दोलन धीमी गति से चला। तिलक दिवस व स्वंतत्रता दिवस मनाये। जयप्रकाश नारायण व अरुणा आसिफ अली का योगदान सराहनीय रहा। 9 मई, 1944 को गांधी जी की रिहाई तक यह आन्दोलन चलता रहा।

भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति की दृष्टि से यह अन्तिम महान् प्रयास था जिसने सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया

- इसमें सेना को छः बार मशीनगन चलानी पड़ी। पुलिस व सेना ने 538 बार गोलियाँ चलायी। कम से कम 7000 व्यक्ति मारे गये व 60229 व्यक्तियों को कैद में डाला गया।
- डॉ. अम्बा प्रसाद ने लिखा है कि "इस आन्दोलन ने 1947 ई. में भारतीय स्वतंत्रता के लिये पृष्ठ भूमि तैयार की" यह आन्दोलन ब्रिटिश शासन के विरुद्ध मुकाबला करने की भावना उत्पन्न करने में काफी सफल रहा।
- 1942 के आन्दोलन ने यह भली भांति सिद्ध कर दिया कि उनका राज्य यहां कोई नहीं चाहता। केबिनेट मिशन के परामर्शदाता ब्रुड्रो वायट का विचार था कि "यदि अंग्रेज भारत को सत्ता सौपने के लिये कोई हल नहीं निकालते है तो उनको निकालने के लिये फिर क्रान्ति होगी" ।
- इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप अंग्रेज और मुस्लिम एक दूसरे के समीप आये। क्योंकि दोनों एक दूसरे के सहायक थे और कांग्रेस के विरोधी थे। मुस्लिम लीग के सर्वे सर्वा जिन्ना ने इन आन्दोलन से अलग रहने के लिये कहा।

- भारत छोड़ो आन्दोलन ने विदेशों में भी लोकमत भारत के पक्ष में तैयार किया। च्यांग काई शेक ने अमरीकी राष्ट्रपति रूज्वेल्ट को लिखा कि "अंग्रेजों के लिये सबसे श्रेष्ठ नीति यह है कि वह भारत को पूर्ण स्वतंत्रता दे दे"।

19.4.3 वेवल योजना – 1945

अक्तूबर, 1943 में लार्ड लिथिनगो के स्थान लार्ड वेवल भारत के वाइसराय नियुक्त हुये । वेवल ने गतिरोध समाप्त करने का एक ओर प्रयत्न किया। 21 मार्च, 1945 ई को लार्ड वेवल भारतीय समस्या के हल के बारे में ब्रिटिश सरकार से सलाह करने के लिये लन्दन रवाना हुये और 4 जून, 1945 ई. को भारत लौटे। 14 जून को रेडियो प्रसारण के माध्यम से अपनी योजना की जानकारी दी । भारत के राज्य सचिव लार्ड एमरी ने कॉमन सभा में भी इसी प्रकार का वक्तव्य दिया । इस योजना को वेवल – एमरी योजना अथवा वेवल योजना कहा जाता है । योजना के मुख्य उपबन्ध थे –

1. ब्रिटिश सरकार भारत के प्रमुख सम्प्रदायों की इच्छाओं के विरुद्ध कोई परिवर्तन नहीं करेगी । यदि भारत जापान से युद्ध करने के लिये व युद्ध के बाद भारत के पुन: निर्माण में सहयोग के लिये तैयार हो तो सरकार भारतीय गतिरोध दूर करने हेतु तुरन्त कदम उठा सकती है । वाइसराय अपनी कार्यकारिणी परिषद की दुबारा रचना करने को तैयार है जिसमें वाइसराय के अलावा सभी सदस्य भारतीय होंगे ।
2. ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य भारत को स्वशासन की ओर ले जाना है ।
3. सीमान्त और कबीलों के मामलों को छोड़कर शेष वैदेशिक मामले भारतीय मंत्री के हाथ में रहेंगे।
4. वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद में मुसलमानों और सवर्ण हिन्दुओं की संख्या बराबर होगी ।
5. वाइसराय कार्यकारिणी पषिद को 1935 के एक्ट के अनुसार ही कार्य करना था परन्तु यह आश्वासन दिया गया कि वह अपने वीटो निषेधाकार का प्रयोग अकारण नही करेगा । भारत सचिव का नियन्त्रण कम से कम रहेगा और वह भारत हित में अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा ।
6. ब्रिटिश व्यापार तथा अन्य हितों की देखभाल के लिये एक उच्चायुक्त नियुक्त किया जायेगा।
7. कार्यकारिणी परिषद अस्थायी सरकार की भाँति होगी ।
8. इन प्रस्तावों का प्रभाव भारत के भावी संविधान पर नहीं पड़ेगा जिसको बाद में भारतीय बनायेंगे ।
9. प्रान्तों में सेक्शन 93 को समाप्त करके उत्तरदायी सरकार स्थापित की।
10. राजनैतिक दलों की एक सम्मिलित सभा बुलायी जायेगी ताकि कार्यकारिणी की नियुक्ति हेतु एक सर्वसम्मत सूची प्रस्तुत की जा सके ।

19.4.4 शिमला सम्मेलन – 1945

वेवल योजना को कार्यरूप देने के उद्देश्य से ही लार्ड वेवल ने भारत 21 प्रतिनिधियों को शिमला में बुलाया इससे पूर्व देश में अच्छा वातावरण उत्पन्न करने की दृष्टि से कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों को जेल से रिहाकर दिया । इस सम्मेलन, जिस में कांग्रेस व मुस्लिम

लीग के प्रधानों के अलावा अकाली दल के मास्टर तारासिंह, भूला भाई देसाई, लियाकत अली खां, जिन प्रान्तों में उस समय उत्तरदायी सरकारें चल रही थी, उनके मुख्य मंत्री एवं भूतपूर्व कांग्रेसी प्रान्तों के मुख्य मंत्री सम्मिलित थे, के बुलावे से जनता में ऊँची–ऊँची आशाएँ बंधी । लेकिन मुस्लिम लीग व कांग्रेस में मतभेद के कारण 3 दिन बाद ही सम्मेलन स्थगित कर दिया। 11 जुलाई को जिन्ना वेवल से मिले और उनसे मुस्लिम लीग को ही मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था स्वीकार करने को कहा।

मुस्लिम लीग से बाहर कोई मुसलमान नहीं होना चाहिये कांग्रेस ने इसका विरोध किया। लार्ड वेवल ने इसे स्वीकार नहीं किया। न केवल बहुत से मुसलमान कांग्रेस में थे अपितु मुस्लिम बहु संख्या वाले उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में एक कांग्रेसी मंत्री मण्डल एवं पंजाब में संघवादी दल कार्य कर रहे थे। तीन दिन बाद ही 14 जुलाई, 1945 को वेवल ने शिमला सम्मेलन को असफल कहकर समाप्त कर दिया ।

19.4.5 आजाद हिन्द फौज की भूमिका एवं नौसेना विद्रोह 1945 –46

जिस वर्ष भारत में भारत छोड़ो आन्दोलन के द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष जारी था उसी वर्ष संघर्ष के लिये समान रूप से "आजाद हिन्द फौज" महत्वपूर्ण लड़ाई का बिगुल विदेश की धरती से बजा रही थी । इस सेना का गठन जून, 1942 में रास बिहारी बोस और कैप्टेन मोहन सिंह के द्वारा किया गया । इसमें अंग्रेजों की ओर से लड़ने वाले वे भारतीय सैनिक थे जिन्हें जापान ने बन्दी बना लिया था । इसमें 40,000 सैनिक आ चुके थे । इस नवगठित सैन्य आन्दोलन की बागडोर जून 1943 में टोक्यो आने के बाद सुभाष चन्द्र बोस ने सम्भाली । आजाद हिन्द सरकार का गठन किया गया। इसमें महिलाओं की अलग से झांसी ब्रिगेड का गठन किया गया "जयहिन्द" "दिल्ली चलो "तुम मुझे खून दो मै तुम्हें आजादी दूंगा जैसे नारों के साथ सैन्य आन्दोलन चला। सुभाष ने 18 मार्च 1944 को भारत की सीमा पर तिरंगा फहरा दिया । लेकिन जर्मनी के पतन व जापान को भारी क्षति से आजाद हिन्द फौज को भी आघात लगा अंग्रेजो ने इसे आगे नहीं बढ़ने दिया ।

यद्यपि आजाद हिन्द फौज अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं रही परन्तु भारत के स्वतंत्रता संग्राम को नवीन प्रेरणा प्रदान करने एवं अंग्रेजो द्वारा सत्ता छोड़ने के मार्ग में महत्व पूर्ण भूमिका निभायी ।

- द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के तुरन्त उपरांत अंग्रेजी सरकार ने नवम्बर 1945 में आजाद हिन्द के कैदी अधिकारियों पर मुकदमे चलाये । इनमें तीन प्रमुख अधिकारी थे । मेजर शाहनवाज खान, कर्नल गुरुबख्स सिंह ढिल्लों एवं कर्नल प्रेम कुमार सहगल। लाल किले में अदालती कटघरे में इनको खड़ा करने पर व्यापक जन विरोध हुआ । इनके बचाव के लिये पण्डित नेहरू ने 30 वर्ष बाद बेरिस्टूर की पोशाक पहनी, सर तेज बहादुर सप्रू एवं भूला भाई देसाई ने उच्चकोटि के तर्क दिये । इसके बावजूद तीनो को मृत्युदण्ड दिया । परन्तु जनगत के दबाव के कारण वाइसराय को इन्हें छोड़ना पड़ा ।
- आजाद हिन्द फौज के कैदियों की रिहाई अन्य सभी राजनैतिक कैदियों की रिहाई व अन्य मांगों को लेकर ब्रिटिश सरकार की बम्बई की रॉयल नौसेना द्वारा 18 फरवरी, 1946 को

विद्रोह कर दिया । अंग्रेजों को इससे करारा झटका लगा । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सबसे सीधा व भयंकर साम्राज्यवाद विरोधी टकराव था।

- इस घटना से भारतीय सैनिकों में जागृति आयी । अंग्रेज अधिकारियों का भय कम हो गया अंग्रेजों के समक्ष भी यह स्पष्ट हो गया कि वे भारतीय सैनिकों की वफादारी पर और ज्यादा भरोसा नहीं कर सकते और उन्हें भाड़े का सिपाही मानकर भी नहीं चल सकते ।
- आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों ने यह दिखा दिया कि जिन लोगों ने अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष किया था वे किसी भी तरह से साम्प्रदायिक विभाजन से प्रभावित नहीं थे । हिंदू मुसलमान सिक्ख सभी आजाद हिन्द फौज में थे जो सिर्फ भारतीय के रूप में लड़ रहे थे ।
- आजाद हिन्द फौज एक अलग से महिलाओं की ब्रिगेड (झाँसी ब्रिगेड) थी इसने आजादी के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष चलाने में भारतीय महिलाओं की क्षमताओं को भी सामने कर दिया ।
- विदेश में रहने वाले भारतीयों में भी भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति जागृति उत्पन्न हुई। इस फौज ने प्रवासी भारतीयों की अपनी मातृभूमि की आज़ादी के प्रति चिन्ता एवं उत्साह को भी सामने ला दिया ।
- आजाद हिन्द फौज मुकदमें ने सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नवीन स्फूर्ति प्रदान की । इन अधिकारियों को मुक्त कराने के प्रति लोगों में नया जोश था। प्रतिरक्षा वकील भूला भाई देसाई ने यह सिद्ध कर दिया था कि "पराधीन का यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह अपनी स्वतंत्रता के लिये विदेशी शासकों विरुद्ध विद्रोह करे" ।
- अंग्रेजों ने भी यह सोचना आरम्भ कर दिया कि भारतीयों को देना उचित है। इतिहासकार मजूमदार, राय चौधरी एवं दत्त ने आजाद हिन्द फौज मुकदमें के सम्बन्ध में लिखा है –
  "यह सरकार के लिये अत्यन्त नीति शून्य कर्म था । क्योंकि इसने भारतीय जनता को एक ऐसे संगठन का पूरा चित्र दे दिया जिसकी उसे अब तक कम जानकारी थी । देश में उत्साह की लहर फैल गयी" ।

19.4.6 इंग्लैण्ड मे मजदूर दल की सत्ता – 1.945

इंग्लैण्ड में 1945 के चुनाव और उनमें लेबरपार्टी की विजय के लिये सर्वाधिक लाभदायक सिद्ध हुई 10 जुलाई, 1945 ई. को इंग्लैण्ड में मजदूर की सरकार बनी । अनुदारवादी चर्चिल के स्थान पर क्लेमेंट एटली प्रधान मंत्री बने एवं मिस्टर एमरी के स्थान पर पेथिक लारेन्स भारत सचिव बने । लार्ड वेवल ने अगस्त 19 में गवर्नरों के सम्मेलन में घोषणा की कि भारत में चुनाव करवाये जाएं। इंग्लैण्ड में सरकार से परामर्श करने के उपरान्त 12 सितम्बर, 1945 को लार्ड वेवल ने एक की कि युद्ध के कारण जो चुनाव स्थगित हो गये थे वे अब इसी सर्दी के मौसम में होंगे। ब्रिटिश सरकार शीघ ही पूर्ण स्वशासन स्थापित करना चाहती है। वह शीघ ही संविधान बुलाना चाहती है। संविधान सभा में भाग लेने हेतु भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों भी शीघ्र ही परामर्श किया जायेगा । चुनावों के बाद प्रान्तों में फिर उत्तरदायी सरकार की जायेगी ।

इसी दिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने भी संसद में यह घोषणा की कि 1942 के प्रस्ताव अभी भी विद्यमान है । इसके उपरान्त 4 दिसम्बर, 1945 को भारत पेथिक लारेन्स ने लार्डस सभा में वक्तव्य दिया कि प्रस्तावों के पूर्ण महत्व को समझा नहीं गया है और अंग्रेज सरकार संविधान सभा के गठन को बहुत महत्व देती है। उन्होंने भारत में एक संसदीय शिष्ट मंडल भेजने

का सुझाव दिया। परन्तु यह स्पष्ट कर दिया कि । वह शिष्ट मण्डल अंग्रेजों को किसी नीति विशेष का अनुसरण करने के लिये बाध्य नहीं करेगा। 10 दिसम्बर, 1945 को लार्ड वेवल ने कलकत्ता में संयुक्त व्यापार मण्डल की वार्षिक सभा में बोलते हुये कहा - "भारत छोड़ो एक जादू नहीं है अपितु सद्भाव सहकारिता व धैर्य की आवश्यकता है" इन उल्लेखों से स्पष्ट है अब अंग्रेजों का सत्ता छोड़ने का मानस बनता जा रहा है । सत्ता किस प्रकार व किन को सौपी जाय, यह निर्णय लम्बित था 1945–46 में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय चुनाव हुये । जिसमें सभी दलों ने भाग लिया। मुस्लिम लीग सिंध व बंगाल में ही अपना मंत्रीमण्डल बना सकी । पंजाब में लीग सबसे बड़ा दल था परन्तु हिन्दू सिक्ख यूनियनिस्ट दल के विधायकों ने एक मिला जुला मंत्री खिजर हयात खां के नेतृत्व में बनाया । आसाम, यू.पी. उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त, बम्बई, मद्रास मध्य प्रान्त व उड़ीसा में कांग्रेस मंत्री मंडल बने ।

19.4.7 मंत्री मण्डलीय शिष्ट मंडल योजना – 1946

19 फरवरी 1946 को भारत सचिव लार्ड पेथिक लारेन्स ने हाऊस ऑफ लार्डज में घोषणा की कि मंत्री मंडलीय शिष्ट मण्डल जिसमें वह स्वयं, सर स्टेर्स्ट क्रिप्स एवं ए वी. एलेक्जेन्डर होंगे, वाइसराय की सहायता से भारतीय नेताओं से राजनैतिक बातचीत करने के लिये भारत जायेगा । इसी समय एटली ने कहा कि हम चाहते है कि भारत में अल्प संख्यक भारत में बिना भय के रहें परन्तु यह भी स्वीकार नहीं करेंगे कि अल्पसंख्यक, बहुसंख्यकों के विकास में बाधक बनें । इन शब्दों से यह समझा गया कि अब अंग्रेजों की लीग के प्रति परम्परागत नीति में परिवर्तन आ गया है ।

24 मार्च, 1946 को शिष्ट मण्डल दिल्ली पहुंचा । लीग और कांग्रेस के मध्य भारत की एकता अथवा विभाजन के संबंध में समझौता नहीं हो सका था । इसलिये शिष्ट मण्डल ने अपनी ओर से समस्या का समाधान प्रस्तुत किया । वाइसराय लार्ड वेवल एवं शिष्ट मण्डल ने अपने संयुक्त वक्तव्य 16 मई, 1946 को प्रस्तुत किये जिसके प्रमुख बिन्दु निम्न लिखित थे।

1. पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार कर दिया क्योंकि इससे मुसलमानों के अलावा जो अल्पसंख्यक है उनकी समस्या का समाधान नहीं होगा । पाकिस्तान के दो भागों की दूरी जो लगभग 700 मील होगी, उसके हित में नहीं होगी। उसकी संचार व्यवस्था भारत के सद्भाव सदभाव निर्भर होगी।
2. सम्पूर्ण भारत वर्ष का रियासतों एवं ब्रिटिश भारत का एक मिला जुला संघ होना चाहिये जो विदेशी मामले रक्षा और संचार साधनों की देखभाल करें और इसके लिये कर लगा सकें ।
3. इस संघ की एक कार्यपालिका और विधान मण्डल होना चाहिये जिसमें ब्रिटिश भारत और रियासतों के प्रतिनिधि हों ।
4. कोई महत्वपूर्ण साम्प्रदायिक प्रश्न उपस्थित होने पर यह आवश्यक हो कि निर्णय विधान मण्डल मे दोनों मुख्य सम्प्रदायों के विधायकों के अलग–अलग बहुमत के आधार पर हों ।
5. ऐसे विषय जो केन्द्र को नहीं दिये गये है वे सब प्रान्तों के पास रहेंगे । प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्ता रहेगी । तमाम शेष शक्तियॉ भी प्रान्तों के पास रहेगी।
6. जिन विषयों को देशी रियासतें संघ को नहीं सौपेंगी उन पर देशी रियासतों के ही अधिकार रहेंगे ।

7. प्रान्तों को छोटे अथवा बड़े समूह बनाने का अधिकार होगा और इन गुटों को क्या–क्या अधिकार होंगे, इसका निर्णय वे स्वयं ही करेंगे ।
   - समूह "अ" – मद्रास बम्बई मध्य प्रान्त संयुक्त प्रान्त बिहार और उड़ीसा ।
   - समूह "ब" – पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त व सिन्ध ।
   - समूह "स" - बंगाल व आसाम ।
   - मुख्य आयुक्त के प्रान्त – दिल्ली, अजमेर मारवाड़ व कुर्ग - समूह "अ" में व ब्लोचिस्तान समूह "ब" में सम्मिलित होंगे।
8. भारत का संविधान बनाने के लिये निर्वाचन के आधार पर एक संविधानसभा स्थापित की जायेगी।
   (1) इसमें 389 सदस्य होंगे जिसमें 93 सदस्य देशी रियासतों से, 4 चीफ कमिश्नर प्रान्तों के व शेष 292 गर्वनर के प्रान्तों के होंगे।
   (2) दस लाख व्यक्तियों पर संविधान सभा का एक सदस्य होगा।
   (3) सदस्यों का निर्वाचन विधान सभाओं द्वारा होगा।
   (4) तीन प्रकार से मतदाताओं का विभाजन होगा – सामान्य, मुस्लिम व सिक्ख जो अपना प्रतिनिधि आनुपातिक पद्धति द्वारा चुनेगा।
   (5) संविधान सभा प्रभुसत्ता पूर्ण नही थी इसकी शक्तियों पर कुछ रूकावटे थी। अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा की उचित व्यवस्था करनी थी। ।
   (6) ब्रिटिश सरकार संविधान सभा द्वारा बनाये गये संविधान को लागू करेगी।
   (7) प्रान्तों को यह अधिकार भी दिया गया कि प्रत्येक 10 वर्ष बाद संविधान की शर्तो पर पुन: विचार की मांग कर सकें।
9. शिष्ट मण्डल का यह सुझाव था कि भारत के प्रमुख राजनैतिक दलों के सहयोग से केन्द्र में एक अन्तरिम सरकार स्थापित की जावेगी। युद्ध विभाग सहित विभाग मंत्रियों को दे दिये जायेंगे जिन्हें जनता का विश्वास प्राप्त हो। इस में 14 सदस्य होंगे (कांग्रेस 6, लीग–5, भारतीय ईसाई–।, सिक्ख–1 व फारसी 1)
10. संविधान सभाओं को इंग्लैण्ड के साथ शक्ति के हस्तान्तरण से उत्पन्न हुए मामलों के लिये एक संधि करनी थी।
11. संविधान के अस्तित्व में आने के साथ ही देशी रियासतों से अंग्रेजों की देसी रियासतो से अंग्रेज़ो की सर्वोचता समाप्त हो जायेगी। उन्हें अपने अधिकार वापिस प्राप्त हो जायेंगे । यह नई सरकार को भी नहीं दी जा सकती। 1
12. यह अपेक्षा की गयी कि भारत राष्ट्र मण्डल का सदस्य रहेगा । परन्तु वह छोड़ना भी चाहे तो उसे छूट होगी ।

संविधान सभा मे प्रतिनिधित्व की सारिणी

प्रान्तों का "अ" समूह

प्रान्त	साधारण	मुस्लिम	योग
मद्रास	45	4	49
बम्बई	13	2	21

संयुक्त प्रान्त	47	8	55
बिहार	31	5	36
मध्य प्रान्त	16	1	17
उड़ीसा	9	0	9
	167	20	187

प्रान्तों का "ब" समूह

प्रान्त	साधारण	मुस्लिम	सिक्ख	योग
पंजाब	8	16	4	28
उत्तर पश्चिम सीमा प्राप्त	0	3	0	3
सिन्ध	1	3	0	4
	9	22	4	35

प्रान्तों का "ग" समूह

प्रान्त	साधारण	मुस्लिम	सिक्ख	योग
बंगाल	27	33	–	60
आसाम	7	3	–	10
	34	36	-	70

प्रान्तों के कुल सदस्य - 187+35+70 =292

इस योजना की प्रमुख विशेषता यह रही कि इसमें पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार किया गया। संविधान सभा का गठन लोकतंत्रीय आधार पर किये जाने की व्यवस्था की गयी। प्रथम ऐसी व्यवस्था की गयी जिसमें ब्रिटिश अधिकारियों या यूरोपियनों को प्रतिनिधित्व न करने का प्रावधान था । संविधान सभा में एक भी यूरोपियन नहीं पहुंचा । अन्तरिम सरकार का भी इसमें प्रावधान किया गया जो कि सत्ता सीपने का प्राथमिक अभ्यास था। लेकिन इस योजना ने एक निर्बल केन्द्र और प्रान्तों को अलग संविधान बनाने का अधिकार दिया जिससे भारत की एकता को आघात लगा ।

19.4.8 संविधान सभा के चुनाव व अन्तरिम सरकार – 1946

केबिनेट मिशन की योजनानुसार जुलाई, 1946 में संविधान सभा के चुनाव हुये। 296 सदस्यीय संविधान सभा में कांग्रेस व उसके समर्थकों को 212 स्थान मिले जबकि मुस्लिम लीग 73 स्थानों पर विजयी हुई । इससे मुस्लिम लीग को घोर निराशा हुई । जिन्ना ने 29 जुलाई, 1946 को केबिनेट योजना को अस्वीकार कर दिया । लीग ने 16 अगस्त, 1946 को पाकिस्तान की प्राप्ति के लिये सीधी कार्यवाही दिवस मनाने का निश्चय किया । यही से साम्प्रदायिक उपद्रवों का सिलसिला आरंभ हुआ जिसमे लाखों जानों और करोड़ों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ ।

लार्ड वेवल ने 24 अगस्त, 1946 को घोषणा की कि 2 सितंबर को अन्तरिम सरकार मंत्री मण्डल को शपथ दिलायी जायेगी । पण्डित जवाहर लाल नेहरू एवं उनके साथियों ने अन्तरिम सरकार मंत्री मण्डल में 2 सितंबर 1946 को शपथ ली । वाइसराय के प्रयासों से मुस्लिम लीग भी अपनी 29 जुलाई, 1946 को केबिनेट मिशन अस्वीकृति को वापिस लिये बिना

ही 15 अक्टूबर, 1946 को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित हो गयी । वाइसराय का झुकाव लीग की तरफ अधिक था। लीग सरकार में सम्मिलित होकर कांग्रेस की नीतियों को समाप्त करना चाहती थी । लीग व कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार में एक साथ कार्य तो आरम्भ कर दिया परन्तु दोनों में भारी मतभेद था। नवम्बर, 1946 से मार्च, 1947 तक का अनुभव बताता है कि लीग व कांग्रेस का मिलकर कार्य करना सम्भव नहीं है । इसी अनुभव से कांग्रेस में देश के विभाजन हेतु जनमत बनना आरम्भ हो गया ।

19.4.9 एटली की 20 फरवरी, 1947 की घोषणा

मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकार में तो सम्मिलित हो गयी, परन्तु उसने संविधान सभा में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया । संविधान सभा की बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को आरम्भ हुई। दो दिन बाद डॉ. राजेन्द्र प्रसाद इसके अध्यक्ष पुन: चुन लिये गये । ब्रिटिश मंत्री मण्डल, कांग्रेस लीग मतभेद के कारण भारत की बिगड़ती हुयी दशा को अच्छी तरह जानता था। वाइसराय वेवल कांग्रेस–लीग मतभेद को इसी स्थिति में रखना चाहता था । अत: ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने समस्या का हल करने का एक मात्र तरीका यह निकाला। कि इंग्लैण्ड को भारत से अपना अधिकार समाप्त करने की एक निश्चित तिथि की घोषणा कर देनी चाहिये। इसी क्रम में 20 फरवरी, 1947 को घोषणा कर स्पष्ट कर दिया कि "सम्राट की सरकार जून, 1948 तक प्रभुसत्ता भारतीयों के हाथों में साँप देगी । यदि लीग संविधान सभा का बहिष्कार जारी रखेगी तो इसमें सोचना होगा कि अंग्रेजी प्रदेशों की केंद्रीय प्रभुसत्ता निश्चित तिथि तक किसको सौपी जाये । क्या समस्त की समस्त केन्द्रीय सरकार को या जो प्रान्तों में सरकारे ही उनको अथवा कोई ओर मार्ग जो कि उचित हो व भारतीयों के हित में हो" ।

इस कार्य के लिये माउन्ट बेटन को भारत का वायसराय बनाकर भेजा । भारत विभाजन भी जिसे केबिनेट मिशन ने अस्वीकार कर दिया था, मान लिया गया घोषणा के साथ ही लीग ने भारत विभाजन के किये प्रचण्ड आन्दोलन आरम्भ कर । । घृणा व आतंक के इस वातावरण में भारत की एकता बनाये रखना सम्भव नहीं था । ' की मानसिकता भी एकता की नहीं थी।

19.4.10 माउंट बेटन व भारत का बंटवारा – 1947

वेवल के स्थान पर लार्ड लुई माउंटबेटन को वाइसराय बनाने की घोषणा। के तुरन्त पश्चात् ही माउंटबेटन भारत पहुंच गये । आते ही उन्होंने घोषणा की कि वह भारत को कुछ ही मास में सत्ता साँप देंगे। लन्दन में विचार विमर्श करने के उपरान्त 3 जून 1947 को उन्होंने भारतीय समस्या के समाधान का हल सुझाया जिसे माउन्टबेटन योजना के नाम से जाना जाता है। इस योजना का मुख्य आकर्षण भारत का विभाजन था जिसके लिये वाइसराय ने 2 जून को ही पण्डित जवाहर लाल नेहरू व सरदार बल्लभ भाई पटेल से सहमति ले ली थी । इसमें सुझाया गया कि –

"महामहिम सम्राट की सरकार की कोई इच्छा नहीं कि वह संविधान सभा के कार्य में बाधा डाले. यह भी स्पष्ट है कि इस सभा द्वारा बनाया गया संविधान उन प्रान्तों पर लागू नहीं किया जा सकता जो इसे स्वीकार करने को उद्धत नहीं है" योजना की प्रमुख विशेषताएँ थी

- यह तय हुआ कि भारत को दो अधि राज्यों भारत व पाकिस्तान में बाट दिया जाय । दोनों को जून, 1948 के बजाय 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता दे दी जाय ।
- बंगाल और पंजाब में हिन्दू तथा मुसलमान बहुसंख्यक जिलों में प्रान्तीय विधान सभा सदस्यों की अलग–अलग बैठक बुलायी जाये और उसमें कोई भी प्रान्त विभाजन चाहेगा तो विभाजन कर दिया जायेगा ।
- उत्तर पश्चिम प्रान्त में जनमत संग्रह द्वारा यह पता लगाया जाये कि वह भारत के किस भाग कें साथ मिलना चाहता है ।
- असम के सिलहट जिले में भी इसी प्रकार जनमत संग्रह से पता लगाया जाये ।
- भारतीय नरेशों के साथ पुरानी नीति लागू रहेगी। उन्हें सर्वोच्च सत्ता का अधिकार पुन: लौटा दिया जायेगा।
- बंगाल, पंजाब में जिलों के विभाजन व सीमा निर्धारण का काम एक कमीशन को सौपा जिसकी अध्यक्षता रेड क्लिफ ने की ।

इस योजना को कांग्रेस व लीग दोनों ने स्वीकार कर लिया । इस हेतु कांग्रेस की बैठक 14 जून, 1947 को दिल्ली में हुयी । राष्ट्रवादी मुसलमानों, पाकिस्तान में रह रहे हिन्दुओं, पुरुषोतम दास टण्डन ने इसे अस्वीकार कर दिया । परन्तु महात्मा गांधी, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, गोविन्द बल्लभ पन्त ने तत्कालीन विषम परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये इसका समर्थन किया। गोविंद वल्लभ पंत ने कहा:

"3 जून, 1947 की योजना की स्वीकृति ही भारत की स्वतंत्रता के लिये एक मात्र मार्ग है। इससे शक्तिशाली केन्द्र बन सकेगा व भारत की उन्नति हो सकेगी । कांग्रेस ने एकता के लिये कार्य किया है और इसके लिये सब न्यौछावर कर दिया है । आज कांग्रेस को या तो इस योजना को स्वीकार करना है या आत्म हत्या करना है । केबिनेट मिशन के प्रान्त समूहों व निर्बल केन्द्र से यह योजना अच्छी है"।

यद्यपि जिन्ना सम्पूर्ण पंजाब, बंगाल व असम पाकिस्तान में चाहता था लेकिन माउन्टबेटन के दबाव के कारण योजना को स्वीकार करना पड़ा। इस योजना की स्वीकृति के साथ ही अंग्रेजों द्वारा भारतीयों की सत्ता सौपने से मार्ग प्रशस्त हो गया । अब ब्रिटिश सरकार से इसके लिये औपधरिक विधेयक पारित कराना शेष रह गया था । जिसकी पूर्ति भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पारित करके की गई ।

19.5 भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम एवं सत्ता का हस्तान्तरण - 1947

माउन्ट बेटन योजना के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने एक विधेयक तैयार किया और 4 जुलाई, 1947 को इस विधेयक को संसद में पेश किया । 15 जुलाई को कॉमन सभा 16 जुलाई को लार्डस सभा ने इसे पारित कर दिया। 18 जुलाई को सम्राट के हस्ताक्षर बाद यह पारित कर दिया गया । इस कानून –धरा माउस बेटन की 3 जून की प्रतिज्ञा की पूर्ति हो गयी ।

– इस अधिनियम द्वारा भारत का. बटवारा कर दिया गया। 15 अगस्त, 1947 को भारत व पाकिस्तान दो अधिराज्य बना दिये जायेंगे और उनको ब्रिटिश सरकार सत्ता सौप देगी। सत्ता दोनों की संविधान सभाओं को सौपी जायेगी ।

- अधिनियम में भारत व पाकिस्तान के प्रदेशों का वर्णन किया गया जिसमें कुछ परिवर्तन बाद में सीमा आयोग के निर्णय के अनुसार होंगे । भारत व पाकिस्तान की अन्तिम सीमाएँ सीमा आयोग की रिपोर्ट के उपरान्त निर्धारित की जायेगी । जनमत संग्रह के आधार पर सिलहट को पूर्वी पाकिस्तान में मिलाया गया । नये अधिराज्य पाकिस्तान में दो बाजू पूर्वी पाकिस्तान (पूर्वी बंगाल व सिलहट) व पश्चिमी पाकिस्तान (पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त, बहावनपुर, खैरपुर, बलूचिस्तान व बलूचिस्तान की आठ छोटी रियासतें सम्मिलित थी) ।
- दोनों अधिराज्यों में राज्य के मुखिया के रूप में सम्राट द्वारा नियुक्त दो महा राज्यपाल (गवर्नर जनरल) होने थे । चाहे तो दोनों साझा राज्यपाल भी रख सकते थे ।
- दोनों राज्यों की संविधान सभाओं को यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी इच्छानुसार नया संविधान बना सकें तथा ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल से अलग हो सकें ।
- दोनों का जब तक नया संविधान नहीं बनता है प्रत्येक अधिराज्य के प्रान्तों का शासन 1935 के अधिनियम के द्वारा चलाया जायेगा । अधिराज्यों को 1935 के अधिनियम में संशोधन का अधिकार दिया गया ।
- 15 अगस्त, 1947 के बाद दोनों अधिराज्यों पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण पूर्णतया समाप्त हो जायेगा ।
- ब्रिटिश सरकार के पद से "भारत का सम्राट" नामक पद हटा दिया गया। किसी भी विधेयक के लिए सम्राट की अनुमति आवश्यक नहीं होगी। दोनों अधिराज्यों के महाराज्यपालों को यह अनुमति दी गयी कि वे ब्रिटिश सम्राट के नाम पर किसी भी साधारण विधेयक को अनुमति दे सकें ।
- महाराज्यपाल को मार्च 1948 तक भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के उपधन्धों को लागू करने और दो अधिराज्यों में परिसम्पत्ति का बटवारा करने व अन्तरिम मल में 1935 के अधिनियम के किसी भी उपबन्ध से उत्पन्न कठिनाई को दूर करने की शक्ति दे दी गई।
- भारत सचिव का पद समाप्त कर दिया गया और उसके कार्य राष्ट्र मण्डल सचिव के हवाले कर दिये गये ।
- देशी रियासतों से ब्रिटिश सर्वोच्चता समाप्त हो गई। स्वतंत्रता के उपरान्त देशी रियासतों से ब्रिटिश सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं होगा। वे स्वतंत्र रहने, भारत या पाकिस्तान में मिलने के लिये मुक्त होगी ।
- भविष्य में ब्रिटिश सरकार कबाइली क्षेत्रों पर भी किसी प्रकार का प्राधिकार नहीं रखेगी।

पूर्व में की गयी संधि या समझौता समाप्त माना जायेगा ।

उपरोक्त अधिनियम के अनुसार भारत 15 अगस्त, 1947 को अर्द्ध रात्रि को स्वतंत्र हुआ। भारत में क्राउन पर आश्रित एक राज्य के स्थान पर दो अधिराज्य स्थापित हो गये। अब भारत पर ब्रिटिश संसद और व्हाइट हाउस का नियंत्रण नहीं रहा । इस विधेयक के द्वितीय पठन के समय कॉमन सभा में एटली ने कहा था :

> "एक लम्बी शृंखला की चरम सीमा है..... 1935 का अधिनियम क्रिप्स शिष्ट मण्डल के समय घोषणा, मेरे कुछ मित्रों का पिछले वर्षो भारत जाना सभी इस पथ पर ले

जाने वाले मित्र मित्रवरण थे जिनकी घोषणा मैने पिछले 3 जून को की थी । इस विधयेक का तात्पर्य उन प्रस्तावों को क्रियान्वित करना है"।

19.6 सत्ता प्राप्ति के बाद

आजादी के बाद भी भारत के समक्ष दो प्रमुख समस्याऐं थी –

- भारतीय रियासतों का विलय
- भारत के लिये नये संविधान का निर्माण ।

अंग्रेजों ने देशी रियासतों को खुली छूट देकर भारत को केवल दो भागों में ही नहीं बल्कि अनेक छोटे–छोटे खण्डो में विभाजित करें दिया । सत्ता प्राप्ति के बाद यह प्रमुख समस्या थी ।

सरदार वल्लभ भाई पटेल के निर्देशन में देशी रियासतों के एकीकरण के लिये "स्टेट विभाग" की स्थापना की गयी । 1949 तक भारतीय राज्यों का शान्ति पूर्व भारतीय संघ अथवा प्रान्तों के साथ विलय कर अभूतपूर्व सफलता अर्जित की । शान्ति स्थापना हेतु केवल हैदराबाद में हस्तक्षेप करना पड़ा । पटेल इसलिये "लौह पुरुष" के नाम से जाने जाते है ।

9 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा की प्रथम बैठक के साथ ही संविधान निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ । डी. राजेन्द्र प्रसाद इस सभा के अध्यक्ष बने । संविधान निर्माण के लिये विभिन्न उपसमितियों का गठन हुआ । प्रारूप समिति डॉ. बी. आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में नियुक्त की गयी । कई बैठकों एवं विचार विमर्श के उपरान्त 26 नवम्बर, 1949 को भारत का संविधान बनकर तैयार हो गया और इसे 26 जनवरी, 1950 से लागू किया गया क्योंकि लाहौर अधिवेशन में किये गये निर्णय के अनुसार 26 जनवरी, 1930 को भारतीयों ने प्रथम स्वतंत्रता दिवस मनाया था । इस प्रकार भारत एक – "सम्प्रभुत्व सम्पन्न लोक तंत्रात्मक समाजवादी धर्मनिरपेक्ष राज्य" के रूप में स्थापित हुआ ।

19.7 सारांश

1757, 23 जून को प्लासी के युद्ध से जिस अंग्रेजी राज्य का आरम्भ हुआ, 15 अगस्त, 1947 को उसका समापन हो गया । अंग्रेजों के विरूद्ध भारतीयों ने बहुत लम्बा संघर्ष किया जिसमें असंख्य वीरों ने अपना त्याग किया एवं प्राणों की बलि दी । 1857 के विद्रोह में अंग्रेजों को प्रथम बार भारतीयों के प्रबल विरोध का अहसास हुआ और उन्होंने भारतीय प्रशासन की बागडोर ईस्ट इण्डिया कम्पनी से अपने हाथ में ले ली । इसके उपरान्त "फूट डालो और शासन करो" नीति का अनुसरण आरम्भ कर दिया । अंग्रेजों ने 1909 के मिन्टों मार्ले अधिनियम में अपनी साम्प्रदायिक नीति को मूर्त रूप प्रदान किया। अन्त तक इसे प्रोत्साहन देते रहे और भारत को विभाजित करके ही आजाद किया । आजादी की कीमत के रूप में कांग्रेस ने भी इसे स्वीकार कर लिया । राष्ट्रीय आन्दोलन में भी अनेक प्रकार के उतार–चढ़ाव आये । उदारवादी, उग्रवादी, क्रांतिकारी, अंहिसात्मक, विदेशों में राष्ट्रीय आन्दोलन आदि । सभी गतिविधियों ने संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका बनायी । 1940 के बाद ऐसी परिस्थितियाँ बन गयी थी कि अंग्रेज और अधिक समय तक भारत को परतंत्र बनाये नहीं रख सकते थे ।

19.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अंग्रेजों द्वारा भारतीयों को सत्ता सौपने में विभिन्न सहायक तत्वों को विश्लेषित कीजिए ।

2. 1942 से 1947 तक ब्रिटिश सरकार द्वारा सत्ता हस्तांतरण के विभिन्न चरणो (1942 से 1947) की व्याख्या काजिए ।
3. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के प्रमुख उपबन्ध बताइये ।
4. द्वितीय महायुद्ध ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को किस प्रकार प्रभावित किया ।
5. मंत्री मण्डलीय शिष्ट मण्डल (केबिनेट मिशन) योजना पर एक लघु निबन्ध 'लिखिये।

19.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. V.P. Menan : The Transfer of Power in India
2. F. Coupland : The Constitutional Problems in India
3. Dr. Amba Prasad : The Indian Revolt of 1942
4. पी.ई.,शबर्टस : ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास
5. आरसी. मजूमदार, हेम चन्द्र राय चौधरी एवं केके दत्त : भारत का वृहत् इतिहास – भाग–3
6. आर.एस. शुक्ल : आधुनिक भारत का इतिहास
7. प्रो. एस.एल. सीकरी : भारत का संवैधानिक विकास
8. Dr. Tara Chand : History of the freedom movement in India Vol. IV.

इकाई – 20
भारत की आजादी और विभाजन

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 पृष्ठभूमि
20.2 1935 का अधिनियम
20.3 विश्व युद्ध और भारत
20.4 क्रिप्स मिशन
20.5 भारत छोड़ो आन्दोलन
20.5.1 आन्दोलन का स्वरूप
20.5.2 आन्दोलन का महत्व
20.6 सी.आर फार्मूला
20.7 भारत विभाजन की पृष्ठभूमि और मुस्लिम लीग
20.7.1 लीग का उदय
20.7.2 द्विराष्ट्र सिद्धान्त और पाकिस्तान की मांग
20.7.3 लीग की तीव्र प्रगति
20.7.4 गांधी–जिन्ना वार्ता
20.7.5 शिमला कांफ्रेन्स
20.7.6 1946 के निर्वाचन
20.7.7 नौ सेना विद्रोह
20.7.8 कैबिनेट मिशन
20.8 साम्प्रदायिक विनाश लीला
20.9 स्वतंत्रता और देश का विभाजन
20.10 भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम
20.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
20.12 संदर्भ ग्रन्थ

20.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य भारत का आजादी के अन्तिम चरणों को स्पष्ट करते हुए उन परिस्थितियों को रेखांकित करना है जिनकी वजह से भारत का विभाजन हुआ। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको निम्न बिन्दु स्पष्ट हो सकेंगे –

- 1935 के अधिनियम ने किस तरह भारतीयों की आशाओं को अपूर्ण रहने दिया ।
- द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारत के राजनीतिक पटल पर क्या प्रभाव डाला?
- भारत छोड़ो आन्दोलन भारत की आजादी की दिशा में खड़ा किया हुआ अंतिम सबसे बड़ा आन्दोलन कैसे बना, और इसने भारत की आजादी को कैसे त्वरित गति प्रदान की?

- भारत विभाजन के लिए कौन से कारण उत्तरदायी है और इसमें लीग की क्या भूमिका रही?
- स्वतंत्रता के लिए कौन से मिशन एवं अधिनियम बनाये गये ।

20.1 पृष्ठभूमि

15 अगस्त, 1947 को भारत ने खण्डित तन एवं लहूलुहान मन से स्वतन्त्रता के चिराकांक्षी स्वर्णिम प्रभात का स्वागत किया । लोग आजादी के आहल्द के में टीसते घावों से रिसते लहू की लाली को डबडबा ऑखों में धुँधलाये दृष्यों के समान के गर्त में धकेल आशाओं, अपेक्षाओं एवं सम्भावनाओं से परिपूर्ण एक नये भविष्य उद्घाटन का अभिनन्दन कर रहे थे । विदेशी शासकों की कुटिल कूटनीति की सफल चाल ने अखण्ड भारत की आजादी को एक दिवा–स्वप्न बना दिया था । हम सारा दर्द–ओ–गम जो बचा था, भग्न–हृदय से उसे संवारने में जुट गये । जी–तोड़ मेहनत और अनगिनत अवरोधों के हम उन्नति एवं विकास के शिखर छूने को अग्रसर है । आजादी के बसंत गुजार चुके चिर नूतन भारत ने प्रगति के नए मानदण्ड स्थापित किए है । व विकास और उन्नति के आजादी के स्वर्ण जयन्ती वर्ष में हम विभाजन के नासूर की पीड़ा से अपने को मुक्त नहीं कर सकते। भारतवर्ष और पाकिस्तान दोनों ने इस पीड़ा को सांझे में सहा है । इस अवसर पर आज दोनों के समक्ष पुनर्विचार का एक अवसर है, भूत की गलतियों से सीख लें, भविष्य को बेहतर एवं सुखमय बनाने का । इसी परिप्रेक्ष्य में विभाजन पृष्ठभूमि की पुनर्समीक्षा भी समीचीन होगी ।

20.2 1935 का अधिनियम

1930–32 के गोलमेज सम्मेलनों में भारत के भावी संविधान पर काफी विमर्श हुआ । ब्रिटिश कंजरवेटिव दल ने इस पर एक श्वेतपत्र जारी किया, जिसे बनाकर भारत सरकार 1935 का अधिनियम पारित हुआ । इस अधिनियम के अन्तर्गत सर्वप्रथम भारतीय राज्यों एवं प्रान्तों का एक संघ स्थापित हुआ । 1919 के द्वैध शासन की असफलता के बावजूद 1935 के अधिनियम द्वारा इसे केन्द्र में स्थापित किया गया। प्रतिरक्षा विदेश, धार्मिक तथा कबीलों से सम्बन्धित विषयों के अतिरिक्त शेष सभी विभाग मंत्रियों को दिये गये, लेकिन गवर्नर–जनरल के विशेषाधिकारों ने संघीय व्यवस्था को नि:शक्त कर दिया। इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्ता दी गयी । मुस्लिम लीग ने प्रांतीय स्वायत्ता पर अधिक जोर दिया, ताकि उसे मुस्लिम आधिक्य वाले प्रान्तों में केन्द्र के नियंत्रण से मुक्त प्रान्त का लाभ मिल सके ।

1935 के अधिनियम का संघीय हिस्सा पूरी तरह असफल हो गया, क्योंकि सविनय अवज्ञा आंदोलन की असफलता से रजवाड़ों को केन्द्र में कांग्रेसी सरकार की सम्भावनाएँ नजर नहीं आयी। कांग्रेस ने भी इसका विरोध किया । प्रांतों वाला भाग 1 अप्रैल, 1937 से लागू करने की घोषणा की गयी । इस अधिनियम के अन्तर्गत 1937 में हुए प्रान्तीय चुनावों में कांग्रेस ने 1585 सीटों में से 711 पर विजय प्राप्त कर सबसे बड़े राजनीतिक दल की मान्यता अर्जित की । मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में कांग्रेस ने 482 आरक्षित सीटों में से 58 पर अपने उम्मीदवार खड़े किये और उसके 26 उम्मीदवार जीते । इस मामूली सफलता के बावजूद उसके लिए संतोष का कारण यह रहा कि उसकी प्रतिद्वन्द्वी मुस्लिम लीग का प्रदर्शन भी फिसड्डी साबित हुआ । मुस्लिम नेतृत्व का दावा करने वाली लीग को उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत में एक भी स्थान नहीं मिला । पंजाब प्रांत में 84 स्थानों में से केवल 2 और सिंध प्रान्त में 33 में से मात्र 3 स्थान ही हासिल

कर सकी । कांग्रेस ने बम्बई, मद्रास, बिहार, उड़ीसा, संयुक्त प्रांत और मध्य प्रान्त में पूर्ण बहुमत प्राप्त किया । बंगाल और असम में कांग्रेस ने सर्वाधिक स्थान अर्जित किये और शेष दो प्रान्तों – पंजाब और सिंध में कांग्रेस को नहीं के बराबर समर्थन मिला ।

करोड़ों भारतीयों में गांधी जी के प्रति निष्ठा और देशभक्तों के बलिदानों को याद करने का जज्बा था । साथ ही उन्हें कुछ सामाजिक आर्थिक बेहतरी की उम्मीद भी इन चुनावों से थी । इन चुनावों के इस पक्ष को भी हम नजरअंदाज नहीं कर सकते कि इसमें व्यय किया अधिकांश धन बिरला एवं डालमिया द्वारा उपलब्ध कराया गया था, जिससे आरंभ से ही कांग्रेस पर पूंजीपतियों की गिरफ्त का अंदाजा लगाया जा सकता है । अनुमानत एक उम्मीदवार पर 2000 रु. खर्च का आकलन किया गया था । कांग्रेस ने यह फैसला लिया था कि चुनावी खर्च की व्यवस्था स्वयं उम्मीदवार को करनी होगी । इससे यह साफ हो गया था कि किसान या आम–जन इस चुनाव में उम्मीदवार न हो सकेगा । बाद में बिहार के कांग्रेसी नेता ए. एन. सिन्हा ने यह माना कि उनके अधिकांश उम्मीदवार जमींदार थे । (टॉमलिंसन दै इण्डियन नेशनल कांग्रेस एण्ड द राज, पृ. 82) इस चुनाव में कांग्रेस में दक्षिण पंथी एवं वामपंथी दोनों पक्षों के वर्चस्व का संघर्ष भी था जिसका पता बिरला द्वारा गवर्नर जनरल लिनलिथगो के सचिव को लिखे पत्र से चलता है । पत्र में बिरला ने कांग्रेस की सफलता को दक्षिण पंथ की महान उपलब्धि बताया था ।

निर्वाचन के बाद कांग्रेस पर प्रान्तों में सरकारों के गठन के लिए दबाव पड़ने लगा । इस मामले में दो प्रश्न प्रमुखता से उठे – (1) मंत्रिमण्डल में बहुसंख्यक दल के सदस्य ही या अन्य दलों के सहयोग से मिला–जुला रूप हो । यह प्रश्न केवल कांग्रेस बहुमत वाले राज्यों में ही था । अन्य प्रान्तों में तो एक दल की सरकार बनना सम्भव ही न था । (2) दूसरा .बड़ा प्रश्न प्रान्तीय गवर्नरों की असीम शक्तियों से उत्पन्न हुआ था। वे अपनी शक्तियों के बल पर दैनिक प्रशासन में हस्तक्षेप कर सकते थे । अत मार्च, 1937 के अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में पटेल और राजेन्द्र प्रसाद का सशर्त सरकार गठन का प्रस्ताव आया । इसमें गवर्नरों से दैनिक प्रशासन में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन मांगा गया । अन्ततः गवर्नर जनरल से अहस्तक्षेय का आश्वासन मिलने पर 1937 के ग्रीष्म में बहुमत वाले राज्यों में कांग्रेस मत्रिमण्डलो का निर्माण, उस संविधान के अन्तर्गत हुआ जिसकी बरसों से हर कोई भर्त्सना करता चला आ रहा था। कुछ ही महीनों मे उत्तरपश्चिमी सीमा प्रांत में भी कांग्रेस ने सत्ता संभाल ली । 1938 के सितम्बर में असम में भी चालबाजी, गुटबंदी और दलबदल के चलते कांग्रेस ने मंत्रिमण्डल का गठन कर लिया । मुस्सिम लीग को सत्ता में सहयोगी न बनाकर कांग्रेस ने एक बड़ी भूल की । सत्ता में आने के बम कांग्रेस ने विभिन्न जेलों में बंद राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया । हरिजन उद्धार, शराबबंदी और 'प्राथमिक शिक्षा की ओर इन राज्यों में काम किया गया । प्रांतों में लोकप्रिय सरकारों के गठन से रजवाड़ों में सामन्तशाही–विरोधी एवं प्रगतिशील आंदोलनों ने जोर पकड़ा । लेकिन इन सरकारों के नकारात्मक पहलू भी थे । कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य की मांग करने वाली पार्टी थी। 1935 के अधिनियम का काँग्रेस ने कड़ा विरोध किया था, अब वही इक्के अधीन प्रांतों में शासन चला रही थी इसके अलावा अल्प समय में ही कांग्रेसी शासकों में वे बुराइयों घर करने लगी थी, जो आमतौर पर सत्तानसीन लोगों में होती है ।

1939 में त्रिपुरी अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्षीय चुनाव में सुभाष चन्द्र बोस ने संघ के विरुद्ध व्यापक देशव्यापी संघर्ष का मसौदा पेश किया और दक्षिण पंथी नीतियों की कड़ी आलोचना

की। त्रिपुरी में सुभाष चन्द्र बोस गांधीजी समर्थित पट्टाभि सीता–रमैया को 1377 के मुकाबले 1580 मतों से कांग्रेस अध्यक्ष बने । उन्होंने संघीय योजना को निरस्त करते हुए, "राष्ट्रीय मांग" का प्रस्ताव पारित किया । अधिवेशन की घोषणा में कहा गया कि संघीय योजना का कांग्रेस विरोध करेगी। बोस ने प्रस्ताव पारित कर गांधीजी के नेतृत्व में भी आस्था प्रकट की। लेकिन कार्यकारिणी में सदस्यता के मसले पर वे गांधीजी से समझौता न कर सके और परिणाम स्वरूप बोस ने इस्तीफा दे दिया और डी. राजेन्द्र प्रसाद कांग्रेस अध्यक्ष बने। बोस ने नये राजनीतिक दल फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना की ।

20.3 विश्व युद्ध और भारत

3 सितम्बर 1939 को द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया । और गवर्नर जनरल ने बिना राज्यों के मत्रिमण्डलों की सहमति के भारत को युद्ध में झाँक दिया । कांग्रेस ने इसका विरोध किया और युद्ध में सम्मिलित होने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। कांग्रेस का मत था कि विश्व में लोकतंत्र और स्वतंत्रता को बचाने का प्रयास स्वतंत्र भारत ही कर सकता है । इसलिए कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से युद्ध समाप्ति पर भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा का स्पष्ट आश्वासन माँगा । लार्ड लिनलिथगो ने कांग्रेस के इस प्रस्ताव का गलत अर्थ निकाला और भारत सचिव ने इसे कांग्रेस की सौदेबाजी माना । गांधी, नेहरू एवं पटेल, ने गवर्नर जनरल से मिलकर कांग्रेस के विचार को स्पष्ट किया । लिनलिथगो ने अपने मित्रो – मुस्लिम लीग और देशी राज्यों – को खुश करते हुए भारतीयों को युद्ध समाप्ति के बाद अधिराज्य देने की 17 अक्तूबर 1939 को घोषणा की। इससे कांग्रेस को धक्का लगा। 22 अम्बर 1939 को कांग्रेस कार्यसमिति ने ब्रिटिश रवैये का विरोध करते हुए कांग्रेस मंत्रिमण्डलों को त्यागपत्र देने का निर्देश दिया फलत : कांग्रेस के सभी मंत्रिमंडलों ने त्याग पत्र दे दिया। लिनलिथगो के दुराग्रह के अतिरिक्त 1939 के अंत में त्यागपत्र के लिए अन्य कारण भी विद्यमान थे । कांग्रेस के सत्ता में बने रहने से उसकी छवि पर निरन्तर बुरा असर पड़ रहा था, क्योंकि सुभाष से अलगाव के बाद अब किसान–मजदूरों से अब निरन्तर अलगाव का सामना करना पड़ रहा था । साथ ही युद्ध–विरोधी प्रदर्शनकारियों पर भी कांग्रेस की नई आपात शक्तियों का प्रयोग करना पड़ सकता था । विश्वयुद्ध के कारण यह खतरा उपस्थित हो गया था।

1940 ई. में युद्ध में ब्रिटिश पक्ष कमजोर हो रहा था । इस दौरान गांधीजी ने कहा, "हम अपनी आजादी ब्रिटिश बर्बादी में तलाश नहीं करते ।" कांग्रेस ने पूना में 7 जुलाई, 1940 को एक प्रस्ताव पारित कर ब्रिटिश सरकार को सशर्त सहयोग की पेशकश की । शर्त यह थी कि युद्धोपरान्त भारत को पूर्ण स्वतंत्रता दी जाए और केन्द्र में सभी राजनीतिक दलों की एक अंतरिम सरकार तुरन्त गठित की जाय । इसी समय चर्चिल ब्रिटेन में प्रधानमंत्री बने और एमरी भारत सचिव, जो भारत के प्रति अनुदार रुख के लिए जाने जाते थे । इससे मंत्रिमण्डल में एटली एवं क्रिप्स जैसे लेबर नेता प्रभावहीन हो गये, जो भारतीय संघर्ष के प्रति उदार थे । जून, 1939 में मिस ने नेहरू एवं मेनन को आश्वासन दिया था कि ब्रिटिश हितों की सुरक्षा की गारकी पर लेबर सरकार भारत की सत्ता सार्वत्रिक वयस्क मताधिकार पर आधारित संविधान सभा को पूर्णरूपेण हस्तान्तरित कर देगी । (इम्पीरियलिख्य एंड ब्रिटिश लेबर, पृ. 25 7– 59, पी एस. गुप्ता) 8 अगस्त, 1940 लिनलिथगो ने एक घोषणा की । इस घोषणा में कहा गया कि -

1 गवर्नर जनरल की परिषद का तुरन्त विस्तार किया जायेगा, जिसमें विभिन्न दलों के तथा विचारधाराओं के व्यक्ति शामिल किये जायेगे ।

2 अल्पसंख्यकों की सहमति के बिना सरकार कोई भी सांविधानिक परिवर्तन लागू नहीं करेगी ।

3 युद्ध समाप्ति के बाद विभिन्न भारतीय हितो एवं दलों के प्रतिनिधियों की एक बैठक बुलाकर सांविधानिक विकास पर विचार किया जायेगा ।

इस घोषणा में पूना प्रस्ताव का कहीं जिक्र न था । इस प्रकार इस घोषणा ने पहली बार अल्पसंख्यकों की समस्या को भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता की एक बाधा बनाकर खड़ी कर दिया गया । इस घोषणा ने बहुमत का भविष्य अल्पमत के हाथों गिरवी रख दिया । इस घोषणा ने अल्पसंख्यकों को जो निषेधाधिकार प्रदान किया, उसने देश के बँटवारे के लिए बीजवपन का कार्य किया । लिनलिथगो की युद्ध कालीन नीतियों एवं मुस्लिम लीग के दावों को बढ़ावा देने की प्रति संतुलन की नीति ने जिन्ना को हठी एवं दुराग्रही बना दिया था । कांग्रेस जो ब्रिटिश सुरक्षा के प्रति सजग थी और युद्ध–सहयोग को तत्पर थी, का विश्वास अंग्रेज कूटनीति से उठ गया । इस घोषणा का विरोध कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के द्वारा किया और देशवासियों से युद्ध में सहयोग न करने को कहा। 9 सितम्बर 1941 की इस घोषणा से कि अटलांटिक चार्टर (मित्र राष्ट्रों के युद्ध उद्देश्यों का घोषणा–पत्र) भारत पर लागू नहीं होगा । रहा–सहा विश्वास भी खत्म हो गया। इस घोषणा के बाद भारतीय नेताओं का यह विश्वास दृढ़ से दृढ़तर हो गया कि अंग्रेज भारतीय स्वतंत्रता के प्रति ईमानदार नहीं है।

1941 ई. की दो अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भारतीय स्थिति को बदल कर रख दिया। ये थी –रूस पर हिटलर का आक्रमण और 1941 के अन्त में जापान का दक्षिणपूर्वी एशिया में अभूतपूर्व अभियान । जापान द्वारा आनन–फानन में अंग्रेजों को मलाया, सिंगापुर और बर्मा में करारी शिकस्त से भारत में अंग्रेजी नैया डूबती नजर आने लगी । ऐसा नहीं था कि भारत को आजाद करवाने के जापानी प्रचार को सच मान लिया गया था । वे जापान को भी एक अन्य सामाजवादी के रूप में ही देखने थे । इन घटनाओ का इतना प्रभाव अवश्य हुआ कि ब्रिटिश अपराजेयता की पोल खुल गयी । रूस पर जर्मन आक्रमण ने भारतीय कम्युनिस्टों को बड़ी उहापोह एवं उलझन की स्थिति में डाल दिया । दूसरी ओर अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति में कोई बदलाव नही आया। यह पूर्ववत दमनकारी एवं प्रतिक्रियावादी बनी रही । इस समय ब्रिटेन ही रूस का एकमात्र मित्र देश रह गया था जो स्वयं भी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा था । सी पी आई ने 6 माह की कशमकश और हिचकिचाहट के बाद जनवरी, 1942 में विश्व–आंदोलन से अपनी एकजुटता घोषित की । इसके साथ ही उसने कांग्रेस की स्वतंत्रता एवं तत्काल राष्ट्रीय सरकार गठित करने की मांग को भी दोहराया।

8 मार्च 1942 को रंगून जापानी अधिकार में आ गया और भारत पर जापानी आक्रमण का आसन संकट आ उपस्थित हुआ । इन सारी परिस्थितियों के दबावों के बीच चर्चिल ने बाध्य होकर सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत भेजने की घोषणा की । इस घोषणा के पीछे ब्रिटेन पर अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट का दबाव भी था । साथ ही चर्चिल की भारतीय जनमत को अपने साथ लेने की कोशिश भी स्पष्ट थी ।

20.4 क्रिप्स मिशन

सर स्टेक्र्स क्रिप्स 23 मार्च, 1942 को दिल्ली पहुंचा । क्रिप्स ने 30 मार्च को अपनी योजना घोषित की । इसके दो भाग थे । पहला, युद्ध समाप्ति के बाट भारत में डोमिनियन राज्य स्थापित करना था और दूसरे भाग में यह घोषणा थी कि युद्ध समाप्ति रर एक संविधान सभा बुलाकर, जिसमें भारतीय राज्यों के प्रतिनिधि भी शामिल होंगे, नवीन संविधान की रूपरेखा बनायी जायेगी तथा ब्रिटिश सरकार उसे निम्न दो शर्तों के साह लागू करेगी -

1 यदि कोई प्रांत उसे स्वीकार नही करे तो वह अपनी वर्तमान स्थिति में रह सकता है और यदि वह राज्य पूर्ण स्वतंत्रता चाहे, तो अंग्रेज सरकार को कोई आपत्ति न होगी।

2 ब्रिटेन और संविधान सभा में एक संधि होगी, जिसमें अंग्रेजी सरकार द्वारा धार्मिक एवं जातीय अल्पसंख्यकों को दिये गये आश्वासनों का व्यौरा होगा । यदि कोई भारतीय राज्य नये भारतीय संविधान को स्वीकार करना चाहे, तो उसे अंग्रेजों के साथ एक नई संधि करनी होगी।

यह भी घोषित किया गया कि इस संविधान सभा का निर्वाचन नई निर्वाचित, प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों का निर्वाचन मण्डल बनाकर किया जायेगा । इस संविधान सभा के सदस्यों की संख्या विभिन्न प्रान्तों के सदस्यों की कुल संख्या के 1/10 के बराबर होगी। दूसरे भाग में इस बात पर बल दिया गया कि युद्ध के दौरान भारत की सुरक्षा का नियंत्रण एवं निर्देशन अंग्रेजों के हाथ में रहेगा । अंग्रेजों को विश्वास था कि बिना भारत सरकार एवं भारतीय नेताओं के सहयोग के उन्हें भारतीय जन–बल एवं धन–बल की सहायता नही मिलती। अत: भारतीय नेताओं से सक्रिय सहयोग देने का न्यौता दिया गया ।

क्रिप्स योजना के बारे में पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा कि प्रस्ताव में विभिन्न हितों को संतुष्ट करने के लिए कुछ–न–कुछ था । क्रिप्स मिशन अपने आरंभ से ही गलतफहमियों एवं अस्पष्टता का शिकार रहा और अंततः ये ही उसे ले डूबे। चर्चिल ने लिनलिथगो को अश्वासन दिया कि क्रिप्स प्रारूप की घोषणा ही उनकी अंतिम सीमा है । लेकिन ऐसा लगता है कि क्रिप्स ने अपनी सीमा लाँघकर नेहरू एवं आजाद से बातचीत के दौरान आगे बढ़कर वार्ता को सकारात्मक बनाया । इसके पीछे उनकी समझौते की इच्छा और कांग्रेस का सकारात्मक नजरिया रहा । लेकिन कांग्रेस की उन उपबंधों की आलोचना उचित एवं समीचीन थी जिनमें रजवाड़ों के प्रतिनिधियों के नामांकन और प्रांतों के संघ में ऐच्छिक रूप से शामिल होने की बात थी । नेहरू एवं आजाद ने, जो कांग्रेस की ओर से वार्ताकार थे, बातचीत को तात्कालिक परिवर्तनों के इर्द–गिर्द केन्द्रित रखा। 3 अप्रैल को कांग्रेस ने यह मान लिया कि "वह किसी भी क्षेत्र के निवासियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध भारतीय संघ में शामिल किये जाने की इछुक नहीं है । " (ट्रांसफर ऑफ पावर, खण्ड 1, पृ. 446–47) क्रिप्स ने नेहरू को यह भी आश्वासन दिया था कि गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी – मंत्रिमण्डल के समान कार्य करेगी । लेकिन लिनलिथगो इसके लिए राजी नहीं हुआ और चर्चिल भी वास्तविक सत्ता हस्तांतरण को तैयार न था । अत: उसने क्रिप्स के आश्वासनों को नामंजूर कर दिया । परिणामत : क्रिप्स मिशन असफल हो गया । क्रिप्स ने इसका भॉडा कांग्रेस के सिर फोड़ा । उसने कहा यदि कांग्रेस की मांगे स्वीकार कर ली जायें, तो उसका अर्थ मुस्लिम जनता व अछूतों पर हिन्दुओं के प्रभुत्व की स्थापना करना होगा । इससे मुस्लिम वर्ग में कांग्रेस के प्रति अविश्वास एवं संदेह और बढ़ गया ।

क्रिप्स की असफलता के बावजूद वह पाकिस्तान की मांग को सार्वजनिक रूप से उठाने और कांग्रेस एवं अलासंख्यकों के बीच खाई को और चौड़ा करने के कारण महत्वपूर्ण बन गया । दूसरी ओर चर्चिल ने इसका राजनैतिक लाभ उठाया और रूजवेल्ट के दबाव को खत्म करने में सफल रहा । चर्चिल ने क्रिप्स की असफलता का दोष भारतीय नेताओं के मतभेद और महत्नाकाक्षाओं के सिर मढ़ा। वस्तुतः चर्चिल की साम्राज्यवादी नीति ही क्रिप्स की असफलना के लिए जिम्मेदार थी। उसने दोहरी चाल चली और "उसके (चर्चिल) लिए कुछ किया जाना उतना जरूरी नही था, जितना यह कि कुछ किये जाने का प्रयास होता हुआ दिखे।" (टीम लिन्सन, "द इण्डियन नेशनल कांग्रेस एंड द राज" पृ. 156)

20.5 भारत छोड़ो आन्दोलन

क्रिप्स मिशन की असफलता से यह बात साफ हो गयी थी कि अंग्रेज बिना संघर्ष के कुछ देना नहीं चाहते है । इस पर बढ़ता जापानी आक्रमण का खतरा, मलेशिया से पलायन करके आये भारतीयों के प्रति अंग्रेजों का दुर्व्यवहार तथा युद्धजनित महंगाई ने लोगों के असंतोष को अपने चरम पर पहुंचा दिया था । गांधी जी जनता की इस व्यग्रता को समझने और उसकी नब्ज पहचानने का प्रयास कर रहे थे । वे संघर्ष की अपरिहार्यता को देख रहे थे। वे अंग्रेजों से बार–बार कह रहे थे कि भारत को ईश्वर या अराजकता के भरोसे छोड़ दो। "इस सुव्यवस्थित अनुशासनपूर्ण अराजकता को जाना ही होगा और यदि इसके परिणाम स्वरूप पूर्ण अराजकता की स्थिति होती है, तो मै यह खतरा उठाने के लिए तैयार हूँ।' (16 मई, 1942 को गांधी जी के प्रेस साक्षात्कार की लिनलिथगो द्वारा एमरी को रिपोर्ट; मैगर्स, खण्ड– 2, पृ. 96) गांधी जी ने 3 मई के हरिजन में लिखा था, "यदि अंग्रेज भारत से चले जाते है, तो जापानी अवश्य अपनी योजनाओं पर पुनर्विचार करेंगे।" गांधीजी ने कांग्रेस वर्किंग कमेटी के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि अंग्रेज भारत से नियंत्रण हटा लें, तो भारतीय जनता विदेशी आक्रान्ताओं का सामना करने के लिए हर प्रकार का सहयोग करने को तैयार है। 14 जुलाई, 1942 को यह प्रस्ताव कांग्रेस द्वारा पारित किया गया यदि अंग्रेजों ने अपना शासन समाप्त नहीं किया, तब अहिंसक असहयोग की नीति अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति अपनायी जायेगी । अंतिम निर्णय हेतु प्रस्ताव ए आइ सी सी. पर छोड दिया गया । ए आइ सी सी की 7 अगस्त को बबई में बैठक हुई दिनमें 8 अगस्त कौ 'भारत छोड़ो ' प्रस्ताव पास कर दिया गया । इस प्रस्ताव में जनांदोलन एवं अहिसात्मक सत्याग्रह को अपनाने की बात कही गयी । प्रस्ताव में कहा गया कि अहिंसक रूप सें जितना सम्भव हो उतने बड़े स्तर पर जन–संघर्ष किया जाय । इसमें नेतृत्व की कमान गांधी जी को सौंपी गयी। इसमें यह भी शामिल किया गया कि यदि कांग्रेस के सभी लो गिरफ्तार हो जायें तो "स्वाधीनता की इच्छा एवं प्रयास करने वाला प्रत्येक भारतीय स्वयं अपना मार्गदर्शक बने, प्रत्येक भारतीय अपने को स्वाधीन समझे"। केवल जेल जाने से ही काम नही चलेगा। 'गांधी जी ने अपने अभिभूत कर देने वाले भाषण में 'करो या मरो' का नारा दिया । "यदि आम हड़ताल करना आवश्यक हो, तो मै उससे पीछे नही हटूँगा।" गांधी जी का यह उग्र वक्तव्य उनके 6 अगस्त के साक्षात्कार में दिया था, जो उनके स्वभाव से मेल नहीं खाता था । यह वस्तुत उस समय की संघर्षशील उद्धत जनता को आवाज की प्रतिध्वनि था ।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की आठ अगस्त की बैठक मध्यरात्रि में समाप्त हुई और 9 अगस्त के सूर्योदय से पहले ही सभी कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये । जनता

को जब यह समाचार मिला, तब एक स्वत स्फूर्त जन–आंदोलन उमड़ पड़ा जिसका आकलन कांग्रेसी नेता भी न कर पाये थे । दरअसल भारत छोड़ो 'प्रस्ताव में भावी आन्दोलन की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी और इसमें आगे बातचीत के मार्ग भी अवरूद्ध नहीं थे । बावजूद अस्पष्टता एवं अनिश्चित रणनीति के और केन्द्रीय नेतृत्व के अभाव में इतना व्यापक और विस्फोटक आंदोलन के फूट पड़ने का कारण लिनलिथगो की कट्टर साम्राज्यवादी दमनकारी नीति थी । बड़े पैमाने पर दमन ने आम जन को झकझोर दिया और लोगों ने देशभर में हड़ताले की, जुलूस निकाले और बंद के आयोजन किये। अंग्रेजों ने दमन चक्र चलाया । एक सप्ताह में ही प्राय सभी स्थानीय कांग्रेसी नेता जेलो में डाल दिये गये । सरकार ने अहिंसक और शान्त प्रदर्शनकारियों का बर्बरतापूर्ण दमन किए । साम्राज्यवादी अंग्रेजों को विश्वास था कि इस तरह वे आदोलन को कुचलने में कामयाब हो सकेंगे। लेकिन इस दमन के दुष्परिणाम उन्हें शीघ्र ही झेलने पड़ गये। 11 अगस्त से ही देश के विभिन्न भागों में स्थिति बेकाबू होने लगी । सरकार में भय एवं आतंक समाने लगा और उसने आदोलन को पूरी शक्ति से दबाने का प्रयास किया । सरकारी ऑकड़ों के अनुसार 538 बार गोलियॉ चलायी गयी, जिससे 1028 निर्दोष लोग मारे गये, 3,200 लोग घायल हुए और 70 हजार से अधिक लोगों को जेल में डाला गया । बौखलायी सरकार ने कई बार हवाई गोलाबारी भी की, यहां तक कि घबराहट में एक बार रेल लाइन पर कार्यरत श्रमिकों पर भी हवाई हमला किया गया ।

स्पष्टत: उकसावे की कार्यवाही अंग्रेजों की तरफ से हुई थी । वस्तुत अंग्रेज नौकरशाही ने समझौते के सभी प्रयत्नों को असफल बना दिया था और कांग्रेस का दमन करने को कमर कसे हुए थी । जिसका परिणाम भी उन्हें भोगना पड़ा । 31 अगस्त को चर्चिल को भेजे गये तार में लिनलियगो ने स्वीकार किया कि "यह 1857 के बाद सबसे गम्भीर विद्रोह था जिसकी गम्भीरता एवं विस्तार को हम अब तक सैन्य सुरक्षा की दृष्टि से दुनिया से छुपाये हुए है।

20.5.1 आन्दोलन का स्वरूप

वस्तुत: 1942 के आंदोलन के लिए कोई पूर्व तैयारी नहीं थी और इस मायने में यह आंदोलन स्वत स्फूर्त जनांदोलन कहा जायेगा कि प्रमुख प्रथम और दूसरी पंक्ति के नेतृत्व के बिना लोगों ने विशाल पैमाने पर शान्त और अहिंसक प्रदर्शन किये । लेकिन बाद की उग्रता के लिए स्वयं अंग्रेजी दमन चक्र उत्तरदायी था । इस आंदोलन का विस्तार विद्यार्थियों, किसानों और निम्न मध्यवर्ग तक व्यापक रूप से फैला था श्रमिकों की भागीदारी इसमें नगण्य थी, क्योंकि कम्युनिस्ट दलों ने इससे दूरी रखी थी । जुलाई, 1942 से पूर्व जो युद्ध सामाज्यवादी था, कम्युनिष्टो के लिए वह अब जन–युद्ध हो गया था और परिणाम स्वरूप उन्होंने युद्ध प्रयासों का समर्थन किया । कहा जा सकता है कि कम्युनिस्टों ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से प्रभावित होकर राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति अपना रुख बदल लिया था।

बिहार में इस आंदोलन का नेतृत्व जय प्रकाश नारायण ने किया । लोगों ने कई सप्ताहों तक प्रशासन अपने हाथ में ले लिया था। लगता था मानों अंग्रेज राज का नामोनिशान नहीं रहा । लेकिन थोड़े ही समय में मैना एवं पुलिस ने नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। नृशंसता एवं निर्ममता से दमनात्मक कार्यवाही की गयी । पूर्वी यू. पी. भी इस आदोलन का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा । बलिया, आजमगढ़, गाजीपुर, जौनपुर आदि जिलों में जनता ने अपना शासन स्थापित कर

लिया । लेकिन शोघ ही सेना ने नियंत्रण कर लोगों को अमानवीय यातनाएँ दी। गाँवों को लूटा और जलाया गया । दक्षिणी भारत, पंजाब, सिंध, राजस्थान, उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त में आंदोलन बहुत कम प्रभावी रहा, वहीं बंगाल, मध्य प्रान्त और उड़ीसा आंदोलन प्रभावी रहा ।

यह मात्र संयोग नहीं था कि बिहार एव पूर्वी–पश्चिमी संयुक्त प्रान्त में आंदोलन अपनी चरम परिणति तक पहुँचा । यह क्षेत्र दक्षिण एशिया एवं विश्व के अन्य भागों में भेजे जाने वाले श्रमिकों का स्रोत भी थे । अन यहां लोगों में अंग्रेजों के प्रति स्वाभाविक गुस्सा था कि अंग्रेजों ने प्रवासी–श्रमिकों को विदेशी आक्रांता के रहमोकरम पर छोड़कर कायरतापूर्ण पलायन किया । कठिन परिस्थितियो में जंगलों एवे पहाड़ों को लांघकर आने वाले परिजनों की दुर्दशा से लोगों मे व्यापक आक्रोश था । बर्मा के मोर्चे से घायलों से भरी रेलगाड़ियों ने भी लोगों का गुस्सा भड़काया इसके अतिरिक्त कुछ आर्थिक तत्व भी थे । प्रवासी भारतीय श्रमिकों द्वारा भेजे जाने वाले धन का स्रोत खत्म हो गया था । अकेले आजमगढ़ में तीस लाख रुपये प्रवासी श्रमिकों द्वारा मनिआर्डर से भेजा जाता था । विश्व–युद्ध ने उस पर मंहगाई को बेतहाशा बढ़ा दिया था । अंग्रेजों ने जहां अपने देश में युद्ध के दौरान खाद्यान्न–वितरण पर कठोर नियन्त्रण रखा वही भारत मै मुनाफाखोरों एवं जमाखोरों को खुली छूट दी । विदेशी सैनिकों के भारत में जमावड़े ने भी खाद्य–समस्या को और विकराल बना दिया था, जबकि इस युद्ध से भारतीयों का कोई लेना–देना नहीं था । इसके भयंकर दुष्परिणाम अकाल और भुखमरी के रूप में 1943 में बंगाल के लोगों को झेलने पड़े। नौकरशाही का कुप्रबंध इतना हावी था इसका उदाहरण बंगाल में देखने को मिला, जहां हुक्म जारी किया कि लोगों की नावें जब्त कर उन्हें नष्ट कर दिया जाय। जापानियों के भय से आतंकित अंग्रेज नौकरशाहों को विश्वास नहीं था कि वे असम व बंगाल को बचा सकेंगे । इसके विरुद्ध हरिजन में गांधीजी ने लिखा– "पूर्वी बंगाल में लोगों से उनकी नावें छीन लेना शरीर के किसी महत्वपूर्ण अंगों को काट देना जैसा था । " (3 मई, 1942 का गांधीजी का लेख, हरिजन ' में)

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बंगाल व पूर्वी यू पी में यह आदोलन क्यों इतना उग्र था और अपने स्वरूप में यह क्यों स्वत स्फूर्त आंदोलन था ।

1942 को आंदोलन अहिंसात्मक आंदोलन न रह सका था । गांधीजी द्वारा लम्बी अवधि से अहिंसा के प्रचार के बावजूद आंदोलन हिंसात्मक हो गया था । इसका पहला कारण तो कोई भी प्रतिष्ठित नेतृत्व इस आंदोलन को उपलब्ध नहीं था, क्योंकि सभी नेता आंदोलन शुरू होने से पहले ही धर लिये गये थे । अत: जनता ने अपनी चेतना से ही इसमें भाग लिया और लाखों लोगों ने अपूर्व साहस एवं सहनशीलता का परिचय दिया । सैकड़ों युवाओं ने इस आंदोलन में तिरंगे की शान में शान्त चित अपना बलिदान देश की स्वंतत्रता की बलिवेदी पर कर दिया था ।

दो महीने के बर्बर दमन एवं अमानवीय प्रतिशोध द्वारा इस आंदोलन को कुचल दिया गया। गांधीजी को इस बात की जरा भी आशंका न थी कि अंग्रेज इतनी तीव्रता से कार्यवाही करेंगे। गांधीजी एवं कांग्रेस पर अंग्रेजों ने इस आंदोलन को संचालित करने का आरोप मढ़ा । गांधीजी ने स्वयं इस आरोप को बेबुनियाद बताया और तीन सप्ताह के लिए उपवाश रखा । गांधीजी एवं कांग्रेस पर आरोप लगाने के पीछे अंग्रेजों की मंशा जनता को गुमराह करने एवं कांग्रेस से विमुखता पर आधारित थी । लेकिन इस गलत आकलन का अंदेशा उन्हें 1946 के निर्वाचनों से मिला, जिसमें जनता ने कांग्रेस के प्रति अटूट आस्था प्रकट की।

20.5.2 आन्दोलन का महत्व

यह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आन्दोलन था, जिसने स्वतंत्रता की राह बनायी और भारतीय जनता के व्यापक हिस्सों को आंदोलित किया । यद्यपि त्वरित कार्यवाही कर इसे दबा दिया गया और यह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ, तथापि एक जन–आंदोलन के रूप में इसका महत्व उल्लेखनीय रहा। इसने समाज जन में स्वतंत्रता चेतना का उभार पैदा करने का अति महत्वपूर्ण कार्य किया और यह जब्त–चेतना ही स्वतंत्रता की गारन्टी था। यह इस बात का पक्का प्रमाण था कि भारतीय जनता अब और गुलामी को सहने को तैयार नहीं थी । अब वह परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ने को अधीर थी । दूसरी ओर इस आंदोलन ने अंग्रेजों के युद्ध प्रयासों को कमजोर किया। हड़तालों और प्रदर्शनों के कारण सैनिकों के लिए उत्पादित कपड़ा 45 प्रतिशत एवं चमड़े को वस्तुएँ 50 प्रतिशत कम उत्पादित हुई।यह कहना भी गलत न होगा कि बर्मा की सीमा पशु अंग्रेजी हार का यह आंदोलन एक महत्वपूर्ण कारक था ।

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में अहिंसा एवं सत्याग्रह के साथ सशस्त्र क्रान्ति की भी एक धारा रही। 1920–30 के मध्य विभिन्न प्रान्तों में अहिंसक आंदोलित से उपजी जड़ता को तोड़ने के लिए क्रान्तिकारी आन्दोलन की भूमिका महत्वपूर्ण थी। "इंकलाब जिन्दाबाद" का औजस्वी नारा क्रान्तिकारियों की देन था । इस नारे ने स्वतंत्रता के लिए युवाओं में आजादी का जोश पर दिया था। यह आंदोलन सोवियत रूस मे हुई क्रान्ति से अनुप्राणित थी । भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा असेम्बली में फेंका बम वस्तुत भारतीय जनता में पनप. रहे असंतोष की परिणति था । स्वयं कांग्रेस में भी एक वामपंथी धारा थी, 1939 में सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में प्रमुखता से उभरी, लेकिन गांधी जी एवं अन्य नेताओं से तीव विरोध होने के कारण नेताजी ने फॉरवर्ड ब्लॉक बनाया । 1940 ई. में उन्हें कैद कर लिया गया । गिरते स्वास्थ्य के उन्हें कैद कर लिया गया । गिरते स्वास्थय के उन्हें अपने मकान में ही नजरबंद रखा । वे अंग्रेजी सरकार को धत्ता बताते हुए, 38 मार्च, 1941 को पैशावर, काबुल, मास्को होते हुए बर्लिन पहुंच गये । सुभाष ने हिटलर के साथ मिलकर अंग्रेजों के साथ कड़ा विरोध किया ।

एक निर्वासित क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस ने टोक्यो में 28–30 मार्च 1942 में हुए एक सम्मेलन में "इण्डियन नेशनल आर्मी" के गठन का निर्णय लिया। साथ ही इण्डियन लीग का भी गठन किया, जिसमें प्रवासी भारतीय शामिल थे। इस लीग का 1942 में बैकाक सम्मेलन हुआ जिसमें एक प्रस्ताव द्वारा सुभाष चन्द्र बोस को पूर्वी एशिया आने का आमंत्रण दिया गया। जापानियों द्वारा 1941 के दिसम्बर में मलाया में बंदी बनाये गये कजान मोहन सिंह के नेतृत्व में "इण्डियन नेशनल आर्मी" का गठन किया गया । विधिवत् रूप से 1 सितम्बर 1942 को आई एन .ए. (आजाद हिन्द फौज) की स्थापना हुई । 1943 में सुभाष जर्मन पनडुब्बी से गुप्त यात्रा पर जापान पहुंचे । 4 जुलाई, 1943 को नेताजी ने आई एन .ए. और 'इण्डियन लीग" की कमॉन अपने हाथ में ले ली । दिल्ली कूच के अपने औजस्वी भाषण में उन्होंने भावपूर्ण नारा दिया 'तुम मुझे खून दो मै तुम्हें आजादी दूँगा।' 21 अक्ट्रबर 1943 को बोस ने अस्थायी सरकार का गठन सिंगापुर में किया। फरवरी, 1944 से जून', 1944 तक आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियों ने शाहनवाज खां के नेतृत्व में जापानियों के साथ मिलकर भारत–बर्मा सीमा पर अंग्रेजों से युद्ध

लड़ा। जून, 1944 के बाद जापान की प्रगति अवरुद्ध हो गयी और 1945 में आजाद हिन्द फौज के कमाण्डरों एवं सैनिकों को बंदी बना दिया गया। 18 अगस्त 1945 को सुभाष चन्द्र बोस की कथित रूप से विमान दुर्घटना में मृत्यु हो गयी।

यद्यपि 'आजाद हिन्द फौज' एक अत्यन्त सीमित समय तक सक्रिय रही और कोई बड़ी सैनिक उपलब्धि हासिल न कर सकी । लेकिन जब अंग्रेजों ने गिरफ्तार सैनिकों एवं अधिकारियों पर लाल किले में मुकदमा चलाया गया, तो इन स्वतंत्रता के योद्धाओं के समर्थन में सारे भारत में विरोध प्रदर्शन हुए। अंग्रेजों का मकसद 'आजाद हिन्द फौज' के सैनिकों को अपमानित करना था । लेकिन सभी भारतीय नेताओं ने विदेशी शासन के विरुद्ध इस संघर्ष की प्रशंसा की । आजाद हिन्द फौज राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गयी । नये परिवर्तित वातावरण में अंग्रेज इस बात को समझ गये कि अब वे सात समुद्र पार भारतीय सेना पर विश्वास नहीं कर सकते । इसका ज्वलन्त उदाहरण 1946 में नौसेना के विद्रोह के रूप में मिला । अंग्रेजों के भारत छोड़ने के निर्णय पर शायद इस कारक ने महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला था ।

20.6 सी आर. फार्मूला

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी मद्रास के एक अत्यन्त लोकप्रिय एवं यथार्थवादी नेता थे । कांग्रेस वर्किंग कमेटी द्वारा 10 अप्रैल 1942 को सिद्धान्ततः एवं परोक्ष रूप में मान लिया था । राजगोपालाचारी इसे स्पष्टत पारित करवाना चाहते थे । इस पर मतभेद होने के कारण उन्होंने 1943 में वर्किंग कमेटी एवं कांग्रेस दल से इस्तीफा दे दिया । 1943 के अम्बर में लिनलिथगो के स्थान पर वेवल गवर्नर–जनरल बन गये । राजगोपालाचारी ने साम्प्रदायिक समस्या के प्रश्न को हल करने के लिए 10 जुलाई, 1944 को एक फार्मूला घोषित किया, जो सी आर फार्मूला' के नाम से जाना गया । इसमें निम्न बातें थी –

1. मुस्लिम लीग भारतीय स्वतंत्रता की मांग का समर्थन करे ।
2. युद्ध समाप्ति के बाद एक कमीशन उत्तर–पश्चिमी तथा उत्तरपूर्वी भारत में मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों का निर्धारण करे । उस क्षेत्र में जनमत द्वारा यह फैसला किया जाये कि वे भारत से अलग होना चाहते है अथवा नहीं ।
3. देश विभाजन की स्थिति में आवश्यक विषयों–प्रतिरक्षा, संचार, आवागमन – आदि के लिए दोनों में कोई समझौता हो जाये ।
4. ये बातें अंग्रेजों द्वारा भारत को पूर्णरूपेण स्वतंत्र कर देने की स्थिति में ही लागू होंगी ।

यह फार्मूला उस समय नेताओं के गले नहीं उतरा । लेकिन विडम्बना यह रही कि अंततः देश का विभाजन इसी फार्मूले के आधार पर हुआ ।

20.7 भारत विभाजन की पृष्ठभूमि और मुस्लिम लीग

"इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि भारतीय राजनीति में पृथक मुस्लिम पहचान को स्थापित करने में ब्रिटिश नीति ने प्रमुख भूमिका अदा की।" फ्रांसिस राबिन्सन का यह कथन इस सत्य की प्रतिध्वनि मात्र है कि भारत के विभाजन में मुस्लिम मानसिकता के साथ ही ब्रिटिश नीति 'बाँटो और राज्य करो' की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी प्रारंभिक शासन में अंग्रेजों ने मुसलमानों को शत्रु नम्बर एक माना क्योंकि मुसलमान ही उस समय शासक वर्ग था और 1857 का गदर भी अधिकांशतः मुस्लिम नेतृत्व में हुआ। 1843 में लार्ड एलेनबरा ने कहा था – "मै इस

तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता कि मुसलमान मूलत हमारे शत्रु है और हमें हिन्दुओं को मिलाकर रखने की नीति अपनानी चाहिये ।" (परुलेकर 'द फ्यूचर ऑफ इस्लाम इन इण्डिया ' एशिया जिल्द 28, पृ. 874, नवम्बर, 1928) और 18 5 7 के विद्रोह के बाद लार्ड एलफिंस्टन ने स्पष्ट रूप से अंग्रेजी नीति की घोषणा की थी, "लोगों में फूट डालो और शासन न करो, ऐसा रोमन लोगों का आदर्श था और यही हमारा भी आदर्श है ।" ।आर पी दत्त, 'इण्डिया टुडे ' (1940) पृ 3891 इस नीति के चलते मुसलमानों को फौज में ऊँचे ओहदों से दूर रखा । इससे उच्च और कुलीन मुस्लिमों का जीवन स्तर गिर गया क्योंकि सेना सेवा उनका मुख्य पेशा था । दूसरी ओर अंग्रेजी शिक्षा ने अरबी–फारसी को महत्वहीन कर दिया, इससे मुस्लिम बुद्धिजीवियों के जीवन पर प्रभाव पड़ा। और वे विरोध स्वरूप अंग्रेजी शिक्षा के विरोधी रहे । इससे मुस्लिम समाज में पिछड़ापन बढ़ा। इसके विपरीत हिन्दुओं में नई शिक्षा से लेस एक नये अंग्रेज परस्त मध्यवर्ग का उदय हुआ। यह वर्ग सरकारी नौकरियों एवं चिकित्सा और वकालत जैसे गैर परम्परागत पेशों में अग्रणी रहा। इसके साथ मुसलमानों का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से प्रभावशाली वर्ग मुख्यत उत्तरी भारत में था, जो अंग्रेजी सम्पर्क में देर से आया । फलत: उनमें नवीन–चेतना का विकास भी देर से ही आया ।

मद्रास, बंगाल व मद्रास में अंग्रेजी–व्यापार एवं संस्कृति का विस्तार पहले हुआ, अत बुर्जुआजी का उदय भी पहले हुआ । साथ ही यहां की हिन्दू बहुल आबादी में जन चेतना का विकास भी पहले हुआ । बंगाल में यद्यपि मुस्लिम अधिसंख्या में थे परन्तु अधिकांश किसान होने के कारण इन परिवर्तनों से अप्रभावी रहे । इन्हीं प्रदेशों में पहले नई अर्थव्यवस्था, यातायात के आधुनिक साधन एवं उद्योगों का विकास हुआ, जिससे औद्योगिक नगरों का पहले विकास हुआ और नई शिक्षा संस्थाएँ खुली । व्यापार एवं राजस्व जैसे महत्व का विभाग अंग्रेजों से पूर्व भी हिन्दुओं के पास ही थे अत हिन्दुओं ने नई व्यवस्था में जल्दी ही स्थान बना लिया और हिन्दुओं में अपेक्षाकृत पहले प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ।

सर सैयद अहमद खां (1817–98) पहले ऐसे व्यक्ति जिंहोने मुस्लिम वर्ग के पिछड़ेपन के कारण समझे और उन्हें संगठित करने और शिक्षा के प्रति आकर्षित करने का प्रयास किया । उन्होंने ही 'मोहमडन्स एंग्लो आरियरल कॉलेज' जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी बनी, की स्थापना की थी । यह विश्वविद्यालय बाद में एक आंदोलन बन गया जिसने मुस्लिम चेतना को जागृत किया । सर सैयद ने "द लॉयल मोहम्हन्स ऑफ इण्डिया" के द्वारा ब्रिटिश शासन एवं मुसलमानों के सम्बन्ध सुधारने का प्रयास किया। साथ ही उन्होंने कांग्रेस का विरोध कर अंग्रेज भक्ति दिखाकर अंग्रेजों का विश्वास अर्जित किया। सर सैयद ने ही मुसलमानों के लिए पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन की पैरवी कौंसिल सदस्य की हैसियत से की थी ।

राष्ट्रीय आंदोलन के गरमपंथी नेताओं ने सनातन हिन्दू धर्म को राष्ट्रीयता की भावना का पर्याय बनाया यह बात मध्यवर्गीय मुस्लिम चेतना को रास नहीं आयी । 1905 के बाद के राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय मुस्लिम हिस्सेदारी न होने के अन्य कारण भी थे । कांग्रेस के बहिष्कार आंदोलन ने ब्रिटिश पूंजीवाद को धक्का पहुंचाया वही भारतीय उद्योगों को लाभ, जहां अधिकांश हिन्दू थे । मुसलमान अधिकतर छोटे व्यापारी या विभिन्न पेशों में लगे थे उन्हें लाभ न होकर बहिष्कार के कारण सस्ती चीजों के स्थान पर महंगी देशी वस्तुएं खरीदनी पड़ रही थी । इससे वे आदोलनों से दूर रहे ।

कर्जन के बंगभंग ने हिन्दू–मुस्लिम एकता में दरार डालने का प्रयास किया। मुसलमानों को एक मुस्लिम बहुल प्रांत पाने का अवसर लगा, अत: मुसलमानों ने बंगभंग का विरोध करने वालों को मुस्लिम विरोधी माना। मुसलमानों में राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षिक पिछड़ेपन के बावजूद धीरे–धीरे राजनीतिक चेतना विकसित हो रही थी और ब्रिटिश प्रशासन की उपेक्षा से ब्रिटिश विरोध भी शनै: शनै बढ़ रहा था ।

20.7.1 लीग का उदय

1906 में मुसलमानों का पहला राजनीतिक संगठन मुस्लिम लीग के रूप में बना । आगा खां ने लीग की स्थापना से पहले एक शिष्ट मण्डल ले जाकर वायसराय मिन्टो से मुलाकात कर यह बात मनवा ली कि निर्वाचन की किसी भी योजना में मुसलमानों को एक सम्प्रदाय की हैसियत से अलग प्रतिनिधित्व दिया जायेगा । ठीक यही अंग्रजों की नीति "फूट डालो और राज करो" ने बढ़ती हिन्दू राजनीतिक चेतना के विरुद्ध मुस्लिम सम्प्रदायवाद के प्रति संकलन के रूप में ला खड़ा किया। लीग की स्थापना पर लार्ड मार्ले का विचार था कि पृथक निर्वाचन के दावे को लार्ड मिन्टो के समर्थन के कारण ही मुसलमानों ने अपने साम्प्रदायिक राजनीतिक संगठन की बात सोची । लार्ड मार्ले ने लार्ड मिन्टो को लिखा,. "मै मुसलमानों के बारे में आपसे दोबारा बहस नहीं करना चाहता, लेकिन मै एक बार फिर यह विनय निवेदन करना चाहूगा कि उनके अतिरिक्त दावे में आपने जो वक्तव्य दिया उसी से मुस्लिम खरगोश की यात्रा शुरू हुई ।. (मार्ले, पृ. 32 ')

मुस्लिम–लीग का उदय भारतीय राजनीति में एक अहम मोड़ था। लीग ने अपने निम्न उद्देश्य घोषित किये–

1 भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश भक्ति की भावना पैदा करना ।
2 भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक एवं दूसरे प्रकार के हितों की रक्षा करना एवं संयत भाषा में सरकार के समक्ष उनकी आवश्यकताएँ एवं आकांक्षाएँ प्रस्तुत करना ।
3 और जहां तक सम्भव हो, बिना (1) और (2) उद्देश्यों को हानि पहुँचाए मुसलमानों और भारत के अन्य सम्प्रदायों में मैत्री भाव को बढ़ाना ।

1909 के मार्ले–मिन्टो सुधार ने भारतीय मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों एवं प्रतिनिधित्व की व्यवस्था ने भारतीय संविधान में साम्प्रदायिक सिद्धान्त को मान्यता दिला दी । राष्ट्रवादियों ने इसका कड़ा प्रतिरोध किया। उन्होंने कहा कि इससे साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ेगा और राष्ट्रीय एकता खण्डित होगी । लेकिन यह भी सच था कि अंग्रेज ठीक यही चाहते थे। हिन्दू–मुस्लिम प्रतिसंतुलन के द्वारा वे अंग्रेजी प्रभुत्व को बनाये रखना चाहते थे। 1926 में लार्ड ऑलीवियर ने 10 जुलाई को द टाइम्स को लिखे अपने पत्र में लिखा – भारतीय मामलों की जिसे अच्छी जानकारी है, उसे यह मानने में कठिनाई नहीं होगी कि कुल मिलाकर भारत की अफसरशाही मुस्लिम समुदाय का 'पक्ष लेती है । कुछ तो गहरी सहानुभूति के कारण – परन्तु मुख्यत: हिन्दू राष्ट्रवाद के विरुद्ध प्रति तौल की आवश्यकता के कारण।"

1922 में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया और खिलाफत आन्दोलन स्थगित कर दिया । इसके साथ ही हिन्दू–मुस्लिम एकता में दरार आनी प्रारंभ हो गयी । असहयोग के बाद वाले इस काल में साम्प्रदायिक हिंसा की बाढ़ आ गई। 1924 में दिल्ली,

गुलबर्ग, नागपुर, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद, जबलपुर और काहटा में दंगे हुए। 1925 एवं 1927 में भी देश के कई मुख्य शहरों में साम्प्रदायिक दंगे हुए।

सम्प्रदायवाद मूलत ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारतीय सामाजिक–आर्थिक तंत्र के विशिष्ट विकास, विभिन्न सम्प्रदायों के असमान आथिक एवं सांस्कृतिक विकास और ब्रिटिश सरकार और इन सम्प्रदायों के निहित स्वार्थो की रणनीति का परिणाम था । सरकारी प्रवृति इन्हें दबाने की न होकर इन्हें बढ़ा–चढ़ा कर दिखाने और तूल देने की रही । परिणामत यह अनियंत्रित रूप से बढ़ती गयी । संयुक्त प्रान्त के गवर्नर ने अपने विदाई भाषण में सगर्व स्वीकार किया कि उसने अपने पाँच वर्ष के शासनकाल में 83 वर्गो का सामना किया ।

इस साम्प्रदायिक हिंसा की हिन्दू–समाज में प्रतिक्रिया हुई और परिणाम स्वरूप 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना हुई। हिंदू महासभा का यद्यपि 1906 तक गठन हो चुका था परन्तु उसका प्रभाव मामूली था, 1927 के बाद में महासभा का प्रभाव हिन्दुओं में बढ़ने लगा । 1932 के साम्प्रदायिक पंचाट ने हिन्दू–मुस्लिम की खाई को और चौड़ा किया।

20.7.2 द्विराष्ट्र सिद्धान्त और पाकिस्तान की मांग

द्विराष्ट्र के सिद्धान्त को कवि एवं चिंतक अल्लामा इकबाल ने 1930 के इलाहाबाद के लीग अधिवेशन में सर्व–इस्लाम की भावना से प्रेरित होकर दिया । उन्होंने कहा – "यदि यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है कि भारत के साम्प्रदायिक प्रश्न का स्थायी हल भारतीय मुसलमानों को अपने देश भारत में अपनी संस्कृति एवं परम्पराओं के पूर्ण एवं स्वतंत्र विकास का अधिकार है, तो मेरी इच्छा यह होगी कि पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त सिंध और बलूचिस्तान को मिलाकर एक राज्य बना दिया जाय। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर या बाहर एक उत्तर–पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य का गठन मुझे कम से कम उत्तर–पश्चिमी भारत में मुसलमानों का अंतिम लक्ष्य प्रतीत होता है।" कैम्बिज के मुस्लिम स्नातक चौ. रहमत अली ने इस मुस्लिम राज्य को पाकिस्तान की संज्ञा प्रदान की । उसका विचार था कि हिन्दू और मुसलमान मूलत: पृथक राष्ट्र या जातियाँ है। रहमत अली ने "NOW OR NEVER" में लिखा – "हमारा धर्म, संस्कृति, इतिहास, परम्पराएँ, साहित्य, आर्थिक प्रणाली, दाय के कानून, उत्तराधिकार और विवाह हिन्दुओं से मूलत: भिन्न है। ये विन्नताए मुख्य मूल सिद्धान्तों में ही नहीं वरन् छोटे–छोटे व्यौरों में भी भिन्न है। हम मुसलमान और हिन्दू आपस में बैठकर खाते नहीं और विवाह नहीं करते । हमारी राष्ट्रीय रीतियाँ, पंचांग यहां तक कि खाना और पहनावा सभी भिन्न है।" दरअसल यह पृथकता की क्षैतिज योजना थी इसे अपरिपक्व विचारों की उपज और विद्यार्थियों की कोरी कल्पना और अव्यवहार्य कहा गया।

1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत हुए निर्वाचनों में लीग को थोड़ी ही सफलता मिली । मुसलमानों के लिए आरक्षित 485 स्थानों में से 110 लीग को मिले। लीग ने बंगाल, असम और पंजाब में कांग्रेस के साथ मिलकर सरकार बनाने और यू पी एवं बिहार में अपने कुछ सदस्यों को मंत्रिमण्डल में शामिल करने का प्रस्ताव कांग्रेस को किया। अपने को धर्मनिरपेक्ष कहने वाली कांग्रेस ने लीग प्रस्ताव को ठुकरा दिया । कांग्रेस ने सशर्त प्रस्ताव किया कि यदि कांग्रेस प्रतिज्ञा–पत्र पर हस्ताक्षर करे तो उन्हें मंत्रिमण्डल में शामिल किया जा सकता है। यह सम्भवत : कांग्रेस की एक बड़ी भूल थी । 1937 के लीग के लखनऊ अधिवेशन में जिन्ना ने

कांग्रेस के प्रति विष वमन करते हुए कहा, "मुसलमानों को अधिकाधिक विरोधी बनाने का उत्तरदायित्व कांग्रेस का है । विशेषकर पिछले दस वर्षों में क्योंकि उन्होंने पूरी तरह हिन्दू नीति का अनुसरण किया है । उन्होंने अपने वचनों, कार्यों तथा कार्यक्रम से यह स्पष्ट कर दिया है कि मुसलमान उनसे किसी प्रकार के न्याय अथवा ईमानदारी की उम्मीद नहीं कर सकते।" यही नहीं इस अधिवेशन में पीरपुर के राजा की अध्यक्षता में कांग्रेसी राज्यों में मुसलमानों के उत्पीड़न की जाँच के लिए समिति बनायी गयी । इस समिति ने मनगढ़ून्त आरोप लगाकर मुसलमानों के असंतोष को उभारा । लीग ने 1939 में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों के त्यागपत्र देने पर उस दिन को 'मुक्ति दिवस' के रूप में मनाया ।

1940 के लाहौर अधिवेशन में जिन्ना ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि हिन्दू और मुसलमान दो पृथक राष्ट्रीयता है। साथ ही उसने यह भी कहा कि दोनों जातियों को एक साथ बाँधने से, जिसमें एक अल्पसंख्यक और दूसरी बहुसंख्यक हो, असंतोष बढ़ेगा और राष्ट्र ही नष्ट हो जायेगा। इस अधिवेशन ने विभाजन की स्पष्टत मांग करते हुए कहा –

> "अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के इस अधिवेशन का यह दृढ़ विचार है कि इस देश में कोई भी संवैधानिक योजना सफल और मुसलमानों को स्वीकार्य नहीं होगी, जोकि निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित न हो – भौगोलिक स्थिति से एक दूसरे से सटे हुए प्रदेश, आवश्यक परिवर्तनों सहित इस प्रकार गठित किये जायें कि भारत के उत्तर–पश्चिमी और पूर्वी प्रदेश और इनको मिलाकर एक 'स्वतंत्र ' राज्य बना दिया जाये और उसमें सम्मिलित प्रदेश स्वशासी और प्रभुसत्ता सम्पन्न हो।"

उसने जाट–मुस्लिम एकता को 1945 तक टूटने नहीं दिया । अंग्रेजी सरपस्ती और विधान सभा के षड्यंत्रों को ही लीग के प्रभाव विस्तार के मुख्य कारण नहीं माना जा सकता है । अन्य अनेक ऐसे कारण विद्यमान थे जिनके चलते पृथक पाकिस्तान का विचार आम मुसलमानों में लोकप्रियता अर्जित कर रहे थे। गरीब मुसलमान एवं मुस्लिम–किसानों को यह विश्वास दिलाया जा रहा था कि पाकिस्तान बन जाने पर हिन्दू जमींदारों और महाजनों का शोषण खत्म हो जायेगा। और सबसे बड़ा आकर्षण पाकिस्तान का यह वादा था, जिसमें भारत का एक हिस्सा (पाकिस्तान) हिन्दू व्यापारियों एवं उद्योगपतियों से मुक्त होगा, जिसमें मुस्लिम व्यापारी एवं व्यवसायी उन्नति कर सकेंगे । प्रगतिशील मुस्लिम मध्यम वर्ग को भी पाकिस्तान में अधिक नौकरियों के रूप में, विकास के अवसरों का खिंचाव कम नहीं था । जहां मुस्लिम अल्पसंख्यक में थे वहां यह आकर्षण अधिक था, वनिस्पन मुस्लिम बहुल प्रान्तों के। उदीयमान मुस्लिम उद्योग–घरानों से भी पाकिस्तान में अधिक आकर्षण था। पाकिस्तान में उन्हें स्थापित हिन्दू घरानों की प्रनिस्पर्धा का डर नहीं रहेगा । ऐसे ही घरानों इस्फानी और आदमजी ने लीगी अखबारों, कलकत्ता के 'स्टार' और दिल्ली के 'डॉन' को आर्थिक मदद की । इन कारणों से भी मुस्लिम मध्यम वर्ग एवं पूंजीपति वर्ग में लीग का प्रभाव तेजी से बढ़ा ।

क्रिप्स मिशन ने लीग की माँग को और आगे बढ़ाया और लीग ने क्रिप्स की योजना अस्वीकार करते हुए पाकिस्तान की अपनी माँग को पुन: दोहराया ।

20.7.3 लीग की तीव्र प्रगति

युद्ध के आखिरी वर्षो में भारतीय राजनीति की प्रमुख घटना के में मुस्लिम–लीग के प्रभाव विस्तार में तीव्र प्रगति को रेखांकित किया जा सकता है । अंग्रेजो द्वारा कांग्रेस के कठोर दमन का लाभ उठाते हुए, लीग ने अपनी स्थिति मजबूत कर लौ और 1943 तक असम, सिंध, बंगाल और उत्तर–पश्चिमी सीमा प्राप्त में लीग मंत्रिमण्डल बना लिये । जिन्ना स्वयं को मुसलमानों का निर्विवाद एवं एकमात्र नेता सिद्ध करने में लगे थे। लीग के केन्द्रीय नेतृत्व का प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों पर मजबूत नियंत्रण था। साथ ही लीग ने एक राष्ट्रीय गार्ड का भी गठन कर लिया था । असम और उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त में लीग मंत्रिमण्डल का गठन सिर्फ इसलिए हो सका था कि अधिकांश विधायक जेलों में बंद थे। बंगाल में यूरोपीय विधायकों की मदद से मंत्रिमण्डल बच सका । तो सिंध में अल्लाह बख्श की सरकार को जो कांग्रेस समर्थन से बनी थी, अंग्रेज गवर्नर ने भंग करके लीग की सरकार बनवायी थी लेकिन मुस्लिम बहुल बंगाल और पंजाब अभी भी जीनह और लीग की ऑखों की किरकिरी बने हुए थे। कांग्रेस में जैसे बिड़ला के आर्थिक सहयोग से बोस को निष्कासित किया था ठीक वैसे ही ने इस्पहानी (कलकत्ता के उद्योगपति) के आर्थिक सहयोग से बंगाल की फजलुल–हक सरकार को अपदस्थ कर पुराना प्रयोग दोहराया। फजइल–हक जिन्ना के मुखर आलोचक थे और हिन्दू महासभा के श्यामा प्रसाद मुखर्जी से उनका 1941 से गठबंधन चला आ रहा था। पंजाब में सिकन्दर हयात खां की मृत्यु ने जिन्ना (को मौका उपलब्ध कराया । यद्यपि सिकन्दर हयात खां का उत्तराधिकारी खिज हयात खां की परेशानी का कारण बना रहा।

20.7.4 गांधी–जिना वार्ता : 1944

देश की साएदायिक समस्या को सुलझाने के लिए गांधी जी ने श्नि! को वार्ता के लिए आमंत्रित किया। दो सप्ताह तक वार्ता चली परन्तु कोई हल न निकला । गांधी जी ने सी आर. फार्मूले की भांति पंजाब और असम के भी बंटवारे की चर्चा की । लेकिन जिन्ना इस पर सहमत नही हुए। गांधी जी मुसलमानों को पृथक राष्ट्रीय इकाई मानने को तैयार न थे । उनका कथन था कि हिन्दू–मुस्लिम एक संयुक्त परिवार की तरह है। वे विभाजन को एक परिवार की सम्पत्ति के बँटवारे की तरह स्वीकार करने को तैयार थे। जिन्ना और गांधी जी में बँटवारे के समय को लेकर भी मतभेद था। गांधी जी पहले स्वतंत्रता चाहते थे, बँटवारा बाद में, तो जिन्ना बँटवारा पहले। गांधी जी की यह भी इच्छा थी कि कुछ साझे विषयों की भी व्यवस्था हो। वार्ता असफल रही और जिन्ना, जिसे गांधी जी ने सम्मानपूर्वक कायदे आजम ' (महान संगठनकर्ता) कहा था, को इस सारे नाटक का खूब लाभ मिला। गांधीजी के साथ वार्ता ने, उसे एक सर्वमान्य एवं निर्विवाद मुस्लिम नेता की मान्यता दिला दी ।

20.7.5 शिमला कांफ्रेन्स

4 जून, 1945 को तत्कालीन भारत सचिव एमरी ने ब्रिटिन की साधारण–सभा में यह घोषणा की कि क्रिप्स प्रस्ताव अभी भी बिना परिवर्तन या नियंत्रण के अस्तित्वमान है । 14 जून को वेवल ने एक भारतीय नेताओं के सम्मेलन की घोषणा की । वार्ता के लिए शिमला बुलाया

गया । इसके साथ ही. कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों को रिहा कर दिया गया । इस सम्मेलन के निम्न लक्ष्य निर्धारित किये गये -

1. साम्पदायिक समस्या का निदान, जो संविधानिक विकास में मुख्य बाधा थी ।
2. सभी राजनैतिक दलों में से गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद का गठन । इसमें मुस्लिम एवं स्वर्ण हिन्दुओं का बराबर–बराबर प्रतिनिधित्व हो। सेनाध्यक्ष को छोड़कर शेष सदस्य भारतीय हों। इस परिषद का कार्य युद्ध का संचालन, प्रशासन और नये संविधान का निर्माण करना होगा ।

यह शिमला सम्मेलन 25 जून से 14 जुलाई तक चला । यह सम्मेलन जिन्ना की इस हठधर्मी से असफल हो गया कि मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग द्वारा मनोनीत हों। वेवेल ने स्वयं मुस्लिम सदस्यों की एक सूची पेश की, जिसमें चार लीग के और एक यूनियनिस्ट दल का सदस्य था । कांग्रेस का एक सदस्य इस सूची में नहीं था । जिन्ना इस पर भी सहमत नहीं हुए, फलत भारत सचिव एमरी ने वेवेल को इसे समाप्त घोषित करने की सलाह दी ।

इस सम्मेलन की असफलता का उत्तरदायी स्पष्टत: जिनाह का था, लेकिन वेवेल की भूमिका भी कम जिम्मेदार न थी । उसने जिना को अनावश्यक महत्व दिया । मौलाना अबुल कलाम आजाद जो उस समय कांग्रेस अध्यक्ष थे, ने शिमला सम्मेलन में भाग लेने का औचित्य सिद्ध करते हुए "इण्डिया विन्स फ्रीडम" में लिखा कि युद्ध समाप्त हो जाने के बाद इंग्लैण्ड को भारतीय सहयोग की कोई विशेष जरूरत न रहती यह सोच भामक थी । वस्तुत: कांग्रेस ने जहां 1942 में इंग्लैण्ड की स्थिति को इतनी कमजोर समझने की गलती की तो वही 1945 में उसे मजबूत समझने की। सच तो यह था कि युद्ध कालान्तर इंग्लैण्ड की आर्थिक एवं राजनैतिक दशा बिगड़ रही थी। दूसरी ओर शिमला सम्मेलन ने लीग को कांग्रेस के समकक्ष ला बिठाया गया इस सम्मेलन ने भारत विभाजन की ओर एक कदम और बढ़ा दिया था ।

20.7.6 1946 के निर्वाचन

जुलाई, 1945 में इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी को भारी बहुमत से विजय मिली । उसने शीघ्र भारत में भी प्रान्तीय एवं केन्द्रीय विधान–सभा के चुनाव कराने की घोषणा की। दिसम्बर 1945 में सम्पन्न चुनावों में कांग्रेस को सामान्य स्थानों पर एवं लीग को मुस्लिम आरक्षित स्थानों पर भारी सफलता मिली । राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं, अन्य दलों एवं स्वतंत्र मुस्लिम उम्मीदवारों को जोरदार शिकस्त मिली । लीग को प्रान्तों में मुस्लिम आरक्षित 509 स्थानों में से 442 स्थानों के साथ केन्द्र में आरक्षित सभी 30 स्थानों पर सफलता मिली । कांग्रेस ने हिन्दू बहुल प्रान्तों और उत्तर–पश्चिमी सहमी प्रान्त में अपने मंत्रिमण्डल बनाये । बंगाल एवं सिंध में लीग ने मत्रीमण्डल बनाये। यद्यपि लीग पंजाब में सबसे बड़े दल के रूप में उभरी लेकिन यूनियनिस्ट दल ने मिलाजुला मंत्रिमण्डल बनाया ।

इन निर्वाचनों से एक तथ्य स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस का मुसलमानों में अब कोई प्रभाव न रह गया था । मुस्लिम लीग ही अब मुस्लिम आकांक्षाओं की प्रवक्ता बन गयी थी ।

20.7.7 नौ सेना विद्रोह

इस दौरान भारतीय राष्ट्रीय आदोलन में एक अभूतपूर्व घटना घटित हुई, जिसने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों को भारत छोड़ने को बाध्य किया। 18 फरवरी, 1946 को सिगनल्स प्रशिक्षण प्रतिष्ठान 'तलवार' के नौ सैनिकों ने खराब भोजन, नस्ली भेदभाव एवं अपमानजनक व्यवहार के विरोध में भूख हड़ताल कर दी । दूसरे दिन स्क हड़ताल कैसल फोर्ट बैरकों एवं बम्बई के तट पर लंगर डाले 22 जहाजों में फैल गयी। जहाजों पर तिरंगे सहित चाँद एवं हंसिया–हथौड़े वाले झण्डे एक साथ लहराने लगे । नौ सैनिकों ने एक केन्द्रीय हड़ताल समिति भी बनाली, जिनके अध्यक्ष थे – एम एस. खान । उनकी मागों में अच्छे खाने अंग्रेज नाविकों के समान वेतन, के साथ ही आजाद हिन्द फौज के राजनीतिक कैदियों की रिहायी एवं इण्डोनेशिया से भारतीय सैनिकों की वापसी की मांग भी शामिल थी जो इसके राष्ट्रवादी आदोलन होने को रेखांकित करती है। शान्तिपूर्ण हडताल या पूर्ण विद्रोह की कशमकश के बाद लड़ाई प्रारंभ हो गयी। अंग्रेज एडमिरल गॉडफ्रे ने बमबारी करके नौसेना को नष्ट करने की धमकी दी । लेकिन जनता ने अपने जाँबाज जवानों से एकजुटता दिखाते हुए, गेट वे ऑफ इण्डिया पर भीड़ खाना लेकर पहुंची। 22 फरवरी तक यह हड़ताल देशभर के नौ सैनिक केन्द्रों एवं समुद्र में खड़े जहाजों में भी फैल गयी थी। कराची में हिन्दुस्तान नामक पोत पर एक बड़ी लड़ाई के बाद ही समर्पण हो सका था । बम्बई में छात्रों एवं श्रमिकों की अंग्रेज सेना एवं पुलिस के साथ हिसक झड़पें हुई और उन्होंने अपना समर्थन नौ–सैनिकों के साथ व्यक्त किया। सी पी आई ने बम्बई में आम हड़ताल का आव्हान किया । कांग्रेस के अष्णुतपटवर्धन और अरुणा आसफ अली ने भी इसका समर्थन किया । इसके विपरीत सरदार पटेल ने लोगों से हड़ताल न करने को कहा । यहां तक कि प्रार्कीय कांग्रेस ने तो कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिए अपने स्वयंसेवक देने तक की पेशक्या की । लीग और कांग्रेस के विरोध के बावजूद बम्बई में आम–बंद सफल रहा । मिलें बंद रही, सड़कों पर भीड़ ने बाधाएँ खड़ी की । दो–दिनों तक पूर्ण बंद रहा । सेना बुलानी पड़ी और सरकारी अनुमान के अनुसार 228 नागरिक मारे गये और 1046 घायल हुए ।

पटेल और जिना ने नाविकों को समर्पण के लिए मनाया और उन्हें अन्याय न होने देने का आश्वासन दिया। मार्च, 1946 को पटेल ने आंध्र के एक कांग्रेस नेता विश्वनाथन को लिखा – "सेना के अनुशासन को छोड़ा नहीं जा सकता... स्वतंत्र भारत में भी हमें सेना की आवश्यकता होगी।" (सरदार्स लेटर्स, खण्ड 4, अहमदाबाद 1977, पृ 115)। नेहरू ने लिखा, "हिंसा के उच्छंखल उद्वेग को रोकने की आवश्यकता है।" यद्यपि बाद में उन्होंने नौ सेना हड़ताल की प्रशंसा की। गांधीजी ने 22 फरवरी को बुरा और अशोभनीय व्यवहार के लिए नौ–सैनिकों की निन्दा की। उन्होंने कहा – "हिंसात्मक कार्यवाही के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों का एक होना अपवित्र बात है।" वेवेल ने 30 मई की निजी टिप्पणी, "हमें हर कीमत पर हिन्दुओं और मुसलमानों से एक साथ उलझनें से बचना चाहिये", (वायसरायूज जर्नल पृ. 485) से गांधीजी के कथन की प्रतिध्ववि सुनायी देती है ।

यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि नौ–सेना के इन बहादुर क्रान्तिवीर नाविकों को आजाद हिन्द फौज के सैनिकों जैसा सम्मान कभी नहीं दिया गया। जबकि आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की अपेक्षा इनका कारनामा अधिक जोखिम भरा था । आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के लिए

जापनी कैद, से अच्छा विकल्प देश के लिए लड़ना हो सकता था। अन्त में तो नौ सेना केन्द्रीय हड़ताल समिति का आखिरी संदेश को याद करना उचित होगा – हमारी हड़ताल हमारे राष्ट्र के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना रही है । पहली बार सेना के जवानों और आम आदमी का खून सड़कों पर एक साथ, एक लक्ष्य के लिए बहा । हम फौजी इसे कभी नहीं भूलेंगे । हम यह भी जानते है कि हमारे भाई–बहिन भी इसे नहीं भूलेंगे । हमारी महान् जनता जिंदाबाद! जयहिन्द । (द आर आई एन. स्ट्राइक', पृ. 75)

20.7.8 कैबिनेट मिशन

24 मार्च से जून, 1946 तक ब्रिटेन के मंत्रिमण्डल के तीन सदस्यों भारत सचिव लार्ड पैथिक, क्रिप्स और एलेस्वेण्डर, ने वेवेल के साथ मिलकर भारतीय नेताओं के साथ लम्बी वार्ताएँ की । 15 मार्च को प्रधानमंत्री एटली ने साधारण सभा में यह स्पष्ट कर दिया था कि, "यद्यपि अल्पसंख्यकों का हित हमारे ध्यान में है..... फिर भी हम बहुमत की प्रगति पर अल्पमत को वीटो के प्रयोग की अनुमति नहीं दे सकते।" (वी पी मेनन, 'ट्रांस्फर ऑफ पावर इन इण्डिया' पृ. 237)। एटली की इस घोषणा से लीग स्पष्ट रूप में कैबिनेट योजना को निरस्त नहीं कर सकती थी ।

16 मई, 1946 को कैबिनेट मिशन ने अपने प्रस्ताव प्रकाशित कर दिये –

1. भारतीय संघ की स्थापना की जाय, जिसमें भारतीय राज्य एवं प्रान्त सम्मिलित किये जायें और इस संघ के पास विदेश, रक्षा एवं संचार–व्यवस्था का दायित्व रहे । अतिरिक्त समस्त अधिकार राज्यों अथवा प्रान्तों को दिये जायें ।
2. संविधान निर्माण के लिए एक संविधान–सभा का गठन हो, जिसमें प्रान्तों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या अनुपात में हो ।
3. प्रान्तों को तीन समूहों में बाँटा जाय, (अ) समूह में बंबई, मद्रास, यू –पी., बिहार और उड़ीसा (ब) समूह में, पंजाब उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत और सिंध तथा (स) समूह में बंगाल और असम थे। तीनों समूहों के प्रांत प्रतिनिधि अपने–अपने समूह के लिए संविधान बनायेंगे । यदि कोई प्रांत एक समूह से निकल कर दूसरे समूह में आना चाहे तो वह ऐसा नये संविधान के अन्तर्गत हुए चुनावों के बाद ही ऐसा कर सकेगा । संविधान में संशोधन 10 वर्ष पश्चात् होगा।
4. इस प्रकार तैयार हुए संविधान को अंग्रेज सरकार पूरी तरह लागू करेगी।
5. देशी राज्यों को संप्रभुता का अधिकार होगा ।
6. पाकिस्तान की मांग स्पष्टत: नकार दी गयी ।

कैबिनेट मिशन ने लीग और कांग्रेस के बीच का मध्यम मार्ग तलाशने का प्रयत्न किया । जहां संगठित भारत की व्यवस्था कांग्रेस की संतुष्टि थी, वही कमजोर संघ से भारतीय नरेशों एवं लीग को संतुष्ट किया गया । इस योजना का सबसे कमजोर पक्ष प्रांतों के समूह बनाना था । इस बारे में दोनों राजनीतिक दलों में तीव मतभेद था।

सत्ता हस्तांतरण के लिए एक अंतरिम सरकार के गठन की व्यवस्था पी इसमें की गयी थी । जिसमें 14 मंत्री – 6 कांग्रेसी (1 अनुसूचित जाति सहित), 5 मुस्लिम लीग, 1 सिक्ख, 1 पारसी, 1 भारतीय ईसाई थे ।

29 जून, 1946 को कैबिनेट मिशन इंग्लैण्ड लौट गया । कांग्रेस ने 16 मई की योजना स्वीकार कर ली । 10 जुलाई को एक संवाददाता सम्मेलन में घोषणा की कि उनका दल संविधान सभा के चुनाव में भाग लेने को प्रतिबद्ध था। 'इसकी बड़ी सम्भावना है कि कोई समूहीकरण हो ही नहीं' क्योंकि उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत और असम मण्डल ब और स में शामिल होने पर आपत्ति कर सकते है। जवाब में लीग ने कैबिनेट मिशन योजना पर अपनी स्वीकृति वापसले ली और 16 अगस्त को "सीधी कार्यवाही दिवस" मनाएगा, की घोषणा की । यह सीधी कार्यवाही वस्तुतः अंग्रेजों के विरुद्ध न होकर हिन्दुओं के विरुद्ध पाकिस्तान लेने के लिए की गयी ।

दो सितम्बर को नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार बनी। नेहरू ने स्पष्ट कर दिया था कि उनकी पार्टी अनिवार्य समूहीकरण के विरुद्ध है ।

20.8 साम्प्रदायिक विनाश लीला

16 अगस्त, 1946 से अभूतपूर्व हिंसा एवं दंगों ने भारतीय परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया। दंगों की शुरूआत 16– 17 अगस्त को कलकत्ता में मुख्यमंत्री सुहरावर्दी के इस इशारे के बाद हुई कि पुलिस और सेना हस्तक्षेप नहीं करेगी । कलकत्ता में भीषण कत्ले आम हुआ और 19 अगस्त तक चार हजार लोग मारे गये । बम्बई में दंगों का स्वरूप छुट–पुट छुरेबाजी के रूप में रहा । पूर्वी बंगाल के नोआखाली और टिपरा में हत्याऐं अप्रेक्षाकृत कम हुई और सम्पत्ति को नुकसान ज्यादा पहुंचाया गया। बिहार में हिंसा अधिक उग्र थी। उसमें 7000 से अधिक लोग मारे गये । गढ़मुक्तेश्वर में हिन्दू तीर्थयात्रियों ने 1000 मुसलमानों की हत्या कर दी। दंगों एवं हत्याकांड की खबरों से उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत में कांग्रेस की स्थिति कमजोर हुई। अक्तूबर 1946 में नेहरू को इस प्रांत में आदिवासियों के वैमनस्यपूर्ण प्रदर्शन का सामना करना पड़ा । हजारा में जनवरी 1947 में दंगे हुए और उसके बाद हुए एक अति महत्वपूर्ण उपचुनाव में कांग्रेस की हार हुई । यही नहीं इन दिनों आने वाले हृदय विदारक एवं नृशंस कल्लेआम की भूमिका तैयार हो रही थी, जो पंजाब में हुई। लीग ने पंजाब में जनवरी 1947 में सविनय अवज्ञा आदोलन चलाया, जिसके परिणाम स्वरूप खिव हयात खां की सरकार गिर गयी । सिक्खों में मास्टर तारा सिंह के नेतृत्व में हुए एक प्रदर्शन के बाद पंजाब भीषण दंगों की चपेट में आ गया। अगस्त, 1947 तक 5,000 लोग मारे गये लेकिन यह उस सर्वनाशी महाविनाश के सामने कुछ भी नहीं था, जो स्वतंत्रता के बाद सीमा के दोनों ओर स्पा । पेंडलर मून जो उस समय बहावलपुर (पंजाब) में कार्यरत था, का अनुमान है कि लगभग 1,80,000 लोग मारे गये । मार्च, 1948 तक 60 लाख मुस्लिम और 45 लाख हिदू एवं सिक्ख शरणार्थी हो गये। जनसंख्या का ऐसा बलात् पलायन अभूतपूर्व था।

इस दौरान ब्रिटिश शासन का इस भयानक मानव–संत्रास में नकारात्मक् रुख रहा । प्रशासन मूक दर्शक बना देखता रहा । नेहरू की अंतरिम सरकार असहाय बनी देखती रही । वस्तुतः सरकार होते हुए भी उसके पास कोई शक्ति न थी और नेहरू की स्थिति 26 अम्बर, 1946 को लीग द्वारा सरकार में शामिल होने के बाद और दुरूह हो गयी थी। दंगों की भयानकता और कांग्रेस–लीग की मिलीजुली अव्यावहारिक सरकार की स्थिति देखकर अब लोग विभाजन की बात को स्वीकार करने लगे थे । नेहरू और पटेल भी अब विभाजन पर सहमत हो गये और पंजाब और बंगाल के हिन्दू और सिक्ख सम्प्रदायवादी भी विभाजन की मांग करने लगे थे।

20.9 स्वतंत्रता और देश का विभाजन

भारत की दुर्दशा से ब्रिटिश मंत्रिमण्डल भली–भांति परिचित था। लेकिन वेवेल लीग–कांग्रेस मतभेद से खुश था और इसे बनाये रखना चाहता था। एटली ने इस समस्या का हल निकालने हेतु भारत से ब्रिटिश अधिकार खत्म करने की निश्चित निथि घोषित कर दी। 20 फरवरी, 1947 को उसने घोषणा की कि जून, 1948 के पूर्व भारतीयों को सत्ता सौप दी जायेगी। यद्यपि ब्रिटेन के कंजरवेटिव दल ने इस घोषणा की कटु आलोचना की। अंततः माउटबेटन को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर सत्ता हस्तातंरण का उत्तरदायित्व निभाने के लिए भेजा गया। 24 मार्च, 1947 को माउरबेटन ने कार्यभार सम्भाल लिया।

माउंटबेटन ने भारत पहुंचते ही तीव गति से कार्य करना शुरू कर दिया। 6 मई तक उसने भारतीय नेताओं के साथ 133 साक्षात्कार कर एक योजना बनायी जिसमें विभिन्न प्रांतों को सत्ता का हस्तांतरण कर दिया जाता यदि वे संघ बनाने में सफल न रहते और बंगाल और पंजाब को इसमें अपने को विभाजित कर लेने का प्रावधान भी था । बाद में वे चाहें पाकिस्तान या भारत में शामिल हो सकते थे। 10 जून को माउच्बेटन ने व्यक्तिगत रूप से नेहरू से मिलकर योजना उन्हें बतायी । नेहरू ने इसकी जोरदार आलोचना की और मेनन–पटेल की योजना – डोमिनियन – स्टेट के आधार पर भारत और पाकिस्तान को दो सरकारी को सत्ता हस्तांतरण – को नेहरू ने उठाया । 2 जून, को मुस्लिम लीग, कांग्रेस और सिक्ख नेताओं ने इस पर स्वीकृति दे दी और माउंटबेटन ने 3 जून को भारत विभाजन की अपनी योजना प्रकाशित कर दी । ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने उसी दिन इसे ब्रिटिश–संसद में रख दिया। इस योजना की मुख्य बातें निम्न थी -

1. संविधान सभा द्वारा पारित संविधान भारत के उन भागों में लागू नहीं होगा, जो उसे मानने को तैयार न ही ।
2. बंगाल और पंजाब में हिन्दु और मुसलमान बहुल जिलों के विधानसभा सदस्यों की पृथक बैठक बुलायी जाये और यदि उनमें कोई भी पक्ष विभाजन चाहेगा, तो विभाजन कर दिया जायेगा।
3. उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत में जनमत द्वारा यह पता लगाया जायेगा कि वह भारत के किस भाग की ओर रहना चाहेगा।
4. असम के सिल्हट में भी इसी तरह जनमत द्वारा निर्णय कराया जायेगा।
5. भारतीय राज्यों के प्रति पुरानी नीति यथावत् रहेगी कि सार्वभौम सत्ता (पेरामाउंटसी) उन्हें लौटा दी जायेगी ।

देश विभाजन की तैयारिया शुरू हो गयी। बंगाल और पंजाब में विभाजन एवं सीमा तय करने के लिए रेडक्लिफ की अध्यक्षता में एक आयोग बनाया गया। इस योजना पर आधारित एक विधेयक की 18 जुलाई, 1947 को ब्रिटिश संसद और समाट ने पुष्टि कर दी।

20.10 भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम

18 जुलाई, 1947 को भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम की पुष्टि के वाद इसके आधार पर 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान अधिराज्य बनाया गया, जिसके गवर्नर जनरल जिन्ना और लियाकत अली प्रधानमंत्री बने। 15 अगस्त की मध्यरात्रि को भारत को अधिराज्य घोषित किया

गया। संविधान सभा ने माउंटबेटन को स्वतंत्र भारत का गवर्नर जनरल और नेहरू से प्रधानमंत्री बनाया गया।

बहुधा यह प्रश्न किया जाता है कि आखिर राष्ट्रीय नेताओं ने देश का विभाजन क्यों स्वीकार किया? अथवा क्या विभाजन अनिवार्य था? वस्तुतः इन प्रश्नों पर लेखकों में मतभेद है। 1937 और 1947 के मध्य भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में जो कुछ घटित हुआ, उस अनुभव का यही लुनोलुबाब था कि कांग्रेस और लीग मिलकर संयुक्त रूप से इस देश का शासन नहीं चला सकते थे। नवम्बर, 1946 के बाद की कांग्रेस–लीग अन्तरिम सरकार के अनुभव इतने कटु थे कि संयुक्त शासन की सभी सम्भावनाएँ खत्म हो गयी। यद्यपि 1946 से पूर्व राष्ट्रीय नेताओं की मान्यता थी कि पहले स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। बाद में लीग और कांग्रेस अपने मामले निपटा लेगी। लेकिन अंग्रेजों ने पहले झगड़ा निपटाने की शर्त रखी। दूसरी ओर मुस्लिम लीग भी बहुमत का नियंत्रण स्वीकार करने को तैयार न थी। सरदार पटेल ने बाद में स्पष्ट किया था कि कांग्रेस अगर विभाजन पर सहमत न होती, तो एक पाकिस्तान के स्थान पर कई पाकिस्तान होते। वस्तुत : अंग्रेजों की बाँटो और राज्य करो' की नीति और उसके फलस्वरूप उपजी लीगी–साम्प्रदायिकता और कांग्रेस की अनेक गलतियों का मिलाजुला अंतिम परिणाम विभाजन के रूप में हमें मिला ।

भारत स्वतंत्र हुआ भग्न हृदय, रक्त स्नात, भय और वैमनस्य की भावना लिये ।

20.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के लिए कौन से हालात उत्तरदायी थे? इससे भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति कहां तक हुई और देश के बंटवारे में कहां तक सहायता मिली?
2. 1919 ई. से 1947 ई. तक जिन अवस्थाओं में स्वतंत्रता आन्दोलन को होकर गुजरना पडा, उनका वर्णन करिए । भारतीय स्वतंत्रता में संग्रेस कहां तक सहायक थी?
3. हालात की मजबूरी थी और यह महसूस किया गया कि जिस मार्ग का हम अनुसरण कर रहे है, उसके द्वारा गतिरोध हल नहीं किया जा सकता है । ल (नेहरू) । इस कथन को दृष्टि में रखते हुए उन कारणों का वर्णन कीजिए जिन्होंने भारत का विभाजन अवश्यंभावी बना दिया।
4. मुस्लिम लीग एवं साथदायिकता भारत विभाजन के लिए कहां तक उत्तरदायी थी?
5. टिप्पणियां लिखिए:
   (a) कैबिनेट मिशन योजना
   (b) क्रिप्स मिशन
   (c) सी.आर. फार्मूला
   (d) मुस्लिम लोग

20.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रो. बिपिन चन्द्र : भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष
2. सुमित सरकार : आधुनिक भारत (1885– 1947)
3. सुन्दरलाल : भारत में अंग्रेजी राज, खण्ड–4

4. ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड–3 एवं 4
5. अयोध्यासिंह : भारत का मुक्ति संग्राम
6. रजनी पाम दत्त : आज का भारत
7. B.R. Nanda : Gandhi & his Critics
8. Amba Prasad : Indian Revolt of 1942
9. Coupland, R. : The Constitutional Problem in India
10. Bahadur Lal : the Muslim League

ISBN-13/978-81-8496-253-6